'कृषि उत्पादकता, पोषण स्तर, एवं कुपोषण जनित बीमारियाँ''

[जनपद-प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ म]

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

की

अर्थशास्त्र विभाग में पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

करूणेश प्रताप सिंह

पर्यविक्षक

डॉ0 राजबहादुर सिंह भदौरिया

रीडर, अर्थशास्त्र विभाग

जनता महाविद्यालय अजीतमल

जिला-औरैया (उ0प्र0)

BUNDELKHAND UNIVERSITY

CENTRAL LIBRARY

सत्र-2002

// प्रमाण-पत्र //

प्रमाणित किया जाता है कि श्री करूणेश प्रताप सिंह, शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, जनता महाविद्यालय, अजीतमल, जिला औरैया, (उत्तर प्रदेश) ने अर्थशास्त्र विषय में पी-एच0डी0 कार्य हेतु मेरे पास 300 दिनों से अधिक समय तक रहकर मेरे निर्देशन में ''कृषि उत्पादकता, पोषण स्तर एवं कुपोषण जनित बीमारियाँ'' (जनपद-प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ मे) नामक शीर्षक पर शोध कार्य किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अभ्यर्थी की मौलिक कृति है।

दिनांक : मार्च 5 2001

(डा0 राजबहादुर सिंह भदौरिया)
रीडर, अर्थशास्त्र विभाग
जनता महाविद्यालय, अजीतमल
जिला-औरैया (उ0प्र0)

।। आभार ।।

मैं डॉ0 राजबहादुर सिंह भदौरिया रीडर अर्थशास्त्र विभाग, जनता महाविद्यालय अजीतमल, जिला औरैया (उ0प्र0) का अत्यधिक कृतज्ञ हूं, जिनके योग्य निर्देशन में मैने अपना शोध कार्य पूरा किया। मैं अर्थशास्त्र विभाग जनता महाविद्यालय अजीतमल के अन्य सभी गुरूजनों का हृदय से आभारी हूं जिन्होने मुझे शोध कार्य पूरा करने हेतु समय-समय पर अपना अमूल्य समय एवं प्रोत्साहन देते रहे। मैं राजा अनिल प्रताप सिंह प्रबन्धक, प्रताप बहादुर डिग्री कालेज, प्रतापगढ का आजीवन आभारी रहूंगा, जिन्होने हर समय मुझे शोध कार्य पूरा करने हेतु प्रोत्साहन देते रहे, तथा साथ ही साथ मेरा मार्ग दर्शन भी करते रहे। मैं प्रो0 सभाजीत सिंह, प्राचार्य, प्रतापबहादुर डिग्री कालेज प्रतापगढ, का आभारी हूं जिन्होने समय-समय पर मुझे सहयोग एवं मेरा उत्साहवर्धन करते रहे। मैं प्रताप बहादुर डिग्री कालेज प्रतापगढ़, अर्थशास्त्र विभाग के सभी गुरूजनों का हृदय से आभारी हूं जिन्होने मुझे शोध कार्य पूरा करने हेतु समय-समय पर अपना सहयोग एवं अमूल्य योगदान दिया। मैं डा0 रणबीर सिंह चौहान, प्राचार्य, चित्रकूट इण्टर कालेज कर्वी, जनपद-चित्रकूट का हृदय से आभारी हूं जिन्होने शोध कार्य को पूरा करवाने में मेरी हर सम्भव मदद किया। मैं अपने पूज्य पिता श्री शिवप्रताप सिंह, प्राचार्य, ग्राम विकास इण्टरमीडिएट कालेज देल्हूपुर, जनपद-प्रतापगढ का आजीवन आभारी रहूंगा, जिनकी प्रेरणा से मैने शोध कार्य पूरा किया, इन्होने हर समय मुझे शोध कार्य पूरा करने हेतु प्रेरित करते रहे एवं हमेशा मेरा उत्साहबर्धन किया। मैं अपनी धर्म पत्नी श्रीमती सुषमा सिंह का आभारी हूं जिन्होने एक अच्छी ग्रहणी का निर्वाह करती हुई हमेशा मेरे शोध कार्य को पूरा करवाने में अपना भरपूर सहयोग प्रदान किया। मैं जनपद-प्रतापगढ के जिलाधिकारी श्री सुरेशचन्द्र शर्मा तथा जिला, तहसील व विकासखण्ड मुख्यालय के अधिकारी व कर्मचारी तथा सम्बन्धित ग्रामवासी हार्दिक धन्यवाद के पात्र है, जिन्होने मुझे आवश्यक तथ्य व आंकड़े प्रदान किया।

अन्त में मैं श्री राजबहादुर सिंह चन्देल सहायक अध्यापक जयदुर्गे टाइप प्रशिक्षण संस्थान, तुलसी बाजार कर्वी, जनपद-चित्रकूट को धन्यवाद देता हूं जिन्होने बहुत सावधानी से हस्तलिपि को टंकित किया।

दिनांक : मार्च 5 2001

(करूणेश प्रताप सिंह)
शोध छात्र
अर्थशास्त्र विभाग
अजीतमल महाविद्यालय, अजीतमल
जनपद-औरैया (उ0प्र0)

॥ अनुक्रम ॥

	प्रमाण पत्र	पृष्ठ संख्या
	आभार	
	तालिका सूची	
प्रस्तावना	1. अध्ययन की आवश्यकता	01-31
	2. अध्ययन का महत्व	
	3. अध्ययन के उद्देश्य	
	4. शोध विधि	
	5. गणना विधि	
	1. अध्ययन विधि की वर्तमान स्थिति	
	2. अध्ययन का महत्व	
	3. अध्ययन के उद्देश्य	
	4. शोध विधि	
	5. गणना विधि	
अध्याय-1	अध्ययन क्षेत्र की वर्तमान स्थिति	32-73
	भौगोलिक स्थिति	
	वर्षा एवं आर्द्रता	
	मिट्टी	
	प्राकृतिक वनस्पतियां	
	कृषि	
	उद्योग	
	सहकारी समितियां	
	परिवहन एवं संचार सुविधायें	
	जनसंख्या	
	सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवायें	

अध्याय-2	सामान्य भूमि उपयोग एवं कृषि भूमि उपयोग	74-120
	जनपद में सामान्य भूमि उपयोग	
	अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग क्षमता	
	कृषि को प्रभावित करने वाले कारक	
	कृषि व्यवस्था एवं कृषक समुदाय की सामाजिक विशेषतायें	
अध्याय-3	कृषि भूमि उपयोग का तकनीकी स्तर	121-173
	कृषि पर विज्ञान और प्रद्योगिकी के प्रभाव	
	1. सिंचन सुविधायें	
	2. यंत्रीकरण	
	3. रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग	
	4. कीटनाशक रसायनों का प्रयोग	
	5. उन्नतशील बीजों का प्रयोग	
	6. जैव प्रद्योगिकी	
	जनपद में कृषि भूमि उपयोग का तकनीकी स्तर	
	जनपद में सिंचन क्षमता का उपयोग	
	अध्ययन क्षेत्र में कृषि तकनीकी का स्तर	
अध्याय-4	कृषि उत्पादकता एवं जन0 संतुलन	174-237
	अनुकूलतम सस्य स्वरूप संकल्पना	
	रबी की प्रमुख फसलें	
	गेहूं	
	जौ	
	रबी मौसम के अन्तर्गत दलहनी फसलें	
	चना	
	मटर	
	तिलहन फसलें	
	खरीफ की प्रमुख फसलें	
	धान	

ज्वार

बाजरा

मक्का

खरीफ की दलहनी फसलें

अरहर

उर्द/मूंग

जायद की फसलें

सस्य विभेदीकरण

सस्य संयोजन

अध्याय-5 कृषि उत्पादकता एवं जनसंख्या संतुलन 238-286

कृषि उत्पादकता मापन विधियां

अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादकता का स्तर

कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार

विभिन्न घनत्वों का तुलनात्मक विवेचन

विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्य उपलब्धता

विकासखण्ड स्तर पर अनुकूलतम भूमिभार वहन क्षमता

अध्याय-6 कृषकों का कृषि प्रारूप कृषि उत्पादकता एवं खाद्यान्य 287-320

उपलब्धि की स्थिति

भौतिक एवं तकनीकी तत्व

आर्थिक तत्व

कीमत और आय का अधिकतम करना

खेत का आकार

जोखिमों के विरूद्ध बीमा

आदानों की उपलब्धता

कृषकों के कृषि उत्पादन का स्तर

अध्याय-7	भोजन के पोषक तत्व एवं पोषक स्तर	
	भोजन की रासायनिक रचना	
	शरीर को ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थ	
	कार्बोहाइड्रेट्स	
	वसा	
	कैल्शियम	
	प्रोटीन	
	कृषकों का प्रचलित आहार प्रतिरूप	
	कृषकों का आहार संतुलन पत्रक	
	मौसमी परिवर्तन एवं खाद्य आदतें	
	कृषकों के आहार में पोषक तत्व	
अध्याय-8	कृषक परिवारों के स्वास्थ्य का स्तर	380-419
	सतुलित आहार की विभिन्नता	
	आयु	
	जलवायु	
	लिंग	
	परिश्रम	
	संतुलित आहार की मात्रायें	
	अध्ययन क्षेत्र में कृषकों का पोषण स्तर	
	श्रोत के आधार पर पोषक स्तर में विचलन	
	कुपोषण जनित बीमारियों का वर्गीकरण	
	पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या	
अध्याय-9	कृषि उत्पादकता में बृद्धि के उपाय	420-461
	पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि उत्पादकता बृद्धि के सरकारी प्रयास	
	पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर व्यय	

भारत में कृषि विकास की प्रवृत्ति

खाद्यान्य उत्पादन में बृद्धि की दिशा में उपाय

खाद्यान्यों के वितरण सम्बन्धी उपाय

खाद्यान्यों की उपभोग सम्बन्धी नीति

अल्प पोषण दूर करने के सरकारी प्रयास

अध्याय-10 निष्कर्ष एवं सुझाव 416-505

प्राकृतिक समस्याओं के निवारण हेतु सुझाव

जल निकास की समुचित व्यवस्था

भूमिगत जल का सदुपयोग

भूसंरक्षण की रोंकथाम

ऊसर भूमि सुधार

फसल प्रतिरूप तथा भूमि उपयोग में सुधार

गहन कृषि का विस्तार

मुद्रा दायिनी फसलों में विस्तार

कृषि से सम्बन्धित क्रियाओं को प्रोत्साहन

पशुपालन को प्रोत्साहन

डेरी फार्मिंग

मुर्गी पालन

सुअर पालन

मछली पालन

रेशम उत्पादन को प्रोत्साहन

खाद्य संम्बर्धन उद्योग को प्रोत्साहन

कृषि आधारित ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन

संतुलित भोजन का ज्ञान

!! तालिका सूची !!

क्र.	विवरण	पेज नं0
0.1	अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वर्गीकरण (प्रक्षेपित 1997)	
0.2	ग्रामीण समाज का स्वरूप और उनकी साधन उपलब्धि	
0.3	खाद्यान्यों में खाने योग्य भाग	
0.4	प्रतिदिन अनुमन्य न्यूनतम कैलोरी	
0.5	भार वाले शरीर को कैलोरिक आवश्यकता	
1.1	अध्ययन क्षेत्र में वर्षा की मात्रा (मि0मी0 में,)	32-73
1.2	अध्ययन क्षेत्र जनपद-प्रतापगढ की जलवायु	
1.3	जनपद में क्रियात्मक जोतों का आकार (विकासखण्डवार संख्या व क्षेत्रफल (1990-91)	
1.4	विभिन्न संस्थाओं के अधीन कार्यरत औद्योगिक इकाइयों की संख्या (1994-95)	
1.5	जनपद में विकासखण्डवार प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियां 31 मार्च 1995	
1.6	जनपद में अन्य सहकारी समितियां 31 मार्च 1995	
1.7	जनपद में व्यापारिक बैंको की स्थिति (हजार रू0 में,)	
1.8	अध्ययन क्षेत्र में भण्डारण सुविधायें	
1.9	जनपद में पक्की सडकों की लम्बाई	
1.10	प्रतापगढ में जनसंख्या बृद्धि दर	
1.11	विकासखण्डवार जनसंख्या का विवरण 1981-1991	
1.12	विकासखण्डवार साक्षरता का स्तर	
1.13	विकासखण्डवार जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण 1991	
1.14	विकासखण्ड स्तर पर गांव खेत की दूरी	
1.15	अध्ययन क्षेत्र में चिकित्सा सुविधायें 1994-95	
1.16	अध्ययन क्षेत्र में विद्युत सुविधायें	

2.1 जनपद में भूमि उपयोग का विवरण 1995-96

2.2 विकासखण्डवार भूमि उपयोग 1995-96 हे0 में,

2.3 विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग विवरण (प्रतिशत में)

2.4 विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग क्षमता

2.5 अध्ययन क्षेत्र में शुद्ध बोया गया क्षेत्र

2.6 विकासखण्ड पर सिंचित क्षेत्रफल

2.7 विकासखण्डवार रबी, खरीफ तथा जायद फसलों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र

2.8 विकासखण्ड स्तर पर एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र

3.1 जनपद में सिंचन सुविधाओं का विकास

3.2 श्रोतवार सिंचन क्षमता

3.3 विकासखण्ड स्तर पर सिंचित क्षेत्रफल का विकास

3.4 जनपद में सिंचाई साधनों की स्थिति

3.5 विकासखण्ड स्तर पर सृजित सिंचन क्षमता का उपयोग

3.6 जनपद में विकासखण्ड स्तर पर कृषि यंत्रों का विवरण

3.7 जनपद में प्रति हे0 कुल कृषि

3.8 जनपद में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग

3.9 विकासखण्ड स्तर पर कृषि आधुनिकीकरण का स्तर

4.1 ग्राम अ के सस्य स्वरूप में हटाव

4.2 काल्पनिक उदाहरणों के द्वारा सस्य स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन

4.3 विकासखण्ड स्तर पर

4.4 विकासखण्ड स्तर पर गेहूं तथा जौ का विवरण

4.5 विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों का वितरण

4.6 विकासखण्ड स्तर पर तिलहनी फसलों का वितरण

4.7 विकासखण्ड स्तर पर सब्जियां तथा अन्य फसलों का वितरण

4.8 विकासखण्ड स्तर पर धान तथा मोटे अनाज का वितरण

4.9 विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों का वितरण

4.10 विकासखण्ड स्तर पर जायद फसलों का वितरण

4.11 अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर सस्य विभेदीकरण सूचकांक

4.12 विकासखण्ड स्तर पर सस्य विभेदीकरण

4.13 यथार्थ फसल श्रेणी तथा सस्य संयोजन में फसल श्रेणी

5.1 विकासखण्ड स्तर पर फसल गहनता सूची 238-286

5.2 फसल गहनता का स्तर

5.3 विकासखण्ड स्तर पर उत्पादकता सूची तथा उत्पादकता गुणांक

5.4 विकासखण्ड स्तर पर कृषि उत्पादकता का स्तर

5.5 विकासखण्ड स्तर पर जनसंख्या सामान्य घनत्व

5.6 विकासखण्ड स्तर पर कायिक घनत्व

5.7 विकासखण्ड स्तर पर कायिक घनत्व

5.8 जनसख्या घनत्वों का तुलनात्क अध्ययन

5.9 जनसंख्या घनत्व का स्तर

5.10 अध्ययन क्षेत्र में दालों का विवरण

5.11 विकासखण्ड स्तर पर प्रतिव्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता

5.12 विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्यां से उपभोग योग्य मात्रा

5.13 अध्ययन क्षेत्र में भूमिभार वहन क्षमता

5.14 विभिन्न आर्चु वर्ग के लोगों की औसत वार्षिक कैलोरिक आवश्यकता

5.15 विकासखण्ड स्तर पर अनुकूलतम भूमिभार वहन क्षमता

5.16 भूमिभार वहन क्षमता की श्रेणी

6.1 कृषक परिवारों की श्रेणियां 287-320

6.2 फसल गहनता

6.3 जातिगत आधार पर कृषकों का वर्गीकरण

6.4 पारिवारिक आकार

6.5 भूमिगत उपयोग हे0में,

6.6 विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल हे0 में,
6.7 कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार
6.8 विभिन्न फसलों का उत्पादन- कु0 में,
6.9 विभिन्न वर्गानुसार औसत उत्पादन (प्रति हे0 किलोग्राम में,)
6.10 सीमांत कृषकों को खाद्यान्य उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा
6.11 लघु कृषकों की खाद्यान्य उपलब्धता
6.12 लघु मध्यम कृषकों में प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता
6.13 मध्यम कृषकों का प्रति व्यक्ति उत्पादन
6.14 बडे कृषकों का प्रति व्यक्ति उत्पादन
6.15 विभिन्न वर्गो की तुलनात्मक उपलब्धता
7.1 सीमान्त कृषक परिवारों का प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत उपभोग 321-379
7.2 लघु कृषक परिवारों में विभिन्न खाद्य पदार्थो की मात्रा
7.3 लघु मध्यम कृषक परिवार का औसत उपयोग
7.4 मध्यम कृषक परिवार के भोजन में खाद्य पदार्थों की मात्रा
7.5 बडे आकार वाले कृषक परिवारों द्वारा उपभोग किये जाने वाले खाद्य पदार्थ
7.6 विभिन्न वर्गो में प्रतिव्यक्ति खाद्य पदार्थों के उपभोग में विचलन
7.7 सीमान्त कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्व
7.8 लघु कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्व
7.9 लघु कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्व
7.10 मध्यम कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्व
7.11 बडे आकार वाले कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्व

8.1 भारतीय चिकित्सा अनुंसधान परिषद द्वारा प्रस्तावित दैनिक संतुलित आहार 380-491
8.2 परिश्रम के आधार पर संस्तुत भोजन तालिका
8.3 एक सामान्य व्यक्ति (55 किग्रा0) की विभिन्न जाति वर्ग के लिए आवश्यक न्यूनतम ऊर्जा

8.4 एक सामान्य महिला की न्यूनतम ऊर्जा आवश्यकता

8.5 सामान्य बालकों को ऊर्जा की आवश्यकता

8.6 जोत के आकार के आधार पर पोषक तत्वों में विचलन

8.7 विभिन्न विटामिनों के प्राप्ति श्रोत उपयोगिता एवं अभाव से हानियां

8.8 पोषक सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या

9.1 पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर व्यय 420-461

9.2 कृषि विकास दर

9.3 वर्ष 1951 से प्रमुख फसलों के क्षेत्रफल में बृद्धि- लाख हे0 में

9.4 प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादकता में बृद्धि - किलोग्राम प्रति हे0 में,

9.5 खाद्य तथा अखाद्य फसलों के उत्पादन की मात्रा

9.6 कृषिगत फसलों के अधीन क्षेत्र का सूचक अंक

9.7 भारतीय निर्यात में कृषि उत्पादों का स्थान- हजार करोड रू. में,

:: चित्रमय ग्राफ ::

क्र.	विवरण
0.1	अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वर्गीरण (प्रक्षेपित 1999)
1.1	अध्ययन क्षेत्र में वर्षा ऋतु में वर्षा की मात्रा- मि0मी0 में,
1.2	अध्ययन क्षेत्र जनसंख्या प्रतापगढ की जनवायु
1.5	जनपद में विकासखण्डवार प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियां- 31 मार्च 1995
1.10	प्रतापगढ में जनसंख्या वृद्धि दर
1.15	विकासखण्डवार जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण
2.1	जनपद में भूमि उपयोग का वितरण- 1995-96
2.2	विकासखण्डवार भूमि उपयोग 1995-1996 हे0 में,
2.4	विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग क्षमता
2.7	विकासखण्डवार रवी, खरीफ तथा जायद फसलों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र
3.2	श्रोतवार सिंचन क्षमता (हे0 में,) वर्ष 1995-96
3.6	जनपद में विकासखण्ड स्तर पर कृषि यंत्रों का वितरण वर्ष 95-96
3.10	कृषि आधुनिकीकरण का स्तर
4.3	विकासखण्ड स्तर पर विभिन्न फसलों का क्षेत्रफल 95-96 हे0 में,
4.12	फसल गहनता का स्तर
5.2	विकासखण्ड स्तर पर उत्पादकता सूची तथा उत्पादकता गुणांक
5.4	विकासखण्ड स्तर पर कृषि उत्पादकता का स्तर
5.8	जनसंख्या घनत्वों का तुलनात्मक अध्ययन
5.15	विकासखण्ड स्तर पर अनुकूलतम भूमिभार वहन क्षमता
6.5	भूमि उपयोग- हे0 में,
6.15	विभिन्न वर्गो की तुलनात्मक उपलब्धता- ग्रामों में,
7.6	विभिन्न वर्गो में प्रति व्यक्ति खाद्य पदार्थो के उपभोग में विचलन-ग्राम
8.8	पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या प्रतिशत में
9.1	पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर व्यय- करोड रू0 में,
9.6	कृषिगत फसलों के अधीन क्षेत्र का सूचक अंक
	प्रतापगढ का मानचित्र

प्रस्तावना

अध्ययन की आवश्यकता

अध्ययन का महत्व

अध्ययन के उद्देश्य

शोध विधि

गणना विधि

अध्ययन विधि की वर्तमान स्थिति

अध्ययन का महत्व

अध्ययन के उद्देश्य

शोध विधि

गणना विधि

प्रस्तावना

आर्थिक विकास का ऐतिहासिक अनुभव और आर्थिक विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या यह स्पष्ट करते है कि आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास अनुभव की पुष्टि करते है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के राष्ट्रीय उत्पाद, रोजगार और निर्यात की संरचना में कृषि क्षेत्र का योगदान उद्योग और सेवा क्षेत्र की तुलना में अधिक होता है। ऐसी स्थिति में कृषि का पिछडापन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को पिछडेपन में बनाये रखता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कमजोर वर्ग के लोग जिनमें लघु एवं अति लघु कृषक और कृषि श्रमिक सम्मिलित हैं, अधिकांशत: गरीबी के दुश्चक्र में फंसे रहते है और वे निम्नस्तरीय संतुलन में बने रहते है। इनकी जोत का आकार तो छोटा होता है साथ ही इनके पास स्थायी उत्पादक परिसम्पत्ति की कमी बनी रहती है। इनकी गरीबी अर्थव्यवस्था के पिछडेपन का मुख्य कारण होती है।

विभिन्न विकसित देशों का आर्थिक इतिहास यह स्पष्ट करता है कि कृषि विकास ने ही उनके औद्योगिक क्षेत्र के तीब्र विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। आज के विकसित पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के आरम्भिक चरण में कृषि क्षेत्र ने वहां के गैर कृषि क्षेत्र के विकास हेतु श्रमशक्ति, कच्चापदार्थ, भोज्य सामग्री और पूंजी की आपूर्ति की है। इंग्लैण्ड में सत्रहवीं और अठारहवी शताब्दी में कृषकों ने तकनीकी परिवर्तन द्वारा कृषि विकास का मार्ग अपनाया और इसके आधिक्य को गैर कृषि क्षेत्र के विकास में प्रयोग किया गया। यू0एस0एस0आर0 ने 1927 से सामूहिक कृषि प्रणाली अपनाकर बडे पैमाने पर यंत्रीकृत कृषि प्रणाली अपनाकर कृषि विकास किया। जापान ने भी कृषि अतिरेक का गैर कृषि कार्यो में प्रयोग किया। यह अनुमान किया गया है कि जापान ने 1890 से 1920 की अवधि में कृषि उत्पादन में लगभग 77 प्रतिशत वृद्धि की। इसमें 31 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि फसल के अन्तर्गत क्षेत्र बढने के कारण और 46 प्रतिशत उत्पादन कृषि उत्पादकता में वृद्धि के कारण

बढा। ताइवान और दक्षिणी कोरिया के आर्थिक विकास में भी कृषि क्षेत्र की भूमिका निर्णायक रही है।

विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के उपरोक्त अनुभव यह स्पष्ट करते है कि किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की पूर्वापेक्षा कृषि क्षेत्र का विकास है। कृषि क्षेत्र का विकास कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं में लगे हुए लोगों की आर्थिक स्थिति में तो सुधार करता ही है, साथ ही यह गैर कृषि क्षेत्र के लिए खाद्यान्य, कच्चा पदार्थ, बाजार और श्रम शक्ति की आपूर्ति करता है। इस प्रकार कृषि उत्पादन आर्थिक विकास में पांच प्रकार से सहायक होता है।

1. आर्थिक विकास के साथ कृषि उत्पाद विशेषकर खाद्यान्यों की मांग बढती है।
2. कृषि उत्पादों के निर्यात से विदेशी विनिमय की प्राप्ति होती है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विदेशी विनिमय की प्राप्ति आवश्यक होती है।
3. नवीन औद्योगिक क्षेत्रों और इकाइयों को श्रमशक्ति की प्राप्ति कृषि क्षेत्रसे ही होती है।
4. विकास के प्राथमिक चरण में परिवहन और औद्योगिक विकास के लिए संसाधन आपूर्ति कृषि क्षेत्र से ही होती है।
5. ग्रामीण जनसंख्या की आय में वृद्धि होने पर औद्योगिक उत्पादनों की मांग बढती है। मांग में बृद्धि औद्योगिक क्रियाओं में प्रसार के लिए प्रमुख प्रेरक शक्ति होती है।

कृषि विकास किसी अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में कई रूपों में सहायक है अत: कृषि क्षेत्र में विनियोग को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र समस्त आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करता है। भारत में अनुकूल कृषि वर्ष अर्थव्यवस्था के लिए समृद्धि का वर्ष होता है प्रतिकूल कृषि वर्ष में अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की आर्थिक कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती है। इन अनुभवपरक तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत का आर्थिक ढांचा आज भी कृषि पर ही निर्भर है। भारत जैसे विशाल भूभाग वाले देश में कृषि भूमि के समुचित उपयोग से ही राष्ट्रीय समृद्धि तथा व्यक्तिगत विकास सम्भव है, इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भूमि की क्षमता, उर्बरता तथा उसके समुचित उपयोग का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ऐसे अध्ययनों से ही कृषि उत्पादन सम्बन्धी तथ्यों का

ज्ञान प्राप्त होता है जिसके आधार पर कृषि सम्बन्धी योजनायें बनाई जा सकती है। भारत में यद्यपि 1 अप्रैल 1951 से नियोजन प्रारम्भ हुआ, परन्तु प्रथम द्वितीय तथा तृतीय योजनायें कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण तक सीमित रही और कृषि उत्पादन, उत्पादिता तथा कृषि क्षेत्र को सुदृढ करने हेतु सार्थक प्रयास चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से प्रारम्भ किये गये जिसमें 390 लाख एकड भूमि को खाद्यान्नों की अधिक उपजाऊ बीजों द्वारा बोने का तथा 250 लाख एकड भूमि को बहु फसली योजना के अन्तर्गत लाने का लक्ष्य प्रस्तावित किया गया था, जिसमें इस लक्ष्य की पूर्ति हो गई। 1980 तक भूमि सुधार के रूप में लगभग 4.5 लाख हेक्टेयर भूमि की चकबंदी भी की गयी थी। पांचवी योजना में 131 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि को सिचाई के अधीन लाने का प्रस्ताव किया गया था इस लक्ष्य की भी पूर्ति की गयी। पांचवी योजना की तुलना में छठी योजना में कृषि एवं सम्बन्धित कार्यक्रमों में ढाई गुना तथा सिंचाई और बाढ नियंत्रण पर लगभग साढे तीन गुना व्यय बढाने का प्रस्ताव किया गया। छठी योजना के अन्तर्गत सघन कृषि हेतु अधिक उपज देने वाले बीजो तथा नवीनतम उत्पादन तकनीक की जानकारी के लिए अनेक कार्यक्रम संचालित किये गये जिनमें मृदा संरक्षण की व्यवस्था, उर्वरकों की प्रचुरता, उत्तम बीजों की उपलब्धि, कृषक सेवा संस्थाओं में वृद्धि कृषि अनुसंधानशालाओं एवं शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना प्रमुख रहे।

सातवी योजना में कृषि विकास के लिए अधिक तीव्र दर की लक्ष्य रखा गया ताकि बढे हुए उपभोग स्तर पर खाद्यान्नों तथा खाद्य तेलों की मांग पूरी की जा सके और इनमें आत्म निर्भरता प्राप्त की जा सके। अब कृषि नीति सामाजिक न्याय के साथ-साथ उत्पादन बढाने के अतिरिक्त पर्यावरण संरक्षण के प्रति भी सजग हो गयी है, क्योंकि भूमि और जल संसाधन को प्रदूषण से बचाना आवश्यक हो गया है। जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद कृषि जैसे विशाल क्षेत्र के लिए कोई राष्ट्रीय नीति न हो तो अर्थ व्यवस्था में भारी शून्यता का अनुभव होता है क्योंकि कृषि राष्ट्र का गौरव ही नही बल्कि सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था की प्राण वायु भी है, इस महत्व को ध्यान में रखकर कृषि मंत्री डा0 बलराम जाखड ने राष्ट्रीय कृषि नीति का मसौदा तैयार किया जिसे कुछ संसोधनों के बाद केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने स्वीकृति दे दी। यह नीति सैद्धान्तिक आदर्शों के बजाय वास्तविकताओं पर आधारित है इस

नीति में कुल 144 सौदो रहे जिनमें कृषि संम्बन्धित विभिन्न अवयव जैसे- भू स्वामित्व, विपणन, भण्डारण, कृषि में निवेश, उत्पादन और उत्पादकता, उन्नत किस्म के बीज, सहकारी संस्थाओं को पुनर्जीवित करना, कृषि अनुसंधान, कृषि मशीनरी, फसल बीमा, खाद्यान्य उत्पादों का प्रसंस्करण, कृषि का औद्योगीकरण, जल संसाधन तथा कृषि का विविधीकरण आदि। जिन मसौदों से कृषक तथा कृषि अत्यधिक लाभान्वित होगें उनमें दो मसौदे अति महत्वपूर्ण है- प्रथम मसौंदे का सम्बन्ध फसल तथा पशुधन बीमा योजना' से और दूसरे का सम्बन्ध 'कृषि को उद्योग का दर्जा' देने से है। इन मसौदों के अतिरिक्त नई कृषि नीति में दो विन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रथम बढती हुई आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करना, द्वितीय- उन क्षेत्रों का विकास करना जिनकी क्षमता का दोहन अभी तक नही किया जा सका है।

स्वतंत्रता के बाद योजनाकाल में खाद्यान्यों के उत्पादन में सराहनीय प्रगति के बावजूद भी भारत में प्रति व्यक्ति दैनिक खाद्यान्य उपलब्धता 415 ग्राम ही है, यदि पिछले बीस वर्षो का औसत देखें तो प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता लगभग 497 ग्राम है। यदि हम हर भारतीय को औसत 500 ग्राम खाद्यान्य भी न दे तो कृषि क्षेत्र में हमारी उपलब्धि का कोई अर्थ नही रह जाता है। राष्ट्रीय कृषि आयोजनों ने अनुमान लगाया है कि वर्ष 2000 तक खाद्यान्यों की मांग 22 करोड 50 लाख टन होगी, यदि खाद्यान्यों की उत्पादकता तेजी से न बढाई गई और बीच में कभी सूखा या बाढ आ गयी तो देशवासियों की खाद्यान्य की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति कठिन हो जायेगी ऐसी स्थिति में न फसल बीमा योजना काम करेगी और न कृषि को उद्योग का दर्जा देने की नीति। हमें उन क्षेत्रों का विकास करना चाहिए जिनकी क्षमता का अभी तक दोहन नही हो सका है। अनुमान है कि भारत में कृषि क्षमता का 40 प्रतिशत से अधिक का उपयोग नही हो पाया है। लगभग 10 करोड हेक्टेयर भूमि गैर बंजर भूमि है जिसका प्रयोग अत्यावश्यक है।'' कृषि क्षेत्र को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए शोधकर्ता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित कार्यकमों को प्रोत्साहित ही नही करना है वास्तविकता का जामा पहनाना होगा।

1. मृदा सर्वेक्षण तथा मृदा संरक्षण।
2. अधिकतम कृषकों को कृषि की नवीनतम तकनीक का ज्ञान कराना।
3. भूमिगत जल के वैज्ञानिक प्रयोग पर बल देना।
4. जल संसाधन के दुरूपयोग को रोकना।
5. कृषकों को समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना।
6. मोटे अनाज के क्षेत्र में विस्तार करना।
7. दलहनी तथा तिलहनी फसलों का अधिक उत्पादन।
8. मुद्रा दायिनी फसलों का परम्परागत फसलों के साथ समायोजन।
9. नहरों की सुरक्षा एवं उनके उचित जल प्रबन्ध की व्यवस्था करना।
10. जैविक उर्वरकों के प्रयोग को प्रोत्साहन।
11. पशुओं की नश्लों में सुधार।
12. पशुओं के चारे वाली फसलों को प्रोत्साहन।

1. अध्ययन की आवश्यकता

भारत की अर्थव्यवस्था की बुनियादी समस्या आर्थिक विकास की है। आर्थिक विकास से अभिप्राय है कि सर्वजन को उनकी न्यूनतम आवश्यकता को पूरा करने के साधन उपलब्ध करवाना। इस स्वप्न को मूर्तरूप देने के लिए आवश्यक है कि उपलब्ध संसाधनों का कुशलतम उपयोग किया जाये। भारत एक कृषि प्रधान देश है जहां पर जनसंख्या के एक बडे भाग की आवश्यकताओं को पूरा करने का दायित्व भूमि संसाधन पर निर्भर है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति भू क्षेत्र में निरन्तर ह्रास हो रहा है दूसरी तरफ निर्धनता व निम्न जीवन स्तर के फलस्वरूप जनसंख्या के एक बडे भाग का पोषण स्तर अति निम्न है। एक अनुमान के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या भूंख और कुपोषण जैसी समस्याओं का शिकार है तथा 30 प्रतिशत जनसंख्या के पास पर्याप्त भोजन नही है। कृषि भूमि भी भूसरक्षण खारीपन बीहडों का-निर्माण आदि अनेक समस्याओं से ग्रसित है। किसी देश की जनसंख्या तभी प्रगतिशील

होती है जब उसका भरपूर पोषण होता है। अत: पोषण स्तर में सुधार लाने हेतु कृषि उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है जो दो ही विधियों द्वारा सम्भव है।

क. कृषिगत क्षेत्र में वृद्धि करके।

ख. वर्तमान कृषिगत क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि करके।

कृषिगत क्षेत्र में वृद्धि करके उत्पादन बढाने की सम्भावन भारत में अब लगभग समाप्त सी हैं अत: उत्पादकताओं में वृद्धि करके ही वढती हुई भारतीय जनसंख्या की मांग को पूरा किया जा सकता है। अत: कृषि उत्पादन तथा जनसंख्या के सह सम्बन्ध के सन्दर्भ में भूमि संसाधन पर जनसंख्या भार का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है, तभी कृषि विकास की ठोस योजना तैयार किया जाना सम्भव है।

सामान्यत: यह देखा गया है कि विकसित देशों में शहरी क्षेत्रों का प्रभुत्य रहता है जबकि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों में ग्रामीण क्षेत्र ही प्रधान होता है। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था की बागडोर ग्रामीण क्षेत्र को ही सभालनी होती है। इसी क्षेत्र में उन सब परिस्थितियों का निर्माण होता है जो सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था को आगे बढाने में समर्थ होती है। इस पृष्ठ भूमि में यदि देखा जाये तो अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र की प्रधानता परिलक्षित होती है अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्र के प्रभुत्य का ज्ञान तालिका कमांक 01 में दिये गये तथ्यों से प्राप्त होता है।

अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वर्गीकरण (प्रक्षेपित 1999)

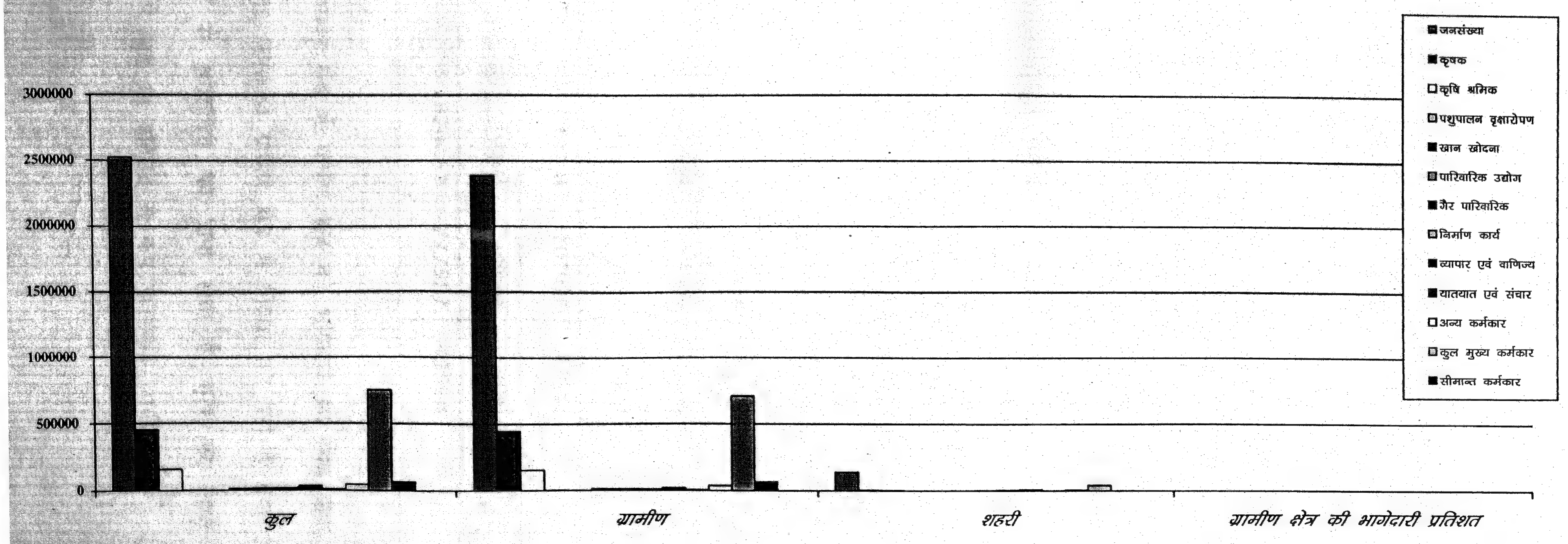

तालिका कमांक 01 अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वर्गीकरण (प्रक्षेपित 1997)

संकेतक		कुल	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण क्षेत्र की भागेदारी प्रतिशत
1.	जनसंख्या	2529041	2389438	139603	94.48
2.	कृषक	450372	444351	6021	98.66
3.	कृषि श्रमिक	158327	154936	3391	57.86
4.	पशुपालन, वृक्षारोपण	3075	2462	613	80.07
5.	खान–खोदना	158	151	07	95.57
6.	पारिवारिक उद्योग	14018	12872	1146	91.82
7.	गैर पारिवारिक	16843	13538	3305	80.38
8.	निर्माण कार्य	17591	11087	6504	63.03
9.	व्यापार एवं वाणिज्य	33223	22454	10769	67.59
10.	यातायात एवं संचार	10528	8377	2151	79.57
11.	अन्य कर्मकार	45333	37696	7637	83.15
12.	कुल मुख्य कर्मकार	749468	707924	41544	94.46
13.	सीमांत कर्मकार	70683	69633	1050	98.51
	योग (12+13)	**820151**	**777557**	**42594**	**94.81**

तालिका कमांक 01 से अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्र की भागेदारी का चित्र प्राप्त होता है जहां पर अभी भी 94.48 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र मे निवास कर रही है तथा 87 प्रतिशत से अधिक भाग ग्रामीण क्षेत्रों से श्रमशक्ति का प्राप्त होता है कृषि पर निर्भर जनसंख्या के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में मात्र 13 प्रतिशत से कम जनसंख्या कार्यरत है।

<u>ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का स्वरूप</u> :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को दो उपक्षेत्रों में बाटा जा सकता है।

1. कृषि क्षेत्र तथा
2. गैर कृषि क्षेत्र।

कृषि क्षेत्र में वे सभी लोग शामिल किये जाते है जिनके निर्वाह का साधन केवल खेती-बाडी है। गैर कृषि क्षेत्र में खेती बाडी में लगे हुए लोगों के अतिरिक्त अन्य ग्रामीण समुदाय को सामिल किया जाता है।

तालिका 0.2 ग्रामीण समाज का स्वरूप और उनकी साधान उपलब्धि

(अ)	कृषि क्षेत्र	भूमि श्रम अनुपात	रोजगार का स्वरूप
1	बडे कृषक	भूमि > श्रम	प्रमुखत: नियोजक
2	माध्यम कृषक	भूमि > श्रम	अनियमित नियोजक
3	छोटे कृषक	भूमि < श्रम	अनियमित श्रमिक
4	सीमान्त कृषक	भूमि < श्रम	प्रमुखत: श्रमिक
5	भूमिहीन	मात्र श्रम	पूर्णत: श्रमिक

(ब) गैर कृषि क्षेत्र

क. सामान्य वस्तुओं का व्यापार करने वाले

ख. कृषि आदानों का व्यापार करने वाले।

(स) दस्तकार

क. सामान्य सेवायें उपलब्ध कराने वाले।

ख. कृषि क्षेत्र की आवश्यकतायें पूरी करने वाले।

परम्परागत ग्रामीण समुदाय आत्म सम्पन्न और आत्म निर्भर रहे है। एक गांव या आसपास वसे कुछ गांव एक आर्थिक इकाई के रूप में रहते थे जिनका उस इकाई के बाहर

किसी तरह का लेन-देन नही होता था। पंचवर्षीय योजनाओं में इस स्थिति को बदलने के प्रयास किये गये। इन प्रयासों के फलस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनेक तरह के परिवर्तन प्रकाश में आये है, ये परिवर्तन ग्रामीण जीवन के अनेक पहलुओं से सम्बन्धित है जैसे भू सुधार, पशुपालन, वित्त, कृषि, विपणन सेवायें ग्रामीण उद्योग, कल्याणकारी सेवायें ग्रामीण नेतृत्व तथा ग्रामीण प्रशासन आदि। अनेक नये स्कूलों का खोला जाना, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना, परिवार कल्याण एवं नियोजन सेवाओं का विस्तार परिवहन एवं संचार, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन का विस्तार आदि अनेक ऐसी बाते हैं जिनसे ग्रामीण जीवन में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। इन सबके प्रभाव से ग्रामीण समुदाय का जो चित्र उभर कर सामने आया है उसकी प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

(1) कृषि का व्यवसायीकरण :-

कृषि जो ग्रामीण समुदाय का प्रमुख व्यवसाय है अब मात्र जीवन निर्वाह का साधन नही रह गई बल्कि इसे लाभ कमाने के साधन के रूप में देखा जा रहा है। इस क्रम को व्यवसायीकरण का नाम दिया गया है। व्यवसायीकरण के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्नलिखित है।

(1) पिछले पचास वर्षो से कृषि के उत्पादन के तरीकों में महत्वपूर्ण सुधार हुए है, परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादकता पहले की तुलना में बहुत अधिक बढ गयी है।

(2) कृषि उत्पादन में सुधार के लिए उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्बरक, कीटनाशक दवाइयां, सिचाई सुविधा का विकास उत्तरदायी है जिससे न केवल उत्पादन बढा है बल्कि फसल पकने की अवधि भी कम हो गई है।

(3) सडक और परिवहन के साधनों के विकास के कारण उपज को मण्डी तक ले जाना सरल हो गया है।

(4) नियंत्रित मण्डियो, सहकारिता तथा वाणिज्य बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के विकास के कारण अब कृषक साहूकारों के चंगुल से मुक्त हो रहे है, इस

मुक्त वातावरण के कारण वह बाजार के लिए अतिरेक उत्पादन को प्रेरित हुआ है।

(5) कृषि के व्यवसायीकरण से बैंकिंग व्यवसाय का भी विस्तार हुआ है।

(2) ग्रामीण शहरीवाद :-

पिछले पांच दशकों से ग्रामीण जीवन में शहरी जीवन शैली के तौर तरीकों की घुसपैठ होती रही है जिससे ग्रामीण जीवन प्रभावित हुआ है। विजातीयता, व्यक्तित्वहीन सम्बन्ध, व्यक्तिगत स्वार्थ, अव्यवहारपूर्ण व्यवहारिकता आदि गुणों से ग्रामीण जीवन कुछ समय पहले तक अलग और दूर था किन्तु इसका रंग ग्रामीण जीवन पर धीरे-धीरे चढता जा रहा है। इस नये मिश्रण को हम शहरीवाद का नाम दे सकते है। शहरीवाद से जुडी आधुनिकता ने ग्रामीण समुदाय के सामाजिक व्यवहार, जीवन दर्शन और उनकी इच्छाओं तथा मांग के स्वरूप में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया है। ग्रामीण शहरीवाद से जाति प्रथा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है जिससे श्रम की गतिशीलता बढी है और पैतृक धन्धों का स्वरूप बदला है। आधुनिकीकरण के एक दूसरा परम्परागत ग्रामीण जीवन स्थानीय निर्मित वस्तुओ से ही जुडा रहता था, परन्तु पिछले चार पांच दशको से स्थिति पूर्णतया परिवर्तित होने लगी है। आकाशवाणी और दूरदर्शन नें उद्योगों द्वारा निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं का ज्ञान अब दूर दराज ग्रामीण क्षेत्रों को भी करा दिया है, परिणाम स्वरूप औद्योगिक उपभोक्ता वस्तुयें अब ग्रामीण जीवन का अंग बनती जा रही है जिसके कारण उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माताओं में ग्रामीण बाजारों में अपना सामान बेचने की होड सी लग गई है। सरकार ने भी स्वतंत्रता के बाद से ही गांवों के पुनर्निमाण और विकास की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है जिसके लिए सरकार ने ग्रामीण उत्थान के कई कार्यक्रम संचालित किये है। इन विभिन्न विकास कार्यक्रमों का ही परिणाम है कि ग्रामीण जीवन में आधुनिकता का बोलबाला होता जा रहा है।"5

संक्षेप में पिछले पांच दशकों के दौरान भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनेक परिवर्तन देखने में आये हैं। निस्सन्देह ये परिवर्तन विकास के परिचायक हैं अतः इनका स्वागत है, परन्तु इनके पीछे छिपी हुई कुछ गम्भीर समस्याओं की ओर भी हमें अपना ध्यान आकर्षित करना होगा अन्यथा भविष्य में ये विकास के मार्ग में गम्भीर बाधा सिद्ध हो सकती है। ये समस्याएं है-

1. बढती हुई जनसंख्या के परिणामस्वरूप भूमि पर दबाव बढा है। संयुक्त परिवार प्रणाली का ह्रास हुआ है जिसके कारण भूमि का उप विभाजन और अपखण्डन बढा है जिससे जोतो का आकार छोटा होता जा रहा है यह उन्नत कृषि के अनुकूल नही है।
2. कृषक की बाजार शक्तियों पर निर्भरता बढती जा रही है, अनुभव यह बताता है परनिर्भरता अत्यधित जोखिम पूर्ण होती है। परनिर्भरता के कारण ही बाजार की शक्तियां उसके शोषण का माध्यम बनती जा रही है।
3. कृषि में नई तकनीकि के प्रयोग से कृषि आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है किन्तु इस आय का एक बडा भाग ग्रामीण समुदाय के उन्नत और समृद्ध वर्ग हाथों में केन्द्रित होता जा रहा है। निर्वल और कमजोर वर्ग को इस नई तकनीकि का कोई विशेष लाभ नही मिल पाया है परिणाम स्वरूप आर्थिक विषमतायें बढती जा रही है।
4. शहरीवाद ग्रामीण जीवन पर पूरी तरह छाया हुआ है परिणामस्वरूप व्यवहार और आचरणों में परम्परागत सरलता का लोप होता जा रहा है। यह स्थिति निर्बल वर्ग के अनुकूल नही है।
5. ग्रामीण रोजगार की स्थिति निरन्तर बिगडती जा रही है परिणाम स्वरूप भूमिहीन तथा सीमान्त कृषक गरीबी में और अधिक धसते जा रहे है।

स्पष्ट है कि पिछले पांच दशकों में कृषि उत्पादन की मात्रा और प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढी है परन्तु इसका अधिकांश लाभ सम्पन्न वर्ग को ही प्राप्त हुए। साधनहीन और निर्बल वर्ग की दशा निरन्तर सोचनीय होती जा रही है, बिना इस वर्ग

की स्थिति में सुधार किये सारा विकास आधा अधूरा ही रहेगा और सर्वागीण विकास की संकल्पना केवल कल्पना तक सीमित रह जायेगी।

ऐसी स्थिति में जनपद प्रतापगढ जो उत्तर प्रदेश के मध्य में स्थित है जिसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 362423हे0 है जिसमें से कृषि के लिए उपलब्ध शुद्ध भूमि केवल 61.28 प्रतिशत है और प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता 0.09 हे0 है। यह आवश्यक होता जा रहा है कि कृषि भूमि का सर्वोत्तम विधि से उपयोग करते हुए बढती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए खाद्यान्य मांग की आपूर्ति सम्भव बनायी जा सके। जब आवश्यकता इस बात की अनुभव की गयी कि सम्बन्धित अध्ययन क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण करके कृषि भूमि की उपलब्धता उसकी उर्बरा शक्ति प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता तथा प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा आदि तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया जाये, बिना इन तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किये कृषि नियोजन सम्बन्धी योजनायें बना भले ही ली जायें परन्तु उसकी सफलता संदिग्ध रहेगी। वर्तमान समय में इस ग्रामीण क्षेत्र की जनंसख्या तथा कृषि सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है जिससे इन समस्याओं के समाधान तथा मानव संसाधन के विकास की योजनायें बनायी जा सके। प्रस्तावित अध्ययन में जनपद प्रतापगढ की जनसंख्या का पोषण स्तर तथा कुपोषण जनित बीमारियों की समस्याओं का विश्लेषण किया जायेगा।

2. अध्ययन का महत्व –

किसी देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल उस सीमा को निर्धारित करता है जहां तक विकास प्रक्रिया के दौरान उत्पत्ति के साधन के रूप में भूमि का समतल विस्तार सम्भव होता है। जैसे-जैसे विकास प्रक्रिया आगे बढती है और नये मोड लेती है समतल भूमि की मांग बढती है। नये कार्यो और उद्योगों के लिए भूमि की आवश्यकता होती है व परम्परागत उद्योगों के लिए भूमि की आवश्यकता होती है व परम्परागत उपयोगों में अधिक मात्रा में भूमि की मांग की जाती है सामान्यतः इन नये उपयोगों

तथा परम्परागत उपयोगों में बढती हुई भूमि की मांग की जाती है जिसकी आपूर्ति के लिए कृषि के अन्तर्गत भूमि को काटना पढता है और इस प्रकार से भूमि कृषि उपयोगों से गैर कृषि उपयोगों में प्रयुक्त होने लगती है। एक विकासशील अर्थ व्यवस्था के लिए जिसकी मुख्य विशेषतायें श्रम अतिरेक व कृषि उत्पादकों के अभावों की स्थिति का बना रहता हो वहां कृषि उपयोग से गैर कृषि उपयोगों भूमि का चला जाना गम्भीर समस्या का रूप धारण कर सकता है जहां इस प्रक्रिया से एक ओर सामान्य कृषक के निर्वाह् श्रोत का विनाश होता है दूसरी ओर समग्र अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कृषि पदार्थो की मांग पूर्ति में गम्भीर असंतुलन उत्पन्न हो सकते है। कृषि पदार्थो की आपूर्ति में कमी अर्थव्यवस्था में अन्य अनेक समस्याओं को जन्म दे सकती है। इसलिए यह आवश्यक समझा जाता है कि विकास प्रक्रिया के दौरान जैसे-जैसे समतल भूमि की मांग बढती है उसी के साथ बंजर, परती तथा बेकार पडी भूमि को कृषि अथवा गैर कृषि कार्यो के योग बनाने के प्रयास करने चाहिए। प्रयास यह भी करना चाहिए कि कृषि के लिए उपलब्ध भूमि के क्षेत्र में किसी प्रकार की कमी न आये, वरन जहां तक सम्भव हो कृषि योग्य परती भूमि में सुधार करें। कृषि क्षेत्र के लिए उपलब्ध भूमि में वृद्धि ही की जानी चाहिए।

"भारत में किसानों ने फसलों का चयन करते समय सदैव अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा है। इसलिए वह व्यापारिक फसलों की तुलना में खाद्य फसलों को प्राथमिकता देता है। गैर खाद्य फसलों का योगदान कुल फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल द्वारा ज्ञात किया जा सकता है, देश की कुल बोई गयी भूमि के क्षेत्रफल में तीन चौथाई भाग खाद्य फसलों के अन्तर्गत आता है। इसका प्रमुख कारण गेहूं और चावल का न्यूनतम सुरक्षित मूल्यों की घोषणा तथा हरितक्रान्ति का प्रभाव केवल गेहूं और चावल की फसलों पर विशेष रूप से पडा। इसका प्रभाव यह हुआ कि देश में खाद्यान्यों की मांग पूरी करने के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध है, परन्तु देश के समक्ष व्यापारिक फसलों के उत्पादन की समस्या उठ खडी हुई है विशेष रूप से तिलहन का

उत्पादन इसकी औद्योगिक मांग की तुलना में बहुत कम हो गया है। अनाज के उत्पादन को अधिक महत्व देने का परिणाम यह हुआ है कि दालों का उत्पादन भी अत्यन्त कम हो गया है जिनको आयात द्वारा भी पूरा नही किया जा सकता है क्योंकि विश्व के अन्य देशों में भी दालों का उत्पादन बहुत कम होता है, इसलिए अब सरकार ने दालों के उत्पादन को बढाने के लिए प्रोत्साहन देने हेतु अनेक योजनाओं को संचालित किया है। अनाज में यद्यपि गेहूं और चावल का प्रमुख स्थान है परन्तु भारतीय कृषि में मोटे अनाजों, बाजरा, ज्वार, मक्का, तथा जौ का परम्परागत खाद्यान्यों में काफी महत्व रहा है क्योंकि इन फसलों का उत्पादन सूखी भूमि पर किया जाता है यद्यपि इन फसलों का उत्पादन कम है परन्तु मानसून का इनके उत्पादन पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव नही पडता है, इसलिए मौसम की अनिश्चितता से बचने के लिए किसान मोटे अनाजों का उत्पादन करते रहे हैं।

अध्ययन क्षेत्र एक ग्रामीण प्रधान क्षेत्र है जहां आज भी अधिकांश जनसंख्या भूमि संसाधन से अपने जीवन यापन के लिए संसाधन जुटाती है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता के कारण लोगों की आय का स्तर अत्यन्त नीचा है। यद्यपि पिछले पांच दशकों से कृषि उत्पादन बढा है परन्तु फिर भी उपलब्ध कृषि क्षेत्र पर परम्परागत खाद्यान्य फसलों का उत्पादन, नगदी फसलों का नगण्य क्षेत्र, परम्परागत कृषि प्रणाली, कृषि में अपेक्षित पूजी निवेश का अभाव के कारण कृषि उत्पादन अपेक्षित गति से नही बढा है। उत्पादन वृद्धि का अधिकांश लाभ धनी वर्ग को ही प्राप्त हुआ है जिससे आर्थिक विषमतायें भी बढी है, जबकि आर्थिक विकास की परिधि में समृद्धि और वितरण की प्रकियायें निहित होती है, समृद्धिकिया किसी भी क्षेत्र में कुल वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन वृद्धि में योगदान करती है जबकि वितरण प्रक्रिया यह निर्धारित करती है कि उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं या उनकी वृद्धि का कितना अंश किस वर्ग को मिलता है। समृद्धिगत आर्थिक नीति का लक्ष्य यह होना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्र समान्य रूप से विकसित और परिवर्तित हों तथा वितरणात्मक न्याय यह निर्देश देता है कि समृद्धिगत लाभों का अधिकांश भाग उन लोगों या उन क्षेत्रों को

मिलना चाहिए जो अपेक्षाकृत अधिक गरीब और पिछडे हों समृद्धि और वितरणात्मक न्याय का पारस्परिक समन्वय किसी भी क्षेत्र के आय वर्ग के लोगों को खुशहाल बना सकता है। इसलिए प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास की ऐसी प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना होना चाहिए जिससे सभी कमजोर क्षेत्रों और वर्गों के लोग अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित हो सकें। जिससे समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता कम की जा सके। परन्तु ग्रामीण विकास की अनेक योजनायें संचालित करने के बावजूद भी योजनाकाल में आर्थिक विषमता बढती जा रही है। अमीर और गरीब के मध्य असमानता की खायी और चौडी होती जा रही है। एक ओर चन्द लोग विलासी जीवन व्यतीत कर रहे है तो दूसरी ओर बहुसख्यंक जनसंख्या अल्प पोषण और कुपोषण से तृस्त है। कुछ लोग आराम और वैभव के साम्राज्य में है तो बहुसंख्यक समुदाय के विकासजन्य औद्योगिक उत्पादन अचम्भे और मात्र देखने सुनने की चीजे बनी हुई है न कि प्रयोग कर सकने की समाज की आर्थिक विषमता मापने के लिए विभिन्न वर्गों के मध्य आय, सम्पत्ति व उपयोग स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

आर्थिक विषमताओं का एक महत्वपूर्ण पहलू समष्टि रूप से ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य व्याप्त आर्थिक विषमता है। अब तक की विकास प्रक्रिया में ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य आर्थिक विषमता बढती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों का विकास शहरों के सामान नही हुआ है। देश ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के मध्य विभक्त हो गया है। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य आर्थिक विषमता की जानकारी नेशनल काउन्सिल आफ सपलाइड इकोनामिक रिसर्च के एक नवीनतम अध्ययन से हाती है जिसमें विवरण दिया गया है कि यदि दोनो क्षेत्रों के मध्य आय सम्पत्ति एवं उपयोग स्तरों की तुलना की जाये तो इनमें व्याप्त आर्थिक विषमता का बोध होता है। इस अध्ययन के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के केवल 4.90 प्रतिशत परिवारों की वार्षिक आय 10000.00रू0 या इससे अधिक है जबकि नगरीय क्षेत्र के 17.61 प्रतिशत परिवारों की औसत वार्षिक आय 10 हजार रूपये या उससे अधिक है। समस्त नगरीय परिवारों की औसत वार्षिक आय 7040रू0 है जबकि ग्रामीण परिवारों की औसत आय मात्र 3930रू0

है। नगरीय क्षेत्र के उच्चतम 1.5 प्रतिशत परिवारों की औसत वार्षिक आय 30 हजार रूपये या उससे अधिक है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों के मात्र 0.62 प्रतिशत परिवारों की आय 30 हजार रूपये या उससे अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति औसत बचत मात्र 106 रूपये है जबकि नगरीय क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति औसत बचत 272 रू0 है जो ग्रामीण क्षेत्र की बचत से ढाई गुना अधिक है। आवश्यक सामाजिक सेवाओं की जो अवस्थापना गांव में उससे कई गुना शहरों में है शहर में बहूखण्डीय प्रासाद बने किन्तु गांवों के कच्चे माकानों का आकार एवं आयतन कम होता गया है। शहरों में आधुनिक उद्योगजन्य सुख सुविधायें लेने की होड लगी है। किन्तु बहुसंख्यक गांव के लोग कडी मेहनत के बाद भी बेहद जरूरी चीजों से वचित रहे है। इसी क्षेत्रीय असमानता के कारण शहर के वैभव की चकाचौंध से आकृष्ट तथा बेरोजगारी के मारे गांव के लोग शहरों की ओर पलायन करते हैं जहां उन्हे दिन भर की कडी मेहनत के बाद जो क्रयशक्ति प्राप्त होती है वह उनकी जरूरतों को पूरा करने में अपर्याप्त होती है। आज नगरों के मुखापेशी होते जा रहे है। खाद्यान्य उत्पादन के अतिरिक्त अन्य अधिकांश उत्पादन क्रियायें नगरों और बडे औद्योगिक घरानों में केन्द्रित होती जा रही हैं जो वस्तुयें पहले गांव में सुगमतापूर्वक बनायी जा सकती थी वे अवयान्त्रिक और अन्य अवस्थापनागत सुविधाओं के कारण शहरों में बनने लगी परिणाम स्वरूप गांव के कारीगर और दस्तकार वेकार होते जा रहे है। इससे गांव और नगरों के मध्य विषमता होना स्वाभाविक है। आय एवं सम्पत्ति वितरण की भांति ग्रामीण क्षेत्र में उपभोग स्तर में भी विषमतायें व्याप्त है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 32वीं आवृत्ति के आंकडों के आधार पर इस तथ्य को जाना जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र के निम्नतम 10 प्रतिशत परिवारों का औसत वार्षिक उपभोग व्यय केवल 634 रू0 है जबकि उच्चतम 10 प्रतिशत परिवारों में औसत वार्षिक उपभोग 5895रू0 है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि सम्पन्न और विपन्न वर्ग के मध्य अत्यन्त चौडी खायी है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि योजनाकाल में संचालित विकास योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्र अपेक्षित लाभ प्राप्त नही कर सके हैं। अध्ययन क्षेत्र भी पूर्णया ग्रामीण

क्षेत्र है जहां कि 94 प्रतिशत से अधिक जनंसख्या आज भी गांव में निवास करती है। मूलतः कृषि से ही जीवन यापन के संशाधन प्राप्त करने वाली अधिकांश जनसंख्या अपनी आय का एक बडा भाग परिवार के भरण-पोषण पर व्यय करने के लिए बाध्य है। कृषि की न्यून उत्पादकता सिंचाई सुविधाओं की अपर्याप्तता, नवीन तकनीकि का कृषि क्षेत्र में अत्यल्प प्रयोग, बेरोजगारी का बडा आकार जैसी समस्याओं के कारण लोगों का जीवन स्तर केवल अपने भरण-पोषण तक सीमित है। इसी कारण पोषण स्तर भी निम्न बना हुआ है। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 362423 हे0 है जिसमें कृषि के लिए उपलब्ध शुद्ध कृषि भूमि केवल 61.28 प्रतिशत है और प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता 0.09हे0 है, इसी स्थिति में यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि कृषि भूमि का उपयोग सर्वोत्तम विधि से सम्पन्न किया जाये जिससे क्षेत्र की जनसंख्या न केवल उदरपूर्ति ही की जा सके अपितु वर्तमान आर्थिक युग में व्यक्तियों के अधिक से उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जा सके। इसलिए वर्तमान समय में इस लघु ग्रामीण क्षेत्र की कृषि एवं जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है।

3. अध्ययन के उद्देश्य-

पर्याप्त खाद्य पदार्थ जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। विकास प्रक्रिया का प्रथम लक्ष्य खाद्य पदार्थो का पर्याप्त उत्पादन तथा उचित वितरण है। वर्तमान आर्थिक विचारधारा इस निष्कर्ष पर सहमत है कि गरीबी कम करने के लिए ऊंची वृद्धि दर आवश्यक तो है परन्तु पर्याप्त नही। विकास का मूल तत्व सामाजिक न्याय की प्राप्ति में निहित है। विकास प्रक्रिया में आय वितरण को उत्पादन से पृथक नही किया जा सकता है। इस कारण आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय में कोई अन्तर्विरोध नही है विकास की यह विधि गरीबी समस्या के समाधान हेतु कुछ प्रत्यक्ष उपायों की पुष्टि करती है तथा ऐसे कार्यक्रमों व नीतियों का निर्देश करती है जो गरीब जनसंख्या के

रहन-सहन स्तर में सुधार कर सकें। यह विधि उन वस्तुओं के बडे पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित करती है जिनका उपयोग व्यापक जनसमूह करता है और जिनके उत्पादन में वहुत से हांथों को काम मिलता है न कि चन्द हाथो और स्वचालित मशीनों को। आज देश की विकास प्रक्रिया में प्रभावी रूप से इस विकास युक्ति के अनुकरण की आवश्यकता है।''

मानवीय संशाधन आर्थिक विकास में दोहरी भूमिका का निर्वाह करते है। साधन के रूप में श्रमशक्ति एवं उद्यमियों को सेवायें प्रदान करते है, मानवीय संसाधन की इस भूमिका पर देश का न केवल कुल उत्पादन का स्तर निर्भर करता है बल्कि अन्य साधनों का प्रयोग भी सम्भव होता है। यदि मानवीय साधन उत्कृष्ट कोटि के हैं तो आर्थिक विकास की गति तेज हो जाती है। अतः आर्थिक विकास की दर के निर्धारण में मानवीय संसाधनों की गुणात्मक श्रेष्ठता का महत्वपूर्ण स्थान होता है इसलिए यह कहा जा सकता है कि भौतिक पूजी निर्माण और मानवीय पूंजी निर्माण सम्मिलित रूप से आर्थिक विकास को गति को तीव्रता प्रदान करते है। उपभोग इकाई के रूप में मानवीय संसाधन राष्ट्रीय उत्पाद के लिए मांग का निर्माण करते हैं, यदि मनुष्यों की संख्या राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में अधिक है तो समान्यतया खाद्यान्यों की पूर्ति मांग की तुलना में कम पड जाती है इससे खाद्यान्यों की स्वल्पता की समस्या उत्पन्न होती है। साथ ही राष्ट्रीय उत्पादन का एक बहुत बडा भाग केवल उपभोग कार्यो के लिए ही उपयोग कर लिया जाता है, निवेश कार्यों के लिए बहुत कम अतिरेक बचता है जिससे पूंजी निर्माण की गति धीमी हो जाती है।''12 जब किसी देश की जनसंख्या तेज गति से बढती हे तो खाद्यान्यों की भी मांग तेज गति से बढती है, यदि खाद्यान्यों का उत्पादन जनसंख्या वृद्धि दर के अनुपात में नही बढ पाता है तब कुपोषण तथा अल्पपोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है और यदि देश की जनशक्ति का उचित पोषण नही होता है तो उनकी कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पडता है और देश का कुल उत्पादन कम होने लगता है अतः देश अथवा क्षेत्र के भूमि संसाधन पर यह भार आ जाता है कि वह क्षेत्र विशेष इतना खाद्यान्य उत्पादन करने में सक्षम हो कि वहां

के निवासियों का उचित पोषण सम्भव हो सके।''13 इसी समस्या को दृष्टिगत रखते हुए जनपद प्रतापगढ में ''कृषि उत्पादन पोषण स्तर एवं कुपोषण जनित बीमारियों में'' शीर्षक पर शोध कार्य के लिए निम्न लिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है।

1. सामान्य भूमि उपयोग तथा कृषि भूमि उपयोग का अध्ययन करना।
2. कृषि भूमि का प्रचलित सस्य प्रतिरूप तथा प्रचलित कृषि तकनीक का अध्ययन करना।
3. कृषि भूमि पर जनसंख्या के भार का मापन करना।
4. जनसंख्या के पोषण स्तर का मापन तथा उनके स्वास्थ्य का ज्ञान प्राप्त करना।
5. कुपोषण तथा अल्पपोषण से सम्बन्धित बीमारियों का विश्लेषण करना।
6. पोषण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए योजनाकाल में सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का विश्लेषण करना।
7. कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा पोषण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के सुझाव देना।

उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शोध कार्य हेतु निम्न परिकल्पनाओं को आधार बनाया गया है।

1. अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग में खाद्यान्य फसलों की प्रधानता है और व्यावसायिक फसलों का नितान्त अभाव है।
2. खाद्यान्य फसलों में भी वैज्ञानिक कृषि पद्धति, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक तथा उन्नतिशील बीजों का प्रयोग उत्यन्त सीमित क्षेत्र में किया जाता है।
3. अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग में आवश्यक सुधार कर प्रति हेक्टेयर उत्पादन में वृद्धि करके क्षेत्रवासियों के आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है।

4. अध्ययन क्षेत्र में प्रचलित सामान्य आहार प्रतिरूप में खाद्यान्नों की प्रधानता पाई जाती है जिसके कारण अधिकांश लोगों को भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों का अभाव रहता है।

5. यदि लोगों को संतुलित भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों का ज्ञान तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सरलता से सुलभ विभिन्न खाद्य पदार्थों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों का ज्ञान कराया जाय तो कम व्यय में ही भोजन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक समन्वय स्थापित करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

6. प्रचलित आहार प्रतिरूप में मात्रात्मक एवं गुणात्मक संतुलन स्थापित करके कुपोषण जनित रोगों से बचा जा सकता है।

7. कुपोषण जनित रोगों के लिए निर्धनता और अज्ञानता प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के समंको का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक समंको के लिए दैव निर्दशन पद्धति का प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण प्रतापगढ जनपद प्रशासनिक दृष्टि से 15 विकासखण्डों में विभक्त है। शोधकर्ता ने प्रत्येक विकासखण्ड को प्रतिनिधित्व दिया है। प्रत्येक विकासखण्डमें 2-2 गावों का चयन दैव निर्दशन पद्धति से किया गया है तथा प्रत्येक गांव से इसी पद्धति के आधार पर 10-10 कृषकों को प्रतिनिधित्व दिया गया है और इस प्रकार कुल 300 कृषकों को सर्वेक्षण का आधार बनाया गया है। सर्वेक्षण के लिए एक प्रश्नावली सहित अनूसची तैयार करके चयनित कृषकों से व्यक्तिगत सम्पर्क पद्धति से आवश्यक सूचनायें प्राप्त की गई है। आवश्यक सूचनाओं में परिवार के सदस्यों की संख्या, सदस्यों की उम्र, जाति तथा शिक्षा, भूमि का आकार, फसल प्रतिरूप, सिंचाई के साधन सिंचित क्षेत्र, विभिन्न आगतों की मात्रा, प्रति हेक्टेयर विभिन्न फसलों का उत्पादन उपभोग का स्तर तथा सदस्यों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित सूचनायें प्राप्त की गई है।

शोधकर्ता द्वारा लेखपालों, विकासखण्ड अधिकारियों, ग्राम विकास अधिकारियों तथा सम्बन्धित गांव के आसपास के चिकित्सकों से भी व्यक्तिगत सम्पर्क करके कृषकों से सम्बन्धित समस्याओं, कुपोषण जनित बीमारियों तथा कृषि विकास के लिए किये गये सरकारी प्रयासों तथा गैर सरकारी उपायों की भी जानकारी प्राप्त की गई है। कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा कृषकों की समस्याओं के समाधान हेतु उनके व्यक्तिगत विचारों से परिचय प्राप्त किया गया है। प्रतिचयनित कृषकों से प्राप्त सूचनाओं का सावधानी पूर्वक वर्गीकरण तथा सारणीय किया गया है। यथा स्थान सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करके निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को आवश्यक चित्रों, ग्राफों द्वारा शोधकार्य को सजाया गया है। प्रस्तुत शोध में निष्कर्षो की शुद्धता के लिए कुछ निम्न तकनीक का प्रयोग किया गया है-

1. खाद्य पदार्थों में खाद्य योग भाग–

विभिन्न खाद्यान्य फसलों के कुल उत्पादन में खाने योग्य भाग की गणना विभिन्न विद्वानों द्वारा की गई है। सिंह जसबीर (1971–48) ने 16.80 प्रतिशत तथा तिवारी पी0डी0 (1988:2) ने 15 प्रतिशत कुछ अन्य विद्वानों ने 20 प्रतिशत तक घटाकर कैलोरिक ऊर्जा प्राप्ति की गणना की है। वास्तव में खाद्यान्यों को सर्वप्रथम खाद्य योग्य बनाया जाता है तत्पश्चात उपभोग किया जाता है। उपभोग योग्य बनाने में विभिन्न खाद्यान्यों का एक हिस्सा क्षय हो जाता है। अतः शोधकर्ता ने क्षय भाग निकालकर खाद्य योग्य हिस्से की गणना हे जिसे निम्न सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 0.3 खाद्यान्यों में खाने योग्य भाग

खाद्य फसलें	बीज एवं भण्डारण क्षय (प्रतिशत)	शुद्ध उत्पादन (प्रतिशत)	खाने योग्य भाग (प्रतिशत)	क्षीजन (प्रतिशत)
1. धान	10	90	60	40
2. ज्वार	10	90	90	10
3. बाजरा	10	90	90	10
4. मक्का	10	90	90	10
5. गेहूं	10	90	95	05
6. जौ	10	90	90	10
7. अरहर	10	90	65	35
8. चना	10	90	70	30
9. मटर	10	90	70	30
10. उर्द/मूंग	10	90	70	30
11. लाही	02	98	36	64
12. गन्ना	10	90	12	88
13. आलू	10	90	75	25

श्रोत– सिंह. एस0पी0 ''पावर्टी फूड एण्ड न्यूट्रीशन इन इण्डिया 1991 पी0 68.

2. पोषण स्तर की गणना :- अध्ययन क्षेत्र में प्रति व्यक्ति न्यूनतम कैलोरिक आवश्यकता की गणना की गई है जिसमें पोषण विशेषज्ञ दल 1968 को आधार माना गया है जिसे स्वामीनाथन (1983-57) द्वारा प्रयोग किया गया। सारिणी क्रमांक. 0.4 में प्रस्तुत है।

तालिका 0.4 प्रतिदिन अनुमन्य न्यूनतम कैलोरी

पुरूष	हल्का कार्य	2400
	मध्यम कार्य	2800
	भारी कार्य	3900
महिला	हल्का कार्य	1900
	मध्यम कार्य	2200
	भारी कार्य	3000
	गर्भवती	3300
	स्तनपान कराने वाली	3700
बच्चे	1 से 3 वर्ष	1200
	4 से 6 वर्ष	1500
	7 से 9 वर्ष	1800
	10 से 12 वर्ष	2100
	13 से 15 वर्ष लडके	2500
	13 से 15 वर्ष लडकियां	2200
	16 से 18 वर्ष लडके	3000
	16 से 18 वर्ष लडकियां	2200
	औसत	2481.25

श्रोत : एम0स्वामीनाथन 'ह्यूमेन न्यूट्रीशन डाइट' 1983 पृ. 57

सारणी क्रमांक 0.4 में प्रतिदिन अनुमन्य न्यूनतम कैलोरिक आवश्यकता को विभिन्न लिंग एवं आयु वर्गानुसार प्रस्तुत किया गया है इसके साथ ही लोगों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यो के अनुसार भी आवश्यक ऊर्जा को सारिणी 0.5 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारिणी क्रमांक 0.5 विभिन्न कार्यो के लिए प्रति घण्टे प्रति किलोग्राम भार वाले शरीर को कैलोरिक आवश्यकता

क्र.	कार्य का विवरण	प्रतिघण्टे प्रति किलोग्राम कैलोरिक आवश्यकता
1.	सोना	0.9
2..	विश्राम के लिए लेटने पर	1.1
3.	सोचने पर	1.25
4.	अध्ययन(शान्ति से)	1.22
5.	ताश खेलना	1.26
6.	कक्षा का कार्य	1.47
7.	अध्ययन(चिल्लाकर)	1.50
8.	लिखना	1.60
9.	बुनाई करना	1.6
10.	भोजन करना	1.4
11.	गीता गाना	1.74
12.	कार्यालय का कार्य	1.74
13.	टंकण	1.93
14.	फर्श पर झाड़ू लगाना	2.40
15.	कार चलाना	2.63
16.	टहना (4 कि0मी0 प्रति घण्टे)	2.86

17.	मोटर साइकिल चलाना	3.20
18.	वृक्षारोपण तथा लकडी काटना	4.20
19.	साइकिल चलाना (16कि0मी0प्रति घण्टा)	4.40
20.	कपडे धोना	4.90
21.	निराई-गुडाई	5.17
22.	गेंद फेंकना	5.80
23.	घोडे पर चढना	5.30
24.	हल चलाना	5.88
25.	तैरना	7.10
26.	दौडना (9कि0मी0 प्रति घण्टा)	8.17
27.	मिट्टी खोदना	8.20
28.	तेज गति से टहलना	9.80
29.	दैनिक सामान्य कार्य	2.5
30.	स्कटिंग	4.5

श्रोत : आर0एस0थापर ''अवर फूट' पृ0-8

<u>**गणना विधि**</u> :- एक व्यक्ति जिसका शारीरिक भार 60 किलोग्राम है-

1. एक कृषक जो हल चलाने का कार्य करता है-

अ.	प्रातः 5 बजे से 8 बजे तक			
	दैनिक कार्य तथा पशुओं को चारापानी	(2.5x3x60)	=	450.0
ब.	प्रातः 8 बजे से 12 बजे तक			
	हल चलाना	(5.88x4x60)	=	1411.2
स.	अपरान्ह 12 से 3 बजे तक दैनिक	(2.5x3x60)	=	450.0

	[illegible]			
द.	अपरान्ह 3 से 6 बजे तक हल चलाना	(5.88x3x60)	=	1058.4
य.	शायं 6 से 10 बजे तक			
	दैनिक कार्य तथा पशुओं को चारा पानी	(2.5x4x60)	=	600.0
र.	रात्रि 10 बजे से प्रात: 5 बजे तक सोना	(0.9x7x60)	=	378.0
		योग	=	**4347.6**

2. एक श्रमिक जो सडक निर्माण कार्य में लगा हुआ-

(सडक से निवासी की दूरी 2 कि0मी0 है।)

अ.	प्रात: 5 से 7 बजे तक दैनिक कार्य	(2.5x2x60)	=	300.0
ब.	प्रात: 5 से 7 बजे तक सडक तक पहुंचना।	(2.86x1x60)	=	171.6
स.	प्रात: 8 से 12 बजे तक मिट्टी खोदना।	(8.2x4x60)	=	1968.0
द.	12 बजे से 12.30 तक भोजन करना।	(1.4x.5x60)	=	42.0
य.	12.30 से 2बजे तक विश्राम	(1.1x1.5x60)	=	99.0
र.	2 से 6 बजे तक पुन: मिट्टी खोदना	(8.2x4x60)	=	1968.0
ल.	6 से 7 बजे तक घर वापसी	(2.86x1x60)	=	171.6
व.	7 से 9 बजे तक दैनिक कार्य	(2.5x2x60)	=	300.0
स.	9 से प्रात: 5 बजे तक सोना	(.9x8x60)	=	432.0
		योग		5452.2

3. एक प्राइमरी का अध्यापक जो स्कूल से 2 किलोमीटर दूर निवास करता है-

अ.	प्रातः 5 से 9.30 बजे तक दैनिक कार्य	(2.5x3x60)	=	525.0
ब.	प्रातः 9.30बजे से 10 बजे तक स्कूल पहुचना (साइकिल से)	(4.4x.5x60)	=	132.0
स.	10 बजे से 4 बजे तक अध्यापन कार्य	(1.5x6x60)	=	547.2
	4 से 4.30 बजे तक घर वापसी	(4.4x.5x60)	=	132.0
	4.30 से 10 बजे तक दैनिक कार्य	(1.43x.5.50x60)	=	471.90
	10 से प्रातः 6 बजे तक सोना	(.9x8x60)	=	432.0
		योग		2239.90

उपर्युक्त गणना विधि के आधार पर अध्ययन क्षेत्र में न्यूनतम आवश्यक ऊर्जा की गणना की गई है। अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न वर्गो के 300 कृषक परिवारों की न्यूनतम कैलोरिक आवश्यकता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 2900 कैलोरी का अनुमान किया गया है। यद्यपि यह सत्य है कि किसी क्षेत्र के निवासियों की न्यूनतम कैलोरिक आवश्यकता की गणना 2900 कैलोरी की गयी है।

3. भूमि की अनुकूलतम भारवहन क्षमता का निर्धारण :-

" किसी क्षेत्र की अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता उस क्षेत्र की जनसंख्या की पोषण क्षमता को प्रदर्शित करती है अर्थात कृषि भूमि के किसी निश्चित क्षेत्रफल से प्राप्त उत्पादन द्वारा कितनी जनसंख्या के आवश्यक पोषण स्तर को बनाये रखा जा सकता है। अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता को ज्ञात करने के लिए अध्ययन क्षेत्र की तेरह प्रमुख फसलों की विकासखण्ड स्तर पर औसत उत्पादकता ज्ञात की गयी है। औसत

कुल उत्पादन से बीज तथा भण्डारण क्षय घटाने के बाद विभिन्न फसलों का कुल शुद्ध उत्पादन प्राप्त किया गया है। प्रत्येक फसल के शुद्ध उत्पादन में से खाद्य योग्य हिस्से की गणना की गयी है तत्पश्चात प्राप्त उत्पादन को कैलोरी ऊर्जा में परिवर्तित किया गया है। प्रतिवर्ग किलोमीटर कृषि क्षेत्र में कुल कैलोरिक उपलब्धता की गणना निम्न सूत्र द्वारा की गयी है।

$$\text{प्रतिवर्ग किलोमीटर कृषि क्षेत्र में} = \frac{\text{विभिन्न फसलों से प्राप्त कुल कैलोरी}}{\text{सकल जोत का प्रतिशत}} \times 100$$

प्रति वर्ग किलोमीटर या 100 हे0 कृषि क्षेत्र में कैलोरिक उपलब्धता की गणना करने के पश्चात प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष कैलोरिक आवश्यकता का आकलन किया गया है, तत्पश्चात निम्न सूत्र का प्रयोग किया गया है–

$$\textbf{अनुकूलतम भारवहन क्षमता} = \frac{\text{प्रति वर्ग किलोमीटर कृषि क्षेत्र में कुल कैलौरिक आवश्यकता}}{\text{प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष कैलोरिक आवश्यकता}} \times 100$$

4. **सस्यकम गहनता**

$$= \frac{\text{सकल कृषि क्षेत्र}}{\text{शुद्ध कृषि क्षेत्र}} \times 100$$

5. सस्य संयोजन –सस्य संयोजन के लिए दोई थामस तथा रफीउल्लाह की विधियों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

6\. कार्य संगठन – प्रस्तुत शोध अध्ययन को सरल बनाने के लिए 10 भागों में विभाजित किया गया है जिसकी प्रस्तावना में अध्ययन की आवश्यकता , अध्ययन का महत्व , अध्ययन के उद्देश्य, शोध विधि आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है। अध्याय प्रथम अध्ययन क्षेत्र की वर्तमान भौगोलिक तथा सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है। जिसमें अध्ययन क्षेत्र की अवस्थिति प्रशासनिक संगठन, उच्चावच, प्रवाह–प्रणाली, मिट्टी, जलवायु प्राकृतिक वनस्पति आदि भौगोलिक जानकारियों के साथ–साथ जनसंख्या का वितरण, पैकिंग तथा भण्डारण सुविधायें, औद्योगिक स्थिति से सम्बन्धित वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। अध्याय द्वितीय सामान्य भूमि उपयोग तथा कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित है। जिसमें अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर सामान्य भूमि उपयोग वन, कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि, परती के अतिरिक्त अन्य आकर्षित भूमि, परती भूमि कृषि योग्य बंजर भूमि तथा कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित तथ्यों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, साथ ही साथ कृषि भूमि उपयोग को प्रमाणित करने वाले कारणों की व्यवस्था की गई है।

अध्याय तृतीय कृषि भूमि उपयोग में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी स्तर से सम्बन्धित है क्योंकि भूमि एक स्थिर संसाधन है जिसे समाज के प्रयोग की दृष्टि से घटाया बढाया नही जा सकता है अतः भूमि के आकार को बढाकर उत्पादन वृद्धि की सम्भावनायें अब अत्यन्त सीमित है तब फिर बढती हुई जनसंख्या की खाद्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति का एक मात्र उपाय गहरी खेती ही शेष बचता है। जिसके लिए कृषि के आधुनिकीकरण का सुझाव दिया जाता है। कृषि के आधुनिकीकरण में उन्नतिशील (अधिक उपज देने वाले) बीजो का अधिकाधिक प्रयोग सिंचन सुविधाओं मे वृद्धि, रासायनिक उर्वरकों का विस्तृत प्रयोग, कृषि कार्यो में आधुनिक यंत्रों का प्रयोग, फसल को खर पतवार, कीडे मकौडे तथा विभिन्न रोगों से बचाने हेतु कीटनाशकों तथा रोग निवारक औषधियों का प्रयोग समिलित है। इन तथ्यों के सन्दर्भ में अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत गहरी खेती की वर्तमान स्थिति तथा भावी सम्भावनाओं पर विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय फसल प्रतिरूप से सम्बन्धित है। जिसमें अध्ययन क्षेत्र में उगाई

जाने वाली विभिन्न फसलों के क्षेत्रफल का विवरण प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न खाद्यान्य फसलो, व्यावसायिक फसलों की वर्तमान स्थिति तथा भावी सम्भावनाओं को खोजने का प्रयास किया गया है, साथ ही सस्य संयोजन और सस्य विभेदीकरण की स्थिति भी विकासखण्ड स्तर पर जानकारी प्राप्त की गई है।

पंचम अध्याय में कृषि उत्पादकता तथा जनसंख्या संतुलन का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसमें विभिन्न विद्धानों द्वारा प्रस्तुत कृषि उत्पादन मापन विधियों का उल्लेख करते हुए अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादकता के वर्तमान स्तर को ज्ञात करने का प्रयास सम्मिलित है साथ ही साथ उपलब्ध कृषि उत्पादन तथा जनसंख्या के भरण पोषण की स्थिति का भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय षष्टम में प्रति चयनित 300 कृषक परिवारों के कृषि प्रारूप, कृषि उत्पादकता तथा वर्तमान खाद्यान्य उपलब्धता की स्थिति को दर्शाया गया है जिसमें विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल, फसलोत्पादकता तथा प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता का मापन किया गया है। अध्याय सप्तम प्रतिचयित कृषकों के भोजन में पोषक तत्व तथा उनका पोषण स्तर का चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें भोजन की रासायनिक रचना के अन्तर्गत शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रतिचयित कृषकों के प्रचलित आहार प्रतिरूप तथा विभिन्न खाद्य पदार्थो में प्राप्त होने वाले विभिन्न पोषक तत्वों का विवरण दिया गया है।

अध्याय अष्ठम में प्रतिचयित कृषक परिवारों के स्वास्थ्य स्तर का मापन किया गया है जिसमें प्रतिचयित परिवारों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भोजन में प्राप्त पोषक तत्वों का स्तर उनकी मात्रात्मक एवं गुणात्मक स्तर तथा अनुमन्य मानक स्तर से न्यूनता अथवा अधिकता का आकलन करके अति पोषण तथा अल्प पोषण अथवा कुपोषण की गणना की गयी है। साथ ही कुपोषण तथा अति पोषण से उत्पन्न रोगों का वर्गीकरण करते हुए प्रति चयित कृषक परिवारों में पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित सदस्यों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्याय नवम में कृषि उत्पादकता में वृद्धि के प्रयासों का समावेश किया गया है। जिसमें पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार द्वारा कृषि उत्पादकता में वृद्धि पोषण स्तर में वृद्धि तथा भावी ब्यूह रचना सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया

गया है। अध्याय दशम निष्कर्ष और सुझावों से सम्बन्धित है जिसमें सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र के शोध विषय से सम्बन्धित निष्कर्षो सहित कुछ सामयिक सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं जिसको ध्यान में रखकर यदि विकास योजनाओं का संचालन किया जाता है तो अध्ययन क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या का गुणात्मक एवं मात्रात्मक संतुलित पोषण सम्भव बनाया जा सकता है।

अध्याय – प्रथम

अध्ययन क्षेत्र की वर्तमान स्थिति

भौगोलिक स्थिति

वर्षा एवं आर्द्रता

मिट्टी

प्राकृतिक वनस्पतियां

कृषि

उद्योग

सहकारी समितियां

परिवहन एवं संचार सुविधायें

जनसंख्या

जनपद -प्रतापगढ़

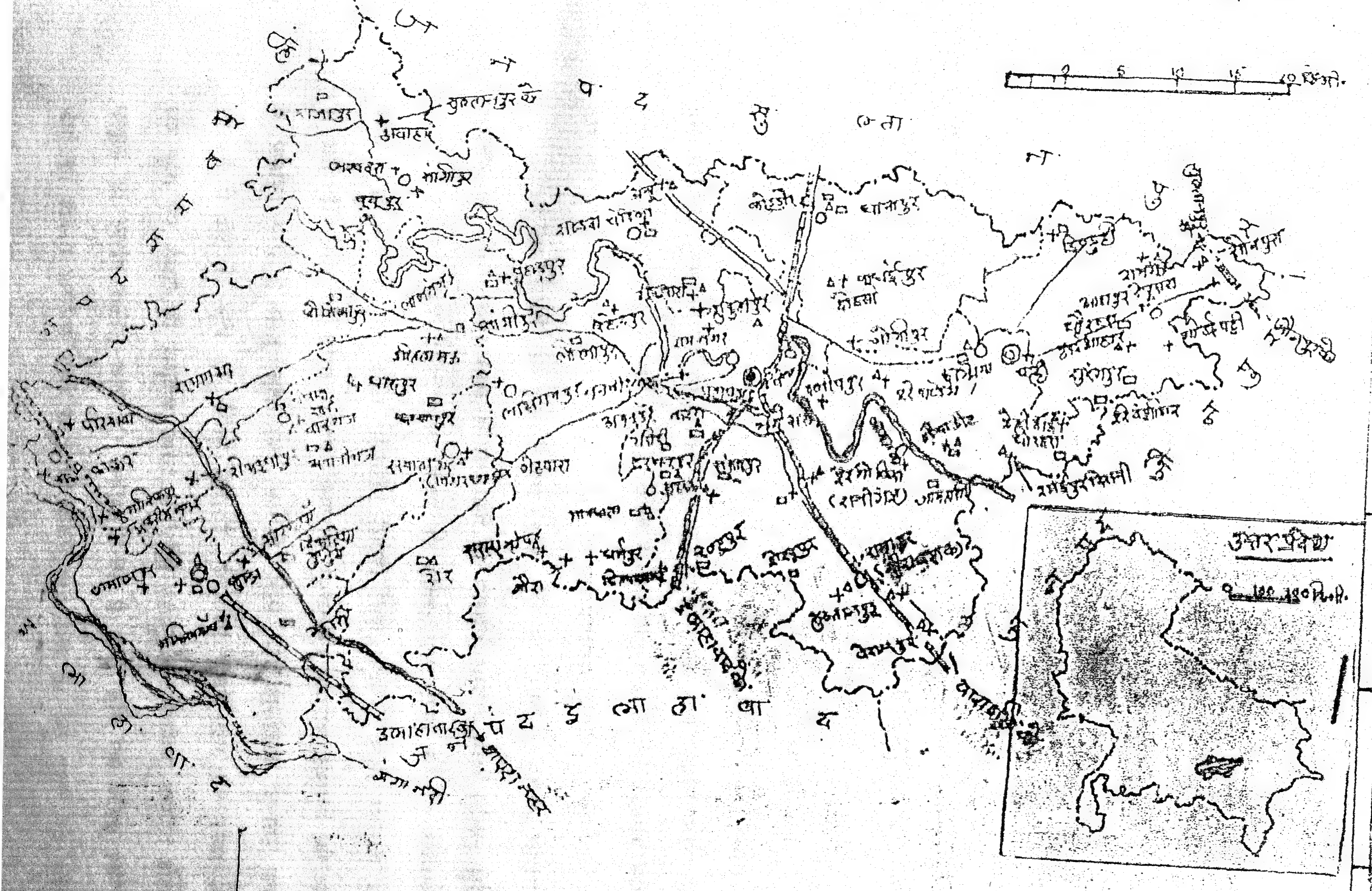

अध्याय प्रथम

अध्ययन क्षेत्र की वर्तमान स्थिति–

किसी भी अर्थव्यवस्था का स्वरूप, निर्धनता एवं सम्पन्नता, विविधीकरण एवं जीवन यापन की गतिविधियां वहां के पर्यावरण, जिसमें प्राकृतिक संसाधन अत्यन्त प्रमुख है, से प्रभावित होता है। वे समस्त वस्तुयें जो मनुष्य को प्रकृति से बिना किसी लागत के उपहार स्वरूप प्राप्त हुई है प्राकृतिक संसाधन कहलाती है। इस प्रकार किसी अर्थव्यवस्था की भौगोलिक स्थिति उपलब्ध भूमि एवं मिट्टी, खनिज पदार्थ, जल एवं वनस्पतियां आदि प्राकृतिक संसाधन माने जाते है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की विशेषज्ञ समिति के अनुसार "मनुष्य अपने लाभपूर्ण उपयोग के लिए प्राकृतिक संरचना अथवा वातावरण के रूप में जो भी संसाधन प्राप्त करता है, उसे प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है। मिट्टी व भूमि के रूप में प्राकृतिक साधन वनस्पति तथा पेड़ पौधों को पोषण देते हैं। इसके अतिरिक्त सतही और भूमिगत जल संसाधन मानव, पशु व वनस्पति जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक पदार्थ हैं। जल विद्युत ऊर्जा का महत्वपूर्ण श्रोत है। और जल मार्गों पर परिवहन के विभिन्न साधनों का विकास निर्भर है।"[1]

"प्राकृतिक साधनों के कुछ विशिष्ट पहलू होते हैं, प्राकृतिक संसाधन समाज को निःशुल्क बिना किसी विशेष प्रयास के प्राप्त होते हैं। प्राकृतिक संसाधन स्वतः निष्क्रिय होते हैं। वे अपनी उपस्थिति मात्र से ही मानव जीवन को सुविधा प्रदान करते हैं और अस्तित्व का आधार प्रदान करते हैं। यदि इनका सुविचारित विदोहन किया जाय तो इनकी उपादेयता अधिक हो जाती है। समाज की प्रत्येक आर्थिक क्रिया का क्रियान्वयन प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका से प्रभावित होता है परन्तु कृषि कार्यो का तो प्रत्यक्ष और तत्कालिक सम्बन्ध प्राकृतिक संसाधनों से होता है। कृषि एक जैविक क्रिया है। पौधों की जीवन क्रिया एवं उनका उत्पादन स्तर भूमि क्षेत्र, मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता, वर्षा एवं जलवायु से अत्यधिक प्रभावित होता है। वस्तुओं को उपभोग काविल बनाने की प्रक्रिया यान्त्रिक है परन्तु कृषि एक जैविक क्रिया है। पौधों का विकास प्राकृतिक तत्वों से पोषित होकर स्वयं होता है। इस प्रकार यह कहा जा

सकता है कि पौधों का विकास आधारिक रूप से भौतिक संरचना जलवायु एवं मिट्टी इत्यादि पर्यावरणीय दशाओं से आधारिक रूप से प्रभावित होता है। यहां कृषि से सम्बन्धित विभिन्न पर्यावरणीय घटकों यथा भौगोलिक स्थिति, भौतिक स्वरूप, वर्षा तापमान मिट्टी सूखा, बाढ़ आदि का विश्लेषण किया गया है।

1. भौगोलिक स्थिति :-

"किसी भी क्षेत्र के निवासियों की आर्थिक क्रियाएं वहां की भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्देशित तथा नियंत्रित होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है जो मुख्य रूप से जलवायु और मिट्टी पर निर्भर है। मिट्टी भारतीय कृषक की अमूल्य सम्पदा है जिसका प्रभाव मानव के भोजन वस्त्र और निवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं पर पडता है। जहां भौगोलिक परिस्थितियां मानव के अनुकूल नही होती है उन क्षेत्रों में मनुष्य की आर्थिक क्रियायें जैसे- कृषि, पशुपालन एवं व्यापार आदि बाधित होते हैं। और मानव मात्र जीवन निर्वाह की स्थिति में रहता है। अनुकूल भौगोलिक स्थितियों वाले क्षेत्रों में कृषि उत्पादन भी उच्च होता है। जिससे लोगों का पोषण स्तर उच्च रहता है जिसका प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पडता है। वस्तुतः अध्ययन क्षेत्र का विश्लेषण कृषि उत्पादन, पोषण स्तर तथा कुपोषण जनित बीमारियों से सम्बन्धित हैं। अतः अध्ययन क्षेत्र की भौतिक परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

(अ) स्थिति विस्तार एवं प्रशासनिक संगठन -

प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद मण्डल के अन्तर्गत आता है यह जनपद $25^{0}52$ से $26^{0}22$ उत्तरी अक्षांश तथा $81^{0}49$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3717 वर्ग किलोमीटर है। इसके उत्तर में सुल्तानपुर जनपद पूर्व में जनपद जौनपुर, दक्षिण में जनपद इलाहाबाद

तथा पश्चिम में जनपद रायबरेली तथा फतेहपुर स्थित है। प्रशासनिक दृष्टि से सम्पूर्ण जनपद 4 तहसीलों –

1. प्रतापगढ,

2. कुण्डा,

3. लालगंज, तथा

4. पट्टी में विभक्त है तथा 15 विकासखण्डों द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रम संचालित होते हैं।

विकासखण्ड

1, कालाकांकर,

2. बाबागंज,

3. कुण्डा,

4. विहार,

5. सांगीपुर,

6. रामपुरखास,

7, लक्ष्मणपुर,

8. संडवा चंद्रिका,

9. प्रतापगढ सदर,

10, मान्धाता,

11. मगरौरा,

12, पट्टी,

13. आसपुर देवसरा,

14. शिवगढ,

15. गौरा है।

(ब) भौतिक स्वरूप :-

संरचना की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र भारत के उत्तरी मैदानी भाग का एक अभिन्न अंग है। इस विस्तृत मेदानी भाग का पुरातन भूगर्भ प्लीस्टोसीन युगीन व गंगा द्वारा लाई गयी जलोढ मिट्टी के निक्षेप से आवृत्त है। हिमालय के पादप प्रदेश में स्थित एवं विशाल गर्त में अवसाद के निक्षेपीकरण से हुई है। अतः अध्ययन क्षेत्र जलोढ मिट्टियों से बना एक भूभाग है। इसकी रचना, बालू, क्ले तथा सिल्ट से हुई है कही-कहीं बजरी तथा कंकड भी जाये जाते हैं।

(स) उच्चावच :-

धरातल प्राकृतिक पर्यावरण का एक अति महत्वपूर्ण अवयव है। मानव के आर्थिक क्रिया कलापों पर धरातल का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। धरातलीय स्वरूपों के आधार पर क्षेत्र संचार सुविधा, मानव अधिवास और कृषि उपयोग आदि निर्धारित होते हैं। गंगा यमुना के मध्य स्थित अन्य क्षेत्रों की भांति अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ में कृषि उपयोग, खाद्यान्य संसाधनों एवं भूआकृति स्वरूपों में घनिष्ट सम्बन्ध है। जनपद प्रतापगढ की धरातलीय बनावट में गंगा, सई तथा पीली नदियों का अधिक प्रभाव पडा है। जनपद का समस्त धरातल नदियों द्वारा लाई गई जलोढ मिट्टियों से बना है जो लगभग समतल है परन्तु बीच बीच में कहीं-कहीं असमतल भाग भी दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें ऊंचे-ऊंचे टीले तथा कटे-फटे क्षेत्र पाये जाते है। ये स्थान अधिकांश नदियों के किनारे दिखायी पडते हैं। जनपद का सामान्य ढाल उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर है जिसमें कुछ स्थानीय विषमतायें पाई जाती है।

(द) जलवायु एवं वर्षा-

कृषि कार्य जलवायु पर निर्भर होता है। जलवायु का मिट्टी की बनावट और पौधों के विकास पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। अतः सफल कृषि प्रणाली

यह अपेक्षा करता है कि फसलों का चुनाव बुआई, और सिंचाई का समय तथा उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग के संदर्भ में जलवायु की दशाओं के अनुसार निर्णय लिया जाये। मौसम की प्रतिकूलताओं तथा वर्षा की कमी या अधिकता, शीतलहर या धूल भरी आंधी, नमी की अधिकता या कमी के कारण कृषि में निहित जोखिम पर ध्यान दिया जाये। इसलिए जलवायु के विभिन्न घटकों यथा ऋतु परिवर्तन, वायु , तापमान, वर्षा आदि की जानकारी आवश्यक है। यह कृषि व्यवसाय को अधिक सक्षम बनाता है एवं जोखिम तत्व में कमी करता है।

जनपद प्रतापगढ गंगा के उत्तरी भाग में स्थित मानसूनी जलवायु वाला क्षेत्र है जिसका प्रभाव यहां के निवासियों के रहन सहन, क्रिया कलापों, व्यवसाय तथा कृषि पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। जनपद प्रतापगढ का आर्थिक आधार कृषि है जो मुख्य रूप से तापमान वर्षा तथा वायुदाव पर निर्भर है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग ने जनपद प्रतापगढ की जलवायु को निम्न लिखित भागों में बांटा है।

1. ग्रीष्म ऋतु-

मार्च से लेकर जून तक का समय ग्रीष्म ऋतु के अन्तर्गत आता है। उत्तर भारत के तापमान में फरवरी के अन्ततक तापमान बढने लगता है तथा जून माह तक उत्तरी मैदानी भाग अत्यधिक गर्म हो उठता है जिससे पूरे जनपद में भीषण गर्मी पडती है। मार्च का अधिकतम तापमान 39.6^0 सेन्टीग्रेड अप्रैल का 43.8^0 सेंटीग्रेड, मई का 46.5^0 सेटीग्रेड तथा जून का अधिकतम औसत मासिक तापमान 47.7^0 सेटीग्रेड रहता है। दूसरी ओर मार्च का न्यूनतम औसत तापमान 9.8^0 सेटीग्रेड रहता है। मई-जून इस ऋतु के सबसे अधिक गर्मी वाले महीने हैं, दिन में तेज धूप होती है और गर्म हवायें चलती है।

वर्षा एवं आर्द्रता:-

इस ऋतु में सम्पूर्ण उत्तरी मैदानी भाग शुष्क रहता है चूंकि मार्च के बाद तापमान बढने लेगता है इसलिए वायुमण्डल में आद्रता घटने लगती है। अध्ययन क्षेत्र में मई माह में आपेक्षित आद्रता सबसे कम रहती है यह आपेक्षित आद्रता 29.2 प्रतिशत, अप्रैल माह में यह 31.3 प्रतिशत तथा मार्च माह में 42.5 प्रतिशत रहती है, जून के अन्तिम पखवारे से समुद्री हवाओं के कारण आपेक्षित आद्रता बढने लगती है और जून माह में यह 45 प्रतिशत हो जाती है। इसी माह के दूसरे सप्ताह के बाद इस क्षेत्र में वर्षा होती है। जून में लगभग 68.2 मिलीमीटर वर्षा होती है। शेष महीनों में वर्षा इससे कम होती है।

2. वर्षा ऋतु :-

मध्य जून से मध्य सितम्बर तक का समय मानसून काल या वर्षाकाल का कहलाता है। जून की तपन के बाद मानसून आ जाने से मौसम में भारी परिवर्तन होता ह। तथा गरज के साथ वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। मानसूनी वर्षा के साथ-साथ अध्ययन क्षेत्र का तापमान गिरने लगता है और तापमान के गिरावट का क्रम जनवरी के प्रथम सप्ताह तक रहता है। जुलाई माह का अधिकतम औसत तापमान 41.1^0 सेन्टीग्रेड अगस्त का 36.2^0 से0ग्रे0 तथा सितम्बर का 35.9^0 से0ग्रे0 रहता है इसके विपरीत जुलाई का न्यूनतम औसत मासिक तापमान 23.6^0 से0ग्रे0, अगस्त का 23.2^0 से0ग्रे0 तथा सितम्बर का 21.5^0 से0ग्रे0 रहता है, इस प्रकार जुलाई से सितम्बर तक तापमान में गिरावट का क्रम रहता है।

वर्षा एवं आर्द्रता :-

इस ऋतु में मानसूनी हवाओं के आने से अध्ययन क्षेत्र में बादलों की सघनता एवं आपेक्षिक आद्रता का प्रतिशत काफी बढ जाता है। इस क्षेत्र में जुलाई अगस्त, तथा

अध्ययन क्षेत्र में वर्षा ऋतु में वर्षा की मात्रा (मिलीमीटर में)

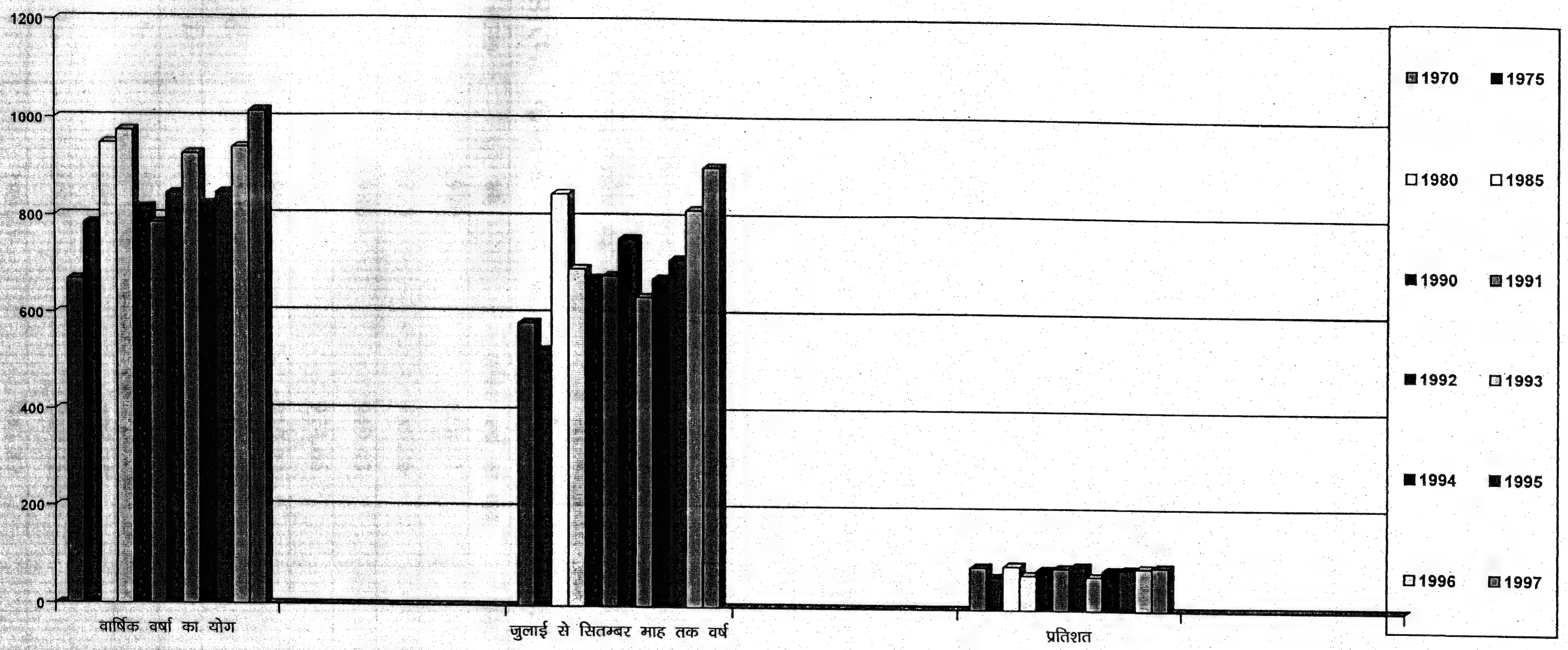

(भारतीय ऋतु वेधशाला इलाहाबाद)

सितम्बर माह में औसत आपेक्षिक आद्रता कमशः 75.3 प्रतिशत, 81.6 प्रतिशत एवं 75.8 प्रतिशत रहती है जो कि वर्ष में सर्वाधिक है। जनपद में जून के दूसरे सप्ताह के बाद वर्षा प्रारम्भ हो जाती है तथा जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर में घनघोर वर्षा होती है। इन तीन महीनों में जनपद में कुल वर्षा का लगभग 68 प्रतिशत वर्षा होती है। जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर माह में औसत वार्षिक वर्षा कमशः 201.4 मिलीमीटर, 244.8 मिलीमीटर तथा 161.9 मिलीमीटर होती है। इस समय मानसून की अधिक सक्रियता के कारण जून से अक्टूबर तक वार्षिक वर्षा का लगभग 90 प्रतिशत भाग प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः वर्षा का सामयिक वितरण वार्षिक वर्षा की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है। वर्षा की यह परिवर्तनशीलता कृषि पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती है। जहां यह परिवर्तनशीलता अधिक होती है वहां कृषि उत्पादन में भी भारी परिवर्तन होता है। अध्ययन क्षेत्र में इस परिवर्तनशीलता से बचने के लिए कृतिम सिंचाई के साधनों का विकास किया गया है। कृषि कार्यो के दृष्टिकोण से वर्षा की मौसमी एवं मासिक भिन्नता विशेष महत्व रखती है।

सारणी कमांक 1.1 अध्ययन क्षेत्र में वर्षा की मात्रा (मिलीमीटर में)

क0सं0	वर्ष	वार्षिक वर्षा का योग	जुलाई से सितम्बर माह तक वर्षा	प्रतिशत
1-	1970	668.81	583.87	87.30
2-	1975	785.26	527.46	67.17
3-	1980	949.43	848.79	89.40
4-	1985	974.65	694.53	71.26
5-	1990	817.22	675.19	82.62
6-	1991	785.61	680.10	86.57
7-	1992	846.42	756.78	89.41
8-	1993	927.89	637.09	68.66
9-	1994	824.28	674.92	81.88
10-	1995	847.35	714.14	84.28
11-	1996	941.87	816.79	86.72
12-	1997	1016.56	905.35	89.06

(भारतीय ऋतु बेधशाला इलाहाबाद)

सारिणी क्रमांक 1.1 में अध्ययन क्षेत्र की वार्षिक वर्षा की सूची प्रस्तुत की गई है जिससे ज्ञात होता है कि सर्वाधिक वर्षा 1016.56 मिलीमीटर वर्ष 1997 में हुई है और न्यूनतम वर्षा 668.81 मिलीमीटर वर्ष 1970 में हुई इसके उपरान्त 1975 में 785.26 मि0मी0 तथा 1991 में 785.61 मि0मी0 के अतिरिक्त अन्य वर्षों में औसत वार्षिक वर्षा 800 मि0मी0 से अधिक रही है। वार्षिक वितरण पर यदि दृष्टि डाली जाये तो वर्ष 1975 में 67.17 प्रतिशत वर्षा जून से अक्टूबर तक 1993 में 68.66 प्रतिशत तथा 1985 में 71.26 प्रतिशत के अतिरिक्त इन 5 महीनों में 80 प्रतिशत से अधिक वर्षा जनपद को प्राप्त होती रही है।

3. शीत ऋतु :-

मध्य नवम्बर से लेकर मध्य मार्च तक का समय शीत ऋतु कहलाता है। यह अध्ययन क्षेत्र का सर्वाधिक ठण्डा समय है। मध्य दिसम्बर से मध्य जनवरी तक का समय सबस ठण्डा समय होता है। सितम्बर माह से तापमान में तेजी से गिरावट आने लगती है। जनवरी माह में उच्चतम औसत मासिक तापमान 25.4^0 से0ग्रे0 से न्यूनतम 3.5^0 से0ग्रे0 तक पहुंच जाता है। फरवरी माह से तापमान में क्रमशः वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है। फरवरी एवं मार्च माह में औसत मासिक उच्चतम तापमान क्रमशः 30.6^0 से0ग्रे0 एवं 39.4^0 से0ग्रे0 रहता है तथा न्यूनतम तापमान 5.8^0 से0ग्रे0 तथा 9.8^0 से0ग्रे0 रहता है।

आर्द्रता वर्षा :-

सम्पूर्ण उत्तरी भारत इस ऋतु में शुष्क रहता है दिसम्बर माह में औसत मासिक आपेक्षिक आर्द्रता 55.5 प्रतिशत रहती है जनवरी तथा फरवरी में आपेक्षिक आर्द्रता बढकर 62.7 एवं 66.8 प्रतिशत रहती है। आर्द्रता में कमी के कारण

अध्यय क्षेत्र जनपद प्रतापगढ़ की जलवायु

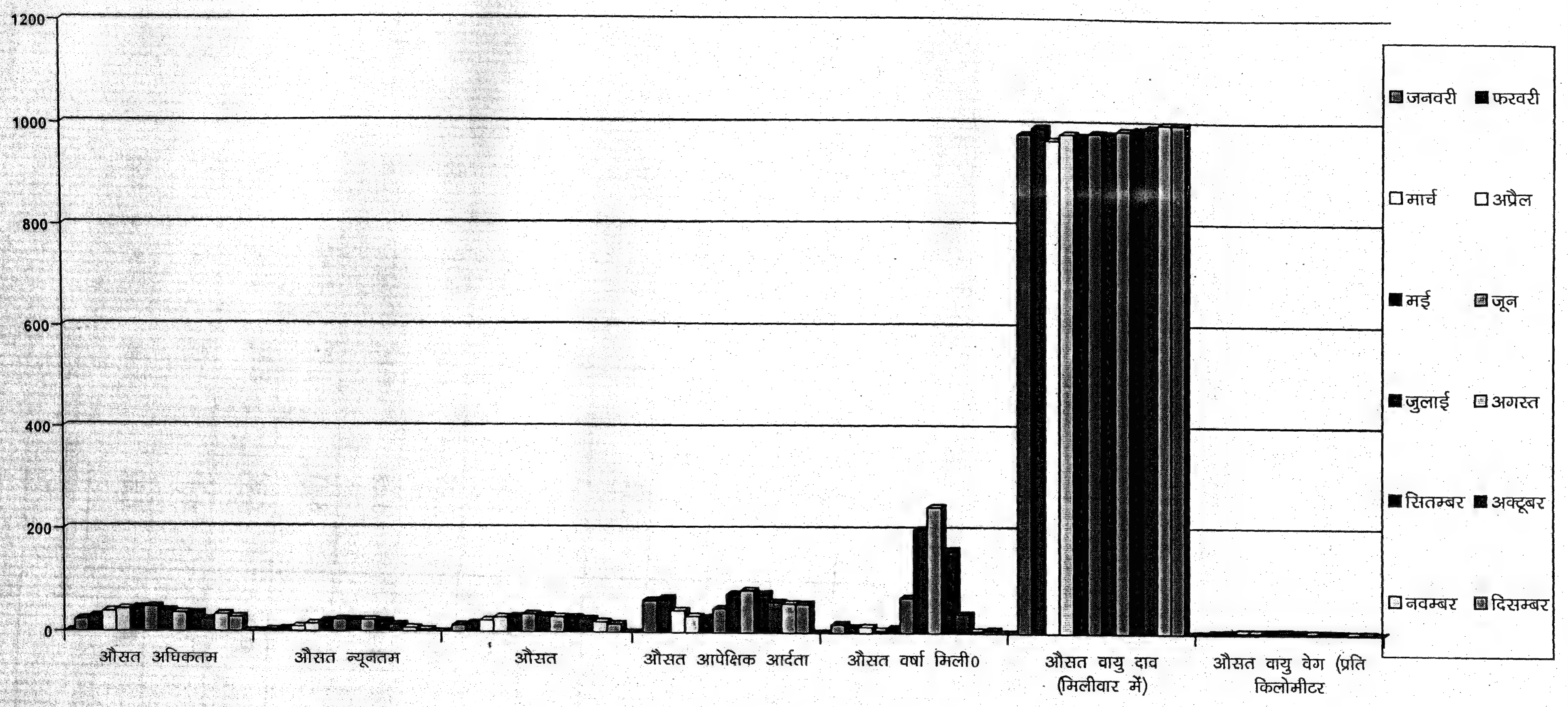

(भारतीय ऋतु वेधशाला इलाहाबाद)

इस ऋतु में वर्षा बहुत कम होती है। इस मौसम में जो भी वर्षा होती है वह चक्रवातों से होती है। जिसका प्रभाव अध्ययन क्षेत्र पर भी पडता है जिससे दिसम्बर माह में औसत मासिक वर्षा 5-8 मिलीमीटर, जनवरी में 16.5 मि0मी0 तथा फरवरी में लगभग 10.9 मिलीमीटर वर्षा होती है। यदा कदा ओले भी गिरते हैं जिनसे सलों को भारी क्षति होती है।

सारणी 1.2 अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ की जलवायु

माह	तापमान ^{0} से0ग्रे0			औसत आपेक्षिक आर्द्रता	औसत (मि0मी0)	औसत वायुदाव (मिलीवार में)	औसत वायुवेग (प्रतिकि0मी0)
	अधिकतम	न्यूनतम	औसत				
जनवरी	24.2	3.5	13.6	62.7	16.5	999.19	2.36
फरवरी	30.6	5.8	17.5	66.8	10.9	981.18	2.87
मार्च	39.4	9.8	22.9	42.5	11.4	994.22	3.92
अप्रैल	43.8	15.9	28.7	31.3	4.3	968.82	3.77
मई	46.5	21.2	31.2	29.2	9.3	981.66	4.39
जून	47.7	24.1	34.8	46.7	68.2	977.84	4.96
जुलाई	41.1	23.6	32.5	75.3	201.4	983.46	4.11
अगस्त	36.2	23.2	29.9	81.6	244.8	981.92	3.24
सितम्बर	35.9	21.5	29.1	75.8	161.9	988.89	2.88
अक्टूबर	24.2	14.2	25.8	59.5	36.6	990.71	2.10
नवम्बर	33.7	7.9	20.1	56.6	3.8	99 4.38	1.13
दिसम्बर	28.5	4.4	16.2	55.5	5.8	1 001.24	1.87

(भारतीय ऋतु वेधशाला इलाहाबाद)

मिट्टी :-

पृथ्वी के ऊपरी धरातल का कुछ सेन्टीमीटर से लेकर 3 मीटर तक की गहराई वाला भाग मिट्टी कहलाता है जिसका निर्माण शैलो की संरचना, धरातल की बनावट, जलवायुवीय दशाओं एवं जीवश्म के विभिन्न रूपों में संयोजित होने पर होता है। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ एक कृषि प्रधान भू भाग है। कृषि का समस्त उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से मिट्टी पर आधारित है और पशु पालन तथा वन उद्योग मिट्टी पर आधारित हैं। स्पष्ट है कि कृषि, पशुपालन, उद्यान वन आदि के लिए मिट्टी का उपयोग मिट्टी की उर्वरा और भौगोलिक स्थिति दोनों पर निर्भर करता है। यद्यपि सभी प्रकार की मिट्टियों में पौधों के लिए कुछ न कुछ पोषक तत्व अवश्य होते हैं परन्तु विभिन्न प्रकार मिट्टियों की संरचना भिन्न होने के कारण उसकी उर्वरा शक्ति में भी अन्तर पाया जाता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति और उसके मूल पदार्थ के रासायनिक गुणों पर ही निर्भर नही करती है वरन स्वयं मिट्टी के भौतिक तथा रासायनिक गुणों पर निर्भर करती है।

अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ एक मैदानी भाग है जहां जलोढ मिट्टियां पायी जाती हैं। नदियों के समीपस्थ भागों में नवीन जलोढ मिटिटयां पायी जाती हैं जो वर्षाकाल में बाढग्रस्त होकर प्रतिवर्ष निक्षेपण करती हैं। नदियों के दूरस्थ भाग में प्राचीन कांप मिट्टी से निर्मित अपेक्षाकृत ऊंचे भू-भाग पाये जाते हैं। सामान्यतः अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित मिट्टियां पायी जाती हैं।

1. बलुई एवं बलुई चीकायुक्त मिट्टियां :-

स्थानीय रूप से इन मिटिट्यों को कछार कहते हैं ये नवीन निक्षेप से निर्मित नदियों के दोनों किनारों पर पायी जाती है। इनमें बलुई दोमट मिट्टी की सघनता रहती है। इन मिट्टियों का विस्तार गंगा, दुआर, सई, नैया, तथा तम्बुरा और पीली नदियों के किनारे एक पतली मिट्टी के रूप में पायी जाती है। ये किनारे प्रतिवर्ष बाढ से प्रभावित रहते हैं स्थिति के अनुसार इन्हे दो भागों में

बांटा जा सकता है। तीन और कक्षा। तीर बलुई दोमट मिट्टी का वह जमाव है जो नदी की मुख्य धारा के अति निकट निक्षेपित होता है और जब नदी का जल स्तर नीचा होता है तब यह मिट्टी वहीं छूट जाती है यह मिट्टी रबी के फसलों के लिए बहुत उपयुक्त रहती है। कछार मिट्टियां नदियों के किनारों से थोडी दूर पायी जाती है। ये मिट्टियां उपजाऊ है जिनमें खरीफ की फसल के मोटे अनाजों एवं दलहनी फसलों का सफलतापूर्वक उत्पादन किया जा सकता है। यहां की मिट्टी कैल्शियम युक्त हल्की क्षारीय है।

2. हल्की बलुई दोमट मिट्टी :-

यह मिट्टियां बलुई और दोमट का मिश्रण हैं इनमें चीका के कण बालू के कणों के अपेक्षा कम पाये जाते हैं, यह मिट्टियां हल्के लालरंग की होती है। इनमें मिट्टियों को स्थानीय भाषा में भूड़ कहा जाता है जिसमें छार की मात्रा अत्यन्त कम है। यह मिट्टी मोटे चावल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

3. चीकायुक्त मिट्टियां :-

यह मिट्टी गंगा के उत्तर तथा सई नदी के दक्षिण भागों में पायी जाती है। आमतौर पर यहां कंकड के निक्षेप पाये जाते हैं यहां पर वर्षा के पानी के निकास की समुचित व्यवस्था न होने के कारण वर्षा के दिनों में पानी भर जाता है। यहां गर्मियों के दिनों में धरातल के ऊपर सफेद लवण युक्त मिट्टियों का जमाव हो जाता है जिसके कारण इस मिट्टी में पर्याप्त क्षारीय तत्व मिलते हैं जहां पर क्षार की मात्रा अधिक पायी जाती है। इन क्षार युक्त मिट्टियों को ऊसर कहा जाता है। इस प्रकार के क्षेत्र धान उत्पादन के लिए उपयुक्त होती है।

4. भारी दोमट मिट्टियां :-

यह मिट्टियां जनपद के उत्तर पूर्वी भाग में पायी जाती है। इनका रंग गहरा भूरा तथा हल्का लाल होता है तथा अधिक गहराई के साथ इनका रंग भी कहरा होता जाता है। इनकी संरचना में दोमट तथा चीका की प्रमुखता रहती हे। इस क्षेत्र ऊपरी भागों में दोमट तथा निचले भागों में चीका दोमट की मात्रा अधिक पायी जाती है। जहां पर मिट्टी में चीका के कणों की अधिकता रहती है। वहां ~जल धार व क्षमता भी अधिक होती है। यह मिट्टियां गेहूं, गन्ना मटर तथा धान आदि के लिए उपयुक्त होती है।

5. बीहड़ मिटटी :-

नदी के किनारे वजरी तथा कंकड युक्त मिट्टियां पायी जाती है जिन्हे बीहड़ कहते है। वास्तव में ये कंकडयुक्त बलुई मिट्टियां है। इन क्षेत्रों में भूमि अपरदन अधिक होता है। जिसके कारण मृदा के उपजाऊ तत्व नष्ट होते रहते हैं। सामान्यत: ये अनुपजाऊ मिट्टियां होती है। वास्तव में ये भूमियां अपरदन के कारण ऊंची नीची भूमि में परिवर्तित हो गयी हैं।

अध्ययन क्षेत्र की मिट्टी को 192.3 ए0डी0 में भी एक काल्पनिक आधार पर वर्गीकृत किया गया था जिसमें मिट्टी की दो श्रेणियां स्वीकार की गई है। रवी तथा चावल भूमि। चावल भूमि को धान भूमि के अन्तर्गत रखकर एक फसली माना गया जो मानसून पर निर्भर रहने वाली भूमि के रूप में रखा गया। धान भूमि की उत्पादकता को दृष्टिगत रखते हुए इसे धान प्रथम, धान द्वितीय, तथा धान तृतीय वर्गो के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया। धान प्रथम को महीन चावल के उत्पादन में श्रेष्ठ कोटि मानते हुए जोरहन भूमि के अन्तर्गत रखा गया जिसे अच्छी भूमि तथा पर्याप्त जलापूर्ति वाली भूमि की श्रेणी में रखा गया जबकि धान द्वितीय को एक फसली तथा समान भूमि की श्रेणी में

रखते हुए 'मदैं' कही गई तथा धान तृतीय के अन्तर्गत ऊसर भूमि को रखा गया। इसी प्रकार रवी भूमि को भूमि की कोटि, अधिवास से दूरी तथा सिंचाई सुविधा के आधार पर वर्गीकृत किया गया। इस वर्ग की भूमि का कच्चिमाना (गोइंद प्रथम, गोइंद द्वितीय) दुमट प्रथम दुमट द्वितीय तथा दुमट तृतीय, भूड़ प्रथम, भूड़ द्वितीय, तराई प्रथम तराई द्वितीय और कछार प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इन भूमियों में जो भूमि जैविक तथा रासायनिक उर्वरकों की ग्राहयता के आधार पर गोइंद श्रेणी में रखा गया है। इससे निम्न कोटि की भूमि को दुमट के अन्तर्गत रखा गया, उर्वरक तथा सिंचाई सुविधाओं से युक्त भूमि को दुमट यप्रथम, तथा कम सिंचाई सुविधाओं वाली भूमि को दुमट द्वितीय के अन्तर्गत रखा गया तथा ऊसर भूमि को दुमट तृतीय कोटि में शामिल किया गया है। नदी के किनारे की भूमि को भूड श्रेणी प्रदान की गयी जबकि कछार श्रेणी की भूमि को गंगा तथा सई नदी के किनारे की बताया गया है जो वर्षा से प्रतिवर्ष वाढ ग्रस्त हो जाती है। चीकायुक्त भारी मिट्टी को दुमट मटियार, औसत चूनायुक्त भूमि को दुमट दोरासा, तथा बलुई चूना युक्त मिट्टी को बलुई दुमट श्रेणी के अन्तर्गत रखा गया है।

प्राकृतिक वनस्पतियां :-

प्राकृतिक वनस्पति प्रकृति द्वारा मनुष्य को दिया गया एक बहु मूल्य उपहार है जो किसी क्षेत्र की मृदा एवं जलवायु का सम्मिलित परिणाम होती है। प्राकृतिक वनस्पति जलवायु, मिट्टी तथा वन्य जीवों को भी प्रभावित करती है। इसके द्वारा मनुष्य को सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के संसाधन प्राप्त होते है। मनुष्य तथा प्राकृतिक वनस्पति का परस्पर जैविक सम्बन्ध होता है। मानव जगत तथा वनस्पति जगत से प्रकृति में संतुलन रहता है। परिस्थितिकी व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण वनस्पति का क्षेत्रीय वितरण, भूमि की

[illegible] मिट्टी के [illegible] एवं जलवायु के दशाओं पर निर्भर है। राज्य सरकार के बन विभाग की अनुसंशा के अनुसार मैदानी भाग 20 प्रतिशत क्षेत्र पर वनों का आच्छादन होना चाहिए परन्तु जनपद प्रतापगढ में कुल क्षेत्रफल के 0.18 प्रतिशत क्षेत्रफल पर ही वन पाये जाते हैं, जबकि 1940-41 में वनों के अन्तर्गत 6.4 प्रतिशत क्षेत्रफल था जो 1981-82 में घटकर के 2.9 प्रतिशत रह गया। स्पष्ट है कि जनपद का वन क्षेत्र धीरे-धीरे समाप्त सा होता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण है कि वनाच्छादित भूमि भी या तो कृषि अथवा अन्य उपयोग में हस्तान्तरित हो रही है। उपयोगिता के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. उष्णकटिबंधीय पतझड़ वाले वन :-

ये मिश्रित वन है जो सम्पूर्ण जनपद में फैले हुए है। नीम, आम बबूल, शीशम, ढाक, यूकेलिप्टस, जामुन तथा वेल आदि इस वर्ग के प्रमुख वृक्ष है जिनका उपयोग इमारती लकडी आदि के रूप में होता है।

2. उपोष्ण शुष्क वन :-

ये वन समान्यतया झाडी वाले वृक्षों के रूप में पाये जाते हैं जो गंगा सई तथा पीली नदियों के किनारे मुख्य रूप से पाये जाते हैं। कटीले बबूल, जंगल जलेबी, बेर, कदम तथा खैर आदि इन वनों के अन्तर्गत आते है, इनसे प्राप्त लकडी प्रमुख रूप से जलाने के काम आती है।

(र) आर्थिक स्थिति :-

स्वतंत्रता की आधी शताब्दी बीत जाने के बाद भी अध्ययन क्षेत्र की अर्थव्यवस्था आज की कृषि व्यवसाय पर निर्भर है, अधिकांश जनसंख्या कृषि से ही अपने जीवन यापन के संसाधन जुटा रही है, यद्यपि देश की

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को महत्व देने के साथ-साथ जनपद में भी कृषि उत्पादन में परिवर्तन हुए हैं। संस्थागत एवं तकनीकी सुधारों के फलस्वरूप कृषि उत्पादन एवं उत्पादिता में सुधार हुआ है। कृषि क्षेत्र में मात्रात्मक सुधार के साथ-साथ गुणात्मक सुधार भी हुए हैं। कृषि अब मात्र जीवन निर्वाह का साधन न रहकर उत्पादक एवं लाभपूर्ण व्यवसाय का रूप धारण कर रही है। कृषक अब लाभ कमाने के लिए नवीन उत्पादक तकनीकों को अपनाने के लिए तत्पर हैं, आज अपेक्षाकृत वेहतर कृषि प्रविधियों के प्रयोग तथा नवीन उत्पादन तकनीक चन्द कृषकों तक ही सीमित नही रह गई है उसे अपनाने की तीवृ इच्छा उन लाखों कृषकों में भी व्याप्त होती जा रही है जो अपनी दयनीय स्थिति के कारण इसे अभी तक अपना नही सके हैं। यह तथ्य वस्तुतः ग्रामीण व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का सूचक है। कृषि क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप ग्रामीण जीवन में जागरूकता आ गई है और कृषक अब भविष्य के प्रति आशान्वित हो गये हैं।

(अ) कृषि :-

कृषि उत्पादन और उत्पादिता के मुद्दे पर महत्वपूर्ण सफलता के बावजूद भारतीय कृषि विकास नीति की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि इसने कृषि विकास के सन्दर्भ में क्षेत्रीय विषमताओं को बढावा दिया है जबकि योजनाओं के प्रारम्भ में कृषि में व्याप्त विषमताओं को घटाने का लक्ष्य एवं संकल्प लिया गया था। अध्ययन क्षेत्र में भी कृषि भिन्नता देखने को मिलती है। चूंकि जनपद की अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है। परन्तु क्षेत्रीय कृषि विषमताओं ने वितरणात्मक पक्ष की पूर्णतया अवहेलना की है जो भूमि के उपविभाजन और उपखण्डन के रूप में स्पष्ट देखी जा सकती है।

तालिका 1.3 जनपद में क्रियात्मक जोतों का आकार, विकासखण्डवार संख्या व क्षेत्रफल (1990–91)

क्र0 सं0	विकासखण्ड	1 हे0 से कम		1 से 2 हे0		2 से 4 हे0		4 हे0 से अधिक		कुल जोत	
		संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल
1.	कालाकांकर	28283	8765	3745	4337	678	1960	130	828	32836	15890
2.	बाबागंज	29483	9327	4162	5056	922	2395	178	1012	34745	17790
3.	कुण्डा	27844	7540	3882	5242	760	2099	146	887	32632	15768
4.	विहार	30852	10954	3825	4347	791	2066	152	872	35620	18259
5.	सांगीपुर	33170	11453	3031	3696	780	2595	188	1096	37369	18840
6.	रामपुरखास	31135	13707	3054	4429	877	2295	168	969	35228	21400
7.	लक्ष्मणपुर	28351	10537	2650	2908	926	1768	178	746	32105	15959
8.	संडवा चन्द्रिका	28164	8865	2864	3614	790	2116	152	893	32970	15488
9.	प्रतापगढ	29582	8586	2817	3562	762	1914	147	808	33308	14870
10.	मान्धाता	29552	10173	2402	3631	532	1413	102	596	32588	15813
11.	मगरौरा	30979	8930	2387	3693	1551	3600	299	1520	35216	17743
12.	पट्टी	25192	6517	2832	3333	844	2481	163	1048	29031	13379
13.	आसपुर देवसरा	26433	8396	4517	5656	623	1334	120	564	31693	15950
14.	शिवगढ	25408	9670	2150	3022	756	2166	145	915	28459	15773
15.	गौरा	26776	7465	2443	3306	1131	2981	218	1259	30568	15011
	योग	432204 (87.43)	140905 (56.83)	46761 (9.46)	59832 (24.13)	12917 (2.61)	33183 (13.38)	2486 (0.50)	14013 (5.66)	494368 (100.00)	247933 (100.00)

सारणी क्रमांक 1.3 से अध्ययन क्षेत्र में कृषि जोतों के आकार का ज्ञान प्राप्त होता है। सारिणी से पता चलता है कि सम्पूर्ण जनपद में 1 हेक्टेयर से कम कृषि भूमि रखने वालों की संख्या 87.43 प्रतिशत है जबकि इस वर्ग के पास कुल कृषि भूमि का केवल 56.83 प्रतिशत भाग ही कृषि कार्य के लिए उपलब्ध है इस वर्ग के जोत के औसत आकार पर विचार करें तो प्रति कृषक परिवार केवल 0.33 हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध है, जोत के इतने लघु आकार पर पूंजी निवेश की सम्भावनायें लगभग न के बराबर हैं। जिन कृषकों के पास 1 से 2 हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध है उनकी संख्या 9.46 प्रतिशत है परन्तु इन कृषक परिवारों के पास 24.13 प्रतिशत कृषि भूमि कृषि कार्यो हेतु प्राप्त है जबकि 2 से 4 हेक्टेयर के मध्य जोत आकर वाले कृषक 2.61 प्रतिशत है परन्तु इन कृषक परिवारों के पास कुल कृषि भूमि का 13.38 प्रतिशत भाग उपलब्ध है। 4 हे0 से अधिक जोत आकर वाले कृषकों की संख्या मात्र 0.50 प्रतिशत है जबकि इन कृषकों के पास कुल कृषि भूमि का 5.66 प्रतिशत भाग उपलब्ध है। स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में लगभग 3 प्रतिशत कृषक ही ऐसे हैं जो अपनी कृषि भूमि पर पूंजी निवेश करके नवीनतम विधियों को अपना सकते हैं, लगभग 97 प्रतिशत कृषकों की जोत का आकार अत्यन्त निम्न होने के कारण कृषि क्षेत्र में पर्याप्त पूंजी निवेश करने में सक्षम नही हैं जिसके कारण जनपद का कृषि उत्पादन अत्यन्त निम्न कोटि का है और अधिकांश कृषक उपज अतिरेक उत्पादित करने में सक्षम प्रतीत नही होते हैं जिसके कारण अध्ययन क्षेत्र का आर्थिक आधार अत्यन्त कमजोर रह जाता है।

(ब) उद्योग :-

औद्योगीकरण की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त पिछडा हुआ क्षेत्र है और भारतीय कृषकों का यह दुर्भाग्य है कि उन्हे वर्ष भर कृषि क्षेत्र से रोजगार प्राप्त नही होता है। मात्र 6 या 7 माह के लिए ही कृषि क्षेत्र कार्य दे पाता है। वर्ष में अतिरिक्त दिवसों में कार्य के अभाव के कारण कृषकों का कोई अन्य आय का श्रोत

नही है इसलिए जनपद के कृषकों के आय का स्तर केवल कृषि पर निर्भरता के कारण अत्यन्त निम्न है यद्यपि भोजनाकाल में ग्रामीण लोगों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराने हेतु विभिन्न योजनायें संचालित की जा रही है परन्तु उन कार्यक्रमों का लाभ जनपद के ग्रामीण लोगों को नही मिल पाया है जिससे कृषक आज भी केवल भरण-पोषण की स्थिति में ही जीवन यापन कर रहे हैं। जनपद में औद्योगीकरण की स्थिति के तालिका क्रमांक 1.4 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका 1.4 विभिन्न संस्थाओं के अधीन कार्यरत औद्योगिक इकाईयों की संख्या 1994-95

सं0	संस्थाओं का नाम	औद्योगि सहकारी समिति द्वारा	पंजीकृत संस्थाओं द्वारा	व्यक्तिगत उद्योग पतियों द्वारा	कुल योग
1	खादी उद्योग	-	4	-	4
2	खादी ग्रामोद्योग द्वारा प्रवर्तित उद्योग	35	53	3331	3419
3	लघु उद्योग इकाइयां				
	3.1 इंजीनियरिंग	7	-	387	385
	3.2 रासायनिक			171	171
	3.3 विधयन			498	498
	3.4 हथकरघा	408		1020	1428
	3.5 हस्तशिल्प	17		123	140
	3.6 अन्य		-	1786	1786
	योग ग्रामीण एवं लघु उद्योग	467	57	7307	7831
4.	कार्यरत व्यक्तियों की संख्या (1+2)	175	855	4718	5748
5.	लघु उद्योग इकाइयों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या (3.1)	2162	-	15504	17666
6.	ग्रामीण एवं लघु उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या (4+5)	2337	855	20222	23414

तालिका क्रमांक 1.4 से स्पष्ट होता है कि जनपद में ग्रामीण और लघु उद्योगों की संख्या 7831 है। जिसमें कुल 23414 व्यक्ति रोजगार पाये हुए है। कुल 7831 उद्योगों में से खादी एव ग्रामोद्योग द्वारा प्रवर्तित 3419 उद्योग संचालित किये जा रहे है। जबकि व्यक्तिगत उद्योगपतियों द्वारा 385 इन्जीनियरिंग उद्योग 171 रासायनिक उद्योग, 498 विधायन उद्योग, हथकरघा एवं हस्तशिल्प के क्रमशः 1428 तथा 140 लघु उद्योग संचालित किये जा रहे है। जबकि व्यक्तिगत उद्योगपतियों द्वारा 385 इंजीनियरिंग उद्योग, 171 रासायनिक उद्योग, 498 विधायन उद्योग, हथकरघा एवं हस्तशिल्प के क्रमशः 1428 तथा 140 लघु उद्योग संचालित किये जा रहे हैं जिनमें खादी उद्योग तथा खादी ग्रामोद्योग द्वारा प्रवर्तित उद्योगों में 5748 व्यक्ति रोजगार पाये हुए हैं शेष व्यक्ति लघु उद्योग इकाइयों में कार्यरत है। इनमें से कोई भी उद्योग कृषकों को अंशकालिक रोजगार प्रदान नही करता है, लगभग सभी उद्योग पूर्णकालिक रोजगार प्रदान करते हैं जिससे कृषक अपने अतिरिक्त समय का सदुपयोग करने से वंचित रहता है। आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण क्षेत्रों के इस प्रकार के कुटीर उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए कि जिससे कृषक अंशकालिक रोजगार प्राप्त करके कुछ अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकें।

(स) साख सुविधायें :-

प्रत्येक आर्थिक क्रिया का वित्त से अविभाज्य सम्बन्ध होता है क्योंकि वित्तीय आधार प्रत्येक क्रिया की एक महत्वपूर्ण पूर्वापेक्षा होती है। कृषि कार्य को भी कृषि क्रियाओं को सही ढंग से सम्पन्न करने के लिए साख की आवश्यकता होती है, कृषि व्यवस्था में सामान्यतः तीन कालावधियों वाले ऋण में की आवश्यता होती है अल्पकालीन मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन समान्यतः कृषि साख की पूर्ति करने वाले श्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। गैर संस्थागत श्रोत तथा संस्थागत श्रोत कृषि साख के गैर संस्थागत श्रोतों में ग्रामीण साहूकार, महाजन सगे

सम्बन्धी भूस्वामी तथा दलाल प्रमुख संघटक होते है और संस्थागत श्रोतों में सरकार सहकारी समितियां तथा ब्यापारिक बैंक प्रमुख हैं। यहां पर हम संस्थागत वित्तीय सुविधाओं का ही विश्लेषण करेगें। अध्ययन क्षेत्र में संस्थागत वित्तीय श्रोतों के अन्तर्गत ब्यापारिक बैंक, सहकारी साख तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ही प्रमुख हैं।

1. **<u>सहकारी समितियां</u>** :-

सहकारी साख समस्त संस्थागत श्रोतों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और उपयुक्त माना जाता है क्योंकि प्राथमिक सहकारी साख समितियों का कृषकों से प्रत्यक्ष और अति निकट का सम्बन्ध होता है। सहकारी समितियों द्वारा कृषकों को अल्पकालीन और मध्य कालीन तथा भूमि विकास बैंकों द्वारा दीर्घकालीन साख प्रदान की जाती है।

जनपद में विकास खण्डवार प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियां (31 मार्च 1995)

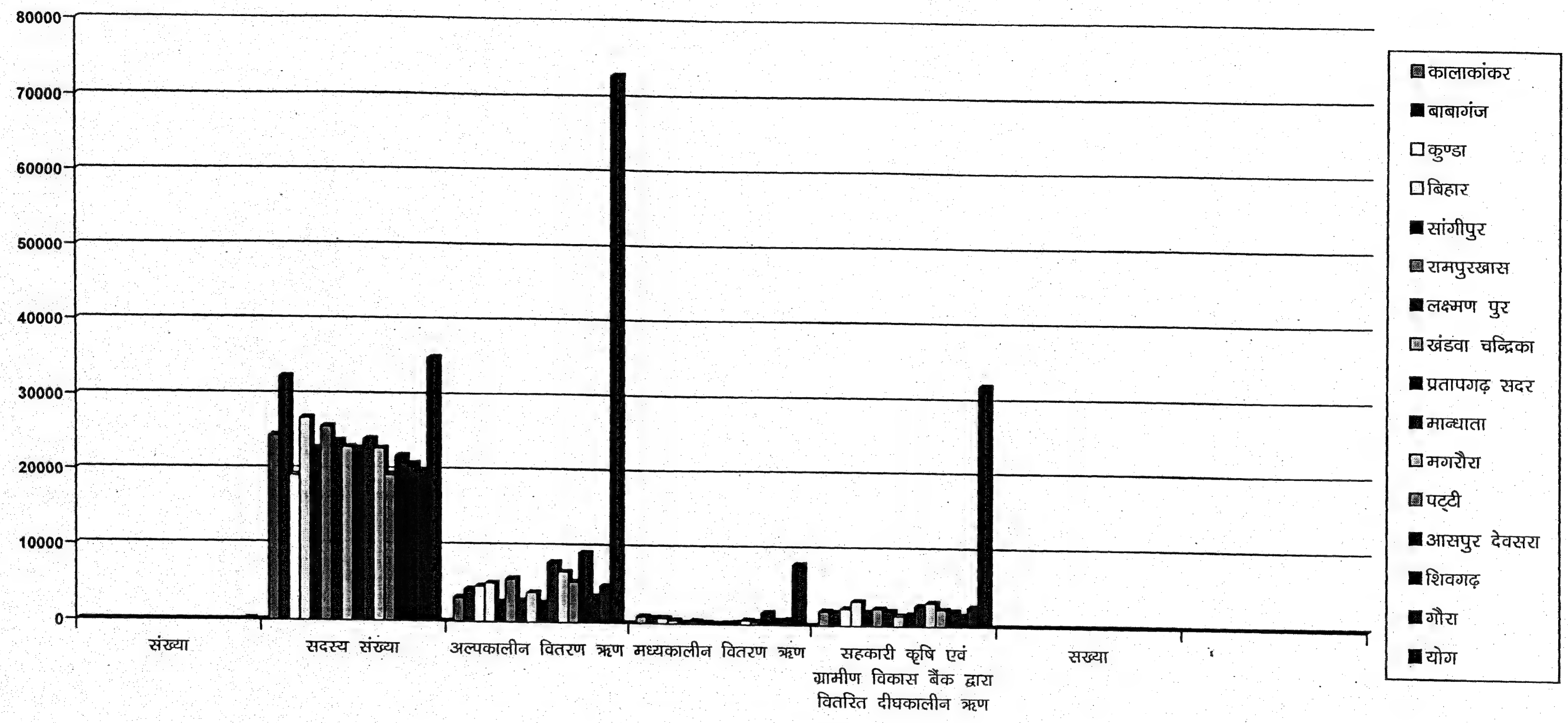

तालिका 1.5 जनपद में विकासखण्डवार प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियां (31 मार्च 1995)

सं0	विकासखण्ड	संख्या	सदस्य संख्या	वितरित ऋण अल्पकालीन (000रू0)	वितरित ऋण मध्यकालीन 000रू0)	सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा वितरित दीर्घकालीन ऋण (000रू.)	संख्या
1	कालाकांकर	11	24552	3221	900	1847	2
2	बाबागंज	11	32430	4332	778	1743	1
3	कुण्डा	12	19201	4744	724	2220	-
4	विहार	11	26930	5150	440	3200	2
5	सांगीपुर	12	22940	2634	193	1798	1
6	रामपुरखास	17	25798	5723	390	2263	2
7	लक्ष्मणपुर	10	23896	2881	230	1984	1
8	संडवा चन्द्रिका	11	23083	3931	100	1370	-
9	प्रतापगढ	12	22930	2570	171	1547	-
10	मान्धाता	13	24170	7957	250	2667	1
11	मगरौरा	11	22930	6715	538	3090	1
12	पट्टी	10	19363	5443	387	2230	-
13	आसपुर देवसरा	11	21930	9247	1585	1998	2
14	शिवगढ	12	20887	3492	619	1516	2
15	गौरा	10	19980	4890	697	2557	2
	योग	**174**	351020	72930	8002	32030	17+6 नगरीय

सारिणी 1.5 में अल्पकालीन, मध्यकालीन ऋण प्रदान करने वाली प्राथमिक कृषि साख समितियों तथा सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा दिये जाने वाले ऋणों का विवरण दिया जाता है। जनपद में कृषि साख समितियों की कुल संख्या 174 है जिसमें सर्वाधिक साख समितियां रामपुर खास विकासखण्ड में हैं जबकि लक्ष्मणपुर, पट्टी तथा गौरा विकासखण्डों में 10-10 कृषि साख समिति कार्यरत हैं, इस साख समितियों की कुल सदस्य संख्या 351020 है और इन समितियों द्वारा 72930 हजार अल्पकालीन तथा 8002 हजार रूपये के मध्यकालीन ऋण वितरित किये गये। सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की संख्या 17 ग्रामीण और नगरीय है परन्तु कुण्डा, संडवा चन्द्रिका, प्रतापगढ सदर तथा पट्टी विकास खण्डों में इन बैंकों की एक भी शाखा नही है। यह बैंक दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है जिसकी मात्रा 32030हजार रू0 है।

सारणी 1.6 जनपद में अन्य सहकारी समितियां (31 मार्च 1995)

मद	क्रयविक्रय सहकारी समिति	संयुक्त कृषि समितियां	प्रारम्भिक दुग्ध उत्पादन समितियां	मत्स्य सहकारी समितियां	प्रारम्भिक औद्योगिक सहकारी समितियां
1. संख्या	3	20	85	24	7
2. सदस्य संख्या	550	352	4500	228	105
3. वर्ष में लेन-देन की गयी वस्तुओं का मूल्य (000रू0)	4695	876	2635	228	365

तालिका 1.6 से जनपद में अन्य सहकारी समितियों का विवरण प्राप्त होता है। कय विकय सहकारी समितियों की संख्या 3 है जिनमें 5550 सदस्यों में कुल 4695000 रूपये का लेन-देन किया। जनपद में दुग्ध उत्पादन समितियों की संख्या सर्वाधिक 85 है, परन्तु इनमें 4500 सदस्यों क सदस्यता है जिन्होने कुल 2635000 रूपये के लेन-देन का कार्य किया। इसी प्रकार 24 मत्स्य सहकारी समितियों के 228 सदस्यों ने कुल 228000 रूपये का कारोबार किया। प्रारम्भिक औद्योगिक सहकारी समितियों की संख्या 7 है जिसके 105 सदस्यों ने 365000 रूपये का लेन-देन किया है।

सारिणी 1.7 जनपद में व्यापारिक बैंको की स्थिति

(हजार रूपये में)

क0सं0	मद	1994-95
1.	व्यावसायिक बैंको की संख्या	ग्रामीण 111+नगरीय 17 कुल 128
2.	कुल ऋण वितरण	1131081
3.	जमा धनराशि	3600967
4.	जमाधनराशि पर ऋण वितरण का प्रतिशत	31
5.	प्राथमिक क्षेत्र में ऋण वितरण	
	अ. कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित कार्य	506653
	ब. लघु उद्योग	1076
	स. अन्य प्राथमिक क्षेत्र	278597
6.	कुल ऋण वितरण में प्राथमिक क्षेत्र का प्रतिशत	24.63
7.	प्रतिबंधित जमा धनराशि (रूपये)	1320
8.	प्रतिबंधित ऋण वितरण (रूपये)	415
9.	प्रतिव्यक्ति प्राथमिकता क्षेत्र में ऋणवितरण (रूपये)	288

सारणी 1.7 से स्पष्ट है कि व्यापारिक बैंको की स्थिति अब पहले की अपेक्षा अच्छी होती जा रही है परन्तु कृषि क्षेत्र के लिए अभी भी संतोषजनक नही कही जा सकती है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का उदय होने के बाद स्थिति में सुधार हुआ है इन बैंको की स्थापना से न केवल कृषि क्षेत्र की साख आवश्यकताओं की पूर्ति में विस्तार हुआ है बल्कि लोगों में बैंकिंग आदतों पर भी इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से पडा है। परिणाम स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रो में भी छोटी बचतों को जमा रूप में रखने की प्रवृत्ति पैदा हुई है। जनपद में कृषि क्षेत्र के लिए उपलब्घ होने वाली साख का अभी भी 24.63 प्रतिशत भाग निम्न ही कहा जायेगा।

(द) **भण्डारण एवं विपणन सुविधायें** :-

विपणन में सभी क्रियायें संलग्न होती है जो वस्तुओं और सेवाओं को उचित समय पर तथा उचित मात्रा में उपभोक्ताओं तक पहुंचाकर उनकी उपयोगिता में वृद्धि करती है। विपणन क्रिया आर्थिक विकास का एक प्रमुख प्रेरक तत्व है। कृषि विपणन उत्पाद का एवं उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा करता है, यह कृषकों की आय और उपभोक्ताओं की संन्तुष्टि बढाने का एक प्रमुख साधन है।

अध्ययन क्षेत्र मूलत: कृषि प्रधान है। अत: कृषि उत्पादन के भण्डारण तथा उनके विपणन की समुचित व्यवस्था के बिना कृषि उत्पादन को सुरक्षित और उपयोग्य हाथों तक नही पहुंचाया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र में भण्डारण सुविधा का विवरण तालिका 1.8 में प्रस्तुत है।

तालिका 1.8 अध्ययन क्षेत्र में भण्डारण सुविधायें हैं

क0सं0	मद	संख्या	भण्डारण क्षमता (मी0टन)
1	बीज गोदाम	209	20600
2	उर्वरक भण्डार	203	20300
3	कीटनाशक डिपो	84	8400
4	शीत भण्डार	03	12000
5	भारतीय खाद्य निगम	02	10000
6	केन्द्रीय भण्डारागार निगम		–
7	राज्य भण्डारागार निगम	01	10073
8	बीज बृद्धि फर्म	01	–
9	कृषि सेवा केन्द्र	एग्रो1+ अन्य 59	–
10	कृषि उत्पादन मण्डी समिति	–	–
11	वायो गैस सयन्त्र	4336	–

तालिका 1.8 में अध्ययन क्षेत्र की भण्डारण क्षमता का विवरण दिया गया है जिससे ज्ञात होता है कि जनपद में 209 बीज गोदाम तथा 203 उर्वरक भण्डार स्थित है। जिनकी भण्डारण क्षमता कृमशः 20600 तथा 20300 मी0टन है, कीटनाशक डिपो 8400 मी0टन, शीत भण्डारों की क्षमता 12000 मी0टन, एक राज्य भण्डारागार निगम का गोदाम स्थित है जिसकी क्षमता 70073 मीटरी टन है इसके एक बीज उत्पादक फर्म तथा 4356 वायो गैस सयंत्र कार्यरत है।

(य) परिवहन एवं संचार सुविधाये :-

कृषि उत्पादन का कय विकय जीवन यापन की अनिवार्यता परन्तु क्षेत्रीय बाजारों, कस्बों, नगरों में माल के कय विकय के लिए परिवहन सुविधाओं पर निर्भर रहना पडता है। कृषि जन्य वस्तुओं की उत्पादन संरचना में अत्यधिक क्षेत्रीय विषमता होती है। इसलिए परिवहन के साधन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं। सडक परिवहन का कृषकों को विशेष लाभ है। वर्षा ऋतु में तो बिना अच्छी सडकों के कृषि उपज बाहर लाना ले जाना एक कठिन कार्य है। अध्ययन क्षेत्र में परिवहन की दृष्टि से रेल तथा सडक मार्ग सुविधायें प्राप्त है।

अ- रेल परिवहन :-

अध्ययन क्षेत्र में रेल परिवहन के रूप में फैजावाद-इलाहाबाद बडी रेल लाइन जनपद को लगभग मध्य से विभाजित करती है। प्रतापगढ जंक्शन स्टेशन है यहां से जौनपुर को भी रेल सुविधा उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त जनपद के पश्चिम में स्थित कालाकांकर तथा कुण्डा विकासखण्डों को भी रेल परिवहन सुविधा प्राप्त है। यह रेल पथ रायबरेली तथा इलाहाबाद को जोडता है। एक रेल मार्ग लखनऊ से इलाहाबाद जो प्रतापगढ में संयुक्त होकर इलाहाबाद को जाता है भी जनपद को रेल परिवहन सुविधा उपलब्ध कराता है। इसप्रकार कालाकांकर तथा कुण्डा विकासखण्ड रायबरेली-इलाहाबाद रेलमार्ग पर स्थित है। संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड से लखनऊ प्रतापगढ रेलमार्ग गुजरता है। मगरौरा तथा प्रताप गढ सदर विकासखण्ड फैजावाद इलाहाबाद मार्ग पर तथा शिवगढ और गौरा विकासखण्ड प्रतापगढ जौनपुर रेलमार्ग से जुडे हुये है। फैजावाद जौनपुर रेलमार्ग का एक भाग आसपुर देवसरा विकासखण्ड से गुजरता है। इसप्रकार रेलपथ के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र सुविधायुक्त है।

ब- सडक परिवहन :-

अध्ययन क्षेत्र में सडक परिवहन सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है जनपद में कुछ सडकों की लम्बाई 1867 किमी0 है जिनमें प्रतापगढ-रायबरेली, प्रतापगढ-फैजावाद, प्रतापगढ-जौनपुर, प्रतापगढ-इलाहाबाद, सडक मार्ग मुख्य है। कुछ अन्य पक्की सडके जनपद के आन्तरिक नगरों को जोडने वाली हैं। जनपद में पक्की सडकों का विवरण तालिका 1.9 में प्रस्तुत है।

तालिका 1.9 में जनपद में पक्की सडकों की लम्बाई

(कि0मी0 में)

क्र0सं0	विवरण	1993-94
1.	1.1 लोक निर्माण विभाग के अन्तर्गत	-
	1.2 प्रादेशिक राजमार्ग	148
	1.3 मुख्य जिला सडक	164
	1.4 अन्य जिला तथा ग्रामीण सडके	1076
	योग	1388
2.	स्थानीय निकायों के अन्तर्गत	
	2.1 जिला परिषद	284
	2.2 नगर पालिका/नगर पंचायत	56
	योग	340
3.	अन्य विभागों के अन्तर्गत	
	3.1 सिंचाई विभाग	19
	3.3 अन्य विभाग	120
		139
	महायोग (1+2+3)	1867

तालिका 1.9 जनपद में सडक परिवहन व्यवस्था का परिदृष्य प्रस्तुत कर रही है जिसमें राष्ट्रीय राजमार्ग का अभाव तथा प्रादेशिक राजमार्ग की लम्बाई 148 किलोमीटर है मुख्य जिला सडकों की लम्बाई 164 किमी0 तथा अन्य जिला एवं ग्रामीण सडकों की लम्बाई 1076 कि0मी0 है। इसप्रकार लोक निर्माण विभाग द्वारा 1388 कि0मी0 पक्की सडकों का पोषण किया जा रहा है। स्थानीय निकायों द्वारा कुल 340 कि0मी0 सडकों का रख-रखाव किया जा रहा है। जबकि सिंचाई विभाग तथा अन्य विभागों द्वारा 129 कि0मी0 सडकों का रख-रखाव किया जा रहा है इसप्रकार जनपद में 1867 कि0मी0 सडकों द्वारा परिवहन सुविधायें प्राप्त की जा रही है।

3. सामाजिक स्थिति :-

परम्परागत ग्रामीण समुदाय आत्म सम्पन्न और आत्म निर्भर रहे एक गांव या आस-पास बसे कुछ गांव एक आर्थिक इकाई के रूप में रहते थे जिनका उस इकाई के बाहर कुछ लेन देन नही होता था जहां इस पिछडे पन के लाभ थे वही इसके कुछ परिणाम अत्यन्त भयंकर थे। पंचवर्षीय योजना के माध्यम से इस स्थिति को बदलने के प्रयास किये गये इन प्रयासों के परिणाम स्वरूप भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनेक तरह के परिवर्तन प्रकाश में आये हैं। यह परिवर्तन ग्रामीण जीवन के अनेक पहलुओं से सम्बन्धित हैं जैसे भू-सुधार कृषि पशुपालन, वित्त विपणन सेवाएं, ग्रामीण उद्योग, कल्याणकारी सेवायें, ग्रामीण नेतृत्व और ग्रामीण प्रशासन आदि अनेक नये स्कूलों का खोला जाना प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना परिवार कल्याण और नियोजन सेवाओं का प्रसार, परिवहन, संचार और आकाशवाडी तथा दूरदर्शन का विस्तार आदि अनेक बातें हैं। जिनसे ग्रामीण जीवन मं कान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। नि:सन्देह ये परिवर्तन विकास के परिचायक हैं अत: इनका स्वागत है परन्तु विकास का अधिकांश

लाभ साधन सम्पन्न वर्ग को ही प्राप्त हुआ है। साधन विहीन एवं निर्बल वर्ग की स्थिति सोंचनीय तथा पहले से कुछ खराब ही हुई है। बढती हुई जनसंख्या के परिणाम स्वरूप भूमि पर दबाब बढता जा रहा है, जोत की इकाई भी छोटी होती जा रही है जो उन्नति कृषि के अनुकूल नही है।

अ. **जनसंख्या :-**

मानवीय संसाधन आर्थिक विकास के साधन एवं लक्ष्य दोनों है अर्थ व्यवस्था में जितनी भी विकासात्मक क्रियायें सम्पन्न की जाती है उनका उद्देश्य मानव समुदाय को जीवन की अच्छी सुविधायें प्रदान करना होता है, इसलिए जनंसख्या का अध्ययन आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसी आधार पर वर्तमान आर्थिक क्रियाओं की योजना का निर्धारण एवं कार्यान्वियन तथा विकास स्तर का निर्धारित किया जा सकता है। जनसंख्या के समुचित अध्ययन के लिए जनसंख्या वृद्धि दर विभिन्न घनत्व वर्गो का क्षेत्रीय वितरण, यौन अनुपात, साक्षरता, व्यवसायिक संरचना, कार्यशील जनसंख्या आदि अध्ययन के प्रमुख घटक होते हैं। जनसंख्या वृद्धि प्रतापगढ जनपद उत्तर प्रदेश का मध्यम जनसंकुल क्षेत्र है। जनसंख्या की दृष्टि से प्रदेश में इसे 30 वां स्थान प्राप्त है। वहीं इलाहावाद सम्भाग में इसे दूसरा स्थान प्राप्त है। प्रस्तुत तालिका कमांक 1.10 में जनपद की जनंसख्या वृद्धि दर को प्रदर्शित किया गया है।

प्रतापगढ़ में जनसंख्या वृद्धिदर

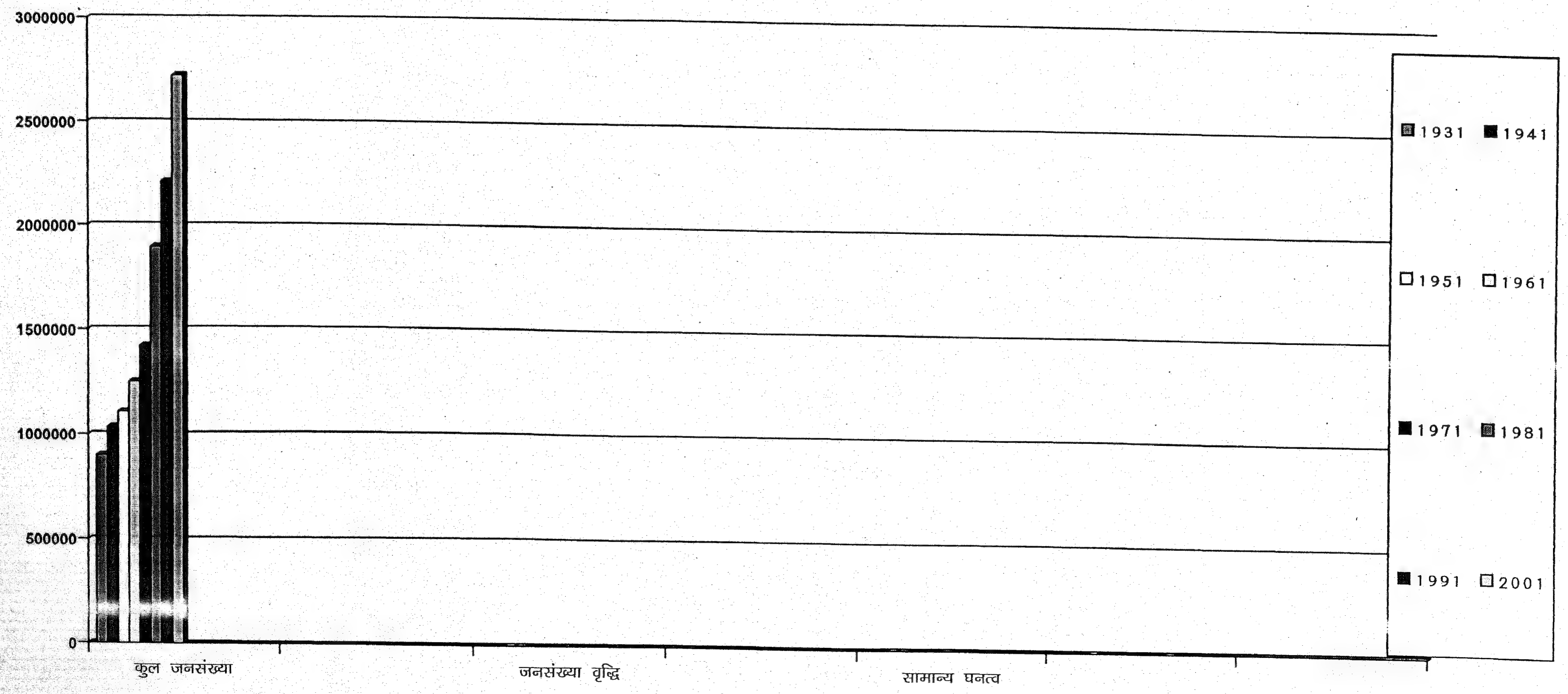

तालिका 1.10 प्रतापगढ में जनसंख्या वृद्धि दर

जनगणना वर्ष	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001
कुल जनसंख्या	901618	1036496	1106605	1252196	1422707	1901049	2210700	2727156
जनसंख्या वृद्धि	+6.00	+15.00	+6.80	+13.10	+13.60	+26.60	+22.70	23.40
सामान्य घनत्व	243	279	298	337	383	511	595	734

सारिणी क्रमांक 1.10 जनपद प्रतापगढ की वर्ष 1931 से 2001 तक की जनसंख्या वृद्धि का विवरण प्रस्तुत कर रही है जिससे ज्ञात होता है कि गत 7 दशकों में जनसंख्या में लगभग 3 गुनी वृद्धि हुई है जबकि जनसंख्या वृद्धि दर लगभग 4गुनी बढ गयी है। जनसंख्या घनत्व पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि जहां वर्ष 1931 में प्रतिवर्ग किलोमीटर 243 व्यक्ति निवास करते थे वहीं 2001 में प्रतिवर्ग किलोमीटर 734 व्यक्ति निवास कर रहे हैं। वर्ष 1971 तक जहां जनसंख्या वृद्धिदर 13.60 प्रतिशत रही है वहीं अगले दशक में इसका लगभग दुगुना 26.7 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। यद्यपि अगले दो दसकों में यह वृद्धि दर कुछ कम हुई है परन्तु फिर भी 23.40 प्रतिशत वृद्धि दर अधिक ही कही जायेगी। तेज गति से बढती जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति कृषि क्षेत्र भी तेज गति से घट रहा है।

तालिका 1.11 विकासखण्डवार जनसंख्या का वितरण

1981–91

क्र0सं0	विकासखण्ड	जनसंख्या		वृद्धिदर प्रतिशत	श्रेणीयन
		1981	1991		
1	कालाकांकर	92935	122049	24.10	13
2	बाबागंज	113682	136802	16.90	8
3	कुण्डा	132440	168499	21.40	2
4	विहार	127113	154451	17.70	3
5	सांगीपुर	107943	133758	19.30	10
6	रामपुरखास	131120	169625	22.60	1
7	लक्ष्मणपुर	98197	123986	20.80	12
8	संडवाचन्द्रिका	98937	118630	16.60	14
9	प्रतापगढ सदर	69813	135025	28.30	9
10	मान्धाता	117417	151506	22.50	5
11	मगरौरा	117209	154425	24.10	4
12	पट्टी	80793	107011	24.50	15
13	आसपुरदेवसरा	96925	132051	26.60	11
14	शिवगढ	110298	139441	20.90	7
15	गौरा	104450	141340	26.10	6
योग विकासखण्ड नगरीय		**1626272** **93651**	2088599 122101	22.10 23.30	
योग जनपद		**1719923**	2210700	22.70	

सारिणी क्रमांक 1.11 से स्पष्ट हो रहा है कि जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि प्रतापगढ सदर में हुई है। जहां पर 1981–91 के मध्य 28.30 प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसी अवधि में न्यूनतम वृद्धि संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड में हुई है जहां पर एक दशक में

केवल 16.60 प्रतिशत वृद्धि अंकित की गई है। जनपदीय औसत से अधिक जनसंख्या वृद्धि दर अंकित कराने वाले विकासखण्डों में प्रतापगढ सदर के अतिरिक्त कालाकांकर, लक्ष्मणपुर, मगरौरा, पट्टी, आसपुर देवसरा तथा गौरा विकासखण्ड हैं, शेष अन्य विकासखण्ड जनपदीय औसत से कम जनसंख्या वृद्धि दर का प्रदर्शन कर रहे हैं।

तालिका 1.12 विकासखण्डवार साक्षरता का स्तर

क. सं.	विकासखण्ड	साक्षर व्यक्ति			साक्षरता प्रतिशत		
		पुरूष	स्त्री	कुल	पुरूष	स्त्री	कुल
1	कालाकांकर	24069	6415	30484	48.0	13.7	31.4
2	बाबागंज	28530	9275	37805	52.6	16.7	34.5
3	कुण्डा	35349	11100	46449	52.7	16.8	34.8
4	विहार	34757	11678	46435	58.5	18.8	39.1
5	सांगीपुर	28936	7422	46358	52.6	13.6	33.4
6	रामपुरखास	34041	9308	43345	50.0	13.8	31.9
7	लक्ष्मणपुर	31071	7951	40822	64.6	19.8	41.4
8	संडवाचन्द्रिका	29043	9560	38603	61.5	19.8	40.5
9	प्रतापगढ सदर	39161	15498	54659	70.5	29.5	50.6
10	मान्धाता	37059	12038	49097	62.7	19.8	40.9
11	मगरौरा	38054	13310	51364	63.0	21.7	42.2
12	पट्टी	27577	9213	36790	66.4	21.2	43.3
13	आसपुरदेवसरा	31311	10182	41493	60.4	19.4	39.7
14	शिवगढ	37157	12592	49749	66.9	22.8	44.9
15	गौरा	34033	10043	44076	62.3	17.8	39.7
	योग ग्रामीण	49148	157381	647529	59.2	18.9	39.7
	योग नगरीय	40931	22633	63564	77.0	49.5	64.5
	योग जनपद	531079	180014	711093	60.0	20.5	40.4

सारिणी 1.12 जनपद में विकासखण्ड स्तर पर साक्षरता के स्तर पर प्रकाश डाल रही है जिसमें सम्पूर्ण जनपदीय स्तर पर दृष्टिपात करे तो पुरूषों में साक्षरता का स्तर 60 प्रतिशत है तो स्त्रियों में मात्र 20.5 प्रतिशत है जिससे औसत साक्षरता 40.4 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्र और नगरीय क्षेत्र में साक्षरता के स्तर की तुलना करें तो ज्ञात होता है कि पुरूषों में यह कमशः 59.2 प्रतिशत तथा स्त्रियों में 18.9 प्रतिशत देखने को मिलती है वहीं नगरीय सक्षरता पुरूषों में 77 प्रतिशत तथा स्त्रियों में यह 49.5 प्रतिशत प्राप्त हुई है। पुरूषों और स्त्रियों में साक्षरता का स्तर का अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह अन्तर लगभग 40 प्रतिशत है। जबकि भोजन में पोषण स्तर का निर्धारण में साक्षरता चाहे वह पुरूषों की हो अथवा महिलाओं की एक महत्वपूर्ण घटक होती है। जिसमें स्त्रियों का साक्षर होना तो और भी महत्वपूर्ण होता है क्योंकि भोजन में क्षेत्रीय खाद्य पदार्थो की उपलब्धता के आधार पर भोजन सामंजस्य स्थापित कर सकती हैं।

विकासखण्ड स्तर पर यदि साक्षरता स्तर पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि प्रतापगढ सदर विकासखण्ड पुरूषों तथा महिलाओं की साक्षरता के आधार पर प्रथम स्थान पर है और यहां पर पुरूषों में 70.5 प्रतिशत तथा स्त्रियों में 29.5 प्रतिशत साक्षरता प्रदर्शित हो रही है जबकि न्यूनतम स्तर कालाकांकर विकासखण्ड प्रदर्शित कर रहा है। जहां पुरूषों में केवल 48 प्रतिशत तथा स्त्रियों में केवल 13.7 प्रतिशत साक्षरता दृष्टिगोचर हो रही है जनपदीय औसत से तुलना करें तो जनपदीय औसत से अधिक साक्षरता दर वाले विकासखण्डों में लक्ष्मणपुर सडंवाचन्द्रिका, मान्धाता, मगरौरा, पट्टी, शिवगढ है जबकि न्यून स्तर प्रदर्शित करने वाले विकासखण्ड बाबागंज, कुण्डा, विहार, सांगीपुर, रामपुरखास, आसपुर, देवसरा, तथा गौरा विकासखण्ड है।

तालिका 1.13 विकासखण्डवार जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण 1991

सं0	विकासखण्ड	कृषक	कृषिश्रमिक	पशुपालन एवं वृक्षारोपण	खनन	पारिवारिक उद्योग	गैर पारिवारिक उद्योग	निर्माणकार्य	व्यापार एवं वाणिज्य	यातायात संग्रहण एवं संचार	अन्य कर्मकार	कुल मुख्य कर्मकार	सीमांत कर्मचार	कुल कार्यकार
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
1	कालाकांकर	26014	8331	222	6	1136	640	126	1272	244	1777	39768	3923	43691
2	बाबागंज	27194	11337	140	4	589	640	96	1120	317	2087	43524	3600	47124
3	कुण्डा	29469	12079	117	8	587	1010	80	1282	364	2435	47431	4672	52103
4	विहार	26233	13548	192	16	1007	829	123	1430	327	2192	45897	3731	49628
5	सांगीपुर	32607	7550	85	5	552	890	57	920	180	1540	44386	5456	49842
6	रामपुरखास	37226	11774	176	5	704	667	129	1490	297	2020	54388	6109	60457
7	लक्ष्मणपुर	21514	8385	99	2	456	722	116	1348	548	1879	35069	3651	38760

8	संडवा चन्द्रिका	21974	6328	47	7	681	321	130	1090	344	2138	33060	2783	35843
9	प्रतापगढ	17048	9252	259	10	856	965	449	1835	1194	4548	36416	1245	37661
10	मान्धाता	26349	8566	106	10	995	705	385	1347	693	2774	21920	2173	44093
11	मगरौरा	27555	10199	185	20	788	1322	188	1361	879	2438	44930	2475	47405
12	पट्टी	20191	4857	90	8	430	713	104	1029	253	1402	29077	3293	32370
13	आसपुर देवसरा	24210	6606	114	7	451	678	96	1240	404	1716	35522	4450	39972
14	शिवगढ	24289	9258	115	8	1068	827	72	1630	695	2250	40204	5681	58885
15	गौरा	26546	7543	199	17	957	905	137	1233	617	1755	39909	7586	47495
	योग ग्रामीण	388419	135505	2146	133	11254	11834	9691	19627	4346	32951	611501	60868	662369
	योग नगरीय	5263	2893	542	5	1002	2889	5686	9414	1887	6676	31080	918	31998
	योग जनपद	393682	138398	2688	138	12254	14722	15377	29041	9233	39627	642581	61786	704366

तालिका 1.13 अध्ययन क्षेत्र के व्यावसायिक ढांचे का चित्र प्रस्तुत कर रही है। 1991 की जनगणना में आर्थिक क्रियाओं के आधार पर श्रमिकों का वर्गीकरण 11 कोटियों में किया गया है। कार्य अवधि के आधार पर समस्त जनसंख्या को मुख्य श्रमिक सीमांत कृषक/श्रमिक तथा गैर श्रमिक नामक वर्गो में बाटा गया है। मुख्य श्रमिक वे हैं जिन्होने आर्थिक रूप से उत्पादक क्रियाओं में कुल 183 दिवस या 6 महीने अथवा इससे अधिक समय तक कार्य किया। सीमान्त कृषक वे हैं जिन्होने 183 दिवस या 6 महीने से कम अवधि तक कार्य किया है। गैर श्रमिक श्रेणी में वे लोग सम्मिलित हैं जिन्होने वर्ष में थोडा भी कार्य नही किया है इन गैर श्रमिकों में भुगतान रहित घरेलू कार्य करने वाले लोग, पूर्णकालिक विद्यार्थी आश्रित यथा बच्चे विकलांग, अवकाश प्राप्त लोग, अथवा लगान उपजीवी भिखमंगे एवं संस्थाओं में रहने वाले लोग और अन्य गैर श्रमिक सामिल है। अन्य गैर श्रमिकों में वे लोग सामिल हैं जो अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद रोजगार के लिए प्रयासरत है। इस आधार पर देखा जाये तो जनपद में 31.86 प्रतिशत जनसंख्या कर्मकार की श्रेणी है शेष अन्य गैर कर्मचारी की श्रेणी में है। कुल कर्मचारियों में 75.54 प्रतिशत कृषक और कृषि श्रमिक हैं।

ब. गांव खेत की दूरी :-

कृषि अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने वाले अनेक महत्वपूर्ण कारकों में जैसे, भूमि श्रम और पूंजी इत्यादि आवासीय स्थान से खेत की दूरी का कम महत्वपूर्ण स्थान नही है। जोतों का कुल पुर्नगठन तथा अनेक भूमि सुधार कानून केवल इसी कारण बनाये गये हैं कि जिससे गांव खेत के मध्य दूरी कम की जा सके। परन्तु भूमि सुधार के अपेक्षित परिणाम नही प्राप्त किये जा सके हैं। खेत तथा गांव के मध्य दूरी का विश्लेषण इस मान्यता को लेकर किया जा रहा है कि सभी गांव आकार में लगभग समान है तथा उनका घनावसाव है। ग्रामवासी एक गांव में निवास करते हैं। यह भी मान लिया गया है कि ग्रामवासी अपने गांव से बाहर जाकर कृषि कार्य नही करते है। यहां पर गांव खेत के बीच

की दूरी का विश्लेषण विकासखण्ड स्तर पर निम्न सूत्र की सहायता से किया गया है।

गांव खेत की दूरी = 0.5373 A/N

जहां A = क्षेत्रफल N = गांवों की संख्या

सारिणी 1.14 विकासखण्ड स्तर पर गांव खेत की दूरी

क्र0सं0	विकासखण्ड	क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0	गांव की संख्या	गांव खेत की दूरी (मी0में)
1	कालाकांकर	209.8	117	718
2	बाबागंज	263.7	145	725
3	कुण्डा	278.0	126	798
4	विहार	266.0	114	821
5	सांगीपुर	261.6	125	777
6	रामपुरखास	321.2	194	691
7	लक्ष्मणपुर	206.7	127	685
8	संडवाचन्द्रिका	222.6	138	682
9	प्रतापगढ सदर	188.9	137	631
10	मान्धाता	212.7	172	597
11	मगरौरा	285.8	212	624
12	पट्टी	196.2	160	595
13	आसपुरदेवसरा	210.7	144	650
14	शिवगढ	220.9	183	590
15	गौरा	237.7	125	741
	योग	3582.5	2219	683

सारिणी क्रमांक 1.14 विकासखण्ड स्तर पर गांव खेत के बीच दूरी को प्रदर्शित कर रही है। जनपद की गांव खेत के मध्य दूरी का औसत 683 मीटर है जो उत्तर प्रदेश के 825.9 मीटर तथा भारत की औसत दूरी 1281.1 मीटर से कम है। सारिणी से स्पष्ट है कि शिवगढ विकासखण्ड गांव खेत की दूरी को न्यूनतम 590 मीटर रखता है इसके अतिरिक्त 595 मीटर की दूरी पट्टी विकासखण्ड तथा 597 की दूरी मान्धाता विकासखण्ड रखते हैं जबकि विहार विकासखण्ड गांव खेत के बीच की सर्वाधिक दूरी 821 मीटर रखता है। इसके बाद सर्वाधिक दूरी वाले विकासखण्ड कुण्डा 798 मीटर गौरा विकासखण्ड 741 मीटर, सांगीपुर विकासखण्ड 777 मीटर, बाबागंज 725 मीटर तथा कालाकांकर 718 मीटर प्रमुख है अन्य विकासखण्ड 600 मी0 से 700 मीटर के मध्य स्थित है।

(स) सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाए :-

आजादी के बाद देश में स्वास्थ्य सेवाओं का जो ढांचा खडा किया गया उसमें ग्रामीण क्षेत्र पूर्णतया उपेक्षित रहा है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधाओं का ढांचा जो स्वीकार किया गया उसमें भारतीय चिकित्सा पद्धति की पूर्ण उपेक्षा करके अंग्रेजी द्वारा स्थापित स्वास्थ्य सुविधाओं का अत्यन्त सीमित मात्रा में ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार किया गया परिणाम स्वरूप स्थानीय सुविधाएं जो कुछ भी थी वे धीरे-धीरे समाप्त हो गई और ग्रामीण जन एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति पर ही पूरी तरह निर्भर होते चले गये, परन्तु ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति न तो गांवों के लिए पर्याप्त है और न ही जनसाधारण की पहुंच के अन्दर है। एक तो ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पतालों का अभाव है दूसरे जहां पर अस्पताल स्थापित हैं वहां चिकित्सकों का अभाव है। कुल मिलाकर गांव के लिए मातृ शिशु रक्षा से लेकर रोगमुक्त ग्रामीण समाज बनाने तक जो सुविधायें उपलब्ध कराई गयी है वे अपर्याप्त साधन विहीन आरोपित और शोषण उन्मुख है। स्वास्थ्य सेवाओं के लिए नगरों और कस्बों पर निर्भरता दिन प्रति दिन बढती जा रही है, इस प्रकार गांवों का पैसा शहरों की तरफ जाने से गांव और निर्धन होते जा

रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र भी इस तथ्य का अपवाद नही है। स्वास्थ्य सुविधाओं का विवरण अग्र तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका 1.15 अध्ययन क्षेत्र में चिकित्सा सुविधाएं 1994-95

सं0	विकास खण्ड	चिकित्सालय/औषधालय की संख्या	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	समस्तउपलब्ध शैयाओं की संख्या	प्रतिलाख जनसंख्या पर ऐलोपैथिक चिकि0/औष0 एवं प्राथमिक स्वा0केन्द्र की	प्रतिलाख जनसंख्या पर उपलब्ध सैयाएं
1	कालाकांकर	1	6	102	5.7	83.6
2	बाबागंज	-	5	20	3.7	14.6
3	कुण्डा	-	5	24	3.0	14.2
4	विहार	-	5	26	3.2	16.8
5	सांगीपुर	-	3	14	2.2	10.5
6	रामपुरखास	-	5	52	2.9	30.7
7	लक्ष्मणपुर	-	4	20	3.2	16.1
8	संडवा चन्द्रिका	-	4	46	3.4	38.8
9	प्रतापगढ	-	3	22	2.2	16.3
10	मान्धाता	-	4	22	2.6	14.5
11	मगरौरा	-	4	16	2.6	10.4
12	पट्टी	2	4	24	5.6	22.4
13	आसपुर देवसरा	-	4	46	3.0	34.8
14	शिवगढ	-	3	16	2.2	11.5
15	गौरा	-	3	44	2.1	31.1
	योग ग्रामीण	3	62	494	3.1	23.7
	योग नगरीय	9	3	452	5.7	86.26
	योग जनपद	12	65	946	3.62	28.06

सारिणी 1.15 में विकासखण्ड स्तर पर चिकित्सा सुविधाओं का विवरण प्रस्तुत कर रही है जिसके अनुसार जनपद में कुल 77 ऐलोपैथिक चिकित्सालय/ औषधालय तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित हैं जिनमें से 65 ग्रामीण क्षेत्र में तथा 12 नगरीय क्षेत्र में स्थित है। ग्रामीण क्षेत्र को 494 सैयों की सविधा उपलब्ध है जबकि नगरीय क्षेत्र को 452 सैयों की सुविधा उपलब्ध है इसके अतिरिक्त जनपद में 26 आयुर्वेदिक चिकित्सालय 05 यूनानी चिकित्सालय तथा 22 होम्योपैथिक चिकित्सालय स्थित है जिनमें शैयाओं की संख्या क्रमशः 122, 12 तथा शून्य सैयाओं की सुविधा प्राप्त है। परिवार तथा मातृ शिशु कल्याण केन्द्रो की संख्या 32 है तथा उपकेन्द्रो की संख्या 360 है।

(द) विद्युत सुविधायें :-

ग्रामीण क्षेत्र के समग्र विकास हेतु गांवों का विद्युतीकरण एक आवश्यक शर्त होती है। विद्युत से न केवल सिंचाई सुविधाएं प्राप्त होती है अपितु गांवों में प्रकाश व्यवस्था के साथ-साथ अनेक विद्युत उपकरणों को ऊर्जा प्रदान करती है। जिससे ग्रामीण जीवन स्तर ऊंचा उठता है। अध्ययन क्षेत्र में विद्युत सुविधा का विवरण तालिका 1.16 में प्रस्तुत है।

तालिका 1.16 अध्ययन क्षेत्र में विद्युत सुविधा 1994–95

सं०	विकास खण्ड	विद्युतीकृत ग्राम	समस्त ग्रामों का प्रतिशत	ऊर्जाकृत/निजी नलकूप/ पम्पिंगसेटों की संख्या
1	कालाकांकर	91	77.78	259
2	बाबागंज	71	48.97	225
3	कुण्डा	115	91.27	304
4	विहार	60	52.63	356
5	सांगीपुर	114	91.20	320
6	रामपुरखास	170	87.63	586
7	लक्ष्मणपुर	68	53.54	256
8	संडवा चन्द्रिका	101	73.19	837
9	प्रतापगढ	119	86.86	930
10	मान्धाता	94	54.65	753
11	मगरौरा	156	73.58	622
12	पट्टी	92	57.50	806
13	आसपुर देवसरा	125	86.80	1208
14	शिवगढ	119	65.03	552
15	गौरा	85	68.00	583
	योग ग्रामीण	1580	71.20	8597

सारिणी क्रमांक 1.16 अध्ययन क्षेत्र में विद्युत सुविधा के प्रसार का चित्रण कर रही है जनपद में कुल 2219 ग्रामों में से 1580 ग्राम अर्थात 71.20 प्रतिशत ग्राम विद्युतीकृत हो चुके है इनमें से कुण्डा तथा सांगीपुर विकासखण्डों में 90 प्रतिशत से अधिक ग्राम

विद्युतीकृत किये जा चुके है जबकि बाबागंज विकासखण्ड का लगभग 49 प्रतिशत क्षेत्र विद्युतीकरण सुविधा प्राप्त कर चुका है विहार, लक्षमणपुर तथा मान्धाता विकासखण्ड 52 से 55 प्रतिशत ग्रामों को विद्युत सुविधा उपलब्ध करवा चुके है। पट्टी विकासखण्ड की स्थिति 57.50 प्रतिशत लगभग इन्ही विकासखण्डों जैसी है। विद्युत चलित नलकूपों/पंम्पिंग सेटो की सर्वाधिक संख्या 1208 आसपुर देवसरा विकासखण्ड में है और न्यूनतम संख्या 225 बाबागंज विकासखण्ड में है।

....
....
....

अध्याय–द्वितीय

सामान्य भूमि उपयोग

एवं

कृषि भूमि उपयोग

जनपद में सामान्य भूमि उपयोग

अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग क्षमता

कृषि को प्रभावित करने वाले कारक

कृषि व्यवस्था

एवं

कृषक समुदाय की सामाजिक विशेषतायें

अध्याय द्वितीय

सामान्य भूमि उपयोग एवं कृषि भूमि उपयोग

देश का कुल क्षेत्रफल उस सीमा को निर्धारित करता है जहां तक विकास प्रक्रिया के दौरान उत्पत्ति के साधन के रूप में भूमि का समतल विस्तार सम्भव होता है। जैसे-जैसे विकास प्रक्रिया आगे बढती है और नये मोड लेती है, समतल भूमि की मांग बढती है, नये कार्यो और उद्योगों के लिए भूमि की आवश्यकता होती है व परम्परागत उपयोगों में अधिक मात्रा में भूमि की मांग की जाती है। सामान्यतया इन नये उपयोगों अथवा परम्परागत उपयोगों ने बढती हुई भूमि का मांग की आपूर्ति के लिए कृषि के अन्तर्गत भूमि को काटना पडता है और इस प्रकार भूमि कृषि उपयोग से. गैर कृषि कार्यो में प्रयुक्त होने लगती है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए जिसकी मुख्य विशेषतायें श्रम अतिरेक व कृषि उत्पादों के अभाव की स्थिति का बना रहना है। कृषि उपयोग से गैर कृषि उपयोगों में भूमि का चला जाना गम्भीर समस्या का रूप धारण कर सकता है। जहां इस प्रक्रिया से एक ओर सामान्य कृषक के निर्वाह श्रोत का विनाश होता है, दूसरी ओर समग्र अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से कृषि पदार्थो की मांग और पूर्ति में गम्भीर असन्तुलन उत्पन्न हो सकते है। कृषि पदार्थो की आपूर्ति में अर्थव्यवस्था में अनेक अन्य गम्भीर समस्याओं को जन्म दे सकती है। इसीलिए यह आवश्यक समझा जाता है कि विकास प्रक्रिया के दौरान जैसे-जैसे समतल भूमि की मांग बढती है उसी के साथ ही बंजर परती तथा बेकार पडी भूमि को कृषि अथवा गैर कृषि कार्यो के योग्य बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए। प्रयास यह होना चाहिए कि खेती वाडी के लिए उपलब्ध भूमि के क्षेत्र में किसी प्रकार की कमी न आये वरन जहां तक सम्भव हो कृषि योग्य परती भूमि में सुधार करें। कृषि कार्यो के लिए उपलब्ध भूमि में वृद्धि ही की जानी चाहिए।

भूमि समस्त गतिविधियों का आधार है, इस पर ही समस्त गतिविधियों और आर्थिक क्रियाओं का सृजन और विकास होता है। भूमि संसाधन की दृष्टि से भारत एक सम्पन्न देश है। यहां का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 328.8 मिलियन हेक्टेयर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवां सबसे बडा देश है। यह आवासी, औद्योगिक और परिवहन व्यवस्था का आधार होने के साथ-साथ खनिजों का श्रोत, फसल एवं वनोपज का आधार और उनमें विविधिता का पोषक है। भारतीय कृषि की विविधितायुक्त प्रचुरता विश्व की कई अर्थव्यवस्थाओं के लिए दुर्लभ है। इस बहुमूल्य संसाधन के समुचित और उपयोग और प्रबन्ध की आवश्यकता है। समुचित भूमि उपयोग द्वारा राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करते हुए इसके गुणधर्म को अक्षुण्य रखते हुए, इस अगली पीढी को हस्तांतरित किया जा सकता है। समुचित भूमि उपयोग और प्रबन्ध इस कारण भी आवश्यक है क्योंकि जनसंख्या की दृष्टि से यहां का भौगोलिक क्षेत्रफल अपेक्षाकृत कम है। यहां का भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत भाग है। जबकि यहां विश्व की लगभग 15 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।

भूमि उपयोग के आंकडे विद्यमान भूमि क्षेत्र का प्रयोगवार विवरण प्रस्तुत करते है और यह स्पष्ट करते है कि किसी भूमिखण्ड को सक्षमतापूर्वक कैसे कृषि योग्य बनाया जा सकता है। भूमि उपयोग का विभाजन मुख्य रूप से इस तथ्य पर आधारित है कि भूमि की प्रकृति कृषित भूमि की ओर बढने की है अथवा चारागाह या वनों के अन्तर्गत बढने की है। भूमि उपयोग का विवरण वन, कृषि उपयोग में प्रयुक्त बंजर तथा कृषि के अयोग्य भूमि, स्थायी चारागाह, वृक्ष एवं बागोंवाली भूमि कृषि योग्य खाली भूमि, चालू परती भूमि अन्य परती भूमि और शुद्ध कृषि भूमि नामक नौ शीर्षकों में प्रस्तुत किया जाता है। यह विवरण खाद्य एवं कृषि मंत्रालय द्वारा 1948 में नियुक्त टेक्नीकल कमेटी आन कोआरडीनेशन आफ एग्रीकल्चरल स्टैटिस्टिक्स, की संस्तुति पर आधारित है।[1] इस सन्दर्भ में भूमि उपयोग के ढांचे का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। भूमि उपयोग के ढाचे सम्बद्ध आंकडों का अध्ययन कर हम यह जान

सकते हैं कि भावी विकास प्रक्रिया में भूमि तत्व की क्या भूमिका हो सकती है। कितनी अतिरिक्त भूमि किस क्षेत्र और कहां से प्राप्त करवायी जा सकती है।

1. भूमि उपयोग का प्रारूप एवं श्रेणियां :-

भूमि उपयोग का तात्पर्य मानव द्वारा धरातल के विविध रूपों (पर्वत,पहाड मरू भूमि दलदल, खदान, यातायात आवास कृषि पशुपालन तथा खनिज) में प्रयोग किये जाने वाले कार्यो से है। भूमि का प्रमुख उपयोग फसलों के उत्पादन के लिए किया जाता है। इसका अन्य उपयोग यातायात, मनोंरजन, आवास, उद्योग तथा व्यवसाय आदि जैसे कार्यो के लिए भी होता है। बहुधा भूमि का उपयोग बहुउद्देशीय हुआ करता है। यथा वन की भूमि का उपयोग चारागाह के रूप में तो होता ही है, साथ ही साथ उसे मनोरंजन के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता है, दूसरी ओर यह भी देखना आवश्यक है कि भूमि के किसी बडे भाग का दुरपयोग भी न हो और यदि ऐसा होता है तो उसे उपयोग योग्य बनाया जाये, ऐसे भू-भाग जो बेकार पडे हैं उन्हे कृषि योग्य बनाया जाये। भूमि उपयोग की योजना भूमि के अधिक प्रभावी विचार संगत और सुधरे उपयोग की सम्भावनाओं और उनमें सन्निहित विभिन्न क्षमताओं का आंकलन मात्र तक ही सीमित न हो बल्कि वह अधिक व्यवहारिक हो जो अगली पीढी के लिए भी संप्रेषण की क्षमता बनाये रखने के उद्देश्य से प्रेरित हो सके और व्यक्ति और समाज दोनों की खुसहाली बढाने में सक्षम हो किसी क्षेत्र की भूमि उपयोग योजना ऐसे प्रयत्नों से प्रेरित होनी चाहिए जिससे उस क्षेत्र की भूमि के चप्पे-चप्पे का अधिक लाभप्रद उपयोग किया जा सके यह उपयोग उस भूभाग की क्षमता पर भी निर्भर होगा। किसी भी भूमि उपयोग की योजना में भी वैज्ञानिक उपयोग में सन्निहित वास्तविक क्षमताओं का निश्चय करना भी आवश्यक हाता है जिससे उसके अधिकतम सम्भव उपयोग का निर्धारण किया जा सके।

यद्यपि भूमि प्रयोग, भूमि उपयोग तथा भूमि संसाधन उपयोग प्रायः एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग किये जाते है, परन्तु इनके मध्य एक सूक्ष्म अन्तर है। अर्थशास्त्री और भूगोलविद इनकी अलग-अलग ब्याख्यायें प्रस्तुत करते है। प्राकृतिक परिवेश में भूमि प्रयोग एक तत्सामयिक प्रक्रिया है जबकि मानवीय इच्छाओं के रूप में अपनाया गया भूमि उपयोग एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।[2] इससे सतत एवं क्रमबद्ध विकास का स्वरूप लक्षित होता है। वुड[3] के अनुसार भूमि प्रयोग केवल प्राकतिक भूदृश्य के सन्दर्भ में ही नही अपितु मानवीय क्रियाओं पर आधारित उपयोगी सुधारों के रूप में भी प्रयुक्त होना चाहिए। बेन्जरी[4] भी उपयुक्त विद्धानों के विचारों से पूर्ण सहमत हैं और उन्ही की कथन की पुष्टि करते हुए कहते है ''भूमि उपयोग प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही उपादानों के संयोग का प्रतिफल है। डा0 सिंह[5] के अनुसार कृषि से पूर्व की अवस्था के लिए जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक परिवेश का पूर्णतया अनुसरण किया जाता हो। 'भूमि प्रयोग' शब्द अधिक उपयुक्त होगा। परन्तु जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि के उचित या अनुचित प्रयोग के पश्चात ''भूमि उपयोग'' कहना अधिक संगत होगा।

उपयुक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भूमि के प्रयोग तथा उपयोग में अन्तर है। दोनो ही शब्द भूमि की दो अवस्थाओं के लिए प्रयुक्त होते है। कालक्रम के अनुसार इन्हे कृषि विकास की दो विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित कहा जा सकता है। इनके अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है, कि भूमि प्रयोग का अभिप्राय उस भू भाग से है जो प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप हो तथा भूमि उपयोग से तात्पर्य भूमि प्रयोग की शोषण प्रक्रिया से है जिसमें भूमि का व्यावहारिक उपयोग किसी निश्चित उद्देश्य या योजना से सम्बद्ध होता हे। कुछ अर्थशास्त्रियों ने भूमि उपयोग के स्थान पर 'भूमि संसाधन उपयोग' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस सन्दर्भ में उनका कथन है कि जब मनुष्य भूमि का उपयोग अपनी

आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुरूप करने में सक्षम हो जाता है तो उस समय भूमि एक संसाधन के रूप में परिवर्तित हो जाती है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब किसी क्षेत्र का भूमि उपयोग वहां भी आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के सुलझाने में सम्पन्न किया जा रहा हो और प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव कम हो गया हो तो उस अवस्था को 'भूमि संसाधन उपयोग' कहा जा सकता है।

बारलो[6] के अनुसार "भूमि संसाधन उपयोग" भूमि समस्या एवं उसके नियोजन की विवेचना की वह धुरी है जिसके अध्ययन के लिए उन्होने निम्नलिखित पांच महत्वपूर्ण दृष्टिकोण बताये है-

1. आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न समाज की स्थापना।
2. भूमि संसाधन उपयोग की अवस्था तथा अनुकूलतम उपयोग का निर्धारण।
3. विभिन्न लागत कारको, (श्रम और पूंजी आदि) के अनुपात में भूमि से अधिकतम लाभ की योजना।
4. फसलगत भूमि के उपयोग में मांग के आधार पर लाभदायक सामजस्य तथा परिवर्तन का सुझाव।
5. किसी क्षेत्र के लिए अनुकूलतम एवं बहुउद्देशीय भूमि उपयोग का विवेचन करना तथा उसके सुझावों को क्षेत्रीय अंगीकरण हेतु समन्वित करना।

कैरियल[7] महोदय, के अनुसार " भूमि प्रयोग" 'भूमि उपयोग' तथा भूमि संसाधन उपयोग' तीनों ही भूमि विकास की विशिष्ट परिस्थितियों के द्योतक है, इन परिस्थितियों का सम्बन्ध भूमि उपयोग के विकास की तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से है जो क्रमशः अलग-अलग समयों में सम्पन्न होती है। डा0 सिंह[8] ने इन दशाओं को निम्न रूप में व्यक्त किया है।

क्रमांक	शब्दावलियां	कृषिविकास की अवस्थायें	प्रमुख सामाजिक व्यवस्थायें
1.	भूमि प्रयोग	कृषि के पूर्व की अवस्था	आखेट फल संकलन अवस्था.
2.	भूमि उपयोग (विस्तृत)	स्थानान्तरणशील एवं जीवन निर्वहन अवस्था	जनजातीय व्यवस्था
3.	भूमि उपयोग (गहन)	जीवन निर्वहन गहन कृषि व्यवस्था	परम्परागत सामाजिक व्यवस्था
4.	भूमि संसाधन उपयोग	व्यापारिक कृषि अवस्था	विकसित एवं आधुनिक समाज व्यवस्था
5.	नगरीय भूमि संसाधन उपयोग (प्रारम्भिक)	गहन व्यापारिक कृषि अवस्था	अधिक विकवित एवं आधुनिक सामाजिक व्यवस्था
6.	नगरीय भूमि संसाधन उपयोग (आदर्श)	आवासीय एवं व्यावसायिक कृषि अवस्था।	सर्वाधिक विकसित व्यवस्था।

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कृषि कार्य से पूर्व सर्वत्र वन, मरू भूमि, पर्वत पठार जैसी भू आकृतियों का अधिपत्य था। इस दशा में भूमि प्रयोग न्यूनतम लाभदायी भूमि उपयोग ही सम्भव था। इस अवस्था में जहां कहीं अनुकूल दशायें सुलभ थी अस्थायी कृषि का प्रादुर्भाव हुआ। तीव्र गति से जनसंख्या बढने के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में वृद्धि हुई और अकृति क्षेत्र उत्तरोत्तर सिकुडता गया। इस प्रकार की कृषि अवस्था को हम 'जीवन निर्वाह कृषि' कह सकते है। धीरे-धीरे कृषित क्षेत्र बढ़ता गया और अकृष्य क्षेत्र में कमी आती गयी, जहां कहीं दोनो में संतुलन होगा वहीं भूमि उपयोग अनुकूलतम होगा। ऐसी दशा में कृषि अप्राप्य क्षेत्र में वृद्धि एवं कृषित क्षमता में ह्रास होगा, परन्तु शस्य क्रम में गहनता तथा कृषि क्षमता में वृद्धि होगी। इस अवस्था में कृषकों का झुकाव यान्तरिक कृषि पद्धति की ओर तथा मांग और पूर्ति पर आधारित मुद्रा दायिनी फसलों की कृषि की ओर अधिक होगा, इस अवस्था को कृषि

विकास की व्यवहारिक अवस्था या 'भूमि संसाधन उपयोग' कहा जा सकता है। नगरीय भूमि संसाधन उपयोग की अवस्था में कृषि अप्राप्य क्षेत्र की अपेक्षा कृषित क्षेत्र कम होता जाता है तथा तीव्र गति से नकदीकरण के फलस्वरूप उसमें क्रमशः कमी होती जाती है। भूमि उपयोग मानव उपयोगिता के आधार पर एक महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन के रूप में प्रस्तुत होता है। स्पष्ट है कि भूमि उपयोग का स्वरूप मानव सभ्यता के विकास और मानव की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित होता रहा और होता रहेगा यह परिवर्तन कृषि विकास की अवस्थाओं के रूप में लक्षित हुआ है और होता रहेगा। कृषि कार्य की विविधिता एवं विशिष्टता भूमि उपयोग के विकास कार्य एवं क्रम को व्यक्त करती है जो व्यक्ति के जीवन यापन की अवश्यकताओं से लेकर उसके आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास को पूर्णतयां प्रभावित किये हुए हैं। शोधगत क्षेत्र के जन जीवन में भूमि उपयोग का मुख्य अर्थ कृषि कार्य से है जो इस ग्राम्य प्रधान क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की मुख्य कुंजी है।

अ– **जनपद में सामान्य भूमि उपयोग–**

खाद्य एवं कृषि मंत्रालय द्वारा 1948 में नियुक्त 'टेक्नीकल कमेटी आन को-आरडीनेशन आफ एग्रीकलचरल स्टैटिस्टिक्स, की संस्तुति के आधार पर प्रतापगढ जनपद के सामान्य भूमि उपयोग की विभिन्न श्रेणियां का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **वन :-** भारतीय अर्थव्यवस्था की भौगोलिक स्थिति, भौतिक संरचना और विविध प्रकार की जलवायु, विभिन्न प्रकार के वृक्ष और वनस्पतियों के उद्गम और विकास की पोषक है। इसी कारण भारत में विभिन्न प्रकार की वन और वनस्पतियां पायी जाती है। मानव सभ्यता के प्रत्येक चरण में वनों में स्वतंत्र चर के रूप में जीवन और वनस्पति जगत को आश्रय दिया है। वन संपदा के इसी आधारित महत्व के कारण इनके सम्बर्धन और संरक्षण का दायित्व समाज

पर नीति वचनों और धर्म वाक्यों के द्वारा डाला गया था इसका प्रभाव इस स्तर तक रहा कि वृक्षा रोपण और उसके प्रभावी विकास प्रयास को पुत्र से भी अधिक श्रेयस्कर माना जाने लगा था प्रकृति की उदारता और वनों के प्रति अनुकूल सामाजिक दृष्टिकोण के कारण वर्तमान उपभोक्तावादी सभ्यता से पूर्व भारत भूमि वन रूपी हरित कवच से आच्छादित और आभूषित थी, वन, वन्य जीव और मनुष्य का अदभुत समन्वय था। प्राकृतिक पर्यावरण नितान्त मनोरम और संतुलित था परन्तु पिछले लगभग तीन सौ वर्षो में मनुष्य अपनी तत्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों का अत्यन्त निर्दयतापूर्वक शोषण और विनाश किया है।

अर्थव्यवस्था के पर्यावरणीय संतुलन और वनों से मिलने वाले अधिक लाभों की दृष्टि से अर्थव्यवस्था के भौगोलिक क्षेत्रफल में अपेक्षित स्तर तक वनों का होना आवश्यक है। और आज जब अर्थ व्यवस्थाओं में औद्योगिक क्रियाओं को प्रमुखता और प्रोत्साहन दिया जा रहा है तब वन क्षेत्र का अपेक्षित मानक से कम होना अर्थव्यवस्था के लिए घातक भी होगा। समान्यतया यह अपेक्षा की जाती है कि देश के 33 प्रतिशत भूभाग पर वनों का होना आवश्यक है।[9] परन्तु भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल पर वन क्षेत्र इस स्तर से अत्यन्त कम रहा है। व्रिद्दिस शासन काल में वनों के विकास के लिए जो कुछ प्रयास हुए उनका वन क्षेत्र के प्रसार में कोई उल्लेखनीय प्रभाव नही हुआ। 1938-39 में देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 24.7 प्रतिशत भाग पर वन थे। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव पाया उसके बाद वनों के निर्दयतापूर्वक कटाई हुई, वृक्षारोपण के जो भी प्रयास होते थे, वे अनियंत्रित कटाई में विलीन हो जाते थे। वन सम्पदा विदोहन की व्रिद्दिस सरकार द्वारा आरम्भ की गयी नीति स्वतत्रंता के बाद भी कुछ समय तक चलती रही वन और वृक्षों वाली भूमि को फसलों के अन्तर्गत लाया गया। फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढाकर

उत्पादन बढाने की प्रक्रिया जारी रहा। परिणाम स्वरूप कुल भौगोलिक क्षेत्रफल में वनों की भागीदारी 1950-51 में घटकर 22 प्रतिशत रह गयी।[10]

वन सम्पदा प्रकृति की एक अप्रतिम कृति है। यह एक नवकरणीय सम्पदा है। जिसका अस्तित्व समाज को तत्कालिक लाभ तो देता ही है साथ ही साथ परोक्ष रूप से जीव जगत के अस्तित्व का आधार भी होता है। यह आर्थिक दृष्टि से तो लाभदायक है ही, साथ ही साथ यह पर्यावरण की दृष्टि से भी अत्यधिक उपयोगी है। वनो से प्राप्त लाभों को परम्परागत रूप में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष लाभों में विभाजित किया जा सकता हे। वनों से प्राप्त प्रत्यक्ष लाभ में वनोपज को सम्मिलित किया जाता है। समस्त वनोपज को प्रधान तथा गौड वनोपज नामक शीर्षकों में विभक्त किया जाता है। प्रधान वनोपज में इमारती तथा जलाऊ लकडी को सम्मिलित किया जाता है जबकि गौड वनोपज में बांस और बेंत पशुओं के लिए चारा, अन्य घास, गोंद, राल, बीडी के लिए पत्तियां लाख इत्यादि को समिलित किया जाता है। गौड वनोपज से ही रबर, दियासलाई, कागज, प्लाईबुड, रेशम, वार्निश आदि के उद्योग चलाये जाते है।

प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त वनो से कई परोक्ष लाभ भी मिलते है। वन क्षेत्र में उगने वाले विभिन्न पौधे और वनस्पतियों के अवशेष सडकर वहां की मिट्टी में स्वभाविक रूप में मिलते रहते है जिससे भूमि की उर्बरता बढती है। समाजोपयोगी समस्त पशु पक्षियों के लिए आश्रय स्थल वन ही है। वन अर्थ व्यवस्था के पर्यावरणीय संतुलन को बनाते हैं वे जलवायु के असमायिक बदलाव अनावृष्टि, अल्पवृष्टि और अति वृष्टि को नियंत्रित करते हे। भूमि की जल अवशोषण शक्ति बढाकर वे भूमिगत जल श्रोतों की क्षमता को बढाते हैं। स्वयं कार्बनडाई आक्साईड को अवशोषण कर वातावरण को विषाक्त होने से बचाते हैं एवं जीव जगत के स्वशन के आधार पर आक्सीजन का सृजन करते हैं। अव तो यह भी स्पष्ट हो गया है कि ताप में सर्वाधिक वृद्धि और ओजोन पर्त का क्षतिग्रस्त होना भी वनों की कमी के कारण है इसके लिए वनों का

अपेक्षित स्तर तक प्रसार आवश्यक है। वनों की उपादेयता के सन्दर्भ में जे0एस0कालिंस का विचार अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है कि वृक्ष पर्वतों को थामें रहते हैं, वे तूफानी वर्षा को नियंत्रित करते है और नदियों में अनुशासन रखते है, उनके अनुचित स्थान परिवर्तन और तदजन्य विनाश को रोकते हैं। वन विभिन्न झरनों को बनाये रखते हैं और पक्षियों का पोषण करते हैं। वन क्षेत्र के अन्तगर्त वे सभी भूमियां सम्मिलित की जाती है जो किसी राजकीय अधिनियम के अनुसार वन क्षेत्र के रूप में प्रशासित हैं। वे चाहे राजकीय स्वामित्व में हों अथवा निजी स्वामित्व में हो वनों में पैदा की जाने वाली फसलों का क्षेत्र वनों के अन्तर्गत चारागाह वाली जमीन या चारागाह के रूप में खुले छोडे गये क्षेत्र भी वनों के अन्तर्गत आते है।

2. गैर कृषि प्रयोग में प्रयुक्त भूमि :-

इस शीर्षक में उन भूमियों को समिलित किया जाता है जो भवन, सडक, रेलमार्ग आदि के प्रयोग में हैं, इसी प्रकार वे भूमियां जो जल प्रवाहों, नदियों या नहरों के अन्तर्गत है, भी इस वर्ग में सम्मिलित हैं इसके अतिरिक्त अन्य गैर कृषि प्रयोगों की भूमियां भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित होती है।

3. बंजर और गैर कृषि योग्य भूमियां :-

इस श्रेणी में वे सभी भूमियां सम्मिलित हैं जो वंजर है या कृषि योग्य नही है। इस कोटि में पर्वतीय, पठारी और रेगिस्तानी भूमियां आती है। इन भूमियों को अत्यधिक लागत के बिना फसलों के अन्तर्गत नही लाया जा सकता है। बंजर और गैर कृषि योग्य भूमियां कृषि क्षेत्र के मध्य हो सकती है या इसके प्रथक क्षेत्र में हो सकती है।

4. स्थायी चारागाह :-

इसके अन्तर्गत चराईवाली सभी भूमियां सम्मिलित है। इस प्रकार की भूमियां घास स्थली हो सकती है या स्थायी चारागाह के रूप में। ग्राम समूहों के चारागाह भी इसी कोटि में आते हैं।

5. विविध वृक्षों एवं बागो वाली भूमियां :-

इस कोटि में कृषि योग्य वह सभी भूमियां समिलित की जाती है जिन्हे शुद्ध कृषि क्षेत्र में समिलित नही किया जाता है। किन्तु कतिपय कृषिगत प्रयोग में लायी जा सकती है। इसके अन्तर्गत छोटे पेढ छावन वाली घासें बांस की झाड इंधन वाली लकडी के वृक्ष समिलित किये जाते है जो भूमि के उपयोग वितरण में वागान शीर्षक में समिलित नही है।

6. कृषि योग्य व्यर्थ भूमि :-

इस श्रेणी में वह भूमि समिलित है जो खेती के लिए उपलब्ध है परन्तु जिस पर चालू वर्ष और पिछले पांच वर्षो या उससे अधिक समय से फसल नही उगाई गयी है ऐसी भूमियां परती हो सकती है या झाडियों और जंगल वाली हो सकती है, यह भूमिया किसी अन्य प्रयोग में नही लायी जा सकती हैं वह भूमि जिससे एक बार खेती की गयी है परन्तु पिछले पांच वर्षो से खेती नही की गयी वह भूमियां भी इसी श्रेणी में आती है।

7. वर्तमान परती भूमि :-

इसी श्रेणी में वह कृषित क्षेत्र समिलित किया जा सकता है जिसे केवल चालू वर्ष में परती रखा जाता है, उदाहरण के लिए यदि किसी पौधशाला वाले क्षेत्र को उसी वर्ष पुनः किसी फसल के लिए प्रयोग नही किया जाता तो उसे चालू परती कहा जाता है।

जनपद में भूमि उपयोग का विवरण - 1995-96

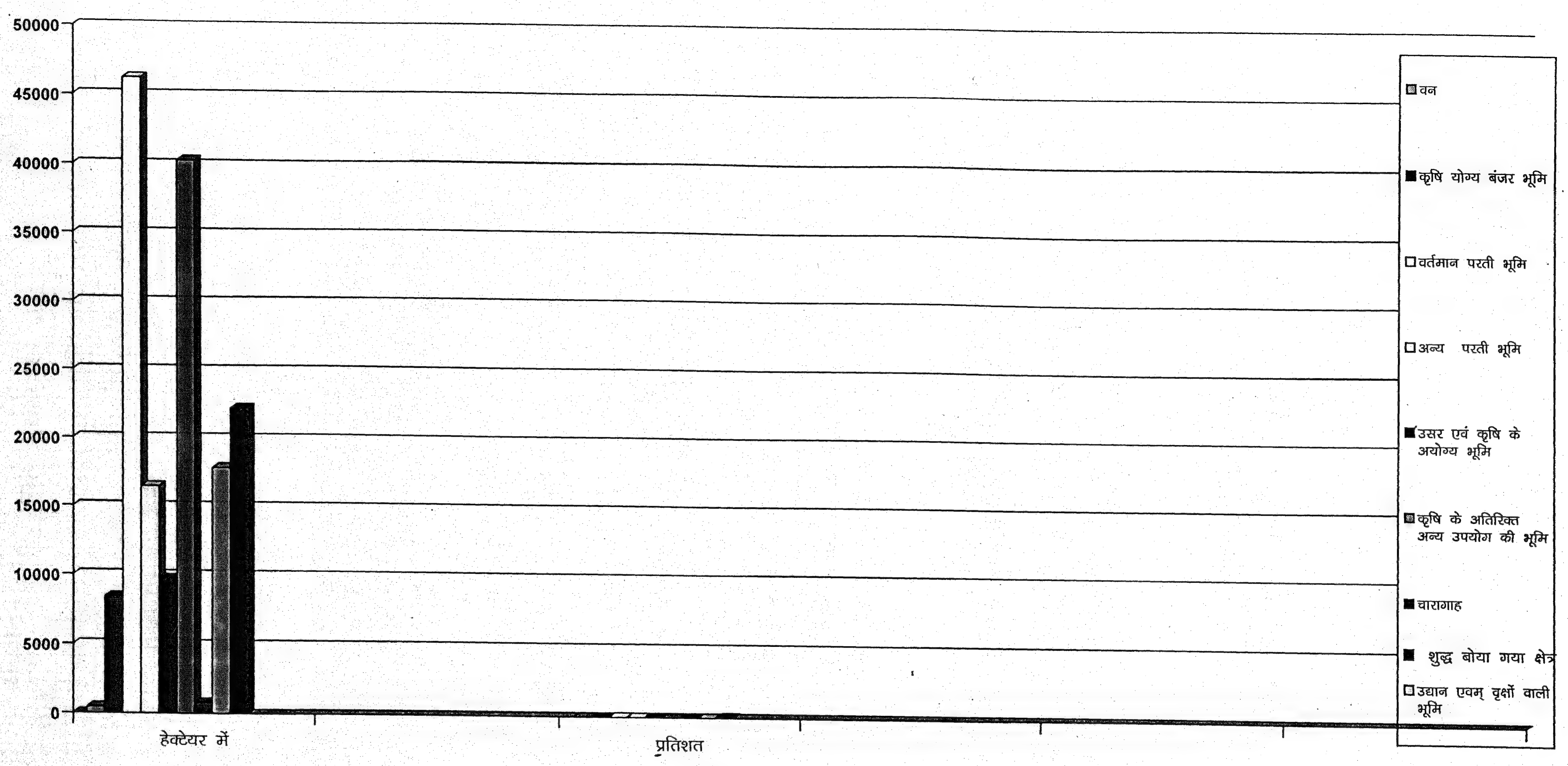

(सांख्यिकीय प्रत्रिका जनपद प्रतापगढ़)

8. अन्य परती भूमि :-

अन्य परती भूमि के अन्तर्गत वे भूमियां हैं जो पहले कृषि के अर्न्तगत थी परन्तु अब स्थायी रूप से एक वर्ष की अवधि से अधिक परन्तु 5 वर्ष की अवधि से कम अवधि से खेती के अन्तर्गत नही है। जमीन का खेती से बाहर होने के कई कारण हो सकते हैं। यथा कृषकों की गरीबी, पानी की अपर्याप्त पूर्ति, विषम जलवायु, नदियां और नहरों की भूमियां और खेती का गैर लाभदायक होना आदि।

9. शुद्ध कृषित क्षेत्र :-

इस श्रेणी में फसल तथा फसलोत्पादन के रूप में शुद्ध बोया गया क्षेत्र समिलित किया जाता है। एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्र की गणना भी एक बार की जाती है। यह कुल बोये गये क्षेत्र से कम होता हे। क्योंकि कुल बोये गये क्षेत्र और एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्र का योग होता है।

तालिका 2.1 जनपद में भूमि उपयोग का विवरण 1995-96

भूमि उपयोग शीर्षक	हेक्टेयर में	प्रतिशत
कुल प्रतिवेदित क्षेत्र	362406	100.00
1. वन	448	0.12
2. कृषि योग्य वंजर भूमि	8436	2.33
3. वर्तमान परती भूमि	46218	12.75
4. अन्य परती भूमि	16482	4.55
5. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि	9760	2.69
6. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	40284	11.12
7. चारागाह	810	0.22
8. उद्यान एवं वृक्षों वाली भूमि	17862	4.93
9. शुद्ध बोया गया क्षेत्र	222106	61.29

श्रोत : साख्यिकी पत्रिका जनपद प्रतापगढ

तालिका 2.1 भूमि उपयोग का चित्र प्रस्तुत कर रही है। तालिका से स्पष्ट होता है कि जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 3624.6 है जिसमें वनों का क्षेत्रफल मात्र 448 हेक्टेयर अर्थात 0.12 प्रतिशत है जो नगण्य ही कहा जा सकता है क्योंकि जहां प्रदेश का यह प्रतिशत लगभग 17 है वहीं देश का यह प्रतिशत 22 है। चारागाह की स्थिति में कमोवेश इसी प्रकार की है और इस शीर्षक के अन्तर्गत 0.22 प्रतिशत क्षेत्र ही आता है। जनपद में शुद्ध बोये गये अतिरिक्त सर्वाधिक क्षेत्रफल 46218 हे0 अर्थात 12.75 प्रतिशत वर्तमान परती भूमि का है। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान में कृषि के लिए अनुकूल परिस्थितियों की अनुपलब्धता के कारण कृषि क्षेत्र का एक बडा हिस्सा परती के अन्तर्गत अकृषित है यह एक असन्तोषजनक स्थिति का सूचक है यदि इसमें अन्य परती भूमि को समिलित कर दिया जाये तो यह प्रतिशत 17 प्रतिशत से भी अधिक हो जाता है। कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि का हिस्सा भी कम महत्वपूर्ण नही है और इस उद्देश्य के लिए 40284 हे0 भूमि प्रयुक्त हो रही है जो कुल प्रतिवेदित भूमि का 11.12 प्रतिशत भाग है। इसी प्रकार उद्याल एवं वृक्षों वाली भूमि का क्षेत्रफल 17862 हे0 है, जो कुल का 4.93 प्रतिशत है। ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि का क्षेत्रफल 9760 हे0 है अर्थात 2.69 प्रतिशत क्षेत्रफल ऊसर है परन्तु यदि इस भूमि पर ऊसर सुधार करके वृक्षारोपण ही किया जा सके तो इस भूमि का उपयोग किया जा सकता है। आशा यह की जानी चाहिए कि कृषि की गयी तकनीकि के अन्तर्गत इस ऊसर भूमि में सुधार करके इसका उपयोग किया जा सकेगा।

जनपद में फसलोंत्पादन हेतु केवल 61.29 प्रतिशत क्षेत्र ही उपलब्ध है अर्थात 28.71 प्रतिशत क्षेत्र अन्य शीर्षकों के अन्तर्गत प्रयुक्त हो रहा है। जिसमें वंजर भूमि, वर्तमान परती तथा अन्य परती भूमि का ही हिस्सा 19.53 प्रतिशत है जो कि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है इसे यदि कृषि कार्यो हेतु प्रयोग में लाया जा सके तो जनपद का शुद्ध कृषि क्षेत्र बढाया जा सकता है। कृषि की नई तकनीकि के परिणाम स्वरूप इस क्षेत्रफल को कृषि के अन्तर्गत लाना कोई कठिन कार्य नही है।

जनपद में विकासखण्डवार भूमि उपयोग :-

अध्ययन क्षेत्र प्रतापगढ प्रशासनिक दृष्टि से 15 विकासखण्डों में विभाजित है। विकासखण्डवार भूमि उपयोग पर दृष्टि डाले तो ज्ञात होता है कि शुद्ध विकासखण्ड कृषि सुविधाओं की दृष्टि से अच्छी स्थिति में है और कुछ विकासखण्ड असमतल होने के कारण कृषि सुविधाओं से वंचित है जिससे भूमि उपयोग में भी पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है, जिसका विवरण अग्र तालिका में प्रस्तुत है।

विकास खण्डवार भूमि उपयोग 1995-1996 (हेक्टेयर में)

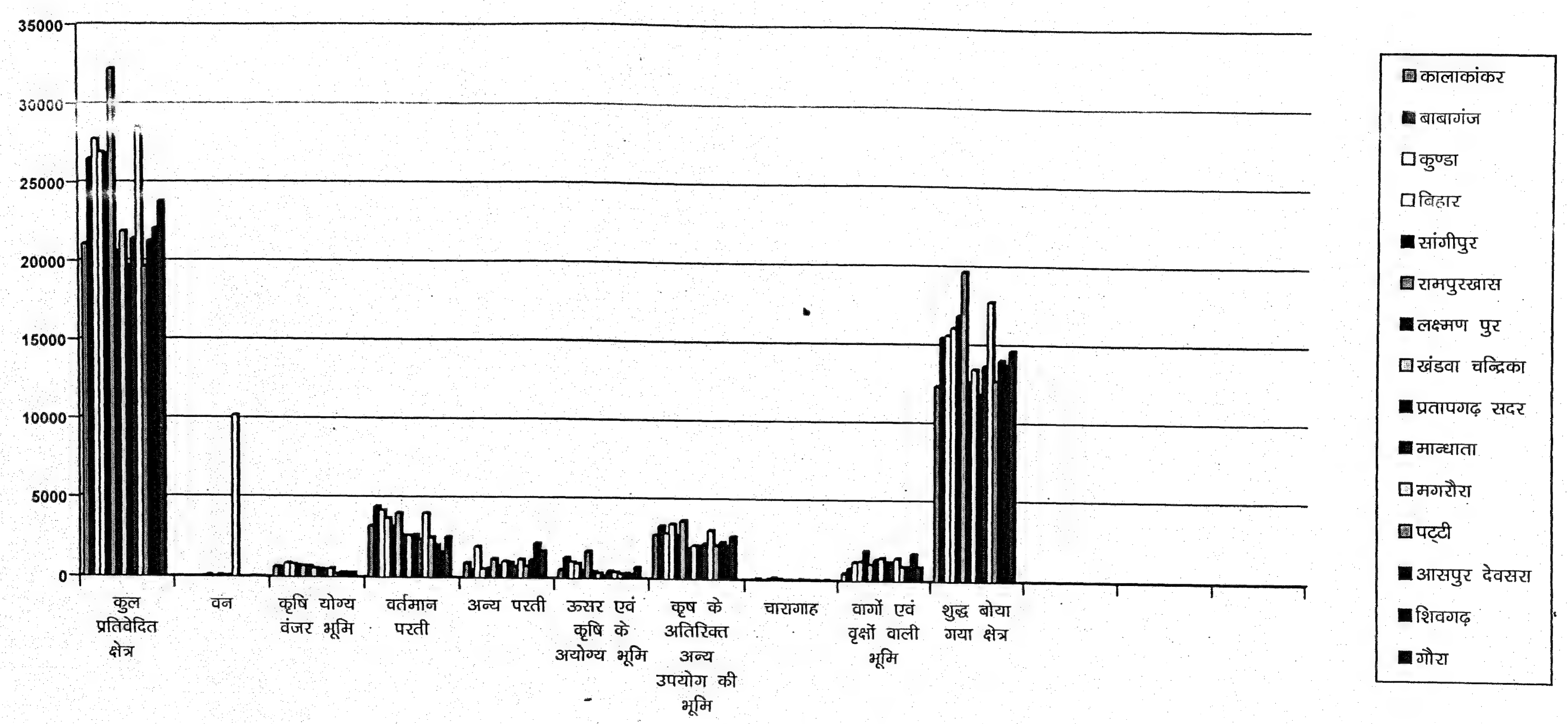

(सांख्यिकीय प्रत्रिका जनपद प्रतापगढ़)

तालिका कमांक 2.2 विकासखण्डवार भूमि उपयोग 1995–96(हे0में)

क.	विकासखण्ड	कुल प्रति वेदित क्षेत्र	वन	कृषि योग्य बंजर भूमि	वर्तमान परती	अन्य परती	ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	चारागाह	बागों एवं वृक्षों वाली भूमि	शुद्ध बोया गया क्षेत्र
1.	कालाकांकर	21063	–	656	3231	952	542	2768	22	501	1239[illegible]
2.	बाबागंज	26499	–	612	4434	491	1309	3320	73	785	47[illegible]
3.	कुण्डा	27764	–	871	4202	1964	1045	2843	12	1185	1564[illegible]
4.	विहार	26912	3	822	3693	570	940	3451	65	1231	1613[illegible]
5.	सांगीपुर	26815	18	739	3196	629	493	2766	165	1903	1690[illegible]
6.	रामपुरखास	32259	106	714	4038	1225	1712	3651	78	1045	1969[illegible]
7.	लक्ष्मणपुर	20622	27	701	2642	770	453	1943	54	1352	1268[illegible]
8.	संडवाचन्द्रिका	21875	110	576	2652	1068	351	2127	50	1445	1349[illegible]

9.	प्रतापगढ सदर	19678	60	526	2680	1002	167	2091	21	1225	11906
10.	मान्धाता	21416	72	498	2403	737	472	2266	65	1206	13697
11.	मगरौरा	28580	–	556	4027	1190	415	3092	53	1455	17792
12.	पट्टी	19634	2	206	2527	745	320	2145	37	929	12723
13.	आसपुरदेवसरा	21271	4	306	2074	1147	352	2364	45	922	14057
14.	शिवगढ	22060	30	317	1611	2194	276	2117	11	1725	13779
15.	गौरा	23816	16	302	2531	1725	910	2701	59	901	14671
	ग्रामीण	360264	448	8402	45940	16410	9757	29645	810	17810	221042
	नगरीय	2142	–	34	278	72	3	639	–	52	1064
	जनपद	362406	448	8436	46218	16482	9760	40284	810	17862	222106

श्रोत- सांख्यिकी पत्रिका जनपद प्रतापगढ.

सारणी क्रमांक 2.2 जनपद प्रतापगढ में विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग का चित्र प्रस्तुत कर रही है। जिसमें वन भूमि का सम्पूर्ण भूमि उपयोग में मात्र 448 हे0 ही योगदान है, कुछ विकासखण्ड तो बिल्कुल वन भूमि रहित है जिनमें से कालाकांकर बाबा गंज कुण्डा तथा मगरौरा प्रमुख है। जबकि विहार तथा पट्टी विकासखण्ड अत्यन्त वन भूमि रख रहे है। इस मद में सडंवा चन्द्रिका तथा रामपुर विकासखण्ड ही केवल सैकडे से अधिक वनभूमि दर्शा रहे हैं, अन्य विकासखण्ड वनभूमि के सन्दर्भ में कोई अच्छी- स्थिति का दर्शन नही करा रहे है। सम्पूर्ण जनपद में वर्तमान परती भूमि का हिस्सा सर्वाधिक 46218 हे0 है और अन्य परती भूमि को इस मद में यदि समिलित कर लिया जाये तो यह हिस्सा 62700 हे0 हो जाता है जो 17 प्रतिशत से भी अधिक है।

इस 17 प्रतिशत से अधिक हिस्से को यदि कृषि उपज के लिए प्रयुक्त किया जा सके तो जनपद में खाद्यान्य का कहीं अधिक, उत्पादन सम्भव है। क्योंकि कृषि योग्य बंजर भूमि का क्षेत्र 8436 हे0 है जिसको भूमि सुधार के अन्तर्गत कृषि उपयोग में लाया जा सके। पशुपालन की दृष्टि से चारागाह का क्षेत्रफल भी अत्यन्त कम है और यह मात्र 810 हे0 है। चारागाह की दृष्टि से सांगीपुर विकासखण्ड ही 165 हे0 चारागाह के लिए छोड रहा है। जबकि अन्य विकासखण्ड इस क्षेत्रफल को 100 हे0 से कम रख रहे है।

खाद्यान्य उत्पादन के लिए कुल 222106हे0 भूमि शुद्ध रूप से बोयी जा रही है जिसमें 1064 हे0 क्षेत्र शहरी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। शेष ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है। इस दृष्टि से रामपुर खास विकासखण्ड 1990 हे0 शुद्ध कृषि क्षेत्र पर खाद्यान्य उत्पादन कर रहा है जबकि दूसरे स्थान पर 17792 हे0 शुद्ध कृषि क्षेत्र मगरौरा विकासखण्ड का है। जबकि कुल प्रतिवेदित क्षेत्र की दृष्टि से देखें तो रामपुर खास विकासखण्ड का 61.04 प्रतिशत तथा मगरौरा का 62.25 प्रतिशत हिस्सा बोया गया क्षेत्र है।

तालिका कमांक 2.3 विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग विवरण (प्रतिशत में)

सं0	विकासखण्ड	शुद्ध बोयागया क्षेत्र	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में लायी गयी भूमि	अकृष्य क्षेत्र	शुद्ध सिंचित क्षेत्र	एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र
1.	कालाकांकर	58.83	13.14	28.03	52.85	38.53
2.	बाबागंज	58.40	12.53	29.07	50.27	39.07
3.	कुण्डा	56.34	10.24	33.42	42.76	37.53
4.	विहार	59.96	12.82	27.22	50.64	39.87
5.	सांगीपुर	63.05	10.32	26.63	44.82	32.53
6.	रामपुरखास	61.04	11.32	27.64	43.35	33.99
7.	लक्ष्मणपुर	61.49	9.42	29.09	39.07	28.08

8.	सडवाचान्द्रका	61.70	9.72	28.58	36.22	[illegible]3.79
9.	प्रतापगढ सदर	60.50	10.63	28.87	30.63	[illegible]2.92
10.	मान्धाता	63.96	10.58	25.46	49.28	[illegible]9.99
11.	मगरौरा	62.25	10.82	26.93	43.52	[illegible]7.06
12.	पट्टी	64.80	10.92	24.28	49.56	[illegible]6.85
13.	आसपुरदेवसरा	66.09	11.11	22.80	51.55	[illegible]3.14
14.	शिवगढ	62.46	9.60	27.94	46.16	[illegible]6.38
15.	गौरा	61.60	11.34	27.06	57.58	[illegible]1.46
	ग्रामीण	61.36	11.00	27.64	45.95	[illegible]5.00
	नगरीय	49.67	29.83	20.50	39.64	[illegible]9.37
	जनपद	61.29	11.12	27.59	45.91	[illegible]4.96

तालिका 2.3 विकासखण्ड स्तर पर कुल प्रतिवेदित क्षेत्र से कृष्य और अकृष्य भूमि उपयोग का विवरण प्रस्तुत कर रही है। सारणी से ज्ञात होता है कि जनपद में शुद्ध बोया गया क्षेत्र मात्र 61.29 प्रतिशत है जिसका अर्थ है कि 28.71 प्रतिशत भूमि ऐसी है जिसमें खाद्यान्य फसलें नही उगाई जा रही है, इसमें 11.12 प्रतिशत भूमि कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में लायी जा रही है और 27.59 प्रतिशत अकृष्य क्षेत्र है। शुद्ध बोये गये क्षेत्र का 66.09 प्रतिशत क्षेत्र रखकर आसपुर देवसरा विकासखण्ड सर्वश्रेष्ठ स्थान पर है। पट्टी विकासखण्ड इससे कुछ कम 64.80प्रतिशत शुद्ध कृषि भूमि रखकर दूसरे स्थान पर 60 प्रतिशत से अधिक शुद्ध बोये गये क्षेत्र वाले विकासखण्डों में उक्त दोनो विकासखण्डों के अतिरिक्त मान्धाता, सांगीपुर, शिवगढ, मगरौरा, संडवा, चन्द्रिका, गौरा, रामपुरखास, लक्षमणपुर तथा प्रतापगढ सदर विकासखण्ड हैं जबकि शेष 60 प्रतिशत से कम भूमि शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल के अन्तर्गत रख रहे हैं इनमें से न्यूनतम स्थिति में कुण्डा विकासखण्ड है। जो केवल 56.34 प्रतिशत भूमि का उपयोग कृषि कार्यो के लिए कर रहा है जहां कुण्डा विकासखण्ड शुद्ध भूमि की दृष्टि से न्यूनतम स्तर पर है वहीं अकृष्य क्षेत्र की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान पर है अर्थात इस विकासखण्ड में 33.42 प्रतिशत भूमि पर फसले नही उगाई जा रही है तथा इस मद में आसपुर देवसरा केवल 22.80 प्रतिशत अकृष्य क्षेत्र रखकर न्यूनतम स्थिति प्रदर्शित कर रहा है। अन्य विकासखण्ड इस दृष्टि से 24.28 तथा 29.07 प्रतिशत के मध्य स्थित है।

शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल की दृष्टि से गौरा विकासखण्ड प्रथम स्थान पर है। और यह विकासखण्ड 57.58 प्रतिशत शुद्ध भूमि को सिंचन सुविधायें उपलब्ध करा रहा है। जबकि 52.85 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचाई सुविधा प्रदान करके कालाकांकर विकासखण्ड दूसरे स्थान पर है और बाबागंज, विहार तथा आसपुर देवसरा विकासखण्ड कुल शुद्ध भूमि के आधे से अधिक क्षेत्रफल को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करा पा रहे है। इस दृष्टि से प्रतापगढ सदर विकासखण्ड एक तिहाई से भी कम अर्थात 30.63 प्रतिशत शुद्ध भूमि को सिंचन सुविधायें दे पा रहा है। अन्य विकासखण्ड सिंचन सुविधाओं की दृष्टि से 30 और 50 प्रतिशत के मध्य स्थित है। बहुफसली क्षेत्र की

दृष्टि से आसपुर देवसरा विकासखण्ड सबसे अच्छी स्थिति में है और यह 43.11 प्रतिशत भूमि पर 2 या दो से अधिक फसले उगा रहा है। जबकि गौरा विकासखण्ड सिंचन सुविधाओं में सर्वोच्च रहते हुए भी बहु फसली क्षेत्र की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है। प्रतापगढ सदर विकासखण्ड 22.92 प्रतिशत क्षेत्र पर एक से अधिक फसले उगा रहा है। न्यूनतम स्थिति को प्रदर्शित कर रहा है। सिंचन सुविधओं की दृष्टि से भी यह विकासखण्ड सबसे निचला स्तर प्रदर्शित कर रहा है।

अध्ययन क्षेत्र की भूमि उपयोग क्षमता

अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग का स्तर क्या है इस तथ्य के ज्ञान के लिए यह देखना पडता है कि भूमि उपयोग किस चातुर्य तथा किस तत्परता से किया जा रहा है, भूमि उपयोग की कौन सी अवस्था है, यदि भूमि उपयोग अपने अनूकूलतम स्तर को प्राप्त नही कर सका है तो इसे अनुकूलतम स्तर तक पहूंचाने की क्या सम्भावनायें हो सकती है। और उनके क्या-क्या परिवर्तन अपेक्षित है। भूमि संसाधन उपयोग की मात्रा वास्तव में विभिन्न तथ्यों के आपसी क्रियाकलापों या अन्तर्सम्बन्धों पर आधारित होती है। किसी विशेष समय या स्थान पर इन तथ्यों का संयोग यह निश्चिय करता है कि भूमि संसाधन उपयोग की क्षमता क्या है? भूमि उपयोग क्षमता का प्रत्यय इस दृष्टिकोण से परिवर्तन शील है कि विभिन्न उत्पादक तत्व भिन्न मात्रा तथा किस्म में प्रयुक्त होते है। अन्तर्निहित भूमि संसाधन की विशेषतायें समयानुसार कम परिवर्तनशील है। सिंह ने हरियाणा राज्य की भूमि उपयोग क्षमता को निर्धारित किया है। सिंह के अनुसार भूमि उपयोग क्षमता से आशय कुल उपलब्ध भूमि में से बोयी गयी भूमि के प्रतिशत से है। इनका मत है कि भूमि उपयोग क्षमता निर्धारित करने का उद्देश्य दो या दो से अधिक क्षेत्र की स्थिति की जानकारी प्राप्त करना है। यदि बहु फसली क्षेत्र अधिक हैं तो सस्य गहनता या भूमि उपयोग क्षमता भी अधिक होगी। सिंह बी0बी0 का विचार है कि भूमि उपयोग क्षमता तथा सस्य गहनता दोनो अलग-अलग पहलू है। सस्य गहनता, भूमि उपयोग क्षमता का एक तत्व महत्वपूर्ण पक्ष है। कृषि भूमि उपयोग क्षमता की परिभाषा का सम्बन्ध उस प्रभावोत्पादक क्रिया से है

विकास खण्ड स्तर पर भूमि उपयोग क्षमता

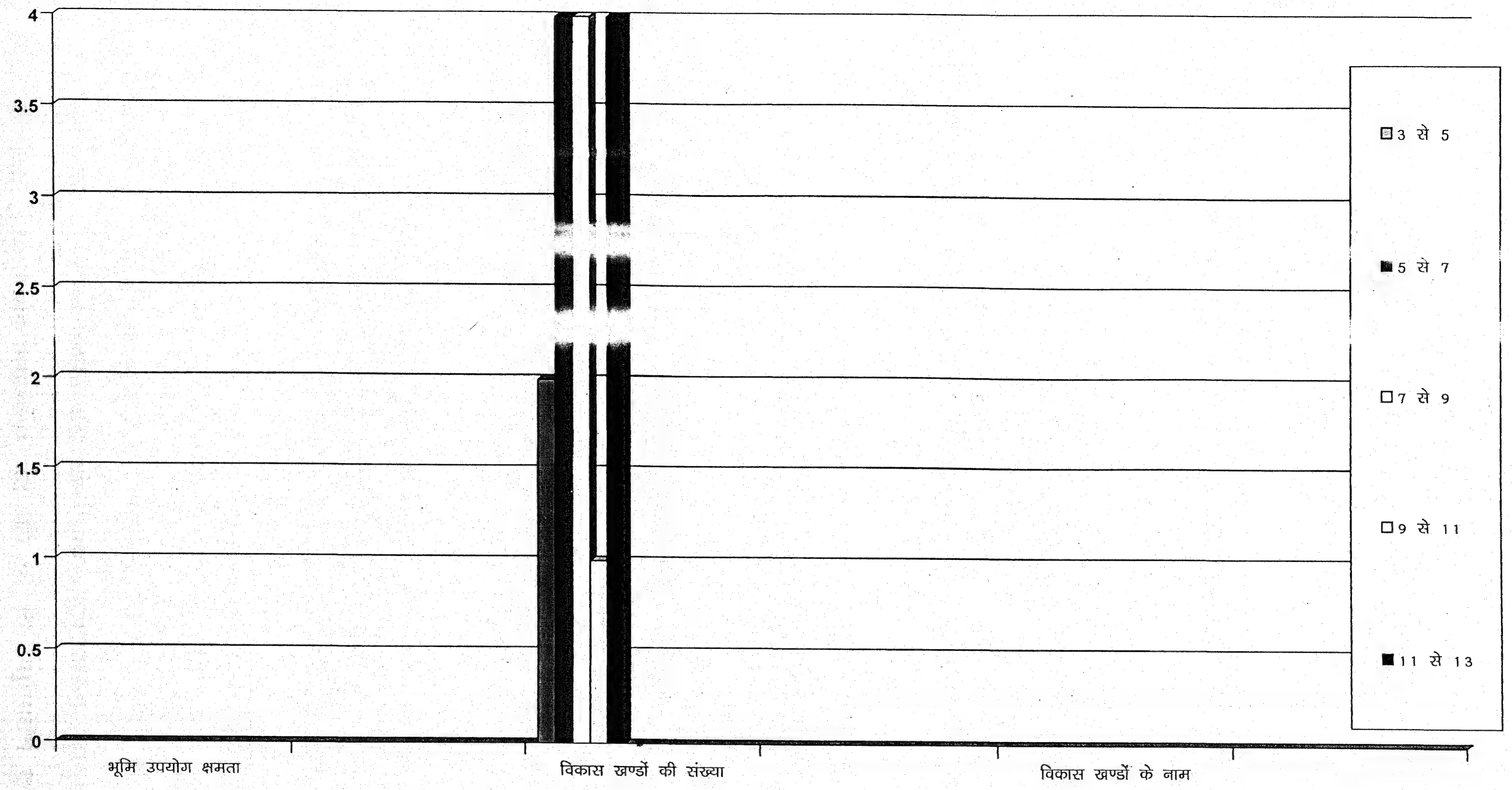

जहां पूंजी तथा श्रम के कमिक प्रयोग से भूमि उत्पादन मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती जाती है। अतः सिंह ने भूमि उत्पादन क्षमता का प्रत्यय 'कोटि गणना'' के आधार पर विकसित किया है। भूमि उपयोग में 5 तत्वों शुद्ध बोया गया क्षेत्र, कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में भूमि, अकृष्य क्षेत्र, शुद्ध सिंचित क्षेत्र तथा एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र को कोटि गणना के लिए चुना। शोधकर्ता ने इसी विधि को उत्तम मानते हुए अध्ययन क्षेत्र की भूमि उपयोग क्षमता की गणना करने में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र में शुद्ध बोये गये क्षेत्र, कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में लायी गयी भूमि, अकृष्य क्षेत्र, शुद्ध सिंचित क्षेत्र तथा एक से अधिक बार बोये गये क्षेत्र के प्रतिशत के आधार पर कोटि गणना विधि का प्रयोग किया गया है। जिसे सारणी 2.4 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी न0 2.4 विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग क्षमता

श्रेणी गुणांक	भूमि उपयोग क्षमता	विकासखण्डों की संख्या	विकासखण्डों के नाम
3 से 5	उच्चतम	2	1.आसपुर देवसरा 2.गौरा
5 से 7	उच्च	4	1. मान्धाता, 2. विहार 3. कालाकांकर 4. पट्टी
7 से 9	सामान्य	4	1. मगरौरा, 2. सांगीपुर 3. बाबागंज 4. रामपुरखास
9 से 11	न्यून	1	1. शिवगढ़
11 से 13	न्यूनतम	4	1. संडवा चन्द्रिका 2. कुण्डा 3. प्रतापगढ सदर 4. लक्ष्मणपुर

सारिणी 2.4 विकासखण्डवार भूमि उपयोग क्षमता का चित्र प्रस्तुत कर रही है। जिसमें उच्चतम भूमि उपयोग क्षमता को प्रदर्शित करने वाले केवल दो विकासखण्ड आसपुर देवसरा तथा गौरा हैं जिसमें आसपुर देवसरा विकासखण्ड शुद्ध बोये गये क्षेत्र, बहुफसलीय तथा सिंचन क्षमता में

तुलनात्मक रूप से प्रथम स्थान पर है। जबकि गौरा विकासखण्ड बहुफसली क्षेत्र में द्वितीय तथा सिंचन क्षमता में द्वितीय स्थान पर है। उच्च भूमि उपयोग क्षमता वाले विकासखण्डों में मान्धाता विहार, कालाकांकर तथा पट्टी विकासखण्ड हैं, इन चारों विकासखण्डों में भूमि उपयोग क्षमता की दृष्टि से पट्टी विकासखण्ड अच्छी स्थिति में है। सामान्य भूमि उपयोग क्षमता प्रदर्शित करने वाले विकासखण्डों में भी चार विकासखण्ड स्थित है, मगरौरा, सांगीपुर, बाबागंज तथा रामपुर खास, विकासखण्ड इसी कोटि में स्थित है। न्यूनभूमि उपयोग क्षमता का प्रदर्शन केवल शिवगढ विकासखण्ड कर रहा है जबकि न्यूनतम कोटि के अन्तर्गत खण्डवा चन्द्रिका, कुण्डा, प्रतापगढ् सदर तथा लक्ष्मणपुर विकासखण्ड आते हैं जो फसलोंउत्पादन के लिए मौलिक सुविधा सिंचाई से अभाव ग्रस्त हैं, इन विकासखण्डों में प्रतापगढ सदर की स्थिति सर्वाधिक दयनीय है।

2. कृषि भूमि उपयोग :

कृषि भूमि से अभिप्राय उस भूमि से जिसका उपयोग कृषि फसलों के उत्पादन में होता है। इसके अन्तर्गत भूमि उपयोग के तीन उपादानों शुद्ध बोया गया क्षेत्र, सिंचित क्षेत्र तथा एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र (बहुफसलीय क्षेत्र) का अध्ययन किया जाता है।

अ. शुद्ध बोया गया क्षेत्र :-

भूमि उपयोग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष शुद्ध कृषित भूमि है, इसके उपयोग की विभिन्न अवस्थाओं से मानव के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास स्तर का परिचय प्राप्त होता है, कृषित भूमि मुख्यत: सिंचाई के साधनों, उर्वरकों, उन्नतिशील बीजों, नवीन कृषि यंत्रों नूतन कृषि पद्धति एवं प्राविधिक ज्ञान से प्रभावित होती है जिनका प्रभाव अध्ययन क्षेत्र के कृषित भूमि पर स्पष्टत: परिलक्षित होता है। सभ्यता के आदि काल से ही मनुष्य प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण से समायोजन स्थापित करते हुए भूमि का सर्वाधिक उपयोग करता आ रहा है। वेनजेटी के अनुसार भूमि उपयोग प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक उपादानों का प्रतिफल है जबतक किसी क्षेत्र विशेष में भूमि उपयोग प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप रहता है अर्थात मानवीय क्रिया

कलाप प्राकृतिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं, भूमि का आर्थिक महत्व कम एवं जनजीवन का स्तर नीचा होता है। कालक्रम में जब भूमि उपयोग प्रारूप के निर्धारण में मानवीय पक्ष निर्णायक होने लगता है, भूमि की संसाधनता में वृद्धि होने लगती है एवं आर्थिक स्तर ऊंचा होने लगता है।

सारिणी 2.5 अध्ययन क्षेत्र में शुद्ध बोया गया क्षेत्र (हे0 में) 1996

क.स.	विकासखण्ड	कुल क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	प्रतिशत
1.	कालाकांकर	21063	12391	58.83
2.	बाबागंज	26499	15475	58.40
3.	कुन्डा	27764	15642	56.34
4.	बिहार	26912	16137	59.96
5.	सांगीपुर	26815	16906	63.05
6.	रामपुरखास	32259	16690	61.04
7.	लक्ष्मणपुर	20622	12680	61.49
8.	संडवा चन्द्रिका	21875	13496	61.70
9.	प्रतापग्रढ सदर	19678	11906	60.50
10.	मान्धाता	21416	13697	63.96
11.	मगरौरा	28580	17792	62.25
12.	पटटी	19634	12723	64.80
13.	आसपुर देवसरा	21271	14057	66.09
14.	शिवगढ	22060	13779	62.46
15.	गौरा	23816	14671	61.60
योग ग्रामीण		360265	221042	61.36
योग नगरीय		2141	1064	49.67
योग जनपद		362406	222106	61.29

विकासखण्ड स्तर पर शुद्ध बोयी गयी भूमि के वितरण में बहुत कम भिन्नता दिखायी पड रही है। सारिणी 2.5 से स्पष्ट होता है कि आसपुर देवसरा विकासखण्ड में सर्वाधित 66.09प्रतिशत शुद्ध बोयी गयी भूमि है तथा न्यूनतम 56.34 प्रतिशत कुण्डा विकासखण्ड में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इस अधिकतम तथा न्यूनतम के मध्य लगभग 10 प्रतिशत का अन्तर दिखायी पडता है। जनपदीय प्रतिशत 61.29 से ऊंचे स्तर को बताने वाले विकासखण्डों में आसपुर देवसरा के अतिरिक्त पट्टी 64.80 प्रतिशत, मान्धाता 63.69 प्रतिशत, सांगीपुर 63.05 प्रतिशत, शिवगढ 62.46 प्रतिशत, मगरौरा 62.25 प्रतिशत संडवा चन्द्रिका 61.70 प्रतिशत, गौरा 61.60 प्रतिशत, लक्ष्मणपुर 61.49 प्रतिशत हैं जबकि जनपदीय औसत से कम स्तर पर रामपुर खास 61.04 प्रतिशत, प्रतापगढ सदर 60.50 प्रतिशत, विहार 59.96 प्रतिशत, कालाकांकर 58.83 प्रतिशत बाबागंज 58.40 प्रतिशत तथा कुण्डा 56.34 प्रतिशत है।

यह भी एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जहां जनपद का 1970-71 में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 68.8 प्रतिशत था जो 1980-81 में घटाकर 65.36 प्रतिशत हो गया और 1990-91 में यह और भी घटकर 60.42 प्रतिशत रह गया, जबकि वर्तमान में 61.29 प्रतिशत है जो 1990-91 की तुलना में .87 प्रतिशत बढा है, परन्तु यह वृद्धि कोई उत्साहवर्धक नही कही जा सकती है। 1990-91 के उपरान्त यदि शुद्ध बोये गये क्षेत्र को देखें तो यह 60.42 प्रतिशत से 61.29 प्रतिशत के मध्य ही बना रहा है।

ब. सिंचित क्षेत्र :-

अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारकों में सिंचाई का महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग सौ वर्ष पूर्व सम्पूर्ण क्षेत्र वनाच्छादित था, जनसंख्या विरल होने के कारण भूमि पर जनभार कम था और कृषि जीवन निर्वहन के लिए परम्परागत ढंग से की जाती थी। सिंचाई का महत्व नगण्य था। कालान्तर में तीव्रगति से जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि क्षेत्र का विस्तार हुआ और खाद्यान्य उत्पादन बढाने के प्रयास हुये और खाद्यान्य उत्पादन में वृद्धि परिणाम स्वरूप सिंचाई के साधनों का विकास हुआ। वर्ष 1990-91 में जहां जनपद का शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 150724 हे0 था वही पर वर्ष 19995-96 में 166392 हे0 शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल हो गया, अर्थात इस मध्य 10 प्रतिशत से भी अधिक सिंचन सुविधा में वृद्धि हुई है। हाल के

वर्षो में विद्युत/डीजल चालित नलकूपों/पम्पिंग सेट्स तथा नहरों द्वारा सिंचाई के साधनों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अध्ययन क्षेत्र के लिए चकबन्दी तथा नहरों कृषि के लिए बरदान सिद्ध हुये है जिनाक विवरण अग्रांकित तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका कमांक 2.6 विकासखण्ड पर सिंचित क्षेत्रफल

सं0	विकासखण्ड	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल (हे0)शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल (हे0)	शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल (हे0)	प्रतिशत	सकल बोया गया क्षेत्र (हे0)	सकल सिंचित क्षेत्रफल (हे0)	प्रतिशत
1.	कालाकांकर	12391	11131	89.83	20506	18337	89.42
2.	बाबागंज	15475	13321	86.08	25829	22446	86.90
3.	कुन्डा	15642	11871	75.89	26063	18742	71.91
4.	बिहार	16137	13627	84.45	26868	22958	85.45
5.	सांगीपुर	16906	12018	71.09	25629	14084	54.95
6.	रामपुरखास	19690	13983	71.02	30656	21873	71.35
7.	लक्ष्मणपुर	12680	8056	63.53	18470	11014	59.63
8.	संडवा चन्द्रिका	13496	7923	58.71	18700	9445	50.51
9.	प्रतापग्रढ सदर	11906	6027	50.62	16417	6865	41.82
10.	मान्धाता	13697	10553	77.05	22261	14894	66.91
11.	मगरौरा	17792	12439	69.91	23383	14805	52.16
12.	पटटी	12723	9731	76.48	19958	11221	56.22
13.	आसपुर देवसरा	14057	10966	78.01	23233	13554	58.34
14.	शिवगढ	13779	10184	73.91	19599	11493	58.64
15.	गौरा	14671	13713	93.47	24545	18165	74.01
	योग ग्रामीण	221042	165543	74.89	347117	229896	66.23
	योग नगरीय	1064	849	79.79	1693	1346	79.50
	योग जनपद	222106	166392	74.92	348810	231242	66.29

सारिणी कमांक 2.6 में विकासखण्ड स्तर पर सिंचाई की स्थिति का विवरण दिया गया है जिससे ज्ञात होता है कि कुछ विकासखण्डों में शुद्ध बोये गये क्षेत्र से शुद्ध सिचित क्षेत्र का प्रतिशत 90 प्रतिशत से अधिक या इससे थोडा कम है। गौरा विकासखण्ड इस दृष्टि से 93.47 प्रतिशत शुद्ध सिंचित क्षेत्र रखकर सर्वोच्च स्थान पर है जबकि कालाकांकर विकासखण्ड 89.83 प्रतिशत तथा बाबागंज विकासखण्ड 86.08 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र रखकर द्वितीय तथा तृतीय स्थान पर है। इन तीनों ही विकासखण्डों में नहरों, राजकीय नलकूपों तथा निजी नलकूपों द्वारा सिंचाई की जाती है जिससे इन विकासखण्डों का सिंचाई स्तर भी ऊंचा है, साथ ही इन विकासखण्डों की भूमि भी समतल है जिसका प्रभाव भी सिंचाई क्षेत्र पर पड रहा है। इस दृष्टि से प्रतापगढ सदर विकासखण्ड अपनी शुद्ध बोयी गयी भूमि के लगभग आधे भाग को ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध करा पा रहा है जिससे सिंचित क्षेत्रफल की दृष्टि से न्यूनतम स्तर का प्रदर्शन कर रहा है इससे थोडा श्रेष्ठ प्रदर्शन संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड कर रहा है जो 58.71 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचित कर रहा है अन्य विकासखण्डों में जो 70 प्रतिशत से कम क्षेत्र को सिंचाई उपलब्ध करा पा रहे है, मगरौरा 69.91 प्रतिशत तथा लक्ष्मणपुर विकासखण्ड 63.53 प्रतिशत है, अन्य विकासखण्ड 70-80 प्रतिशत के मध्य में स्थित हैं।

सकल बोये गये क्षेत्र से सकल सिंचित क्षेत्र का अनुपात देखने से ज्ञात होता है कि गौरा विकासखण्ड का स्थान वरीयता कम में चौथा हो जाता है जबकि कालाकांकर अपने अनुपात में हल्की से कमी करते हुए प्रथम स्थान पर आ जाता है और बाबागंज इस अनुपात में .82 प्रतिशत की वृद्धि करके द्वितीय स्थान प्राप्त कर रहा है। शुद्ध सिंचित क्षेत्र से सकल सिंचित क्षेत्र में अनुपातिक वृद्धि दर्ज करने वाले विकासखण्डों में विहार ठीक 1 प्रतिशत तथा रामपुरखास 0.33 प्रतिशत वृद्धि दर्ज करा रहे हैं, अन्य विकासखण्ड इस दृष्टि से कुण्डा 3.98 प्रतिशत, सांगीपुर 12.01 प्रतिशत लक्ष्मणपुर लगभग 9 प्रतिशत, संडवाचन्द्रिका 8.2 प्रतिशत, प्रतापगढ सदर 8.8 प्रतिशत, मान्धाता 10.14 प्रतिशत, मगरौरा 16.75 प्रतिशत पट्टी 20.26 प्रतिशत, आसपुर देवसरा 19.63 प्रतिशत, शिवगढ 15.27 प्रतिशत तथा गौरा विकासखण्ड 19.46 प्रतिशत कमी दर्ज करा रहे हैं।

विकास खण्डवार रबी, खरीफ तथा जायद फसलों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र

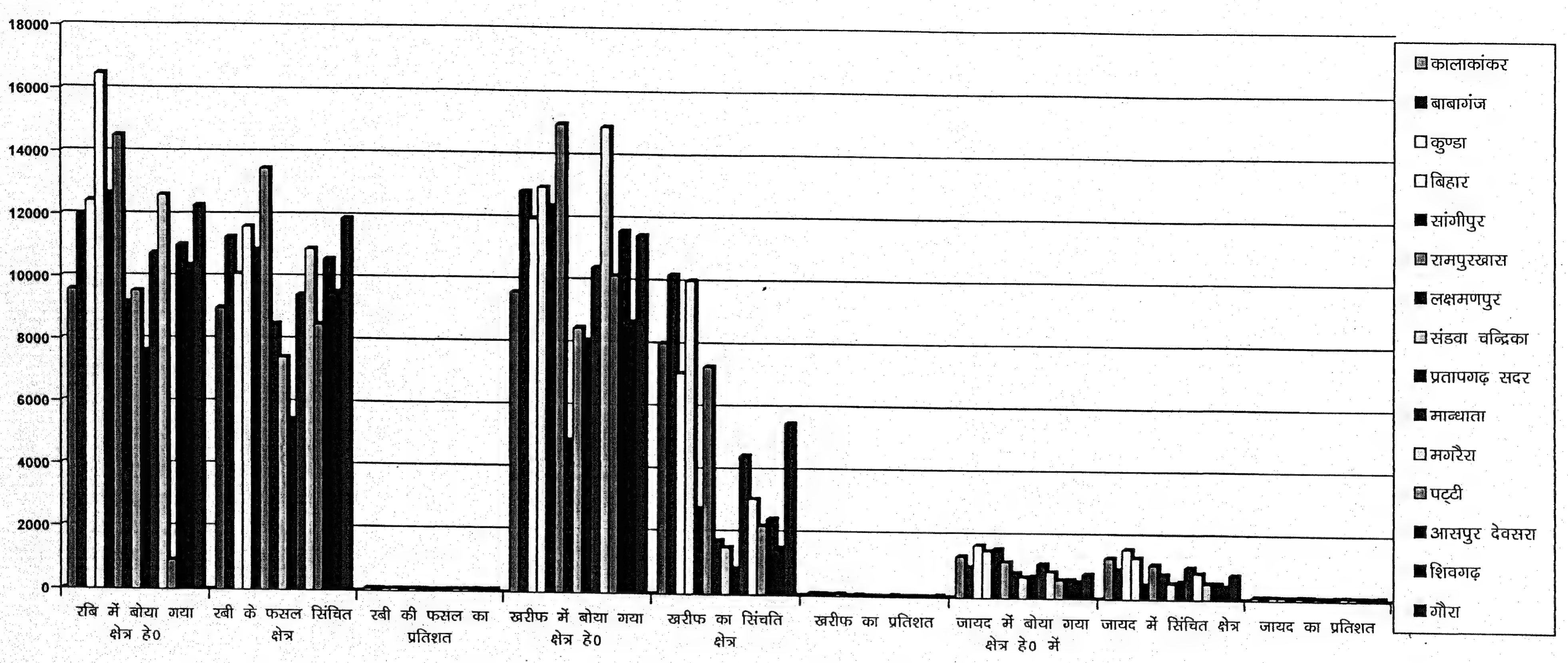

तालिका कमांक 2.7

विकासखण्डवार रवी, खरीफ तथा जायद फसलों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र

क.	विकासखण्ड	रवी			खरीफ			जायद		
		बोया गया क्षेत्र हे0	सिंचित क्षेत्र हे0	प्रतिशत	बोया गया क्षेत्र हे0	सिंचित क्षेत्र हे0	प्रतिशत	बोया गया क्षेत्र हे0	सिंचित क्षेत्र हे0	प्रतिशत
1.	कालाकांकर	9585	9004	93.94	9608	8036	83.64	1313	1297	98.78
2.	बाबागंज	11999	11284	94.04	12855	10221	79.51	975	941	96.51
3.	कुन्डा	12435	10092	81.16	11962	7078	59.17	1666	1572	94.36
4.	बिहार	12388	11618	93.78	12991	10032	77.22	1489	1308	87.84
5.	सांगीपुर	12673	10877	85.83	12402	2740	22.09	554	467	84.30
6.	रामपुरखास	14512	13483	92.91	14998	7296	48.65	1146	1094	95.46
7.	लक्ष्मणपुर	9175	8485	92.48	8488	1742	20.52	807	787	97.52
8.	संडवा चन्द्रिका	9541	7426	77.83	8492	1504	17.71	667	515	77.21
9.	प्रतापग्रढ सदर	7625	5460	71.61	8097	843	10.41	695	562	80.86
10.	मान्धाता	10745	9426	87.72	10426	4452	42.70	1090	1016	93.21
11.	मगरौरा	12629	10913	86.41	14912	3064	20.55	842	828	98.34
12.	पटटी	9203	8488	92.23	10157	2211	21.77	598	522	87.29
13.	आसपुर देवसरा	11025	10599	96.14	11603	2441	21.04	605	514	84.96
14.	शिवगढ	10369	9546	92.06	8692	1511	17.38	538	436	81.04
15.	गौरा	12307	11909	96.77	11465	5486	47.85	773	770	99.61
	योग ग्रामीण	166211	148610	89.41	167148	68657	41.08	13758	12629	91.79
	योग नगरीय	866	722	83.37	653	461	70.60	174	163	93.68
	योग जनपद	167077	149332	89.38	167801	69118	41.19	13932	12792	91.82

तालिका 2.7 विकासखण्ड वार वार्षिक फसलों के सिंचित क्षेत्र का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिसमें जनपद की रवी की फसल क्षेत्र की औसत रूप से 89.38 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो रही है। इस फसल से सम्बन्धित विकासखण्डवार चित्र को देखें तो ज्ञात होता है कि इस फसल का अधिकांश क्षेत्र सिंचित है, विभिन्न विकासखण्डों में इस दृष्टि से अधिक प्रसरण नही है और सभी विकासखण्ड 71.61 से 94.04 प्रतिशत के मध्य सिंचित क्षेत्र रख रहे परन्तु विकासखण्ड 90 प्रतिशत से अधिक सिंचित क्षेत्रफल दर्शा रहे है जिनमें से गौरा विकासखण्ड 96.77 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र रख कर वरीयता कम में प्रथम स्थान पर है जबकि आसपुर देवसरा 96.14 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र रखकर द्वितीय स्थान पर है इनके अतिरिक्त कालाकांकर 93.94 प्रतिशत, विहार 93.78 प्रतिशत लक्ष्मणपुर 92.48 प्रतिशत, रामपुरखास 92.91 प्रतिशत, पट्टी पट्टी 92.23 प्रतिशत, बाबागंज 94.04 प्रतिशत तथा शिवगढ विकासखण्ड 92.06 प्रतिशत सिंचन सुविधा उपलब्ध करा रहे हैं। एक तथ्य का उल्लेख करना यहां आवश्यक है कि उक्त विकासखण्डों में इस फसल में गेहूं की प्रधानता है जिसमें सिंचाई की आवश्यकता अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त इन विकासखण्डों में नहरों तथा निजी नलकूपों का भी बर्चस्व हैं जिससे इन विकासखण्डों में सिंचाई की सुविधा अधिक है। चार विकासखण्डों में सिंचाई का अनुपात 80 प्रतिशत से अधिक है जिनमें कुण्डा विकासखण्ड 81.16 प्रतिशत सांगीपुर 85.83 प्रतिशत, मान्धाता 87.72 प्रतिशत और मगरौरा विकासखण्ड 86.41 प्रतिशत सिंचित क्षेत्रफल रखकर एक सामान्य स्तर की ओर संकेत कर रहे हैं। केवल दो विकासखण्ड संडवा चन्द्रिका का विकास खण्ड 77.83 प्रतिशत तथा प्रतापगढ सदर 71.61 प्रतिशत रवी फसलों के क्षेत्र को सिंचित कर रहे हैं इसमें प्रतापगढ सदर विकासखण्ड न्यूनतम स्तर को दर्शा रहा है।

खरीफ के फसली क्षेत्र पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि जनपद का अनुपात इस दृष्टि से मात्र 41.19 प्रतिश है जिसका अर्थ है कि सम्पूर्ण जनपद औसत रूप से आधे से कम खरीफ की फसल क्षेत्र को सिंचाई सुविधा उपलब्ध करा पा रहा है। विकासखण्ड स्तर पर देखें तो इस फसल के लिए सिंचाई सुविधा में बहुत अधिक प्रसरण है। कालाकांकर विकासखण्ड जहां खरीफ फसल क्षेत्र के 83.64 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचाई सुविधा देकर प्रथम स्थान पर है वहीं प्रतापगढ सदर विकासखण्ड मात्र 10.41 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचित करके

न्यूनतम स्तर पर स्थित है अतः अधिकतम तथा न्यूनतम के मध्य 73.23 प्रतिशत का विचलन है जो अत्यधिक है और यही कारण है कि खरीफ की फसल में जहां सिंचाई की सुविधा के अनुपात में धान की फसल का ही वर्चस्व है। प्रतापगढ सदर को जहां न्यूनतम सिंचाई सुविधा उपलब्ध है इसलिए धान का क्षेत्र भी इस विकासखण्ड का न्यूनतम है और उनही फसलों का वर्चस्व है जिनमें जल की कम आवश्यकता पडती है। 70-80 प्रतिशत सिचाई सुविधा वाले विकासखण्डों में बाबागंज 79.51 प्रतिशत तथा विहार विकासखण्ड 77.22 प्रतिशत है। 60-70 के मध्य कोई भी विकासखण्ड स्थित नही है। 50से 60 प्रतिशत के मध्य 40 प्रतिशत से अधिक सिंचाई सुविधा वोले विकासखण्डों में रामपुर खास 48.65 प्रतिशत, मान्धाता 42.70 प्रतिशत तथा गौरा विकासखण्ड 47.85 प्रतिशत है। जबकि 30 से 40 प्रतिशत के मध्य भी कोई विकासखण्ड स्थित नही है। 20 से 30 प्रतिशत क मध्य सांगीपुर 22.09 प्रतिशत, मगरौरा 20.55 प्रतिशत, पट्टी 21.77 प्रतिशत तथा आसपुर देवसरा 21.04 प्रतिशत् सिंचित क्षेत्र रखते हैं। शेष विकासखण्ड लक्ष्मणपुर 20.52 प्रतिशत, संडवा चन्द्रिका 17.71 प्रतिशत, तथा शिवगढ 17.38 प्रतिशत है।

जायद फसल चूंकि ग्रीष्म मौसम की फसलों से आच्छादित रहती है अतः इन फसलों की सिंचन सुविधायें अत्यावश्यक हैं इसलिए इन फसलों के लिए सिंचन सुविधाओं की दृष्टि से जनपदीय औसत 91.73 प्रतिशत है, रबी की फसल के लिए जनपद की स्थिति भी कमोवेश इसी स्तर की है। विकासखण्ड स्तर पर गौरा विकासखण्ड 99.61 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचित रख रहा है जबकि संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड इस दृष्टि से 77.21 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचाई सुविधा दे पा रहा है। अन्य विकासखण्ड 80.86 से 98.78 प्रतिशत के मध्य सिंचाई सुविधा उपलब्ध करा रहे हैं। इन फसलों के लिए अधिकांश निजी नलकूप/पम्पसेट जल की आपूर्ति कर रहे है।

(स) एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र :-

यह सच है कि भूमि की आवश्यकता निरन्तर बढती जा रही है व आने वाले वर्षो में और अधिक तेजी से बढेगी। विकास प्रकिया के लिए इतनी बडी मात्रा में भूमि उपलब्ध कराना एक दुष्कर कार्य होगा। इसलिए विस्तृत खेती की क्षमता सीमित है। किन्तु गहन खेती की

अपार सम्भावनायें है जिनका उपयोग अब किया ही जाना चाहिए। कृषि की विकसित तकनीकी का मूल विन्दु है, फसलों की गहनता में विस्तार। अब तक एक से अधिक बार जोती गई भूमि के अन्तर्गत क्षेत्रों में तेज गति से वृद्धि क्यों नही हुई? यह आश्चर्यजनक और विचारणीय तथ्य है। सम्भवत: इस प्रवृत्ति के दो कारण है –

अ. उन्नत कृषि आदानो के पैकेज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नही हुये हैं।

ब. तथा जब कभी भी ये पैकेज उपलब्ध हुए भी है तो इनकी कीमते बहुधा अधिक ऊची रही है। इसलिए हमारे प्रयास यह होने चाहिए उन्नत आदानों को सस्ती दरों पर पर्याप्त मात्रा में कृषकों को उपलब्ध करवाया जाये। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि पदार्थो से सम्बन्ध अर्थपूर्ण कीमत प्रणाली अपनाई जाये। अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर एक से अधिक बार बोये गये क्षेत्र का विवरण अग्र तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 2.8 विकासखण्ड स्तर पर एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र

सं0	विकासखण्ड	सकल बोया गया क्षेत्र (हे0)	शुद्ध बोया गया क्षेत्र (हे0)	एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र	सकल बोये गये क्षेत्र का प्रतिशत
1.	कालाकांकर	20506	12391	8115	39.57
2.	बाबागंज	25829	15475	10354	40.09
3.	कुन्डा	26063	15642	10421	39.98
4.	बिहार	26868	16137	10731	39.94
5.	सांगीपुर	25629	16906	8723	34.04
6.	रामपुरखास	30656	19690	10966	35.77
7.	लक्ष्मणपुर	18470	12680	5790	31.35
8.	संडवा चन्द्रिका	18700	13496	5204	27.83
9.	प्रतापग्रढ सदर	16417	11906	4511	27.48
10.	मान्धाता	22261	13697	8564	38.47
11.	मगरौरा	18383	17792	10591	57.61
12.	पटटी	19958	12723	7235	36.25
13.	आसपुर देवसरा	23233	14057	9176	39.50
14.	शिवगढ	19599	13779	5820	29.70
15.	गौरा	24545	14671	9874	40.23
	योग ग्रामीण	347117	221042	126075	36.32
	योग नगरीय	1693	1064	629	37.15
	योग जनपद	348810	222106	126704	36.32

विकासखण्ड स्तर पर बहुफसली क्षेत्र में अधिक भिन्नता देखने को मिलती है और यह अन्तर लगभग 20 पतिशत तक देखने को मिलता है, जहां मगरौरा विकासखण्ड सकल बोये गये क्षेत्र का 57.61 प्रतिशत भाग दो या दो से अधिक फसलोत्पादन हेतु प्रयोग कर रहा है वहीं सडंवाचन्द्रिका केवल 27.83 प्रतिशत हिस्सा ही इस हेतु प्रयोग करने में सक्षम है जो आधुनिक कृषि तकनीकी की दृष्टि से अत्यन्त निराशाजनक प्रदर्शन है। इसी विकासखण्ड से मिलता-जुलता प्रदर्शन प्रतापगढ सदर विकासखण्ड का है जो केवल 27.48 प्रतिशत क्षेत्र पर ही दोहरी फसले उगा पा रहा है, जबकि लक्ष्मणपुर तथा शिवगढ विकासखण्ड क्रमशः 28.72 प्रतिशत तथा 29.70 प्रतिशत भूभाग को इस हेतु करके कुछ अच्छी स्थिति की ओर संकेत कर रहे हैं। इस दृष्टि से कालाकांकर 39.57 प्रतिशत, कुण्डा 39.98 प्रतिशत विहार 39.94 प्रतिशत तथा आसपुर देवसरा विकासखण्ड 39.57 प्रतिशत, भूमि पर दो या दो से अधिक फसले उगाकर लगभग एक समान स्थिति में है जबकि पट्टी विकासखण्ड इस विकासखण्डों से कुछ कम, अर्थात 36.25 प्रतिशत भूमि को दोहरी फसल युक्त बनाकर ऊंचे स्तर को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है। गौरा विकासखण्ड जहां सिंचाई की सर्वोच्च सुविधायें है केवल 40.23 प्रतिशत क्षेत्र को एक से अधिक बार बो रहा है। बाबागंज विकासखण्ड भी सिंचन की उच्च सुविधाएं रखते हुए भी गौरा विकासखण्ड से ही हाथ मिलाने की स्थिति का प्रदर्शन करके 40.09 प्रतिशत क्षेत्र को दोहरी फसलों से आच्छादित कर पा रहा है। अन्य विकासखण्ड भी लगभग एक समान स्थिति का प्रदर्शन कर पा रहे हैं, इनमें सांगीपुर 35.97 प्रतिशत, रामपुरखास 35.77 प्रतिशत, तथा मान्धाता विकासखण्ड 38.47 प्रतिशत पर दो या दो से अधिक फसलों का उत्पादन कर पा रहे हैं।

3. कृषि को प्रभावित करने वाले कारक :-

किसी भी अर्थव्यवस्था का स्वरूप निर्धनता एवं सम्पन्नता, विविधीकरण एवं जीवन यापन, पर्यावरण जिसमें प्राकृतिक संसाधन अत्यन्त प्रमुख हैं। वे समस्त वस्तुएं जो मनुष्य को प्रकृति से बिना किसी लागत के उपहार स्वरूप प्राप्त हुई है, प्राकृतिक

संसाधन कहलाती हैं। इस प्रकार किसी अर्थव्यवस्था की भौगोलिक स्थिति उपलब्ध भूमि एवं मिट्टी, खनिज पदार्थ जल एवं वनस्पतियां आदि प्राकृतिक संसाधन माने जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेषज्ञ समिति के अनुसार " मनुष्य अपने लाभपूर्ण उपयोग के लिए प्राकृतिक संरचना अथवा वातावरण के रूप में प्रकृति द्वारा प्रदत्त खनिज तेल, कोयला, यूरेनियम, गैस एवं चालन शक्ति के साधन इसके अन्तर्गत आते हैं। मिट्टी व भूमि के रूप में प्राकृतिक साधन वनस्पति व जीव जन्तु को पोषण देते हैं, इसके अतिरिक्त सतही व भूमिगत जल संसाधन मानव, पशु व वनस्पति जीवन सभी के लिए अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। जल विद्युत ऊर्जा का महत्वपूर्ण श्रोत है और जल मार्गों पर परिवहन के विभिन्न साधनों का विकास निर्भर है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वे पदार्थ जो अपना पोषण प्रकृति से प्राप्त करते हैं, प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं, इसमें वनस्पति, पशुधन, वायु, मिट्टी, ऊर्जा संसाधन खनिज पदार्थ निर्माण सामग्री ईधन आदि सम्मिलित हैं।

समाज की प्रत्येक आर्थिक किया का कियान्वयन प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका से प्रभावित होता है, परन्तु कृषि कार्यो का प्रत्यक्ष और तत्कालिक सम्बन्ध प्राकृतिक पर्यावरण से होता है। कृषि एक जैविक क्रिया है। पौधों की जीवन प्रकिया एवं उनका उत्पादन स्तर भूमि क्षेत्र, मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता, वर्षा एवं जलवायु से अत्यधिक प्रभावित होता है। वस्तुओं की तैयार करने की प्रकिया यान्त्रिक प्रकिया है जबकि कृषि कार्य एक जैविक प्रकिया है। पौधों का विकास प्राकृतिक तत्वों से पोषित होकर [illegible] होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पौधों का विकास आधारिक रूप रूप से भौतिक संरचना जलवायु, मिट्टी इत्यादि पर्यावरणीय आधारिक दशाओं से आधारिक रूप से प्रभावित होता है। यहां कृषि से सम्बन्धित विभिन्न पर्यावरणीय घटकों तथा मानवीय घटकों का विश्लेषण किया गया है।

किसी भी प्रदेश में अनेक कारक अन्तर्सम्बन्धित होकर उस प्रदेश को कृषि विशिष्टता प्रदान करते हैं। इन्ही आधारों पर कृषिगत विशेषताओं को प्रभावित करने वाले कारकों में भौतिक पर्यावरणीय का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक प्रतीत होता हे, जबकि लघु प्रदेशीय विश्लेषण में मानवीय वातावरण से सम्बन्धित कारक जैसे श्रम,

पूंजी मांग पूर्ति आर्थिक स्तर, जीवन यापन विधि एवं तरीके, बाजार उपलब्धि तथा तकनीकी स्तर का विशेष प्रभाव पडता है। अतः भौतिक एवं मानवीय वातावरण के विभिन्न तत्व स्वच्छन्द तथा समन्वित दोनो रूपों में कृषिगत विशेषताओं को निर्धारित करते हैं, एनूचीन महोदय ने भौतिक तथा मानवीय पर्यावरण के समन्वित प्रभाव के लिए सामाजिक भौगोलिक वातावरण शब्दावली का प्रयोग किया है तथा कारक विश्लेषण में दोनो पक्षों के अन्तसम्बन्धों की पुष्टि की है।

कृषि को प्रभावित करने वाले सभी कारकों को पांच प्रमुख वर्गो में विभाजित किया जा सकता है-

1. प्राकृतिक कारक
2. सामाजिक कारक
3. आर्थिक कारक
4. राजनैतिक कारक तथा
5. तकनीकी कारक

प्राकृतिक कारक :-

कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों में भौतिक पर्यावरण का सर्वाधिक प्रभाव पडता है। भौतिक कारकों के बदलते हुए सामाजिक एवं क्षेत्रीय दोनो स्वरूप फसल तथा पशुओं के वितरण को प्रभावित करते हैं, कृषि को प्रभावित करने वाले भौतिक कारकों में तीन प्रमुख है-

अ. जलवायु

ब. मिट्टी

स. उच्चावच

अ. कृषि एवं जलवायु :-

भौतिक कारकों में जलवायु प्रधान कारक है। मिट्टी तथा वनस्पति जलवायु की ही देन है। प्रत्येक पौधा अपने निश्चित जलवायु में ही विकसित होता है।

जलवायु के अन्तर्गत तापक्रम आर्द्रता वर्षा तथा वायु के प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है।

1. कृषि एवं तापक्रम :-

बीज के जमने तथा विकसित होने के लिए उचित तापक्रम की आवश्यकता पडती है। साधारणतया 63-75 डिग्री फारेनहाइट तापक्रम फसलों को बाढ वृद्धि के लिए अनुकूल होता है। लाही गेहूं, चुकन्दर जौर के लिए न्यूनतम 40 डिग्री तथा मक्का के लिए 48 डिग्री फारेनहाइट की आवश्यकता पडती है। कुछ फसलों को पकने के लिए अधिक तापक्रम की आवश्यकता पडती है। यदि उस समय तापक्रम धीरे-धीरे बढता है तो प्रति एकड उपज अधिकतम होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पौधों के विकास के लिए वहां के तापक्रम का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। प्रत्येक फसल अपनी सम्पूर्ण परिपक्वता अवधि में अपनी प्रकृति के अनुसार एक अनुकूलतम तापमान की अपेक्षा करती है। हवा के तापमान का पौधों की ऊर्जा प्राप्ति से अति निकट का सम्बन्ध होता है।

(2) कषि एवं वर्षा :-

जलवायु के विभिन्न घटकों में वर्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पौधे को जल अनेक रूपों में प्राप्त होता है जिसमें दो प्रधान श्रोत है-

1. मिट्टी से पौधों को जल का मिलना।
2. वायुमण्डलीय आर्द्रता से पौधों को जल मिलना।

पौधों के विकास के लिए मिट्टी में जल की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है, उचित जल की मात्रा के अभाव में पौधा सूख जाता है। वास्तव में मिट्टी की आवश्यकता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि-

1. कितना जल सतह के भीतर प्रवेश करती है, तथा
2. जल की कितनी मात्रा मिट टी स्वीकार करती है।

भिन्न पौधों में मिट्टी से जल लेने की क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है। साधारण परिस्थितियों में आलू तथा मटर की जडे 2 इंच, टमाटर की 3 इंच, मोटे

अनाज की 4 इंच, तथा अंगूर की जडे 8 से 10 इंच तक प्रवेश करती है तथा जल प्राप्त करती है। पौधों के समान जानवरों, मुख्य रूप से दुधारू पशुओं को अधिक जल की आवश्यकता पडती है यहीं कारण है कि पशुपालन उद्योग विकास गर्म था शुष्क प्रदेशों में कम और शीतोष्ण प्रदेशों में अधिक हुआ है।

3. कृषि एवं पाला :-

पाला कृषि के उच्चवचीय सीमा को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रमुख है। समुद्रतटीय भाग पाला के प्रभाव से मुक्त रहते हैं। अधिक ढाल वाले धरातलीय क्षेत्र पर भी पाला का प्रभाव पडता है, यही कारण है कि ढलान वाले भाग बागवानी के लिए अधिक उपयोग सिद्ध हुए है। फल तथा सब्जियों वाली कृषि पर अपेक्षाकृत अधिक विनाशकारी प्रभाव पडता है।

(4) कृषि एवं हवा :-

बढते हुए वाष्पोत्सर्जन दर के कारण फसलोत्पादन में हवा का अधिक प्रभाव पडता है क्योंकि फसलों को अधिक जल की आवश्यकता पडती है। ऐसे क्षेत्रों में जहां तेल हवाएं चलती है, बीज बोने के पूर्व बीज के चुनाव में संचित शक्ति का विशेष ध्यान दिया जाता है। बहुत तेज हवाओं के कारण अपरदित हो जाती है। जिससे उर्वरता समाप्त हो जाती है।

(ब) कृषि एवं मिट्टी :-

मिट्टी कृषि की आधारशिला है, मिट्टी में मुख्य रूप से चार तत्व होते है

1. अकार्वनिक कण
2. कार्वनिक पदार्थ
3. जल तथा
4. हवा

मिट्टी की विशेषताओं को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक इस प्रकार है -

1. पितृय पदार्थ
2. जलवायु

3. उच्चावच

4. वनस्पति

5. मिट्टी प्राणिजात या जीव तथा मानव उपयोग

1. **पितृय पदार्थ तथा मिट्टी :-** मिट्टी का निर्माण चट्टानों के टूटने से होता है। मिट्टी में पाये जाने वाले खनिज तत्वों में मृत्तिका, गाद तथा रेत का मुख्य अंश होता है। भौतिक विशेषता के आधार पर मिट्टी को 12 भागों में बांटा जाता है-

   1. रेतीली मिट्टी
   2. दोमट रेन
   3. रेतीली दोमट
   4. दोमट
   5. गांद दोमट
   6. गांद
   7. रेतीली मृत्तिका दोमट
   8. मृत्तिका दोमट
   9. गांदी मृत्तिका
   10. रेतीली मृत्तिका
   11. गांदी मृत्तिका
   12. मृत्तिका/भिन्न फसलों के उत्पादन में सहायक होती है।

मिट्टी में (P.H.) पी0एच0मात्रा तथा फसल :-

इसके द्वारा फसलोत्पादन के लिए मिट्टी की सम्भाग क्षमता ज्ञात की जाती है। कम पी0एच0 मात्रा उस फसल के लिए उपयुक्त होती है जिसमें चूना की आवश्यकता होती हे। इसी प्रकार यदि पी0एच0 मात्रा अधिक है तो उस फसल के लिए हानिकर है जिसे अम्ल चाहिए। पी0एच0 मात्रा तथा मिट्टी पोषक पदार्थो का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। 6.5 से 7.5 पी0एच0मात्रा के अन्तर्गत प्राथमिक पोषक पदार्थ (नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम) तथा गौण पोषक पदार्थ (सल्फर, कैल्सियम तथा

मैग्नीशियम) की मात्रा अधिक होती है। लघु पोषक पदार्थ (लोहा, अभ्रक, तांबा तथा जस्ता) की मात्रा अम्लीय मिट्टी में क्षारीय मिट्टी की अपेक्षा अधिक होती है। पोधे के उचित विकास के लिए 6.5 से 7.5 पी0एच0 मात्रा के भीतर सभी आवश्यक पोषक पदार्थ उपलब्ध होते हैं। पी0एच0 मात्रा के आधार पर मिट्टी को क्षारीय तथा अम्लीय दो भागों में विभाजित करते हैं। प्रो0 इग्नातीफ तथा पेज के अनुसार जौ फसल के लिए 6.5 से 8.0 ज्वार तथा मक्का के लिए 5.5 से 7.5 जई के लिए 5.0 से 7.5 धान के लिए 5.5 से 6.5 मटर के लिए 6.0 से 7.5, कपास के लिए 6.0 से 7.5 आलू के लिए 5.5 से 7.0 तथा तम्बाकू के लिए 7.5 से पी0एच0 मात्रा अनुकूल है। केवल जौ तथा चुकन्दर के लिए 8.0 पी0एच0 मात्रा की आवश्यकता पडती है।

2. मिट्टी एवं जलवायु :-

सोवियत संघ के मिट्टी वैज्ञानिकों ने मिट्टी के निर्माण में जलवायु सम्बन्धी कारकों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सभी महाद्वीपों को मिट्टी तथा जलवायु समान्यताओं के आधार पर विभाजित किया गया है, ऐसे विभाजन तीन प्रकार के है :-

क. कटिबंधीय विभाजन जो जलवायु पेटियों के अनुरूप है तथा

ख. प्रभागान्त मिट्टी विभाजन, जिसका सम्बन्ध जलवायु के अलावा उन मुख्य पदार्थो (चूने का पत्थर आदि) से है। जिससे मिट्टी की उत्पत्ति हुई है।

ग. अपार्श्विक मिट्टी विभाजन ऐसे मिट्टी क्षेत्र नवीन हैं तथा क्षयकारी शक्तियों से वंचित है।

3. मिट्टी तथा उच्चावच :-

मिट्टी में आर्द्रता प्राप्त करने की मात्रा मिट्टी के भौतिक गुणों पर आधारित होते हैं। ढालू टीले की मिट्टी शुष्क तथा निचले भाग की मिट्टी नम होती है, इसी प्रकार ढलवा भाग की मिट्टी शुष्क तथा समतल भाग की मिट्टी नम होती है ढालू भागों के निचलें भागों में मिट्टी गहरी नम तथा उपजाऊ होती है। ऐसे भाग कृषि कार्यो के लिए उपयुक्त होते है।

4. मिट्टी तथा वनस्पति :-

मिट्टी तथा वनस्पति का घनिष्ट सम्बन्ध होता है ऐसा देखा गया है कि अधिक समय के बाद जंगल चारागाह तथा दलदल भागों की मिट्टी क्रमशः पोडजोल ग्लेई तथा पीट में परिवर्तित हो जाती है। यदि इन भागों में कृषि की जाये तो भिन्न-भिन्न तकनीकि अपनानी पडेगी।

(स) कृषि एवं उच्चावच :-

फसलों का वितरण एवं क्षेत्र बहुत अंश तक उच्चावच के स्वभाव पर आधारित होता है। उच्चावत कृषि भूमि उपयोग को दो रूपों में प्रभावित करती है।

1. उच्चावचता
2. प्रवणता/इसका अपरोक्ष प्रभाव अंशतः जलवायु तथा मिट्टी के माध्यम से तथा परोक्ष प्रभाव ढलान के कारण कृषि प्रतिकूलता के रूप में पडता है।

1. उच्चावचता पर जलवायु का प्रभाव :-

कृषि भूमि उपयोग पर अधिक ऊंचाई का प्रभाव हवा के कम दवात के रूप में पडता है। इसके अतिरिक्त घटता हुआ तापकम, अधिक वर्षा, तथा वायुगति की भूमि उपयोग को प्रभावित करती है। बढती हुई ऊंचाई का प्रभाव कुछ दृष्टिकोण से ऊंचे अक्षांशों के समान पडता है। अधिक ऊंचाई तथा ऊंची अक्षांशीय स्थिति फसलों के विकास में बाधक सिद्ध होती है। आल्पस क्षेत्र में प्रत्येक 100 से 300 फुट की ऊंचाई वृद्धि के साथ एक दिन फसलोंत्पादन अवधि घट जाती है। हिमालय पर्वत श्रेणियों में गेहूं तथा जौ का उत्पादन 10000 फुट तक और गर्मियों में पशुचारण 12000 से 15000 फुट तक होता है। फ्रान्स तथा स्विटजरलैण्ड के आल्पस क्षेत्रों में गर्मी की चारागाही 6000 से 10000फुट तक की ऊंचाई पर होती है।

2. प्रवणता :-

कृषि पर प्रवणता का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में पडता है। कृषि कार्यो के लिए 60 प्रवणता उपयुक्त होती है। आधे ढिगरी ढाल पर जल का निकास तेजी

से होता है। प्रो0 मैक ग्रेगर ने ब्रिटेन में प्रवणता तथा भूमि उपयोग के सह सम्बन्धों को निर्धारित किया है। उन्होने 3 डिगरी तथा 6 डिगरी ढाल को क्रमशः मन्द ढाल तथा साधारण ढाल नाम दिया। अपवाद तथा अपक्षरण की मात्रा ढाल में वृद्धि के साथ बदलती है जब ढाल की मात्रा दुगुनी हो जाती है तब प्रति इकाई क्षेत्र का कटाव भी दुगुना हो जाता है। औसतन जब ढाल की लम्बाई दुगुनी हो जाती है तब प्रति इकाई क्षेत्र में मृदाहानि डेढगुनी बढ जाती है। फलस्वरूप खेंती के लिए सीढीदार तरीके अपनाने पडते हैं।

3. सामाजिक कारक :-

फसलोत्पादन क्षेत्र विशेष की उत्पादन विधि तथा वहां की सामाजिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। ऐसा देखा जाता है कि जहां पर जिन कृषिगत वस्तुओं की मांग अधिक होती है वहां पर उन्ही वस्तुओं का उत्पादन अधिक होता है। मानवीय वातावरण के सामाजिक परिवर्तन के साथ साथ कृषि प्रदेश में भी परिवर्तन देखा गया है। सामाजिक कारकों के अन्तर्गत तीन विशेष पहलुओं की व्याख्या की जाती है।

(अ) कृषि व्यवस्था एवं कृषक समुदाय की सामाजिक विशेषताएं:-

कृषि पद्धति एवं सामाजिक विशेषताओं विशेष सम्बन्ध मिलता है। भिन्न-भिन्न कृषि व्यवस्था में कृषक समुदाय की भिन्न-भिन्न सामाजिक विशेषताएं होती है। उदाहरणार्थ जीवन निर्वहन कृषि व्यवस्था में कृषकों का दृष्टिकोण सीमित तथा अंगीकरण क्षमता न्यूनतम होती है। जिसका एक कारण यह भी है कि उनका आर्थिक स्तर नीचा होता है, वे अपेक्षाकृत कम शिक्षित होते हैं, तथा उनका सम्पर्क क्षेत्र भी सीमित होता है; संक्षेप में इस पक्ष का सम्बन्ध आर्थिक उपलब्धियों से होता है। जो समाज को गतिमान और क्रियाशील बनाती है। यह सत्य है कि पादप रोपण एवं विशिष्ट व्यवस्था में कृषकों में अंगीकरण क्षमता अधिक होती है, दृष्टिकोण विस्तृत हाता है तथा सम्पर्क क्षेत्र भी अधिक होता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि किस सामाजिक समुदाय में ये विशेषतायें कितनी अधिक होती है। परन्तु यह कहना अधिक उपयुक्त है कि इन

विशेषताओं के अभाव में कृषि एवं अर्थव्यवस्था पिछडी रह जाती है। और उनमें अनुकूल परिवर्तन की गति पर्याप्त शिथिल हो जाती है।

(ब) भूमि स्वामित्व एवं भूपट्टा :-

भू स्वामित्व या किसी न किसी प्रकार का भूमि समझौता जिससे कृषक खेती योग्य भूमि प्राप्त करता है, आवश्यक होता है और यह पक्ष उस क्षेत्र की कृषि विशेषताओं को प्रभावित करता है। भूपट्टा से आशय उस व्यवस्था से है जो लिखित या अलिखित होता है। भूमि पट्टा कृषि कार्य को कई रूपों में प्रभावित करता है जो इस प्रकार है-

1. भूमि पट्टा की अवधि :-

भूमि का स्थायी मालिकाना कृषि उत्पादन आयोजना एवं लाभ हेतु आवश्यक होता है, इसके अभाव में कृषक हतोत्साहित होता है।

2. लागत की अवधि :-

भूमि पट्टा की अवधि पर लागत की अवधि निर्भर करती है। आवश्यकता पडने पर कृषक खेत से थोडे समय के लिए लाभ लेता है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति प्रभावित होती है।

3. साधनों की उपलब्धता :-

कृषि विकास के लिए मालिक अपने ही साधनों पर आश्रित है या अन्य पर, यदि दूसरों के साधनों पर आश्रित है तब उसका लाभ कम हो जाता है।

4. रहने के लिए या अन्य कृषि कार्यो के लिए आय का कौन सा हिस्सा कर के रूप में चुकाना पडता है।

5. भूमि या पशुओं पर कितनी लागत आती है।

6. भूमि की नई खरीद या बेंच द्वारा के विस्तारण या संकुचन की सम्भावना क्या है।

(घ) जोत का आकार :-

कृषि में जोत का आकार महत्पूर्ण होता है क्योंकि कृषि का पैमाना, उत्पादन रीति, कृषि के मंत्रीकरण, प्रतिहेक्टेयर उत्पादकता तथा कृषि क्षमता जोत के आकार पर निर्भर करती है। यहां पर आर्थिक या अनूकूलित जोत वह इकाई है, जो वर्तमान दशाओं में सर्वाधिक उत्पादन करती है। आर्थिक जोत का आकार वास्तव में भूमि के उपजाऊपन, सिंचाई सुविधा तथा उत्पादित की जाने वाली फसलों से निर्धारित होता है। अनुकूलित जोत से आशय उस आकार से है जिससे उत्पत्ति के अन्य साधनों के साथ शुद्ध लाभ के दृष्टिकोण से अधिकतम उत्पादन होता है। स्पष्ट है कि किसान के पास-इतनी भूमि अवश्य होनी चाहिए जिस पर उसकी पूंजी व श्रम का पूरा-पूरा उपयोग हो सके तथा जिससे खेती में लगाई गई लागत लाभप्रद हो सके तथा कृषक अपने परिवार का उचित प्रकार से पोषण कर सके। उत्तर प्रदेश सरकार ने सिंचित भागों और असिचिंत भागों के प्रत्येक कृषक परिवार के लिए कमशः 18 एकड तथा 25 एकड की सीमा निर्धारित की है।

3. आर्थिक कारक :-

कृषि को प्रभावित करने वाले प्रमुख आर्थिक कारक इस प्रकार है :-

अ. कृषि फार्म तथा फार्म उद्यम :-

साधारणतया कृषक अपने फार्म में उन्ही फसलोंक का उत्पादन करता है जिससे उसे अधिकतम लाभ होता है या होने की आशा होती है। एक व्यवहारिक कृषक कृषि लागत को उसी समय या उसी अंश तक बढाता है जब या जब तक उसे आय में वृद्धि की आशा दिखाई देती है। कभी-कभी उसे लागत मूल्य में ह्रास के साथ-साथ आय ह्रास भी सहन करना पडता है। ऐसा देखा जाता है कि छोटे आकार की जोतों में उचित आय प्राप्त करने के लिए अधिक गहरी खेती की आवश्यकता पडती है, स्वयं फार्म उद्यम का कृषि विशेषताओं पर विशेष प्रभाव पडता है। ग्रेट ब्रिटेन में फल तथा फूल उत्पादन के बाद सुअर तथा मुर्गी पालन उद्योग धन्धों में अधिक गहरे श्रम

की आवश्यकता पडती है फलस्वरूप छोटे छोटे फार्मो पर इस फार्म उद्यम को अपनाना अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

ग्रेट ब्रिटेन में किये गये अनेक शोध अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि छोटे फार्मों (30 से 50 एकड) पर प्रति एकड सुअर तथा मुर्गीपालन से लाभ की राशि दुग्ध उद्यम (मिश्रित पशुपालन तथा अन्नोत्पादंन) की अपेक्षा दुगुनी तथा पशुपालन की चौगुनी होती है। अतः फार्म इकाई क्षेत्र फार्म उद्यम से प्राप्त तुलनात्मक लाभ द्वारा निर्धारित होता है। पशुपालन कार्य अपेक्षाकृत बडे आकार के फार्म पर अधिक लाभकर सिद्ध होता है। अनुमानतः मांस के उद्देश्य से मोटा बनाने के लिए- एक जानवर का वर्ष में तीन एकड घास क्षेत्र की आवश्यकता होती है, अतः सौ एकड से कम फार्म का क्षेत्र जहां 70 से 80 पशु पाले जा सकते है, अलाभकर सिद्ध होता है। इसी प्रकार पशु पोषक फार्म, जहां डेढ दो वर्ष की आयु तक के जानवरों को मांस हेतु पाला जाता है, हेतु कम से कम 200 एकड का फार्म अनुकूलित इकाई समझा जाता है। इसी प्रकार अन्नोत्पादन कार्य बडे फार्मों में ही अधिक लाभकर सिद्ध होता है। विशेषकर गेहूं, फार्म बडे तथा धान फार्म छोटे होते हैं, आलू फार्म निस्सन्देह अधिक छोटा होता है।

(ब) क्षेत्रीय वैशिष्टय :-

आय तथा सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि किस फसल को किस समय कितने क्षेत्र में उगाया जाये। लागत तथा आय के आधार पर क्षेत्र निर्धारित किया जाता है। इसी प्रकार कृषि उद्यमों की प्राथमिकता एवं उत्पादन क्षेत्र भी प्रति एकड शुद्ध लाभ से निर्धारित होता है। ऐसा देखा जाता है कि कृषक अपने पडोस के क्षेत्र में कृषि कार्यकलापों को अपनाता है। कृषिगत समानताओं के आधार पर कृषि क्षेत्रों की सीमाओं को निर्धारित किया जाता है। जिन क्षेत्रों में क्षेत्रीय विशिष्टता दिखाई देती है वहां विशिष्ट क्षेत्रों को परिसीमित करना आसान हो जाता

है। दो विशिष्ट क्षेत्रों के बीच एक ऐसा क्षेत्र भी होता है जहां दोनो उद्योगों से बराबर लाभ होता है। गेहू तथा पशुपालन के बीच मिश्रित कृषि क्षेत्र इसका महत्वपूण्र उदाहरण है। यहां पर मिश्रित तथा एक फसल प्रधान उद्यम का अन्तर समझना आवश्यक है। एक फसल प्रधान क्षेत्र में विशिष्टता अवश्य होती है। लेकिन क्षेत्रीय विशिष्टता के लिए आवश्यक नही है कि वहां एक फसल प्रधान हो। बुचमैन ने डेनमार्क के दुग्ध उद्यम को विशिष्ट उद्यम बताया लेकिन इस विशिष्टता का सम्बन्ध उत्पादन की अपेक्षा पद्धति से अधिक है। नवीन देशों में अत्यधिक विशिष्ट प्रणाली अपनाई गई है जहां उत्पादन के अन्य कारकों में भूमि सस्ती तथा अधिक मात्रा में उपलब्ध है जबकि श्रम मंहगा तथा उसकी उपलब्धि न्यूनतम है। फलस्वरूप विस्तृत कृषि प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें प्रति इकाई श्रम पर लाभ की मात्रा अधिक होती है।

(स) बाजार :-

उत्पादन कारकों में बाजार एक महत्वपूर्ण कारक है, उत्पादित पदार्थो के कय विकय के लिए उपयुक्त बाजार व्यवस्था की नितान्त आवश्यकता है। समान्यन्त: बाजार से दूरी के कारण कृषक को अपनी फसल का उचित मूल्य नही मिल पाता है, इसलिए बाजार से दूर स्थित क्षेत्रों में सहकारी कय विकय अनिवार्य होता है। बाजार में बदलते हुए मूल्यों से भी उत्पादकों में अस्थिरता आ जाती है जिससे अच्छी तथा व्यवस्थित कृषि ह्रास होता है। अच्छी विपणन व्यवस्था से आर्थिक विकास भी तेजी से होता है।

(द) श्रम :-

कृषि को प्रभावित करने वाले कारको में श्रम का स्थान महत्वपूर्ण होता है। भिन्न-भिन्न फसलो के लिए अधिक अथवा कम श्रम की आवश्यकता होती है। श्रम के अभाव की स्थिति में उन फसलों का उत्पादन नही किया जा सकता है जिनके उत्पादन में अधिक श्रम की आवश्यकता पडती है।

(य) मशीनीकरण :-

कृषि कार्यो में मशीनीकरण का प्रभाव दो रूपों में पडता है।

1. श्रम विस्थापन

2. कृषि कार्य विस्तार/ऐसा देखा गया है कि मशीनों कके प्रयोग से मानव श्रम की मांग में कमी नही होती है। क्योंकि गहन कृषि प्रणाली में अन्य कार्यो के लिए मानव श्रम की आवश्यकता पडती है। यद्यपि मशीनीकरण क्षेत्र में श्रम कुशलता में परिवर्तन हो जाता है। मशीनीकरण का दूसरा प्रभाव कृषि कार्य के विस्तार के रूप में पडता है। सच तो यह है कि कृषि विकास का इतिहास, जुताई के विकसित साधनों द्वारा कृषि क्षेत्र के विस्तार से जुडा हुआ है। जुताई यंत्रों का विकास हल्का लकडी का हल भारी ~लकडी का हल घोडा चालित हल तथा शक्ति चालित मशीनों के रूप में हुआ। इग्लैण्ड में 17 वी शदी में बैलों द्वारा एक दिन में एक एकड भूमि जोती जाती थी जबकि घोडों से डेढ एकड तथा शक्ति चालित मशीन द्वारा 12 एकड जोतना सम्भव हुआ। अन्नोत्पादन में प्रयुक्त न्यूनतम मानव श्रम के माध्यम से कृषि मशीनों में प्रयोग की उन्नति दर को आंका जा सकता है। उदाहरण के लिए 1830 में एक हेक्टेयर क्षेत्र 1800 कि0ग्राम गेहूं पैदा करने के लिए घरेलू औजारों द्वारा 144 मानव श्रम घण्टों की आवश्यकता पडती थी जब कि यू0एस0ए0 में 1896 में मशीनों के प्रयोग द्वारा केवल 22 घंटा आवश्यकता पडती थी जब कि 1930 में ट्रेक्टर तथा कम्वाइन हारबेस्टर द्वारा केवल साढे आठ घण्टा लगता था। इस प्रकार 1830 तथा 1896 के बीच समय तथा लागत में क्रमशः 85.6 प्रतिशत तथा 81.9 प्रतिशत की कमी हुई।

(र) परिवहन :-

उपज को उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए परिवहन के सुगम साधनों की आवश्यकता पडती है। परिवहन के साधन बहुत अंश तक फसल स्थिति को निर्धारित करते हैं। ऐसा भी देखने में आया है कि यातायात से दूर फसल गहनता में कमी आ जाती है। किसी क्षेत्र में वाच्छनीय यातायात क्षमता उपज की किस्म निर्धारित करने में सहायक होती है। उदाहरण के लिए शीघ्र सडने वाली फसलों के लिए तेज रफ्तार वाले परिवहन साधनों की आवश्यकता पडती है या लम्बी अवधि के लिए उनके संरक्षण की

व्यवस्था होनी चाहिए। साधारणत: बडे शहरों के निकट फूलो का क्षेत्र स्थित होता है। बाजार के निकट स्थित सब्जी क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद होता है। दुग्ध उत्पादन क्षेत्र सब्जी उत्पादन क्षेत्र से कुछ अधिक दूरी पर स्थित हो सकता है क्योंकि दूध सब्जी की अपेक्षा कम भारी होता है। सहज यातायात की उपलब्धता किसी भी फसल या पदार्थ के उत्पादन क्षेत्र का विस्तार कर सकता है।

(ल) आर्थिक प्रशासनिक नीति :-

प्रशासनिक नीति का कृषि फार्म पर विशेष प्रभाव पडता है यदि कृषि पदार्थो का व्यापार स्वतंत्र होता है तो जिन देशों में या जिन क्षेत्रो में कृषि पदार्थो के उत्पादन की लागत ऊंची होती है उन्हे हानि होगी जिससे ऐसे क्षेत्रों में कृषि प्रणाली में परिवर्तन आवसम्भावी हो जाता है। इसलिए आयात नियंत्रण का प्रयोग देश के अन्तर्गत अधिक उत्पादन लागत की सुरक्षा हेतु किया जाता है।

(4) राजनीतिक कारक :-

कृषि पर राजनीतिक कारकों का प्रभाव स्थानीय राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय सभी स्तरों पर पडता है। दक्षिण कैलिफोनिर्या में दुग्ध उद्योग के लिए राजकीय अधिनियम का प्रभाव स्थानीय स्तर पर एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। अनेक विद्वानों ने यूरोप की कृषि पर राजनैतिक प्रभावों का अध्ययन किया है। ग्रोटेवोल्ड तथा एवलेट ने इग्लैण्ड तथा जर्मनी के शस्य स्वरूप के अनेक विरोधाभासों का उल्लेख किया है। जिसका मुख्य कारण आयात पर जर्मनी द्वारा लगाया गया विशेष प्रतिबंध था। स्टैम्प के अनुसार ब्रिटेन के भूमि उपयोग सुधार का सम्बन्ध सरकार द्वारा अपनाई गई आत्म निर्भरता नीति से था। बाल्केन वर्ग ने कृषि पदार्थो की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता पर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सम्बन्धी प्रभावों को महत्वपूर्ण बताया।

(5) तकनीकी कारण :-

किसी क्षेत्र की कृषि विशेषतायें उस क्षेत्र की तकनीकी स्थिति पर भी निर्भर करती है। जीवन निर्वहन कृषि व्यवस्था की तकनीक पिछडे स्तर की है। आज भी मशीन उन्नतशील बीज उर्वरक का कम प्रयोग होता है। कृषि यंत्र प्राचीन हैं और छोटे

स्तर पर खेती की जाती है, जबकि व्यापारिक प्रदेशों की तकनीकि अत्यन्त विकसित अवस्था की हैं। वहां अनेक प्रकार की कृषि मशीन, रासायनिक उर्वरक उन्नत बीच आदि का बहुत प्रयोग होता है। व्यापारिक फसलों की कृषि बडे आकार के फार्मो पर की जाती है, परिवहन के सस्ते तथा सुगम साधन उपलब्ध है। प्राचीन काल से आधुनिक समय तक के कृषि तकनीकी स्तर को निम्न भागों में बांटा जा सकता है।

(अ) कुदाल तकनीकी स्तर :-

इस तकनीकी स्तर के समस्त कृषि औजौरों को

1. कुदाल
2. बीज डालने की छडी तथा
3. गडढा करने की छडी में विभाजित किया जा सकता है। इन प्राचीनतम औजारों के प्रयोग में मानवीय श्रम की आवश्यकता पडती हे। इन प्राचीनतम कृषि औजारों के प्रयोग में मानवीय श्रम की अधिक आवश्यकता पडती है। इन प्राचीनतम कृषि औजारों से सम्बन्धित अर्थ व्यवस्था को कुदाल संस्कृति कहते है। यह तकनीकी आज भी उष्णकटिवंधीय प्रदेशों में प्रचलित है, भारत में इसका सुधरा हुआ रूप है। कुदाल तकनीकी अपनी प्रारम्भिक विशेषताओं के साथ अफ्रीका के देशो में लेटिन अमेरिका तथा सुदूर दक्षिण पूर्व एशिया के द्वीपों में बीज डालने की छडी तथा गडढा खोदने की छडी का प्रयोग आज भी प्रचलित है। विकसित कृषि तकनीकी की दृष्टि से कुदाल संस्कृति अलाभप्रद दिखायी देती है परन्तु इस तकनीकी के क्षेत्र में खेत बिखरे एवं छोटे तथा बीच में वनस्पति क्षेत्र होते हें, केले की फसल प्रमुख होती है। ऐसी अवस्था में हल द्वारा जुताई सम्भव नही है अतः कुदाल ही सर्वाधिक उपयुक्त कृषि यंत्र है।

(2) हल तकनीकी का स्तर :-

प्रत्येक कृषि स्वरूप के अनेक तकनीकी उपक्रमों में पूर्ण पूर्व प्रचलित तकनीकी स्तरों में सुधार दृष्टिगोचर होता है। हल तकनीकी स्तर कुदाल तकनीकी का ही सुधार रूप है। और प्रायः सभी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। निस्सन्देह इसकी

क्षमता कुदाल की अपेक्षा अधिक होती है। हल संस्कृति की प्रमुख व्यवस्था मिश्रित कृषि व्यवस्था के रूप में जहां फसलोत्पादन तथा पशुपालन दोनों कार्य साथ-साथ सम्पन्न होते है। इस तकनीकी में सभीफसलें उगाई जाती है।

(3) ट्रैक्टर तथा मशीनी तकनीकी का स्तर :-

हल संस्कृति के उच्चतम विकास स्तर पर मशीनों द्वारा व्यापारिक फसलों का उत्पादन महत्वपूर्ण होता है। व्यापारिक कृषि अवस्था में अनेक मशीनों के प्रयोग के कारण कम लागत में पदार्थो का उत्पादन सम्भव हो जाता है। ट्रैक्टर हल का ही सुधरा हुआ रूप है जिससे कम समय में अधिक भूभाग की गहरी जुताई होती है। मशीनों का प्रयोग केवल जुताई के लिए ही नही बल्कि सभी कृषि कार्यो में किया जाता है। मिश्रित मशीनों का भी आविष्कार हुआ है। जो एक साथ अनेक कृषि कार्य सम्पन्न करती है। मशीनीकरण के दो मुख्य लाभ है-

1. अधिक क्षमता
2. कम श्रम/ कम जनंसख्या वाले देशों के लिए मशीनों का प्रयोग विस्तृत कृषि क्षेत्रों के उपयोग में वरदान सिद्ध हुआ है। मशीनों के प्रयोग से जलवायु सम्बन्धी विषमताओं से फसलोत्पादन कार्य को सुरक्षा मिलती है। विजली चलित थ्रेसिंग मशीन की सहायता से पश्चिमी उत्तर प्रदेश की गेहूं की फसल को पूर्वमानसून वर्षा से बचाया जाना सम्भव हुआ है। आज सभी विकसति देशों में कृषि कार्य मशीनों द्वारा किया जा रहा है।

अध्याय – तृतीय

कृषि भूमि उपयोग का तकनीकी स्तर

कृषि पर विज्ञान और प्रद्योगिकी के प्रभाव

सिंचन सुविधायें

यत्रीकरण

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग

कीटनाशक रसायनों का प्रयोग

उन्नतशील बीजों का प्रयोग

जैव प्रद्योगिकी

जनपद में कृषि भूमि उपयोग का तकनीकी स्तर

जनपद में सिंचन क्षमता का उपयोग

अध्ययन क्षेत्र में कृषि तकनीकी का स्तर

अध्याय तृतीय

कृषि भूमि उपयोग का तकनीकी स्तर

प्रकृति ने अपनी उदारता से मनुष्य को विविध आवश्यकताएं पूरी करने लिए विभिन्न साधनों का निःशुल्क उपहार दिया है । प्राकृतिक परिवेश से मनुष्य को विभिन्न उपयोगों के लिए प्राप्त इन प्राकृतिक निःशुल्क उपहारों को प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है । इन प्राकृतिक संसाधनों को जितनी कुशलता से प्रयोग योग्य वस्तुओं एवम् सेवाओं में परिवर्तित कर लिया जाये, उतने ही श्रेयष्कर रूप में व्यक्ति की भोजन, आवास, वस्त्र, स्वास्थ्य और चिकित्सा, यातायात एवम् संसार की आवश्यकताएं पूरी हो सकती है । अतः यह कहा जा सकता है कि किसी अर्थव्यवस्था का विकास स्तर वहां उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की कोई भी कमी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के स्तर को कुछ अंशों में सीमित करने में समर्थ है, परन्तु यह भी निर्विवाद है कि मानवीय उद्यमशीलता और प्रौद्योगिक परिवर्तन प्राकृतिक संसाधनों की कमी के अभाव को निरस्त कर सकते हैं या एक महत्वयपूर्ण अंश में कम कर सकते हैं, इसलिए विकास की अनिवार्यता के रूप में संसाधनों के विदोहन का पक्ष भी सक्षम, उपयोगी और समाज के अनुकूल होना चाहिए ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से ज्ञात प्राकृतिक संसाधनों को वस्तुओं और सेवाओं में अधिक कुशलता पूर्वक परिवर्तित किया जा सकता है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से उत्पादन में विविधीकरण किया जा सकता है, प्रयोग योग्य नवीन वस्तुओं का स्रजन किया जा सकता है और जीवन यापन को अधिक सुविधापूर्ण और सरल बनाने के लिए प्रकृति की गर्त में निहित संसाधनों की खोज की जा सकती है । अतः यह कहा जा सकता है कि विान और प्रौद्योगिकी विविध उत्पादक क्षेत्रों जैसे कृषि एवं सम्बद्ध कियायें निर्माण, विनिर्माण सेवाओं के उत्पादन को अधिक सक्षमता के साथ बढ़ा सकता है । इसलिए तीव्र आर्थिक विकास के लिए विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी न केवल सहायक वरन एक अपरिहार्य अवयव है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इसी महत्व के कारण पं0 जवाहर लाल नेहरू, जिन्होंने भारत में वैज्ञानिक

विकास की पृष्ठ भूमि तैयार की थी, मानते थे कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के द्वारा ही विकास को गति प्रदान की जा सकती है । पहले जनसंख्या कम थी इसलिए संसाधनों पर दबाव भी अत्यन्त कम थ, क्योंकि सामाजिक आवश्यकताएं सुगमता से पूरी हो जाती थी । वर्तमान स्थिति अत्यन्त जटिल और चुनौतीपूर्ण है । वर्तमान समय में जनसंख्या बढ़ी है, लोगों की आय भी बढ़ी है, उपभोग प्रवृत्ति बढ़ी है, उपभोग की संरचना में परिवर्तन हुआ हे, जबकि संसाधनों की मात्रा में तदनुसार पतिवर्तन नहीं हुआ, अतः विद्यमान संसाधनों से ही अब अधिक जनसंख्या की बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करना है । इस वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में सामाजिक साध्यों को पूरा करने के लिए साधनों के कुशलतम प्रयोग की आवश्यकता है और इसके लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है ।

स्वतंत्र भारत में विशेषकर नियोजन काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, इसके परिणाम स्वरूप अर्थ व्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों की समग्र भौतिक उपज में वृद्धि हुई है और सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ है । आर्थिक क्रियाओं में आधुनिकता और जटिलता के ऊंचें प्रतिमान प्राप्त हुए हैं । विज्ञान और प्रौद्योगिकी के परिणाम स्वरूप अर्थ व्यवस्था के प्राथमिक, द्वितीयक, एवम् तृतीयक क्षेत्र के प्रसार होने के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि समग्र राष्ट्रीय उत्पादन की संरचना में द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र जो मूलतः आधुनिक विज्ञान ओर प्रौद्योगिकी पर ही आधारित है, का योगदान बढ़ता जा रहा है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति ने समस्त आर्थिक क्रियाओं एवम् जीवन के विभिन्न पहलुओं को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है । इस अध्याय में विज्ञान और प्रौद्यौगिकी के कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया जा रहा है । कृषि भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार भूत व्यवसाय है, समस्त जनसंख्या की साद्यान्न आपूर्ति करने के साथ साथ यह कई उद्योगों के लिए कच्चे माल का स्रोत लगभग 66 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का आधार और निर्यात द्वारा आय अर्जन का प्रमुख स्रोत है ।

कृषि पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रभाव

पिछले दो दशकों में हरित क्रान्ति ने खाद्यान्नों के सन्दर्भ में जो आत्मनिर्भरता

प्राप्त की है । वह मुख्यतः विज्ञान और प्राद्योगिकी की सफलता की कहानी है । अब दुर्गम क्षेत्रों के भी कृषक कृषि में नवीन विधियों तथा उन्नत तकनीक से अवगत हो गये हैं और उनका प्रयोग करने को उत्सुक हो रहे है । आधुनिक विज्ञान जन्य कृषि निवेशों और आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग से कृषि क्षेत्र में सक्षमता आई है और कृषि की मानसून पर निर्भरता कम हुई है ।1 कृषि में अब नवीन विधियों और युक्तियों का प्रयोग होने के कारण प्राकृतिक प्रकोपों के गहन दुष्परिणामों में कमी होगई है । नवीन किस्म के बीजों का उत्पादन, मृदापरीक्षण, मौसम पूर्वानुमान, भूजल स्रोत का आकलन जैव प्रौद्योगिकी आदि ऐसे कार्य हैं जिनकी क्रियाविधि में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यन्त प्रमुख रही है । इससे कृषि के रूपान्तरण और नवीनीकरण में सहायता प्राप्त हुई है ।

कृषि पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रभाव को श्रम, भूमि और समय की बचत करने वाले प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रभाव के कारण प्रति उत्पादन इकाई पर श्रम की अपेक्षाकृत कम मात्रा लगती है । इसे इस रूप में बताया जा सकता है कि समान श्रम के प्रयोग से अपेक्षाकृत अब कअधिक उत्पादर प्राप्त कर सकना संभव हो गया है, परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि नवीन प्रौद्योगिकी से श्रम की कुल मांग में कमी आई है । वस्तुतः फसल सघनता बढ़ने के कारण कुल श्रम की मांग बढ़ी है ˙ विज्ञान और प्रौद्योगिकी का दूसरा प्रभाव भूमि बचत करने वाली क्षमता के कुल श्रम की मांग बढ़ी है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी का दूसरा प्रभाव भूमि बचत करने वाली क्षमता के रूप में दिखाई पड़ता है । नवीन विधियों के प्रयोग से किसी भूमि इकाई पर किसी फसल अथवा कम से कम कुछ फसलों की अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है, अर्थात उपज की किसी दी हुई मात्रा के लिए अब कुछ फसलों की अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है, अर्थात उपज की किसी दी हुई मात्रा के लिए अब पहले से कम भूमि की आवश्यकता पड़ती है । भारत के जितने कृषि क्षेत्र पर खाद्यान्न फसलें बोकर 1981 में 105 मिलियन टन खाद्याान्न उत्पन्न किया जा सकता था उतने ही भूक्षेत्र पर खाद्यान्न फसलें बोकर अब 73 मिलियन टन या इससे अधिक अनाज उत्पन्न कर लिया जाता है, इससे स्पष्ट है कि नवीन प्रौद्योगिकी भूमि बचत करने वाली है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी का तीसरा प्रभाव समय बचत करने की क्षमता के रूप में स्पष्ट होता है, अब अपेक्षाकृत कम परिपक्वता अवधि वाले बीजों का प्रचलन हो गया है । पहले

धान, गेहूँ मंग, ज्वार, बाजरा की फसलों की परिपक्वता अवधि अधिक थी जिससे इन फसलों के खतों में दूसरी फसल लेना कठिन हो जाता था, अरहर की फसल तो पूरे वर्ष के लिए थी, अब इसके कम परिपक्वता अवधि वाले वीजों का प्रचलन हो गया है, जिससे यदि उचित फसल चक्र अपनाया जाये तो सम्पर्क सिंचाई सुविधा के परिप्रेक्ष्य में वर्ष में तीन फसलें ली जा सकती हैं । 2 स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन और उत्पादिता पर विन और प्रौद्योगिकी का प्रभाव सकारात्मक हुआ हे, नवीन कृषि निवेशों का समावेश हुआ है, कृषि में अनिश्चितता तत्व कम हुआ है ओर फसल संरचना में परिवर्तन हुआ है । इसमें सिंचाई की सुविधायें नवीन कृषि यंत्रों का प्रयोग, रासायनिक उर्बरकों का प्रयोग, फसलों को बीमारियों तथा उनको क्षति पहुंचाने वाले कीटों से फसल की सुरक्षा, अधिक उपज देने वाले वीजों का चलन, आदि के सन्दर्भ में कृषि पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रभाव की व्यवस्था की जा सकती है ।

1. सिंचन सुविधाएं -

कृषि के लिए जल अनिवार्य तत्व है, यह वर्षा द्वारा या कृत्रिम सिंचाई से प्राप्त किया जा सकता है । जिन क्षेत्रों में वर्षा काफी ओर ठीक समय पर होती है, उनमें पानी की कोई समस्या नहीं होती है, किन्तु जिन क्षेत्रों में वर्षा न केवल कम होती है अपितु अनिश्चित भी है उनमें कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था करनी पड़ती है, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब और रास्थान ऐसे प्रदेश हैं इन क्षेत्रों में खेती के लिए कृत्रिम सिंचाई नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके बिना खेती सम्भव नहीं हे । कुछ क्षेत्रों में वर्षा प्रचुर मात्रा में होने पर भी वर्ष भर में वर्षा के दिन बहुत थोड़े होते हैं, परिणामतः सारे वर्ष खेती सम्भाव नहीं है, इन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने से वर्ष में एक से अधिक फसल उगाने में सहायता मिलती है । चावल, गन्ना आदि कुछ फसलें ऐसी है जिन्हें प्रचुर एवं नियमित जल मिलना आवश्यक होता है, इन फसलों की अधिक उपज के लिए केवल वर्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है । संक्षेप में उचित पैदावार के लिए पानी निरन्तर प्राप्त होना आवश्यक है । भारत में जहाँ 1950-51 में 209 लाख हेक्टेयर भूमि को कृत्रिम सिंचाई प्राप्त थी । वहां वर्ष 1987-88 में 432 लाख हेक्टेयर तथा वष्र 1995-96 में 516 लाख हेक्टे0 भूमि को कृत्रिम सिंचाई व्यवस्था उपलब्ध कराई जा चुकी थी, इन 46 वर्षों के अन्तराल में सिंचाई अधीन क्षेत्र में लगभग 147

प्रतिशत की वृद्धि हुई, यद्यपि यह तथ्य सिंचाई क्षमता में प्रगति का सूचक हैं परन्तु यह अप्रगति अत्यन्त धीमी कही जायेगी ।

एक बात जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है और जिसकी बहुत अधिक उपेक्षा की गई है, भारतीय खेती में जल प्रयोग की कुशलता को बढ़ाना । इसके लिए पानी का भाप के रूप में या अत्यधिक सिंचाई करने या रिसने के कारण पानी के नुकसान को कम करने का प्रयास करना चाहिए । पूर्व स्थापित सिंचाई सुविधाओं का श्रेष्ठतम उपयोग भी इतना ही महत्व रखता है । अभी तक हम अपने सिंचाई सम्बन्धी विनियोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करने में बुरी तरह विफल रहे हैं । अभी तक सिंचाई अधीन क्षेत्र से अधिमतम उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सका, अतः यदि सिंचाई युक्त क्षेत्र से बहु फसल नहीं तो कम से कम दोहरी फसल तो प्राप्त की जा जानी चाहिए । परन्तु सत्य तो यह है कि भारत का अधिकतर क्षेत्र अभी भी एक फसली बना हुआ है । जहाँ 1950-51 में कुल सिंचित क्षेत्र का 8.2 प्रतिशत क्षेत्र ही एक से अधिक वार बोया गया जो 1970-71 में बढ़कर 23.3 प्रतिशत और 1990-91 में 33.2 प्रतिशत । स्पष्ट है कि या तो अधिकतर सिंचाई से केवल एक फसल की ही सुरक्षा होती है या सिंचाई प्राप्त क्षेत्रों में कृषि व्यवहार इतने विकसित नहीं हुए कि एक से अधिक फसल उत्पादित की जा सके । वैज्ञानिकों ने सिंचाई प्राप्त भूमि 10 से 1227 प्रति हेक्टेयर अनाज उत्पन्न करने की सम्भावना बताई है, यदि बहुफसली पद्धति या फसलों के उचित फसल चक्र अपनाए जायें । अतः यह स्पष्ट है कि वर्तमान सिंचाई साधनों के पूर्व प्रयोग द्वारा ही खाद्यान्न के 1760 लाख टन के वर्तमान उत्पादन को 3000 से 5000 लाख टन तक ले जाया जा सकता है ।[3] इस अल्प प्रयोग के कुछ महत्वपूर्ण कारण और उन्हें दूर करने के सुझाव निम्नलिखित हैं :

(अ) आज भारत के अधिकांश कृषकों को सिचाई के प्रयोग के अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक ज्ञान का अभाव है उन्हें वेहतर विस्तार सेवाएं उपलबध करानी होगी जिससे बहुफसल व्यवहार अपनाया जा सके ।

(ब) सिंचाई के अनुकूलतम प्रयोग के लिए सहायक सुविधाएं अर्थात भू समतलीकरण, स्थल सुधार, भूमि की चकबन्दी, कुशल भू कुल्याएं आदि देश के अनेक भागों में नहीं हैं । इस स्थिति में सुधार के लिए बड़े पैमाने पर ग्रामों में सार्वजनिक निर्माण कार्य करने हैंगे ।

(स) आज बड़ी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं का उचित रूप से अनुरक्षण नहीं हो रहा है । छोटी सिंचाई परियोजनाओं विशेषकर तालाबों और कुओं की अधिकतर उपेक्षा की गई है । इस दोष को दूर करने के लिए वर्तमान सिंचाई पद्धति का नवीनीकरण तथा आधुनिकीकरण किया जाये ।

(द) आज दोषपूर्ण सिंचाई व्यवहार और उचित एवम् पर्याप्त जल विकास सुविधाओं का अभाव न केवल जल के अपव्यय के लिए जिम्मेदार है बल्कि जलमग्नता, लवणता तथा क्षारमुक्तता के लिए भी उत्तरदायी है, जिसके कारण कृषि योग्य भूमि के बड़े भाग को स्थाई हानि पहुंची है । जल प्रबन्ध सम्बन्धी शिक्षा और जल विकास सुविधाओं द्वारा यह दोष दूर किया जा सकता है ।

2. यंत्रीकरण :

भारत में हाल के वर्षों में कृषि यंत्रीकरण में तेजी से वृद्धि हुई है । हरित क्रान्ति के बाद तो नवीन कृषि यंत्रों की उत्तरोत्तर मांग बढ़ी है । दूसरे शब्दों में यंत्र शक्ति और व्यापारिक ऊर्जा का कृषि क्षेत्र में उपयोग बढ़ रहा है

इससे कृषि कार्य कम समय में पूरा करने में सहायता मिलती है । भारत में 1966 में जहाँ केवल 53 हजार ट्रेक्टर की वार्षिक मांग की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत रूस के बाद भारत का तीसरा स्थान आता है । पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश के कृषक ट्रेक्टर प्रयोग के प्रति अधिक सक्रिय हुए हैं । इसी प्रकार थ्रेसर, तेलइंजर, विद्युत चालित पम्प सेअ, सुधरे और उन्नत किस्म के हल आदि का प्रयोग तेजी से बढ़ा है । इन यंत्रों की सहायता से कृषक अपेक्षाकृत कम समय तथा उचित समय से कृषि कार्य पूरा कर लेते हैं प्रत्येक वर्ष कृषि यंत्रों का आन्तरिक उत्पादन भी बढ़ा है ।

3. रासायनिक उर्बरकों का प्रयोग :

पौधों को तीन साधनों- हवा, पानी तथा भूमि से खाद्य तत्व मिलते हैं । कार्वन तथा आक्सीजन हवा से तो मिलते ही है पर कुछ अंशों में भूमि से भी मिलते हैं । हाइड्रोजन केवल भूमि से ही मिलती है । भूमि से जो भोजन मिलता है, उसमें कई तत्व जैसे नाइट्रेट्स, फास्फेट्स, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सोडियम

आदि प्रमुख हैं इन्हें मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है, एक को नाइट्रोजन वर्ग कहते हैं जिसमें नाइट्रेट्स सामिल है और दूसरे को खनिज वर्ग कहते हैं जिसमें फास्फेट्स, सोडियम, पोटेशियम तथा धातु शामिल है । इस प्रकार भूमि फसलों की उत्पत्ति का प्रमुख माध्यम बन जाती है । भूमि जो एक परिस्थितिक प्रणाली तथा जड़ों का घर है में पृथ्वी के ऊपरी भाग के वे परत सम्मिलित किए जाते हैं जो कुछ इन्चों से लेकर कई सौ फीट तक मोटे होते हैं, यह परत पानी, बरफ तथा हवा के द्वारा चट्टानों के टूटने फूटने के कारण बन गये हैं । इससे रासायनिक भौतिक और प्राणि सम्बन्धी तत्वों में पारस्परिक परिवर्तनों के कारण ही भूमि फसल उगाने के अनुकूल बन पाती है । फसलों के लिए भूमि की अनुकूलता को ही भूमि की उर्बराशक्ति या उपजाऊपन कहते हैं । यह उर्वराशक्ति दो प्रकार की होती है । यदि भूमि स्वयं उपजाऊ है तो उसे प्राकृतिक उर्वराशक्ति कहते हैं और यदि भूमि पर समुचित श्रम और पूंजी लगी है तो उसे अप्राकृतिक या अर्जित उर्बराशक्ति कहा जायेगा । फसलों को किसी भूमि पर निरंतर उगाने से प्राकृतिक उर्बराशक्ति धीरे-धीरे कम होती जाती है और इसलिए कृषक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस खोये हुए उपजाऊ पर को विभिन्न साधनों द्वारा पुनः प्राप्त करे । कृषक के इस कार्य से भूमि की प्राकृतिक दशा में विध्न पहुंचता है, इसलिए फसलों के उत्पादन के लिए किसाान को भूमि की उपयुक्तता का ज्ञान होना आवश्यक हो जाता है । इस सम्बन्ध में उसे यह भी जानना आवश्यक होता हे कि भूमि पर किस प्रकार की खाद दी जाये कि जिससे अच्छे व बलिष्ट पौधे उगाए जा सके ।4

भूमि के रासायनिक लक्षणों से पौधों के खाद्य तत्वों की वास्तविक पूर्ति का सम्बन्ध होता है, पौधे भूमि से जो आवश्यक तत्व लेते हैं उनमें नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश मुख्य तत्व होता है और ये तत्व भूमि में बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं । ये पोषक तत्व पौधों के विकास को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं, वैसे प्रत्येक तत्व पौधों के शरीर में कुछ विशेष प्रकार का कार्य करते हैं, पर उत्तम परिणाम के लिए सब तत्वों को मिलकर कार्य करना होता हे, इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न पौधों को भिन्न-भिन्न मात्रा में ही प्रत्यक तत्व की आवश्यकता होती है । इस प्रकार पौधों के समुचित विकास के लिए प्राकृतिक या कृतिम खाद के रूप में इन तत्वों की पर्याप्त पूर्ति आवश्यक है ।

रासानिक उर्बरकों में जैवीय खादों के द्वारा आवश्यक तत्वों की पूर्ति में कठिनाई के कारण महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है । अमेरिका और योरूप के अनेक देशों में कृत्रिम खाद द्वारा ही कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है । जैविक पदार्थे की अपेक्षा रासायनिक उर्बरकों से पौधों को पोषक तत्व शीघ्र प्राप्त होते हैं फलस्वरूप इनके द्वारा कृषि उत्पादन में तीब्र वृद्धि होती है, इसके अतिरिक्त रासायनिक उर्बरकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरलता पूर्वक तथा कम समय में लाया और ले जाया जा सकता है । अतः रासायनिक उर्बरकों को भूमि की उर्बराशक्ति को बढ़ाने के लिए प्रयोग करना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है इसलिए बढ़ती हुए जनसंख्या की उदरपूर्ति के लिए खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाना आवश्यक हो जाता है जिसके लिए रासायनिक उर्बरकों का प्रयोग अनिवार्य है ।

भारत में 1965 में नई विकास रणनीति अपनाने के पश्चात रासायनिक उर्वरकों के उपभाग में तेजी से वृद्धि हुई है, परन्तु अभी भी भारत अन्य प्रगतिशील देशों से बहुत पीछे है । उर्वरकों के उपभोग के बारे में उल्लेखनीय वाते निम्नलिखित हैं :-

1. 1991-92 में भारत में उर्वरकों का प्रति हेक्टेयर उपभोग 62 किलोग्राम था इसके विरूद्ध दक्षिण कोरिया 405 कि0ग्रा0, नीदरलैण्ड 315 कि ग्रा0, वेल्जियम 275 कि0 ग्रा0 ओर जापान 380 कि0ग्रा0 है ।

2. उवैरकों के गहन प्रयोग के लिए पानी का एक निश्चित सम्भरण एक महत्वपूर्ण शर्त हे, देश के अधिकांश भागों में सिंचाई की उपयुक्त व्यवस्था न होने के कारण उर्बरक उपभोग बढ़ाने में कठिनाई हुई है ।

3. रवी की फसलें हमारे कुल कृषि उत्पादन में एक तिहाई के समान हैं परन्तु इनके द्वारा कुल उर्वरकों का दो तिहाई हिस्सा उपभोग किया जाता है इसका कारण है कि इनके लिए सिंचाइ की एक निश्चित मात्रा उपलब्ध है तथा भूगर्भ में पर्याप्त नमी विद्यमान रहती है ।

4. उर्वरकों पर प्राप्त होने वाले अर्थ सहायूयों (सब्सिडीज) में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे हमारे सरकारी संसाधनों पर अत्यधिक भार बढ़ा है, परन्तु खेद की बात यह है कि ये अर्थ सहायूय अधिकतर सम्पन्न कृषकों को ही प्राप्त हुए है ।

5 उर्वरकों की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतों में भारी वृद्धि के कारण हम इस बात पर विचार करने के लिए वाध्य हो गये हैं कि अब वनस्पति पोषकों का प्रयोग अधिक किया जाये ।

4. कीटनाशक रसायनों का प्रयोग :

अधिक उपज देने वाले बीजों, कुशल जल प्रबन्ध तथा उर्वरकों के सन्तुलित उपयोग के कारण उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है, परन्तु विदेशी किस्म की पौध के विकास के मध्य विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म वनस्पतियों (खरपतवार) कीटों तथा रोगों के आक्रमण से हानि होने की सम्भावना अधिक रहती है, इसलिए अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि फसल नाशक जीवों तथा रोगों पर नियंत्रण किया जाये । नाशक जीव तथा रोग पौधों को कमजोर बना देते हैं जिसके परिणाम स्वरूप प्राप्त फसल गुण तथा मात्रा दोनों ही दृष्टि से निकृष्ट होती हैं । इसलिए फसलों को कीड़ा तथा रोगों से बचाना आवश्यक हो जाता है । खरपतवार तथा शाक के विनाश से फसलों को अधिक पोषक तत्व तथा अधिक जल की प्राप्ति होती है जिसके परिणामस्वरूप उपज में भी वृद्धि होती है और उपज की किस्म भी अच्छी रहती है । जिससे कृषक लाभान्वित होता है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पौध संरक्षण उपयों में कीटनाशकों का प्रयोग किए बिना कृषि उत्पादन में वृद्धि की सम्भावना अत्यन्त क्षीण हो जाती है ।

भारत में नियोजन प्रारम्भ होने के पूर्व कीटनाशक रसायनों का प्रयोग नगण्य था । प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ के समय भारत में लगभग 100 टन कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता था । नियोजन काल में कीट नाशकों के प्रयोग में आशातीत वृद्धि हुई है और कृषक इनके प्रयोग करने के लिए उत्सुक हैं एवं तत्पर हुए हैं । हरितक्रान्ति के आरम्भ के बाद से पौध संरक्षण हेतु कीट नाशक रसायनों का प्रयोग तीव्रगति से बढ़ा है । वर्ष 1980-81 में 60 हजार टन तथा 1989-90 में 75 हजार टन कीटनाशक रसायनों का प्रयोग हुआ, परन्तु फसलों की बढ़ती हुई बीमारियों को देखते हुए इस दिशा में और अधिक प्रयास की आवश्यकता है ।

5. उन्नतशील बीजों का प्रयोग :-

देश में कृषि उत्पादन की कमी का एक मुख्य कारण भारतीय किसानों द्वारा निम्न कोटि के बीजों का प्रयोग करना है । फसल की किस्म एवं उपज मुख्यतया किसानों द्वारा प्रयोग किए गये बीज की किस्म पर निर्भर करती हैं, जितने अधिक पुष्ट एवं उच्च कोटि के बीज प्रयोग में लाये जायेगे उतनी ही अच्छी फसलें खेतों में उगाई जा सकेगी । संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन ने जापान में अनुसन्धान करके यह सिद्ध किया है कि वहाँ की फसलों की प्रति एकड़ उपज अधिक होने का प्रमुख कारण है वहाँ के कृषकों द्वारा बीजों के चुनाव में अत्यधिक सतर्कता वरतना, वे केवल स्वस्थ्य, शुद्ध तथा आधुनिक वीजों को ही प्रयोग में लाते हैं ।

देश में कृषि विकास के लिए तथा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए शुद्ध एवं उत्तम बीज का प्रयोग एवं प्रबन्ध करना बड़े महत्व का है और इसलिए उत्तम बीज की पूर्ति एवं प्रयोग में वृद्धि करने के लिए सभी प्रकार के प्रयास अपेक्षित हैं क्योंकि कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए नवीन प्रविधियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व अधिक उपज देने वाले चमत्कारी बीजों का समावेश रहा है । 1965-66 की खरीफ फसल से इन चमत्कारी बीजों का प्रयोग प्रारम्भ किया गया । धन की ताईचुंग नेटिव-1 ओर गेंहूँ की लेरमा रोजो किस्मों से कृषि क्षेत्र में चमत्कारी बीजों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ, इसके बाद इस कड़ी में अनेक किस्में जुड़ती गई । कृषि विशेषज्ञों ने इन बीजों की विशेषताएं शोध के द्वारा प्राप्त की हैं । ये बीज अधिकतर बैाने किस्म के होते हैं अर्थात इनके पौधों की ऊंचाई अपेक्षाकृत कम होती है, इदनके पककर तैयार होने में समय भी कम लगता है । इन बीजों द्वारा तैयार फसल धूप ओर उसकी जैव क्रियाओं के प्रति असंवेदनशील होती है । प्रतिकूल मौसम को भी सहन करने की खमता भी अधिक होती है । जैवकीय अभियान्त्रिकी की नवीन खोज चमत्कारी वीजों ने कृषि व्यवस्था में नवीन चेतना उत्पन्न कर दी है, जहाँ 1966-67 में केवल 1.89 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रसार था जो 1980-81 में बढ़कर 43 मिलियन हेक्टेयर, 1985-86 में 65.2 मिलियन हेक्टेयर ओर 1990-91 में 68.4 तथा 1992-93 में 71.6 मिलियन हेक्टेयर हो गया । आगामी वर्षों में इन बीजों के प्रयोग में अधिक वृद्धि की सम्भावना है ।

लगातार बढ़ती जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में आगामी वर्षों में कृषि पर अधिक जनसंख्या का बोझा बढ़ने की प्रवृत्ति स्पष्ट है, इस कारण कृषि क्षेत्र को अधिक खाद्यान्न कच्चे पदार्थ एवं व्यापारिक फसलों की आपूर्ति करने के लिए सुसज्जित करना पड़ेगा । इसके लिए आवश्यक है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के नवीन आयामों का समावेश उन क्षेत्रों में भी किया जाए, जहाँ अभी तक नहीं किया जा सका है । वैज्ञानिक शोध एवं विकास की दिश उन फसलों की ओर उन्मुख होनी चाहिए जिनमें अभी कुछ किया नहीं जा सका है । दलहन और मोटे अनाजों की फसलों पर इसका प्रभाव नगण्य सा ही है । इसी प्रकार विभिन्न स्थानों की पारिस्थितियों के अनुकूल बीजों का विकास किया जाना चाहिए । शुष्क कृषि क्षेत्र को भी सक्षम बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए । कृषि विकास के लिए अव उन वैज्ञानिक विधियों की आवश्यकता है जो संसाधनों और कृषि आगतों का संरक्षण कर सके । इसके द्वारा कृषि आगतों की कम मात्रा से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके ।

6. जैव प्रौद्योगिकी :-

जैव प्रौद्योगिकी एक नवीन विद्या है । जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभी हाल के वर्षों में हुई प्रगति में कृषि, पशुपालन, ओर पर्यावरण सहित अन्य क्षेत्रों में भी अपनी महत्वपूर्ण उपादेयता सिद्ध कर दी है । आनुवांशिक अभियांत्रिकी, कोशिका संयोजन, सैलकल्चर, इम्मोनोलाजी, प्रोटीन इन्जिनियरी आदि को मिला कर जैव प्रौद्योगिकी कहलाती है । विभिन्न क्षेत्रों में इसका बढ़ावा देने के लिए 1982 में राष्ट्रीय जेव प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना की गई । इसका व्यापक प्रसार होने पर क1षि क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति आने की सम्भावना है । जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से पौधे में लाभकारी जीवन तथा रोग प्रतिरोधक जीन प्रवेश कराये जा सकते हैं लाभकारी जीन का प्रवेश कराकर पौधों को लवणयुक्त व सूखाग्रस्त तथा अन्य विषम परिस्थितियों में उगने योग्य बनाया जा सकता है । यह स्पष्ट है कि हम उर्वरकों के आयात पर तथा उत्पादन पर अत्यधिक खर्च करते है, जैव प्रौद्योगिकी की विद्या से खर्चीले उर्वरकों पर हमारी निर्भरता अत्यधिक कम हो जायेगी । देश की मात्रात्मक तथा गुणात्मक खाद्यसमस्या को हल करने में यह महतपूर्ण उपलब्धि होगी ।

फसल विकास के अतिरिक्त जैव प्रौद्योगिकी की पशुधन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका हे । भारत में गाय, भैसों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है परन्तु उनकी

उत्पादकता अत्यन्त निम्न है । नश्ल, सुधार के सम्बन्ध में अब तक जो कार्य हुआ है वह विदेशी जाति के पशुओं से शंकर नश्ल के पशु पैदा करने तक ही सीमित रहा है । जैव प्रौद्योगिकी ने पशुधन विकास के सन्दर्भ में विशेषकर नशल सुधार के प्रति विशिष्ट सम्भावनाएं जागृत कर दी है । उसने भ्रूण परिवर्तन की दिशा में अच्छे परिणामों को प्रदर्शित किया है । इसके द्वारा विश्व के विकसति देशों के अनुरूप पशुधन का विकसित करने में सहायता प्राप्त होगी । गाय और भैंस में सर्जिकल और गैरसर्जिकल दोनों ही किश्म के भ्रूण परिवर्तन परीक्षण सफलता पूर्वक कर लिए गये हैं । भ्रूण प्रतिस्थापन प्रौद्योगिकी द्वारा तीब्र गति से सर्वोत्तम कोटि के पशु धन की प्राप्ति की सम्भावना बढ़ गई हैं । कृत्रिम गर्भाधान की तकनीक से वांच्छित किस्म के पशुओं की संख्या बढ़ाने और उनमें संशोधित उत्पादन क्षमता बढ़ाने के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग से निर्विवाद रूप में कृषि में सुधार आया है । परन्तु इसके ऋणात्मक बिन्दुओं पर ध्याान देने की आवश्यकता है । नवीन प्रौद्योगिकी पोषित कृषि कार्यों में महिलाओं का समावेश कम होता जा रहा हे । कई कृषि कार्य जो पहले केवल महिलाओं द्वारा ही सम्पन्न किए जाते थे उन कार्यों के लिए मशीनों के आने से महिलाओं के कार्य अवसर छिनने लगे हैं, इन मशीनों पर कार्य करने का प्रशिक्षण भी पुरूष श्रमिककों को ही दिया जाता है । इस सन्दर्भ में गहन विचार करनेकी आवश्यकता है । कुछ अन्य परिणाम भी धातक हो रहे हैं । यह पाया गया है कि रासायनिक उर्वरकों का बढ़ता हुआ प्रयोग मिट्टी कोकड़ी बनादेता है जिससे उसकी जल अवशोषण क्षमता घट जाती हे, इससे मिट्टी के गुणधर्म धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगते हैं । विभिन्न कीट नाशकों का प्रयोग भी हानि कारक प्रभाव उत्पन्न कर रहा हे, इन रसायनों का कुछ अंश अनाजों में अवशेषित हो जाता हे जिसका मनुष्यों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है । अन्य विकासशील देशों की भांति भारत भी एक कृषि बीज धनी देश रहा है, चावल और गेंहूँ की हजारों किस्में भारत में रही हैं, परन्तु अब यह शंका की जलाने लगी हे कि इन विभिन्न बीजों की प्रजातियां ही समाप्त हो जायेगी कृषि क्षेत्र में हाल के वर्षों में यंत्रीकरण बढ़ा है, गन्ना पेरने की मशीनें, विद्युत चालित कोल्हू, कुटी काटने की मशीने, थेसर, आदि का प्रयोग बढ़ता जा रहा हे परन्तु इसी अनुपात में इन यंत्रों से होने वाली दुर्घटनाएं भी बढ़ी हैं जिससे हजारों कृषक मजदूर प्रतिवर्ष अपंग हो जाते हैं । अतः कृषि विकास के सन्दर्भ में

आवश्यकता इस बात की है कि कृषि उत्पादन को प्राकृतिक घटकों के प्रतिकूल प्रभावों से यथा सम्भव बचाया जाये, इसके लिए विज्ञान ओर प्रौद्योगिकी के किसी भी प्रारूप को कृषि में प्रयुक्त करने से पूर्व उसकी प्रयोग विधि को बताने के लिए जन सामान्य विशेषकर कृषि मजदूर को आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए । कृषि की परम्परागत तकनीक को भी और अधिक सक्षम बनाया जाना चाहिए कि जिससे अपेक्षाकृत कम आगतों में ही अधिक उपज प्राप्त की जा सके ।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में प्रगति हुई है । इसके परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन आया है । ग्रामीण जीवन में काया पलट स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है । यह ग्रामीण उत्थान समग्र रूप से सरकार द्वारा प्रतिवर्तित कल्याण एवं उत्पादक कार्य, नगरीय करण एवं नगरीय संपर्क, प्रशासनिक सुधार, राजनैतिक जागरूकता, शिक्षा प्रसार एवं विज्ञान प्रौद्योगिकी का विकास का फलन रहा है । प्रौद्योगिकी विकास के ग्राम्य जीवन के उत्थान में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सहायता पहुंचाई है । विज्ञान और प्राद्योगिकीजन्य नगरीय करण की प्रकिया के कारण खेतिहर समुदाय में नई आदतें और जीवन यापन के नये ढंग अपनाये हैं अब वे नये उपकरण और प्राविधिक प्रकियाओं को अपनाने लगे हैं । उनके पहनावे और आभूषणों में उल्लेख्नीय परिवर्तन हुआ है । बहुतायक कृषक और अकर्षक विशेषकर युवा पीढ़ी के लोग नये ढ़ंग के कपड़े पहिनने लगे हैं, परम्परागत पहनावा अब अत्यन्त सीमित होता जा रहा है । नवीन का फैसन का प्रचार और प्रसार अब तुरन्त ग्रामीण पर भी दृष्टिगोचर होने लगा है । ग्रामीण समाज में जीवन की दैनन्दनी बस्तुओं की सूची में नगरीय बस्तुएं जुड़ गई है । स्टील के वर्तन, कप प्लेट, साइकिल, स्कूटर, मोटर साइकिल, घड़ी, कुर्सी मेज, रेडियो, दूरदर्शन, जीप, फायरआर्म्स आदि का ग्रामीण जीवन में प्रभूत मात्रा में होने लगा है, वे अब आधुनिक विकास जन्य बस्तुएं यथा टेपरिकार्डर, कैमरा, गोबर गैस, सिलाई मशीन, प्रेसर कूकर, स्टोव और कीमती साबुनों तथा सौन्दर्य प्रशाधनों का प्रयोग करने लगे हैं ।6

जनपद में कृषि भूमि उपयोग का तकनीकी स्तर

नियोजन से पूर्व जनपद प्रतापगढ़ पूर्णतयः परम्परागत कृषि आगतों पर ही निर्भर था, लगभग समस्त कृषकों द्वारा आन्तरिक आगतों (क्षेत्रगत) का ही प्रयोग किया जाता था, उस समय पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने वाले एक मात्र जैविक उर्वरक थे। जिनको कृषक स्वतः उत्पन्न कर लेते थे। इसी प्रकार बीज, सिंचाई तथा खेत की तैयारी आदि में प्रयुक्त उपकरणों की व्यवस्था कृषक स्वयं कर लेते थें। इन्हें कृषि के परम्परागत निवेष कहा जा सकता है। अब कृषि क्षेत्र में ओद्योगिक उत्पादनों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जिस कारण कृषि उद्योगों पर निर्भरता भी बढ़ती जा रही है। उद्योगजन्य कृषि यंत्र, रासायनिक उर्बरक, कीटनाशक रासायन, ट्रेक्टर, पम्पिग सेट इत्यादि कृषि उत्पादन प्रणाली के अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं। कृषि की नई तकनीकि के प्रचार प्रसार के बाद तो इस दिशा में उल्लेखनीय परिवर्तन हुये हैं जिन्हें कृषिगत नवीन निवेश की संज्ञा दी जा सकती है। कृषि का आगामी स्वरूप भी इन्हीं नवीन निवेशों से प्रभावित होगा।

1 सिंचन सुविधाएं :

प्रकृति प्रदत्त संसाधनेंा में जल अत्यन्त विशिष्ट संसाधन है। यह समस्त जीव व बनस्पति जगत का आधार है। समाज की समस्त क्रियाएं किसी न किसी रूप में जल की अपेक्षा करती हैं। कृषि के सन्दर्भ में इसका विशेष महत्व हैं, क्योंकि कृषि कार्य पूर्णतयः जल आपूर्ति पर निर्भर है, चाहे यह वर्षा से प्राप्त जल हो या नदियों अथवा भूमिगत जल स्रोतों से। कृषि उत्पादिता के आधार भूत घटकों वायु, प्रकाश, जल, भूमि की स्थिति और पोषक तत्वों में से जल की पर्याप्त और सम्यक उपलब्धि से पौधों का वांछित विकास होता है। जल संसाधन के इसी अति लाभदायक प्रयोग के कारण ही कहा जाता है कि 'जल ही जीवन है।'

सिंचाई से आशय है कि मानवीय अभिकरण के माध्यम से विभिन्न फसलों की उपज बढ़ाने के लिए जल के प्रयोग से है, कुछ अन्य निर्माण कार्यो के माध्यम से भी मनुष्य जल के संचय और प्रवाह को नियंत्रित करता है, जिसका उपयोग वह विभिन्न फसलों की सिंचाई में करता है। कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सिंचाई एक उत्प्रेरक की

भूमिका का निर्वाह करती है । सिंचाई से भूमि के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणधर्म में परिवर्तन हो जाता है । सिंचाई से भूमि के आयतन में परिवर्तन होने लगता है जिससे भूमि सातह पर 'खाद मिट्टी' पहले की तुलना में 50 से 75 प्रतिशत तक अधिक हो जाती है । सिंचाई के साथ मिट्टी के कण फैलने औ अधिक स्थान पर आच्छादित होने लगते हैं । मिट्टी के कणों की इसी सहव्यवस्था तथा पुनव्यवस्था के कारण भूमि आयतन में परिवर्तन होता है । समुचित सिंचाई उस व्यवस्था मे अपरिहार्य हो जाती है, जब वर्षा अनिश्चित, अपर्याप्त और सीमित समय अवधि में केन्द्रित होती है, ऐसी स्थिति में सिंचाई की दोहरी भूमि का होती है।एक ओर यह दुर्भिक्ष के विरूद्ध किसी जोखिम के निदान का वीमा है, और दूसरी ओर फसल उत्पादन और उत्पादिता बढ़ाने में इसका प्रमुख योगदान होता है ।

कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था ओर वर्षा की प्रकृति के परिप्रक्ष्य में सिंचाई का जनपदीय अर्थ व्यवस्था में विशेष योगदान है । जनपद में वर्षा का वार्षिक स्तर औसत रूप से 977 मिलीमीटर है । जो सम्यकं कृषि के लिए अपेक्षित वर्ष स्तर से कम है, सामान्य रूप से जहाँ वार्षिक वर्षा का स्तर 1270 मिली मीटर से कम होता है वहाँ बिना सिंचाइ सुविधा के कृषि कार्य कठिन होता हे, इस दृष्टि से जनपद में सम्यक सिंचाई व्यवस्था कृषि विकास के लिए आवश्यक हे । वार्षिक वर्षा की मात्रात्मक स्वल्पता के अतिरिक्त समय के दृष्टिकोण से भी वर्षा का वितरण भी अत्यन्त असमान है । अधिकांश वर्षा जून से सितम्बर तक के महीनों में होती है, शेष महीनरों में सूखा अथवा अत्यल्प वर्षा होती है । जनपद में लगभग 70 प्रतिशत वर्षा कजन से सितम्बर तक, 17 प्रतिशत अक्टूवर से दिसम्बर तक तथा लगभग 13 प्रतिशत वर्ष जनवरी से मई के मध्य होती है । इससे स्पष्ट है कि वर्षा का अधिकांश भाग केवल कुछ महीनों में ही केन्द्रित हो जाता हे जब कि कृषि कार्य वर्ष भर अनवरत जारी रहने की प्रवृत्ति रखता है । वर्ष का कुछ महीनों में सीमित रहना फसलों की विविधता को हतोत्साहित करती है, वे फसलें जिनकी परिपक्वता अवधि लम्बी होती है, वर्षा के अभाव में उनका उत्पादन भी हतोत्साहित होता है ।

नियोजन काल के प्रारम्भ में जनपद में नहरें सिंचाई का सबसे बड़ा स्रोत थी, दूसरा स्थान नल कूपों का था, निजी सिंचाई व्यवस्था का पूर्णतया अभाव था, जो थोड़ा बहुत था भी उसकी क्षमता अत्यन्त न्यून थी, क्योंकि सिंचाई साधन परम्परागत थे

जिनमें तालाबों से बेड़ी द्वारा जल प्रसार तथा कुंओं से चरसे द्वारा हीजल निकाला जाता था, इसके उपरान्त चरसे का स्थान रहट ओर चेनपम्पों ने ले लिया, यद्यपि इनकी क्षमता चरसे से अधिक थी । परन्तु सिचाई की आवश्यकताओं को पूरा करने में यह साधन भी अपर्याप्त थे जिसके कारण निजी नलकूप तथा डीजल पम्प सेटों का महत्व बढ़ता गया और 1990 के उपरान्त इन साधनों ने सिंचाई के क्षेत्र में प्रथम स्थान ग्रहण कर लिया परन्तु नहरों का महल अभी भी कम करके नहीं आंका जा सकता है, नहरे आज भी शुद्ध सिंचित क्षेत्र के आधे से कुछ ही कम कृषि क्षेत्र को सिंचन सुविधा प्रदान करती है । तालिका संख्या 3.1 में जनपद में सिंचाई सुविधा का विकास दर्शाया गया है -

तालिका 3.1

जनपद में सिंचन सुविधा का विकास (हेक्टेयर में)

वर्ष	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	सकल बोया गया क्षेत्र	शुद्ध सिंचित क्षेत्र	शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोये गये क्षेत्र से प्रतिशत	सकल सिंचित क्षेत्र	सकत सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोये गये क्षेत्र से प्रतिशत
1950-51	199417	206648	32385	16.24	35197	17.65
1960-61	200836	221462	37998	18.92	49847	24.82
1970-71	204392	226124	64302	31.46	87643	42.88
1980-81	211765	281895	128711	60.78	146372	69.12
1985-86	214648	310668	140916	65.65	166842	77.73
1990-91	218975	337473	150724	68.83	185666	84.79
1995-96	222106	348810	166392	74.92	231242	104.11

स्रोत - जनपदीय सांख्यिकी कार्यालय प्रतापगढ़

तालिका क्रमांक 3.1 जनपद इटावा के कृषि क्षेत्र को प्राप्त होने वाली सिंचन सुविधाओं के विकास का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिससे स्पष्ट होता है कि योजना प्रारम्भ होने के समय जनपद के शुद्ध बोये गये क्षेत्र में मात्र 16.24 प्रतिशत क्षेत्र को ही सिंचन सुविधा प्राप्त थी जो 1995-96 में बढ़कर 74.92 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र तक पहुंच गया । यदि देखा जाय तो वास्तव में हरित क्रान्ति के प्रारम्भ से ही जनपद में सिंचन सुविधा का विकास तीव्रगति से हुआ कि हरित क्रान्ति में रासायनिक उर्वरिकों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जिसने सिंचाइ की आवश्यकता में वृद्धि की परिणाम स्वरूप सिंचन क्षमता का तीव्रगति से विकास हुआ । सिंचाई सुविधा के विकास से कुल वोये गये क्षेत्र में भी वृद्धि की क्योंकि जिस कृषि क्षेत्र में केवल एक फसल उत्पन्न की जा सकती थी वहीं सिंचाई सुविधा प्राप्त हो जाने से दो फसली

अथवा बहुफसली में परिवर्तित हो गया, यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाताा है कि योजना काल के प्रारम्भ में सकल बोया गया क्षेत्र जहाँ 206648 हेक्टेयर था वह 1995-96 में बढ़कर 348810 हेक्टेयर हो गया । इसके साथ ही शुद्ध कृषि क्षेत्र में भी वृद्धि दृष्टिगोचर हो रही है जो 1950-51 में 199417 हेक्टेयर से बढ़कर 1995-96 में 222106 हेक्टेयर हो गया जिसका स्पष्ट अर्थ है कि जिन क्षेत्रों में सिंचन सुविधाओं के अभाव के कारण फसलोत्पादन सम्भव नहीं था, सिंचन सुविधाएं प्राप्त हो जाने से ऐसे क्षेत्रों में भी फसलोत्पादन संभव हो सका । इसी प्रकार यदि सकल सिंचित क्षेत्र के विस्तार को देखा जाए तो जहाँ योजना काल के प्रारम्भ में मात्र बढ़कर 104.11 प्रतिशत हो गया । सिंचन सुविधा की दृष्टि से देखा जाय तो जनपद की स्थिति सन्ताष जनक कहीं जा सकती है परन्तु अभी भी सिंचन सुवधिाओं के विस्तार की आवश्यकता है क्योंकि अभी भी शुद्ध कृषि क्षेत्र का 25 प्रतिशत से अधिक हिस्सा इस सुविधा से वंचित है ।

(अ)स्रोतवार शुद्ध सिंचित क्षेत्र :

जनपद में विभिन्न स्थानों की भौतिक संरचना में विविधता और भूमिगत तथा सतही जल संसाधन के असमान वितरण के कारण सिंचााई के भिन्न-भिन्न साधनों को प्रयुक्त किया जाता है । जनपद में स्रोतानुसार सिंचााई सुविधाओं की तालिका क्रमांक 3.2 में प्रस्तुत किया गया है -

स्रोतवार सिंचन क्षमता (हेक्टेयर में) वर्ष 1995-96

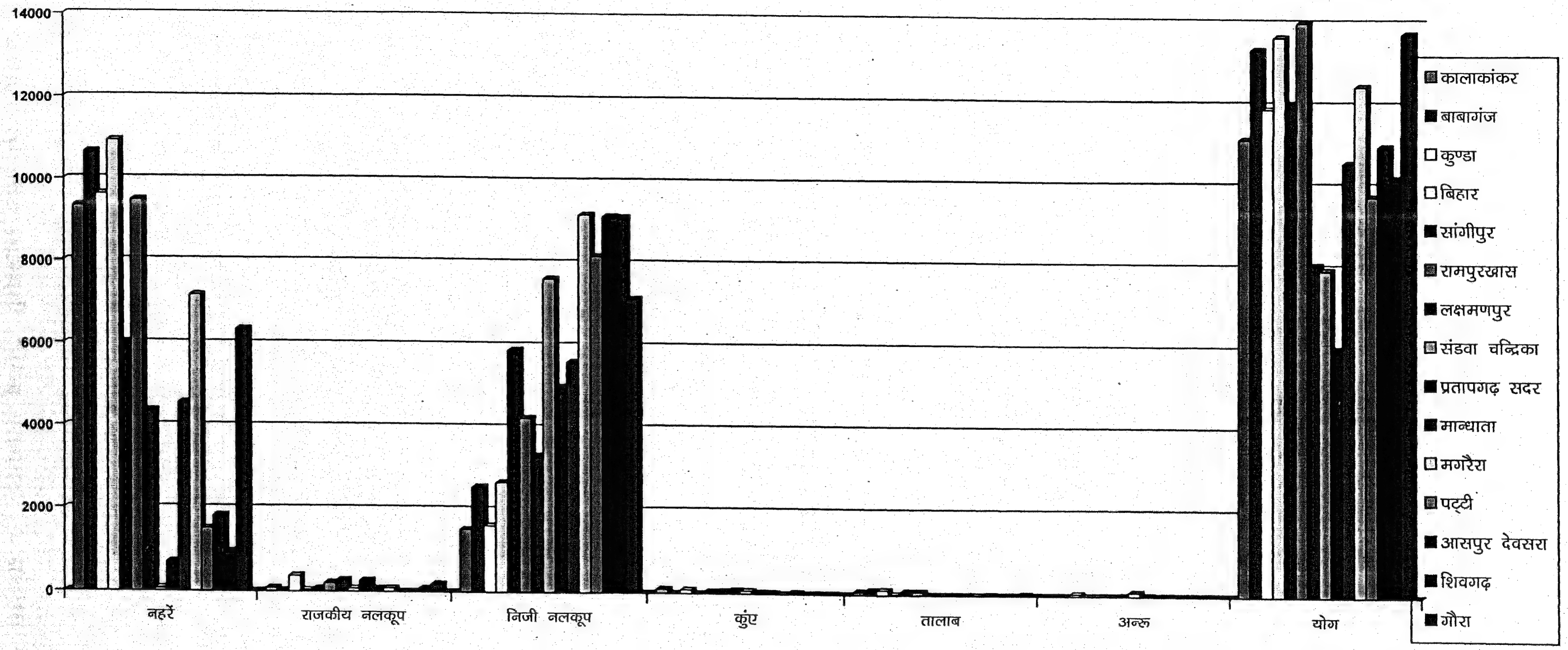

तालिका क्रमांक 3.2.

स्रोतवार सिंचन क्षमता (हिक्टेयर में) वर्ष 1995-96

क्र.	विकासखण्ड	नहरें	नलकूप		कुए	तालाब	अन्य	योग
			राजकीय	निजी				
1	काला	9352	85	1512	104	74	04	11131
2	बाबागंज	10662	16	2532	-	111	-	13321
3	कुण्डा	9629	376	1604	91	117	54	11871
4	विहार	10940	28	2645	-	14	-	13627
5	सांगीपुर	6019	67	5876	56	-	-	12018
6	रामपुरखास	9490	218	4217	58	-	-	13983
7	लक्ष्मणपुर	4364	274	3312	84	10	12	8056
8	सडवा चन्द्रिका	67	72	7610	72	01	101	7923
9	प्रतापगढ़ सदर	704	268	4992	38	7	18	6027
10	मान्धाता	4852	82	5586	28	-	-	10553
11	मगरौरा	3174	86	9173	2	4	-	12439
12	पटट्री	1516	-	8162	39	14	-	9731
13	आसपुर देवसरा	1820	-	9137	06	03	-	10966
14	शिवगढ़	956	88	9118	11	02	09	10184
15	गौरा	6350	191	7132	13	27	-	13713
	योग ग्रामीण	79900	1851	82608	602	384	198	165543
	नगरीय	496	25	148	180	-	-	849
	योग जनपद	80396 (48.32)	1876 (1.13)	82608 (49.73)	(782) (0.23)	(384) (0.23)	(198) (0.12)	165543 (100.00)

स्रोत - जनपदीय सांख्यिकी पमिका प्रतापगढ़ (में प्रतिशत दर्शाया गया है)

तालिका क्रमॉक 3.2 जनपद में विकासखण्ड स्तर पर विभिन्न साधनों से प्राप्त होने वाले सिंचन क्षेत्र का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कर रही है । तुलनात्मक रुप से यदि देखा जाय तो नहरों द्वारा 80396 हेक्टेयर क्षेत्र सिंचित है जब कि निजी नलकूपों द्वारा इससे कुछ अधिक 82756 हेक्टेयर क्षेत्र सिंचाई सुविधा प्राप्त कर रही है । अन्य साधन जिनमें राजकीय नलकूप भी सम्मिलित है, मात्र अपनी उपस्थिति ही दर्शा रही है । निजी नलकूपों की संख्या में 1990 के बाद तेजी से बृद्धि हुई है । क्यों कि नहरों द्वारा जल की अपर्याप्त मात्रा, समय पर जल का उपलब्ध न होना, आदि कारण कृषकों में निजी जल संसाधन के लिए उत्प्रेरक रहे हैं । विकासखण्ड स्तर पर दृष्टिपात करने पर सिंचन क्षेत्र के वितरण में पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ती है जहॉ संडवा चन्द्रिका विकास खण्ड में इस साधन द्वारा मात्र 67 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र सिंचित होता है वहीं विहार विकासखण्ड सर्वाधिक 10940 हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचन सुविधा कराकर प्रथम स्थान पर है, विकास खण्ड बाबागंज 10662 हेक्टेयर क्षेत्र को नहरों द्वारा यह सुविधा प्राप्त करके विहार अनुकरण करते हुए द्वितीय स्थान पर है । राजकीय नलकूपों द्वारा सर्वाधिक सुविधा कुण्डा विकास खण्ड प्राप्त कर रहा है, परन्तु मात्र 376 हेक्टेयर कृषि क्षेंत्र को ही यह सुविधा प्राप्त कर पा रही है । पट्टी, आसपुर, देवसरा तथा बाबागंज विकास खण्ड राजकीय नलकूप बिहीन है परन्तु बाबागंज विकास खण्ड 16 हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचन सुविधा अपने पडोसी विकास खण्डों सें प्राप्त कर रहा है । निजी नजकूपों के संसाधन से मगरौरा (9173 हेक्टेयर), आसपुर देवसरा (9137 हेक्टेयर) तथा शिवगढ़ (9118 हेक्टेयर) विकास खण्ड लगभग एक समान सिंचन सुविधा प्राप्त कर रहे हैं, जबकि इसी संसाधन से कालाकार (1512 हेक्टेयर) विकास खण्ड न्यूनतम लाभ प्राप्त कर पा रहा है, कुण्डा विकास खण्ड (1604 हेक्टेयर) की स्थिति लगभग कालाकांकर -जैसी ही है ।

यदि समग्र सिंचन सुविधा करा तुलनात्मक अवलोकन करें तो रामपुर खास विकास खण्ड 13983 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र को सिंचन सुविधा उपलब्ध कराकर सर्वोच्च स्थान पर है, जबकि प्रतापगढ़, दर विकास खण्ड मात्र (6027) हेक्टेयर सिंचन क्षेत्र

रखकर न्यूपतम स्थिति को दर्शा रहौ । गौरा, विहार तथा बाबागंज विकास खण्ड क्रमशः 13713 हेक्टेयर, 13627 हेक्टेयर तथा 13321 हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराकर लगभग एक समान स्थिति को प्रदर्शित कर रहे हैं । यह भी तथ्य स्पष्ट हो रहा है कि जिन विकास खण्डों में नहर द्वारा पर्याप्त सिंचन सुविधा उपलब्ध नहीं है । वहॉ पर निजी नलकूपों का प्रसार और प्रभाव अधिक है, और जहॉ पर नहरों द्वारा सिंचन सुविधा अधिक है वहॉ निजी नलकूपों का प्रभाव कम दिखाई पड़ रहा है ।

तालिका क्रमांक 3.3

विकास खण्ड स्तर पर सिंचित क्षेत्रफल का विकास

क्र. सं.	विकास खण्ड	सकल सिंचित क्षेत्रफल का शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल से प्रतिशत			शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल का शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल से प्रतिशत		
		1984-85	1991-92	1995-96	1984-85	1991-92	1995-96
1	काला कांकर	124.3	158.1	165.7	68.8	88.3	89.3
2	बाबा गंज	114.4	130.9	171.4	74.4	86.4	84.6
3	कुण्डा	121.0	143.4	160.5	62.7	70.7	74.6
4	विहार	110.9	132.0	168.8	69.1	83.1	84.3
5	सांगीपुर	109.4	110.8	117.8	51.2	67.8	70.7
6	रामपुर खास	115.7	124.7	156.2	69.1	72.1	71.1
7	लक्ष्मणपुर	114.3	113.1	129.5	60.4	74.0	67.1
8	संडवा चंद्रिका	109.2	115.0	119.5	47.0	67.9	58.6
9	प्रतापगढ़ सदर	107.0	110.9	112.6	42.1	49.5	51.2
10	मन्धाता	114.7	133.9	140.7	64.6	74.5	77.3
11	मगरौरा	109.4	117.7	117.8	50.8	68.7	70.6
12	पट्टी	106.4	110.5	115.3	65.4	70.2	76.5
13	आसपुर देवसरा	114.9	121.9	122.2	73.2	77.1	78.9
14	शिवगढ़	104.7	111.8	112.8	48.7	57.3	73.9
15	गौरा	115.3	119.4	134.9	64.8	76.2	91.7
	समस्त विकास खण्ड	113.1	125.0	138.9	61.7	71.9	74.9

स्रोत- सांख्यिकी पत्रिका प्रतापगढ

सांख्यिकी क्रमॉक 3.3 विकास खण्ड स्तर पर सिंचित क्षेत्र के विकास का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिसमें सकल सिंचित क्षेत्र का शुद्ध-शुद्ध सिंचित क्षेत्र का अनुपात 113.1 प्रतिशत से 138.9 प्रतिशत तक पहुँच पाया है । यह अनुपात विकाश खण्ड बाबागंज तथा विहार में सर्वाधिक प्रगति को दर्शाता है जहॉ पर वर्ष 1984-85 के मध्य 50 प्रतिशत से अधिक प्रगति को दर्शाता है । जिसका कारण इन दो जनपदों में नहरों का बिस्तार अधिक है और दोनो ही विकास खण्डों में 70 प्रतिशत से अधिक सिंचाई की सुविधा नहरें प्रदान करती हैं । प्रतापगढ़ सदर विकास खण्ड इस अर्थ में सबसे निम्न स्तरीय प्रदर्शन करता है जिसमें गत दस वर्षों में 5 प्रतिशत से कुछ अधिक प्रगति दिखाई पड़ती है और यह विकास खण्ड सिंचन क्षमता के आधार पर भी समस्त विकास खण्डों में न्यूनतम स्तर प्रदर्शित करता है । शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल का शुद्ध वोये गये क्षेत्रफल के अनुपात पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि वर्ष 1984-85 तथा वर्ष 1995-96 के मध्य गौरा विकास खण्ड सर्वाधिक अच्छी स्थिति में है । और यहॉ इस समय अन्तराल के मध्य लगभग 27 प्रतिशत प्रगति दिखाई पड़ रही है, दूसरा स्थान शिवगढ़ विकास खण्ड का है जहॉ पर 25 प्रतिशत से अधिक का सिंचन क्षमता का विस्तार हुआ है । इसके विपरीत बाबागंज, रामपुरखास तथा लक्ष्मणपुर विकास खण्डों मे इस अनुपात में 1991-92 की अपेक्षा गिरावट दर्ज हो रही है इनमें सर्वाधिक गिरावट लगभग 7 प्रतिशत लक्ष्मणपुर विकास खण्ड में दर्ज की गई है । इस प्रकार सो इस अनुपात को 80 प्रतिशत से अधिक रखने वाले विकास खण्डों में कालाकांकर, बाबागंज, विहारतथा गौरा है इनमें गौरा 91 प्रतिशत से अधिक अनुपात को प्रदर्शित कर रहा है जब कि 70 तथा 80 प्रतिशत के मध्य कुण्डा, सांगीपुर, रामपुरखास, मान्धाता, मगरौरा, पट्टी, आसपुर, देवसरा तथा शिवगढ़ विकास खण्ड स्थित है, शेष विकास खण्ड 70 प्रतिशत से नीचे स्थित हैं ।

सारिणी क्रमॉक 3.4

जनपद में सिंचाई साधनों की स्थिति 1995-96

क्र.	विकास खण्ड	नहरों की लम्बाई (कि.मी.)	राजकीय नलकूप संख्या	पक्के कूप संख्या	रहट संख्या	भूस्तरीय स्रोतों पर लगे पम्प सेटों की संख्या	बोरिंग पर लगे पम्प सेटों की संख्या	निजी नलकूप संख्या
1	कालाकांकर	181	3	312	312	2	1852	199
2	बाबागंज	196	-	305	305	2	3400	347
3	कुण्डा	152	8	321	321	4	1964	241
4	विहार	170	1	233	233	2	2225	394
5	सांगीपुर	101	1	809	808	2	4403	411
6	राम पुरखास	206	4	337	337	1	4958	386
7	लक्ष्मणपुर	127	2	723	722	3	3396	342
8	संडवा चंद्रिका	25	15	640	640	1	3262	394
9	प्रतापगढ़ सदर	25	15	640	640	1	3262	394
10	मन्धाता	109	8	433	433	1	2791	520
11	मगरौरा	153	0	453	453	1	3087	723
12	पट्टी	878	1	359	359	-	5304	553
13	आसपुर देवसरा	100	-	545	545	3	5101	655
14	शिवगढ़	46	13	462	462	-	2558	461
15	गौरा	115	12	307	307	2	2692	567
	योग ग्रामीण	1764	94	6671	6669	24	48464	6743
	योग नगरीय	-	-	43	43	-	-	39
	योग जनपद	1764	94	6714	6712	24	48464	6782

स्रोत - सांख्यिकी पत्रिका जनपद प्रतापगढ़

तालिका क्रमॉक 3.4 जनपद में सिंचाई के विभिन्न साधनों को दर्शा रही है । सिंचाई के समस्त साधनों में सम्पूर्ण जनपद में नहरों तथा नलकूपों का वर्चस्व बना हुआ है, योजनाकाल के प्रारम्भ में सिंचाई का एकमात्र साधन राजकीय नहरें थीं अन्य साधनों से नाम मात्र को ही सिचाई सुविधा प्राप्त हो जाती थी, परन्तु हरित क्रान्ति के प्रारम्भ के साथ ही निजी नलकूपों पम्पसेटों की संख्या में बृद्धि हुई परन्तु यह बृद्धि 1990 के उपरान्त अत्यधिक तेजी से हुई, और वर्तमान समय में इस संसाधन द्वारा सिंचित क्षेत्र से अधिक हो गया है । जहॉ तक नहरों की लम्बाई पर दृष्टिपात करे तो सम्पूर्ण जनपद मे 1764 किलोमीटर नहरें कुल 80396 हेक्टेयर शुद्ध क्षेत्रफल को सिंचन सुविधाएं प्रदान करके शुद्ध सिंचित क्षेत्र के 48 प्रतिशत से अधिक की भागीदारी कर रही है जिसमें लम्बाई की दृष्टि से विकास खण्ड रामपुरखास में सर्वाधिक 206 कि.मी. लम्बी नहरें सिंचन सुविधा प्रदान कर रही है जबकि इसके विपरीत विकास खण्ड संडवा चन्द्रिका अपनी प्रकृतिक स्थिति के कारण मात्र 3 कि.मी. नहरों से ही सिंचन सुविधा प्राप्त कर न्यूनतम स्थिति को प्रदर्शित कर रहा है परन्तु राजकीय नलकूपों की दृष्टि से यह विकासखण्ड सर्वाधिक अच्छी स्थिति में है । राजकीय नलकूपों की सुविधा से बाबागंज तथा आसपुर देवसरा दोनों ही विकासखण्ड अभी तक वंचित सिंचित में हैं, जबकि विहार, सांगीपुर तथा पट्टी विकास खण्ड एक एक राजकीय नलकूप सहित समान स्थिति में हैं । 10 से अधिक राजकीय नलकूप वाले विकास खण्डों में संडवा चन्द्रिका के अतिरिक्त प्रतापगढ़, शिवगढ़ तथा गौरा विकास खण्ड हैं निजी स्वामित्व वाले नलकूपों की दृष्टि से मगरौरा विकास खण्ड सर्वाधिक घनी है । जहाँ 728 नलकूप सिंचन सुविधा उपलबउा करा रहे हैं, दूसरे व तीसरे स्थान पर आसपुर देवसरा (655) तथा संडवा चन्द्रिका (606) विकासखण्ड स्थित है । 500 नलकूपों से अधिक सुविधा वाले विकासखण्डों में पट्टी, गौरा तथा मान्धाता है । इस दृष्टि से न्यूनतम संख्या (199) कालाकांकर विकास खण्ड है, जबकि शिवगढ़ तथा सांगीपुर विकास खण्ड क्रमशः 461 तथा 411 नलकूप रखकर लगभग मध्य मार्गी स्थिति में है । इसी से मिलती जुलती स्थिति में प्रतापगढ़ सदर (394), रामपुर खास (384), रामपुर खास (386), विहार (384), बाबागंज (347) तथाा लम्मणपुर (342) विकास खण्ड है ।

भूस्तरीय तथा बोरिंग पर लगे पम्पसेट जो डीजल चालित तथा कम आश्वशक्ति वाले होते हैं इनकी सिंचन क्षमता भी सीमित होती है, जनपउद में कुल 24 भूस्तरीय

तथा 46464 बोरिंग पम्प सेट सिंचन सुविधा प्रदान कर रहे हैं, इस दृष्टि से पट्टी विकास खण्ड सर्वोत्तम स्थिति में हे जहाँ पर यद्यपि भूस्तरीय पम्पसेट एक भी नहीं है परन्तु 5304 बोरिंग पम्पसेट यह कार्य सम्पन्न कर रहे हैं । आसपुर देवसरा विकास खण्ड न्यूनाधिक पट्टी विकास खण्ड का अनुसरण करते हुए 5101 पम्पसेटें से सिंचन सुविधा प्राप्त कर रहा हे । परन्तु संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड 1471 पम्पसेटों द्वारा न्यूनतम स्तर को प्रदशित कर रहा है । लक्ष्मणपुर, प्रतापगढ़ सदर, बाबा गंज तथा मगदरोरा विकास खण्ड न्यूनाधिकएक समान स्तर का प्रदशन कर रहे है ।

जनपद में पक्के कुओं से रही या चेन पम्प (पर्सियनह्वील) द्वारा जल की निकासी करके सिंचन सुविधा प्राप्त की जाती है यद्यपि पक्के कूपो की संख्या जनपद में कुल 6714 है जिनमें 6712 पर रहट या पर्सियन ह्वील कार्यरत हे, परन्तु नकी सिंचन क्षमता अत्यन्त सीमित होने के कारण समपूर्ण सिंचित क्षेत्र में इनका कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं हे फिर भी यह साधन लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं । जनपद की अधिकतर जायद की फसलों में सब्जियों की खेती करने वाले कृषकों लिए यह साधन अत्यन्त लाभदायक हैं क्योंकि इस साधन में जल की वहाव गति कम होने के कारण भूमि में अधिक गहराई तक नमी पहुंचाने की क्षमता होती है ।

जनपद में सिंचन क्षमता का उपयोग :-

सिंचाई नीति के दो महत्वपूर्ण आयाम होते हैं । प्रथम सृजित सिंचन अक्षूता का उपयोग द्वितीय सिंचन क्षमता का विकास । इनके द्वारा सिंचन सम्भावना का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है । जल संसाधन की उपलब्धि एवम् गुणवत्ता बनाए रखने के लिए जल संसाधन का सम्यक प्रयोग एवं उचित जल प्रबन्ध आवश्यक हे । जल प्रबन्ध का उद्देश्य जल संरक्षण करना, वातावरण में समुचित नमी बनाए रखना ओर कृषि तथा गैर कृषि कार्यों में उपयोग के लिए जल आपूर्ति का पचित स्तर बनाए रखना चाहिए । इसके साथ ही जल का अपव्यय न्यूनतम करना तथा सृजित सिंचन क्षमता का कुशलतम उपयोग वांछित होता है । जल के अपवयय को रोकने का अथ है कि जल को कृषि सीमा में अधिक रोकना, भले ही जल का यह संरक्षण नमी के रूप में ही क्यों न हो, मिट्टी में अधिक नमी से कृषि उपज बढ़ने के साथ साथ सस्य सम्यपदा बढ़ती है ।

योजना काल के बाद विशेष रूप से हरित क्रान्ति के बाद निर्विवाद रूप से जनपद की सिंचन क्षमता, सिंचित क्षेत्र और सिचाई सुविधा में प्रसार हुआ है, परन्तु अभी भी शुद्ध कृषि क्षेत्र में शुद्ध सिंचित क्षेत्र अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच सका हे, यही स्थिति कुल कृषि क्षेत्र में कुल सिंचित क्षेत्र की हे । सिंचित क्षेत्र में भी जल की सामायिक उपलब्धि वाधित होने के कारण उपज अपेक्षित स्तर तक नहीं बढ़ सकी है । राष्ट्रीय प्रदर्शन फर्मों पर समुचित जल प्रबन्ध तथा सम्यक कृषि विधियों को अपनाने से प्रति हेक्टेयर अनाज का उत्पादन 4 से 5 टन तक होता है परन्तु जनपद की वास्तविक स्थिति यह है कि सिंचित कृषि भूमि पर भी अनाज का उत्पादन स्तर केवल 2 से 5 टन प्रति हेक्टेयर तक पहुंच पाता है । अतः उत्पादन को राष्ट्रीय प्रदर्शन फार्मों के स्तर तक पहुंचाने के लिए अभी बहुत कुछ करना शेष हे ।

जनपद में सृजित सिंचन क्षमता का अपेक्षित स्तर अभी तक उपयोग नहीं किया जा सका हे, साथ ही कतिपय स्थानों पर सिंचाई के साधनों के विकास ने जल भराव व क्षारीयता उत्पन्न कर दी है जिससे सिंचित क्षेत्रों में भी कृषक उन्नत बीज, रासायनिक उर्बरक, कीटनाशकः औषाधियों तथा उन्नत कृषि यंत्रों के प्रयोग के प्रति अनिच्छुक हो रहे हैं । अतः आवश्यकता इस बात की है कि सृजित सिंचन क्षमता का उपयोग न केवल अधिकतम किया जाना चाहिए अपितु जल का प्रयोग भी अधिकतम कुशलता से किया जाना चाहिए जिससे सिंचित कृषि क्षेत्र से अधिक लाभदायक उपज प्राप्त की जा सके । 1978 में किए गये वर्गीकरण के अनुसार 10 हजार हेक्टेयर से अधिक समादेश क्षेत्र वाली परियोजनाएं वृहत, 2 हजार से 10 हजार हेक्टेयर समादेश क्षेत्रवाली परियोजनाएं मध्यम सिंचाई परियोजनाएं कहलाती हैं, वे सिंचाई परियोजनाएं जिनका समादेश क्षेत्र 2 हजार हेक्टेयर से कम हे, लघु परियोजनाएं कहलाती है । वृहत एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओं के सामान्यतः बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं सम्मिलित हैं जबकि लघु सिंचााई परियोजनाओं में राजकीय नलकूप, निजी नलकूप, डीजल चलित पम्पसेट, कुंए तथा तालाब आते हैं । जनपद में मध्यम तथा लघु परियोजनाओं के अन्तर्गत सिंचााई साधन प्रचलित हैं, इस साधनों द्वारा किस सीमातक सृजित क्षेमता का उयोग किया जा रहा है, इसका विवरण अग्रतालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

तालिका क्रमांक 3.5

विकासखण्ड स्तर पर सृजित सिंचन क्षमता का उपयोग वर्ष 1995-96

	नहरें				राज कीय	नल कूप		निजी	नलकूप	पंम्पिंग सेंट	रहट/	पर्सियन ह्वील	अन्य
क.	विकास खण्ड	लम्बाई किमी.	सिंचित क्षेत्र हेक्टे.	प्रति किमी सिंचित क्षेत्र हेक्टे..	संख्या	सिंचित क्षेत्र हेक्टे0	प्रति नल कूप सि्ंचित क्षेत्र हेक्ट.	संख्या	सिंचित क्षेत्र हेक्टे	प्रति किमी सिंचित क्षेत्र हेक्टे.	संख्या	सिंचित क्षेत्र हेक्टे0	प्रति किमी सिंचित क्षेत्र हेक्टे.
1	काला कांकर	181	9352	59.2	3	85	28.3	2053	1512	0.74	312	182	0.58
2	बाबा गंज	196	10662	54.4	-	16	-	3649	1532	0.68	305	111	0.36
3	कुण्डा	152	9629	62.3	8	376	47.0	2209	1604	0.73	321	262	0.82
4	विहार	170	10940	64.4	1	28	28.0	2611	2645	1.01	233	14	0.06
5	सांगीपुर	101	6019	59.6	1	67	67.0	4906	5876	1.20	808	56	0.07
6	रामपुर खास	206	9490	46.1	4	218	54.4	5345	4217	0.79	337	58	0.17
7	लक्ष्मणपुर	127	4354	34.4	2	274	137.0	3741	3312	0.89	722	106	0.15
8	संडवा चंद्रिका	03	67	22.3	17	72	4.2	2077	7610	3.66	422	174	0.41
9	प्रतापगढ़ सदर	25	704	28.2	15	268	17.9	3657	4992	1.37	640	63	0.10

10	मन्धाता	109	4857	44.6	8	82	10.2	32224	5586	1.73	433	28	0.06
11	मगरौरा	153	3174	20.7	9	86	9.5	3811	9173	2.41	463	06	0.01
12	पट्टी	78	1516	19.4	1	-	-	5857	8162	1.39	359	53	0.05
13	आसपुर देवसरा	100	1820	18.2	-	-	-	5759	9137	1.59	545	09	0.01
14	शिवगढ़	46	956	20.8	13	88	6.8	3019	9118	3.02	462	22	0.05
15	गौरा	115	6350	55.2	12	191	1509	3221	7132	2.21	307	40	0.13
योग	ग्रामीण	1754	79900	45.3	94	1851	19.7	52016	82608	1.59	6669	1184	0.18
योग	नगरीय	-	496	-	-	25	-	39	148	3.79	43	180	4.19
योग	जनपद	1764	80396	45.6	94	1876	19.9	52055	82756	1.59	6712	1364	0.20

स्रोत :

सांख्यिकी पत्रिका क्रमांक 3.5 जपनद में विकास खण्ड स्तर पर विभिन्न साधनों द्वारा सृजित सिंचाई क्षमता का विवरण प्रस्तुत कर रही है । जनपद में राजकीय नहरों की कुल लम्बाई 1764 किलोमीटर है जो जनपद के क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से सन्तोषजनक कहीं जा सकती है, परन्तु इस साधन द्वारा प्रति किलोमीटर मात्र 45.6 हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराते हुए 80396 हेक्टेयर क्षेत्र को जल उपलब्ध कराया जा रहा हे जो कि सृजित सिंचन खमता का निराशा जनक उपयोग दर्शा रही है, यह स्थिति नितान्त असन्तोषजनक कही जायेगी । राजकीय नहरों का जल यदि कुशलता पूर्वक किया जाये तो औसत रूप में प्रति किलोमीटर 200 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र सिंचित किया जा सकता है । यदि इस औसत को समान्य माना जाये तो जनपद की कुल 352800 हेक्टेयर कृषि भूमि को सिंचित किया जा सकता है जबकि जनपद का सकल वोया गया कृषि क्षेत्र इससे कम अर्थात 348810 हेक्टेयर ही है ।

विकाखण्ड स्तर पर यदि दृष्टि डालें तो ज्ञात होता हे कि विहार विकासखण्ड जनपद में नहरों के जल को प्रति कि.मी. 64.4 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र में पयोग कर रहा हे जबकि कुण्उा इससे कुछ कम 63.3 हेक्टेयर भूमि को सिंचित कर पा रहा है, इस संसाधन की दृष्टि से आसपुरा देवसरा की स्थिति अत्यन्त निराशाजनक कही जा सकती हे जो मात्र 18.2 हेक्टेयर भूमि को ही नहरों द्वारा सिंचित कर पा रहा है । संडवा चन्द्रिका, मगरौरा, पट्टी तथा शिवगढ़ विकासखण्ड भी लगभग एक समान दयनीय स्थिति का प्रदर्शन कर रहे हैं परन्तु इनमें भी संडवा चन्द्रिका कुछ वेहतर स्थिति का प्रदर्शन कर रहा है ।

इसी प्रकार राजकीय नलकूपों द्वारा सृजित सिंचन क्षमता के उपभोग पर विचार करें तो यही लगता है कि सम्पूर्ण जनपद की स्थिति अत्यन्त असन्तोष जनक है, यद्यपि संख्या की दृष्टि से भी सम्पूर्ण जनपद में मात्र 94 राजकीय नलकूप अपर्याप्त हैं फिर भी जो नलकूप हैं भी उनकी सिंचन क्षमता अत्यन्त निम्न स्तरीय है, प्रति नलकूप जनपदीय औसत मात्र 19.7 हैक्टे. इस बात का प्रतीक हे कि इस साधन का कृषकों द्वारा आंशिक प्रयोग ही किया जा रहा है क्यों कि प्रति नलकूप सिंचन क्षमता 50 हेक्टेयर भी मानकर चलें तो जनपदीय औसत इसके आसपास भी नहीं है हॉ लक्ष्मणपुर विकासखण्ड जहां मात्र दो ही राजकीय नलकूप हैं, इन दोनों का भरपूर प्रयोग करते हुए 137 हेक्टेयर प्रति नलकूप का औसत रखकर सर्वोच्च शिखर पर है जबकि

सांगीपुर विकास केवल नलकूप द्वारा 67 हेक्टेयर सिंचाई कर के लक्ष्मणपुर की तुलना में आधी क्षमता का प्रदर्शन कर रहा हे, इसी तरह रामपुर खास विकास खण्ड भी औसत रूप में 54.5 हेक्टे क्षेत्रफल को सिंचन सुविधा उपलब्ध करा कर कुछ सन्तोष जनक स्थिति में हैं कुण्डा विकासखण्ड इससे कुछ कम 47.0 हेक्टे. प्रति नलकूप का औसत प्राप्त करने में सफल हुआ, अन्य विकासखण्ड इस साधन का कुशलतम उपयोग करने में असमर्थ है। इस साधन के द्वारा पूर्ण क्षमता का प्रदर्शन न कर पाने के सामान्य रूप से दो कारण समझ में आते हैं प्रथम तो यह कि राजकीय नलकूपों मे आधे से अधिक तो तकनीकी ख्राबी के कारण लगभग हवर्षभर बन्द पड़े रहते हैं, दूसरे जो नलकूप ठीक भी हैं उन्हें नियमित विद्युत आपूर्ति भी नहीं हो पाती हैं जिसके कारण वे अपनी पूर्ण क्षमता का चाहते हुए भी उपयोग करने में असमर्थ रहते हैं इन दोनों कारणों से राजकीय नलकूपों की विश्वसनीयता कृषकों के मध्य निम्न कोटि की रह गई हैं जो इनके प्रति कृषकों में आकर्षक का अभाव पैदा करती है, अतः सिंचन क्षमता का पूर्ण उपभोग हो सके इसके लिए इस साधन को नियमित विद्युत आपूर्ति के साथ साथ तकनीकी खराबी के कारण बन्द नलकूपों को खराबी के तुरंत वाद ठीक करवाने के प्रयास किए जाने चाहिए अन्यथा सिंचाई का यह महत्वपूर्ण साधन सफेद हाथी बनकर रह जायेगा ।

निजी स्वामित्व वाले नलकूपों तथा डीजल चलित पम्पसेट्स जो भूस्तरीय जल का प्रसार तथा वोरिंग से जल की निकासी करके जल उपलब्ध करवाते है, कि सिंचन क्षमता भी जनपद में निम्न स्तरीय है और औसत रूप में केवल 1.59 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र को ही सिंचन सुविधा उपलब्ध करा पा रहे है विकासखण्ड स्तर पर देखे तो संडवा चंद्रिका विकासखण्ड 3.66 हेक्टेयर प्रति नलकूप सिंचन क्षमता का उपयोग करके सर्वोच्च्य स्थान पर है, जब कि शिवगढ़ विकासखण्ड 3.02 हेक्टेयर क्षेत्र सिंचित करके वरीयता कम में दूसरे स्थान पर स्थित है, मगरौरा भी 2.41 हेक्टेयर प्रति नलकूप का औसत रखकर सामान्य ऊँचे स्तर का प्रदर्शन कर रहा है कमोवेश इसी स्थिति के गौरा विकास खण्ड भी अपने को पा रहा है । अन्य विकास खण्ड सामान्य स्तर के आसपास है हां कालाकांकर, बाबागंज, कुण्डा, रामपुर खास तथा लक्ष्मणपुर विकास खण्ड अत्यन्त दयनीय स्थिति का प्रदर्शन कर रहे है, निजी स्वामित्व वाले नलकूपों/पम्पिंसेट्स सिंचन क्षमता अति न्यून होने के मूल में दो कारण समझ में आते है। एक तो ये साधन इनके मालिकों द्वारा केवल अपनी आवश्यकता की पूर्ति किया जाना दूसरे इन

साधनों की कीमतें अधिक होने के कारण जल की लागत है जिससे लघु एवं सीमान्त कृषक इस सुविधा को क्रय करने में असमर्थ होते है । इन साधनों का प्रयोग अधिकांश कृषकों द्वारा नहरों के पानी की उपलब्धता में अनिश्चतता तथा राजकीय नलकूपों की अविश्वसनीयता के स्वयं को बचाये रखने के लिए उपयोग किए जाते हैं और सम्भवतः यही कारण है कि ये साधन अत्यन्त निम्न सिंचन क्षमता का प्रदर्शन कर रहे हैं ।

न्यूनाधिक यही स्थिति कुओं द्वारा जल आपूर्ति साधनों की है । जनपदों में कुल 6712 कुएं हैं जिन पर रहट अथवा पर्सियन ह्वील लगे हुए हैं और ये कुल 1364 हेक्टेयर कृषि भूमि को जल की आपूर्ति करते हैं जिनकी औसत सिंचन क्षमता मात्र 0.20 हेक्टेयर है । जो कि अत्यन्त न्यून कही जा सकती है । विकास खण्ड स्तर पर कालाकांकर, बाबागंज, कुण्डा तथा सडंवा चांन्द्रिका विकास खण्ड ही जनपदीय स्तर से ऊँचे स्तर पर स्थित है, अन्य विकास ख्ण्ड जनपदीय स्तर से कम स्तर प्रदर्शित कर रहे हैं । इस साधन द्वारा सिंचाई करने से दो प्रत्यक्ष लाभ हैं एक तो इस साधन द्वारा भूमि में पानी की गति कम हाने कारण भूमि द्वारा जल ग्रहण क्षमता अधिक होती है जिससे भूमि में नमी को अधिक समय तक सुरक्षित बनाए रखा जा सकता है । दूसरे इस साधन की लागत कम होने के कारण लघु एंव सीमान्त कृषकों के लिए अत्यधिक उपयोगी है, साथ ही इस साधन द्वारा पशु शक्ति का भी उपयोग हो जाता है । सब्जियों, मसालों व जायद की अन्य फसलों के लिए तो यह साधन सर्वोत्तम माना जाता है अतः इस परम्परागत साधन की उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

स्पष्ट है कि सिंचन क्षमता के स्रजन तथा उपयोग के मध्य व्याप्त अन्तराल एक खटकाने वाला तथ्य है । सिंचन क्षमता की दृष्टि से देखा जाय तो जनपद मे सकल वोये गये क्षेत्र को सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई जा चुकी है परन्तु अभी भी सकल बोये गये क्षेत्र के 66.29 प्रति शत क्षेम को ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो पाना इस तथ्य को स्पष्ट कर रहा है कि सृजित सिंचन क्षमता का कुशलतम उपयोग नहीं हो पा रहा है, अभी तक सिंचाई क्षमता के स्रजन पर ही विशेष जोर दिया जाता रहा है, सिंचन क्षमता के उपयोग तथा जल को खेतों तक पहुचॅाने पर ध्यान नहीं दिया गया । यह अनुमान किया जाता है कि जलाशयों से छोड़े गये जल का आधे से कम ही भाग खेतों तक पहुँच पाता है शेष आधा भग तो नहरों तथा अन्य जल निकासी

मार्गों द्वारा सोख लिया जाता है या नहरो के समुचित रख रखाव न होने के कारण रिस जाता है और किनारे की भूमिओं कों भंयकर क्षति पहुँचाता है । जल रिसाव के कारण इतना ही नहीं, भूमिगत जल स्तर भी बढ़ता है जिससे भुमि में क्षारीयता भी बढ़ती है । इस संबन्ध में आवश्यक है कि जल के कुशलतम उपयोग के लिए तथा सिंचन क्षमता का अनुकूलतम उपयोग करने के लिए अब हमें गम्भीर हो जाना चाहिए, और इस दिशा मे सार्थक प्रयास किए जाने चाहिए ।

2. कृषि यंत्रीकरण

यंत्रीकरण कृषि कार्यो में मानव एंव पशु शक्ति के स्थान पर यांत्रिक शक्ति का प्रयोग है । सफल और उन्नत कृषि के लिए यांत्रिक शक्ति का उपयोग महत्वपूर्ण है । यंत्रीकरण का संबन्ध उन्नत कृषि यंत्रों से है जिनकी सहायता से कृषि उत्पादन की प्रति इकाई लागत में कमी की जा सकती है । यंत्रीकरण द्वारा ऐसी कृषि भूमि पर भी खेती की जा सकती है जो बंजर एंव कम उपजाऊ है । सघन एंव बहु फसली कृषि प्रणाली कृषि के नवीन एंव उन्नत कृषि औजारों की अपेक्षा करती है । यंत्रीकरण से एक और श्रम व मजदूरी में बचत होती है, दूसरी ओर कृषि उपज मे बृद्धि होती है। यंत्रीकरण में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है, प्रथम वर्ग में वे कृषि यंत्र आते है जो खीचने का कार्य करते हैं जैसे परती भूमि को खेती योग्य बनाने, गहरी जुताई करने के लिए प्रयुक्त होते हैं । दूसरे वर्ग में वे यंत्र सम्मिलित किए जाते हैं जो एक स्थान पर स्थिर रहकर कार्य करते हैं जैसे सिंचाई के लिए प्रयोग किए जाने वाले यंत्र कुट्टी काटने की मशीन, थ्रेसर आदि ।

भारत में अभी तक अधिकांश कृषकों द्वारा परम्परागत ढ़ग से ही कृषि कार्य सम्पन्न किए जाते है जिससे समय अधिक लगता है तथा कृषि उत्पादकता भी कम रह जाती है । कृषि की नवीन प्रविधि में कृषि का उत्पादन स्तर समय तत्व से भी प्रभावित होता है, उदाहरण के लिए यदि गेहूँ की फसल की सिंचाई मे विलम्ब होता है तो प्रतिदिन का विलम्ब उत्पादन में कमी करता है । अतः कृषि कार्यों को समयानुसार सम्पादित करने में मानवीय एंव पशु श्रम की क्षमता बढ़ाने वाले कृषि यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है । भारत में कृषि क्षेत्र में शक्ति उपलब्धता का स्तर अत्यन्त नीचा है यह अनुमान किया गया है कि एक फसल के लिए प्रति हेक्टेयर 10 हार्स पावर शक्ति की आवश्यकता है जब कि भारत में प्रति हेक्टेयर केवल 0.75 से 0.80 अश्वशक्ति की ही आपूर्ति हो पाती है जिससे यह कहा जा सकता है कि भारत मे

कृषि क्षेत्र में शक्ति की आपूर्ति की समस्या अत्यन्त गम्भीर है जिन देशों में प्रति हेक्टेयर 3 से 4 अश्वशक्ति तक का प्रयोग किया जाता है, वहॉ का प्रति हेक्टेयर उत्पादन भारतीय स्तर से तीन-चार गुना अधिक है । भारत में भी पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश के अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि शक्ति आपूर्ति और कृषि उत्पादन में सकारात्मक सह सम्बन्ध है ।

फसल उत्पादन और भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में बड़े कृषि यंत्रों के साथ-साथ छोटे कृषि यंत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इन कृषि उपकरणों में परम्परागत रुप से प्रयोग किए जाने वाले उपकरण जैसे हंसिया, खुर्पी, फावडा, हल, पटेला, आदि की उपयोगिता आज तक बनी हुई है । इसके अतिरिक्त कुछ नये तथा सुधरे हुए उपकरण भी आधुनिक कृषि प्रणाली के आवश्यक अंग बन गये हैं इनमें थ्रेसर, डीजल तथा विद्युत चलित इंजन, सुधरे और उन्नत हल, तरल रसायन छिड़कने के लिए स्प्रेयर, पाउडर प्रकार की दवाएं छिडकने वाले डस्टर, मिट्टी पलटने वाले हल, तवे वाली हैरो, बीज तथा खाद बोने वाले यंत्र आदि प्रमुख हैं । इन कृषि यंत्रों की सहायता से कृषि अधिक सरलता पूर्वक कृषि कार्य सम्पन्न कर लेते हैं इन कृषि उपकरणों के उत्पादकों को दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है । प्रथम वर्ग में ग्रामीण दस्तकार तथा छोटे और अतिलघु निर्माता सम्मिलित हैं, इन लोगों द्वारा बनाए गये उपकरणों का अधिकांश भाग लकड़ी का बना होता है, इनके प्रयोग की जाने वाली प्रौद्योगिकी अति प्राचीन है और सुधार की अपेक्षा करती हैं । कृषि उपकरणों के निर्माताओं का दूसरा वर्ग वह है जो लोहे के हल, बीज बुआई यंत्र, थ्रेसर तथा ट्रेलर आदि का निर्माण करते हैं देश में लघु एंव कुटीर उद्योग क्षेत्र में लाखों इकाइयां इस प्रकार है जो इसी तरह के कृषि यंत्र अपनाती है हल के वर्षों में कृषि उपकरणों के उत्पादन में तीब्र बृद्धि हुई है ।

स्पष्ट है कि किसी क्षेम की कृषि विशेषताएं उस क्षेत्र की तकनीकी अवस्था पर निर्भर करती है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अध्ययन क्षेत्र में कृषि कार्यों में यंत्रों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, उदाहरण के लिए जुताइ कार्यों के लिए ट्रेक्टर, सिंचन कार्य के लिए बिजली अथवा डीजल चलित नलकूप तथा पम्पिंगसेट्स, फसल से अनाज अलग करने के लिए थ्रेसर, कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के लिए डस्टर और स्प्रेयर आदि कृषि यंत्रों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है ।इस प्रकार कृषि कार्यों से मानव तथा पशुश्रम का प्रतिस्थापन संचालन शक्ति द्वारा किया जा रहा है

जिससे प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादन मे बृद्धि हुई है, कृषि क्षेत्र का विस्तार भी हुआ है क्यों नदियों, नालो के किनारे की भूमियों को समतल बनाकर कृषि कार्य हेतु उपयुक्त बनाने के सार्थक प्रयास हुए हैं ।

किसी क्षेत्र मे भूमि उपयोग की सफलता उस क्षेत्र में प्रयोग होने वाले यांत्रिक उपकरणों पर आधारित है । इसलिए केवल जीवन निर्वाह कृषि निम्नस्तरीय तकनीकी पर आधारित है, परन्तु कृषि में व्यावसायिक दृष्टिकोण, आधुनिक यंत्रों के प्रयोग से अधिक सम्भव हो सका है, इसके अन्तर्गत उन्नतिशील बीजों रासायनिक उर्बकों, एंव सिंचाई की सुविधा का विशेष महत्व है। व्यापारिक कृषि के लिए यंत्रीकरण एंव परिवहन के साधनों में विकास तथा तैयार माल के भण्डारन की सुविधाएं अति आवश्यक हैं ।

9. इस दृष्टि से अगर देखा जाय तो जनपद में कृषकों का एक बड़ा वर्ग अभी भी अधिकांश परम्परागत औजारों से ही कृषि कार्य सम्पन्न करता है, जिसका मूल कारण है जनपद मे जोतों का अत्यन्त छोटा आकार, यद्यपि चकबन्दी द्वारा जोतों का आकार बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है परन्तु अभी भी जोतों का आकार इतना छोटा है कि चाहकर भी कृषक कृषि कार्यों में यंत्रीकरण का व्यापक स्तर पर प्रयोग नहीं कर सकता है । फिर भी पिछले दो दशकों में जनपद में ट्रेक्टर, थेसर ट्यूवबेल तथा पम्पिंग सेट्स, बुआई यंत्रों, दवा के छिड़कने वाले यंत्रों के प्रयोग में तीब्र गति से बृद्धि हुई है । ट्रेक्टर चूंकि बहुउद्देशीय यंत्र है जिससे जुताई, बुआई, सिंचाई तथा गहराई के साथ-साथ ढुलाई के लिए भी संचालन शक्ति प्राप्त होती है, अतः यह कृषकों के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ है, परन्तु अभी यंत्रीकरण की व्यापक सम्भावनाएं है । अध्ययन क्षेत्र में यंत्रीकरण का विवरण अगतालिका में प्रस्तुत है -

जनपद में विकास खण्ड स्तर पर कृषि यंत्रों का वितरण वर्ष 1995-96

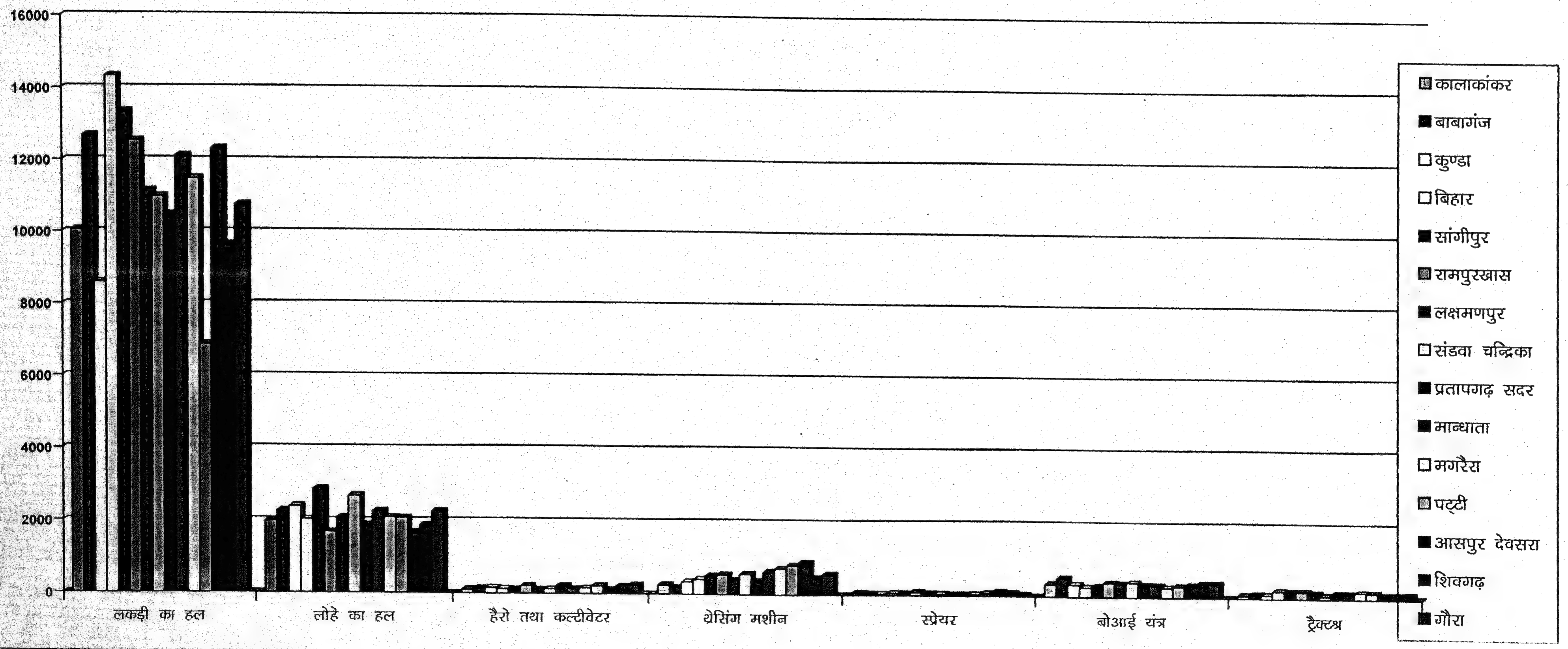

तालिका 3.6

जनपद में विकास खण्ड स्तर पर कृषियंत्रों का वितरण

1995-96

क्र0	विकास खण्ड	लकड़ी का हल	लोहे का हल	हैरो तथा कल्टीवेटर	थ्रेसिंग मशीन	स्प्रेयर	बोआई यंत्र	ट्रेक्टर
1	कालाकांकर	10048	1988	105	260	68	346	92
2	बाबागंज	12682	2279	132	182	40	318	112
3	कुण्डा	8592	2396	146	340	36	336	94
4	विहार	14336	2028	116	408	62	268	202
5	सांगीपुर	13357	2876	105	517	56	290	187
6	राम पुरखास	12536	1684	209	548	88	392	196
7	लक्ष्मणपुर	11150	2088	107	394	52	368	152
8	संडवा चंद्रिका	10980	2688	118	570	46	400	82
9	प्रतापगढ़ सदर	10470	1878	210	366	28	342	148
10	मन्धाता	12122	2269	127	624	37	328	141
11	मगरौरा	11488	2097	147	712	45	270	177
12	पट्टी	6874	2086	221	802	70	312	168
13	आसपुर देवसरा	12320	1688	104	886	118	344	109
14	शिवगढ़	9655	1881	213	472	89	386	115
15	गौरा	10770	2266	247	558	41	392	128
	योग ग्रामीण	167380	32792	2315	7639	885	5292	2103
	योग नगरीय	1250	1385	27	87	22	45	198
	योग जनपद	168630	33578	2342	7726	907	5337	2301

सांख्यिकी पत्रिका जनपद प्रतापगढ़

तालिका क्रमॉक 3.6 जनपद में यंत्रीकरण के स्तर को दर्शा रही है जिससे यह स्पष्ट होता है कि जनपद में अभी भी लकड़ी के हल का व्यापक प्रचलन है परन्तु यह लकड़ी का हल अपरम्परागत न रहकर इसमें आवश्यक परिवर्तन कर दिए गये है । लकड़ी के हल के दृष्टि से विहार विकास खण्ड प्रथम स्थान पर है, सिंगापुर विकास खण्ड दूसरे स्थान पर है । लोहे का हल भी अब पर्याप्त मात्रा में प्रचलन में ये हल एक फल अथवा तीन फल के होते हैं । हैरो तथा कल्टीवेटर का भी प्रचलन बढ़ रहा है जिनकी संख्या जनपदों में अब तक कुल 2342 है, यद्यपि यह संख्या अभी पर्याप्त नहीं है परन्तु इन हलों का तेजी से प्रचलन बढ़ रहा है । कुल मिलाकर जुताई के लिए जनपद में 204550 विभिन्न प्रकार के हल प्रचलन में हैं । ये हल पशुपति द्वारा संचालन शक्ति प्राप्त करते है ।

विभिन्न फसलों से अनाज प्रथक करने के लिए आधुनिक यंत्र जिसे थ्रेसर कहते हैं जिसके प्रयोग से मौसम की अनिश्चितता से भी सुरक्षा प्राप्त होती है, का जनपद में 7726 यंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है इस दृष्टि से आसपुर, देवसरा विकास खण्ड 996 थ्रेसर यंत्र प्रयोग करते हुए जनपद में प्रथम स्थान पर है जबकि बाबागंज केवल 182 थ्रेसर यंत्रों का प्रयोग करते हुए अपना निम्न स्तरीय प्रदर्शन कर रहा है । इस यंत्र में यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग होता है जिसे ट्रेक्टर डीजल इंजन अथवा विद्युत चलित इंजनों द्वारा प्रदान की जाती है । पौधे तथा फसलों को संरक्षण प्रदान करने हेतु कीटनाशक औषधियों का प्रयोग अधिक उपज प्राप्त करने हेतु वांच्छित है, इस दृष्टि से जनपद में कुल 907 स्प्रेयर यह कार्य सम्पन्न कर रहे हैं जिसमें सर्वाधिक 118 स्प्रेयर आसपुर, देवसरा विकासखण्ड प्रयोग करके जनपद में सर्वोच्च स्थान पर तथा प्रतापगढ़ मात्र 28 स्प्रेयर यंत्रों का प्रयोग करते हुए निम्नतम स्थान पर स्थित है । ये यंत्र मानवशक्ति द्वारा संचालित होते हैं ।

भारतीय कृषि यंत्रीकरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान ट्रेक्टर का है क्योंकि यह यंत्र बहुउद्देशीय होता है जिसमें गहरी जुताई, बुआई, सिंचाई, गहराई तथा उपज की ढलाई आदि प्रमुख है । इस दृष्टि से जनपद में कुल 2301 ट्रेक्टर कार्यरत है जिनमें से विहार विकासखण्ड 202 ट्रेक्टरों का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च स्थान पर है इसके विपरीत संडवा चन्द्रिका मात्र 82 ट्रेक्टर रखकर न्यूनतम स्थान पर स्थित है । इस यंत्र के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा इसकी कीमत है जिसे केवल बड़े कृषक ही वाहन करने की क्षमता रखते हैं, यदि कम शक्ति वाले छोटे ट्रेक्टरों को कम कीमत पर कृषकों

को उपलब्ध कराया जाये तो छोटे व मध्यम आकार वाले कृषक भी इस यंत्र का प्रयोग कर सकते हैं ।यद्यपि ट्रेक्टरों को कय करने के लिए व्यावसायिक बैंक कृषकों को ऋण सुविधा भी प्रदान करते हैं, परन्तु ऊँची व्याजदर के कारण अभी भी यह यंत्र मध्यम आकार के कृषकों की पहुँच से दूर है, यही कारण है कि जनपद में इन यंत्रों का प्रसार अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच सका है ।

कृषि कार्यों के लिए फार्मों पर यांन्त्रिक शक्ति ट्रेक्टरों तथा इंजनों से मिलती है । कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त ट्रेक्टरों की अश्वशक्ति सामान्यतः 20 से 50 तक होती है, इसका प्रचलन कार्य के आकार तथा प्रयोग विधि पर निर्भर करता है। जनपद में ट्रेक्टरों की संख्या जो वर्ष 1988 में 1415 थी जो बढ़कर 1995-96 में बढ़कर 2301 हो गई है अर्थात इनकी संख्या में पिछले आठ वर्षो में लगभग 63 प्रतिशत की बृद्धि हुई है जो इस बात का संकेत है कि जनपद में ट्रेक्टरों का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है । सारिणी कमॉक 3.7 में ट्रेक्टरों की संख्या तथा प्रति हेक्टेयर कृषि क्षेत्र दर्शाया गया है ।

सारिणी 3.7

जनपद में प्रति हेक्टेयर कुल कृषि भूमि (हेक्टेयर में) 1995-96

क्र0	विकास खण्ड	सकल बोया गया क्षेत्र	प्रति ट्रेक्टर क्षेत्र	प्रति थ्रेसर क्षेत्र	प्रति स्प्रेयर क्षेत्र	प्रति बोआई यंत्र क्षेत्र
1	कालाकांकर	20506	223	79	302	59
2	बाबागंज	25829	231	142	646	81
3	कुण्डा	26063	277	77	724	78
4	विहार	26868	133	67	433	100
5	सांगीपुर	25629	137	50	458	88
6	राम पुरखास	30656	156	56	348	78
7	लक्ष्मणपुर	18470	122	47	355	50
8	संडवा चंद्रिका	18700	228	33	407	47
9	प्रतापगढ़ सदर	16417	111	45	586	48
10	मन्धाता	22261	158	36	602	68
11	मगरौरा	28383	160	40	631	105
12	पट्टी	19958	119	25	285	64
13	आसपुर देवसरा	23233	213	26	197	68
14	शिवगढ़	19599	170	42	200	51
15	गौरा	24545	192	44	355	63
	योग ग्रामीण	347117	165	45	392	66
	योग नगरीय	1693	9	19	77	38
	योग जनपद	348810	152	45	385	65

स्रोत - सारिणी 3.6 के आधार पर :

सारिणी 3.7 जनपद में यंत्रीकरण के प्रसार को दर्शा रही है जिसमें एकल वोये गये क्षेत्र के आधार पर कृषि यंत्रों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है । सारिणी

से यह ज्ञात होता है कि यद्यपि ट्रेक्टरों की संख्या में विहार विकास खण्ड सर्वोच्च स्थान रखता है परन्तु प्रति हेक्टेयर कृषि क्षेत्र की दृष्टि से प्रतापगढ़ सदर प्रथम स्थान पर जहॉ के सकल वोये गये क्षेंत्र में प्रति 111 हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए एक ट्रेक्टर उपस्थित है जबकि कुण्ठा विकास खण्ड 277 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र पर एक ट्रेक्टर रखकर न्यूनतम स्तर को प्रदर्शित कर रहा है। यदि सम्पूण जनपद के ग्रामीण क्षेत्र में प्रति ट्रेक्टर जोत गये क्षेत्रफल पर दृष्टि डाले तो 165 हेक्टेयर है, इस औसत स्तर से निम्न स्तर को प्रदर्शित करने वाले विकास खण्ड क्रमाशः कुण्डा, बाबागंज, सडंवा चंन्द्रिका, कालाकाकर, आसपुर देवसरा, गौरा तथा शिवगढ़ कुल सात विकास खण्ड हैं जब कि शेष आठ विकास खण्ड इस स्तर से बढ़े हुए स्तर को प्रदर्शित करने वाले हैं । इसी प्रकार प्रति थ्रेसर सकल वोये गये क्षेत्रफल पर दृष्टि डाले तो पट्‌टी विकास खण्ड केवल 25 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर एक थ्रेसर रख रहा है, जबकि आसपुर देवसरा विकासखण्ड पट्‌टी के लगभग समान स्तर को प्रदर्शित कर रहा है, इस दृष्ठि से सबसे निम्न स्तर प्रदर्शित करने वाला विकास खण्ड बाबागंज है जहॉ पर 142 हेक्टेयर क्षेत्र पर 1 थ्रेसर उपलब्ध ही प्रतापगढ़ सरद ठीक ग्रामीण औसत अर्थात 45 हेक्टेयर सरल वोये गये क्षेत्र पर एक थ्रेसर उपलब्ध करा रहा है ।

अधिक उपज प्राप्त करने के लिए रासायनिक औषधियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है, यदि फसलों की रोगाणुओं की सुरक्षा नहीं की जाती है तो अनाज की गुणवत्ता के साथ-साथ उपज भी कम हो जाती है । इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो आसपुर, देवसरा विकासखण्ड सर्वोच्च सुविधाजनक स्थिति में है जहॉ 197 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र पर एक स्प्रेयर उपलब्ध है, इसी विकास खण्ड से मिलती जुलती स्थिति में शिवगढ़ विकास खण्ड स्थिति भी है जहॉ 200 हेक्टेयर क्षेम पर एक स्पेयर फसलों को रोग मुक्त रखने का प्रयास कर रहा है । इस दृष्टि से कुण्डा विकास खण्ड सर्वाधिक असहाय स्थिति में हैं जहॉ पर 724 हेक्टेयर फसलों को एक स्प्रेयर रोग मुक्त रखने का प्रयास कर रहा है जबकि बाबागंज, मान्धाता तथा मगरौरा लगभग एक समान स्थिति में है और ये तीनों ही विकास खण्ड 600 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र की फसलो की एक स्प्रेयर से सुरक्षा करने में प्रयास रहा है । बोआई यंत्रों की दृष्टि से सर्वाधिक सुविधाजनक स्थिति में सडंवा चंन्द्रिका विकास है जहॉ पर औसत 47 हेक्टेयर क्षेत्र को एक उन्नतिशील बोआई यंत्र की सुविधा प्राप्त है, जबकि क्षेत्रफल की दृष्टि से मगरौरा विकास खण्ड प्रति बोआई यंत्र की दर से सैकडा पार कर रहा है और विहार

विकास खण्ड ठीक सैकडे पर स्थित है । अन्य विकास खण्ड कमोवेश इन्हीं के मध्य स्थित है ।

3. रासायनिक उर्बरकों का प्रयोग

भूमि पर जनसंख्या का दबाव तथा भूमि का बढ़ता गैर कृषि कार्यों में प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि फसलों के अन्तर्गत शुद्ध क्षेत्र बढ़ाकर उत्पादन को बढ़ाने की सम्भावना अत्यन्त कम हो गई हैं । अतः अब फसल उत्पादकता बढ़ाकर बढ़ती हुई खाद्यान मांग की अपूर्ति सम्भव है, जिसके लिए गहरी खेती ही एक मात्र उपाय है । परम्परागत कृषि प्रणाली में जैविक उर्बरकों का अधिक प्रयोग होता था अब द्विफसली तथा बहुफसली कृषि होने से जमीन के विभिन्न पोषक तत्वों का अधिक त्वरित एंव गहन शोषण किया जा रहा है, इसलिए विभिन्न जैविक उर्बरक फसलों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने में असमर्थ हैं, इसलिए रासायनिक उर्बरकों का अब कृषि उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण स्थान है । पौधे अपने विकास और पोषण हेजु मिट्टी से 17 भोज्य तत्व ग्रहण करते हैं, जैबिक खादें प्रतिवर्ष की फसल के कारण ह्रास होने वाले उर्बरक तत्वों की क्षतिपूर्ति नहीं कर पाती हैं । वे विशेष रूप से नाइट्रोजन, पोटास, और फास्फोरस की क्षतिपूर्ति करने में समर्थ नहीं हैं क्यों कि जैविक उर्बरको, खादें में नाइट्रोजन, पोटास, और फास्फोरस का अनुकूल मिश्रण नहीं होता है । भूमि की उर्बरकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि भूमि से ह्रास होने वाले पोषक तत्वों की आपूर्ति की जाय जिसके लिए रासायनिक उर्बरकों का प्रयोग आवश्यक है ।

रासायनिक उर्बरक भूमि में पोषक तत्वों की कमी को पूरा करते हैं एंव अधिक उपज के लिए भूमि में क्षमता उत्पन्न करते है, यह भूमि की उर्बरक शक्ति को भी नष्ट होने से बचाते हैं । रासायनिक उर्बरकों से अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उनका संन्तुलित उपयोग किया जाये, जिससे पौधों की उचित मात्रा में नाइट्रोजन, पोटास तथा फास्फोरस उपलब्ध हो सके । फसल विकास में इनका पृथक-पृथक महत्व होता है । रासायनिक उर्बरक पौधों की पत्तियों तथा शाखाओं के विकास में सहायक होता इससे पत्तियों का हराजन बढ़ता है जो अनाज को स्वास्थ्य और मजबूत बनाता है । भारतीय मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी है अतः नत्रजनिक उर्बरकों का प्रयोग आवश्यक है परन्तु मिट्टी में नत्रजन का आवश्यकता से अधिक प्रयोग प्रतिकूल परिणाम भी उत्पन्न करते हैं । इसका आवश्यकता से अधिक उपयोग करने से फसल देर से पकती है, वीमारियों का प्रकोप बढ़ता है और दाने पतले तथा

कमजोर होने लगते हैं । फास्फेटिक उर्बरकों को फास्फेट की मात्रा अधिक होती है फस्फेटिक उर्बरकों को से फसल पककर जल्दी तैयार हो जाती है, बीमारियों से बचने के लिए शक्ति देती है यह दाने के विकास में सहायक है, तथा पत्तियों के प्रसार को रोकता है यह अधिक मात्राा में प्रयुक्त होने पर भी फसल को हानि नहीं पहुँचाता है । पोटाशिक उर्बरक भी नाइट्रोजन और फास्फोरस की भाँति आवश्यक है, यह पोषक तत्वों को पौधों मे एक भाग से दूसरे भाग में स्थानान्तरित कर देता है, दाने के स्वस्थ्य बनाने और पौधों को हरा बनाए रखने में यह सहायक है । यह नाइट्रोजन तथा फास्फोरस की मात्रा को भी संन्तुलित करता है ।

जनपद में हरित क्रांति के प्रारम्भ के साथ ही रासायनिक उर्बरकों के प्रयोग को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, क्यों कि रासायनिक उर्बरकों का संन्तुलित प्रयोग अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की अनिवार्य उपेक्षा है । योजनाकाल के प्रारम्भ में कृषकों को रासायनिक उर्बरकों के प्रयोग के लिए जहॉ पहले सहमत करना पड़ता था वही हरितक्रान्ति के बाद कृषक अब स्वयं ही रासायनिक उर्बरकों के प्रयोग के प्रति तत्पर है, कृषक का दृष्टिकोण में यह परिवर्तन नियिचत रूप से कृषि विकास में सहायक हुआ है । जनपद में रासायनिक उर्बरकों के वितरण को अग्रतालिका में दर्शाया गया है ।

तालिका 3.8

जनपद में रासायनिक उर्बरकों का प्रयोग 1995-96

क0	विकास खण्ड	नाइट्रोजन (मी.टन)	फास्फेट (मी.टन)	पोटाश (मी.टन)	कुल	प्रतिहेक्टेयर (मी.टन)					
1	काला कांकर	1143	268	76	1487	72.51	1878	343	73	2294	111.87
2	बाबागंज	1605	393	84	2082	80.61	2641	502	86	3229	125.01
3	कुण्डा	1358	375	48	1781	58.33	2234	480	45	2759	105.86
4	विहार	1638	372	65	2075	77.23	2693	475	69	3237	120.48
5	सांगीपुर	1189	283	85	1557	60.75	1957	362	79	2398	93.57
6	रामपुर खास	1637	461	98	2196	71.63	2694	590	105	3389	110.55
7	लक्ष्मणपुर	842	242	31	1115	60.37	1386	310	30	1726	93.45
8	संडवा चंद्रिका	945	225	38	1208	64.60	1554	288	34	1876	100.32
9	प्रतापगढ़ सदर	1393	230	76	1699	103.49	2292	264	84	2670	162.64
10	मन्धाता	1358	234	55	1647	73.99	2234	299	54	2587	116.21
11	मगरौरा	1345	367	62	1774	62.50	2213	269	64	2746	
12	पट्टी	1031	311	47	1389	69.60	1697	397	45	2139	107.18
13	आसपुर देवसरा	1239	319	32	1590	68.44	2039	408	32	2479	106.70
14	शिवगढ़	949	174	30	1153	58.83	1561	223	28	1812	92.45
15	गौरा	1436	342	48	1826	74.39	2363	436	44	284	115.83
योग	ग्रामीण	19108	4596	875	24579	70.81	31436	5876	872	38184	110.00
योग	नगरीय	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
योग	जनपद	19108	4596	875	24579	70.81	31436	5876	872	38184	110.00

स्रोत :

सांख्यिकी पत्रिका जनपद प्रतापगढ़

सारणी क्रमांक 3.8 जनपद में रासायनिक उर्बरकों के उपभोग स्तर पर प्रकाश डाल रही है । उर्बरकों के उपभोग के पिछलें छः वर्षो से 64 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई है । जहाँ वर्ष 1990-91 में प्रतिहेक्टेयर उर्बरकों का उपभोग 70.81 किलोग्राम था

वहीं पर वर्ष 195-96 में यह बढ़कर 110 किलोग्राम हो गया है । यदि प्रादेशिक स्तर से तुलना करें तो वर्ष 1990-91 में उत्तर प्रदेश मे प्रति हेक्टेयर उर्बरकों का उपभोग 88.4 कि.ग्रा. था । इसी वर्ष जनपद का उपभोग स्तर प्रादेशिक स्तर से कम 70.81 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ है । विकास खण्ड स्तर पर ऐसे देखें तो उर्बरक उपभोग से बहुत भिन्नता देखने को मिलती है । प्रतापगढ़ सदर जहाँ 162.64 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर उर्बरक उपभोग करके सर्वोच्च्व स्थान प्रदर्शित कर रहा है । वही वरीयता क्रम में सांगीपुर विकास खण्ड का उपभोग स्तर 93.5 कि. ग्रा. सर्वाधिक न्यूनतम स्तर को बता रहा है । जनपदीय औसत 110 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर से अधिक उर्बरक उपभोग करने वाले अन्य विकास खण्डों में क्रमशः बाबा गंज 125.01 कि.ग्रा0, गौरा 115.83 कि.ग्रा., मानधाता 116.21 कि.ग्रा., विहार 120.48 कि.ग्रा., कालाकांकर 111.87 कि.ग्रा. तथा रामपुर खास 110.55 कि.ग्रा. है । शेष विकास खण्ड जनपदीय स्तर से निम्न स्तर प्रदर्शित कर रहे हैं ।

4 कीटनाशक रसायनों का उपभोग :

रासायनिक उर्बरकों की भांति आधुनिक कृषि प्रणाली के लिये पौधसंरक्षण भी एक प्रमुख स्थान रखता है । उर्बरक फसल उत्पादकता बढ़ाते हैं । जबकि पौध संरक्षण रसायन फसलों की छति को रोकते हैं । फसल नाशक जीव तथा रोग पौधों को कम कर देते हैं जिससे न केवल उपज कम हो जाती है बल्कि उपज की गुणवत्ता भी गिर जाती है अतः फसल को कीरों तथा रोगों से बचाना होता है । वर्तमान नवीन कृषि प्रणाली में पौध नाशक कीड़ों और बीमारियों की सक्रियता बढ़ गई है । अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों में बोवाई के बाद अथवा पौधों की विकास की अवधि में सूक्ष्म बनस्पतियों, पौध नाशक कीटों, तथा बीमारियों के आक्रमण की संभावना अधिक रहती है । खेतों में ऐसे कीटों का प्रकोप बढ़ गया है जिन्हें अतीत में भारतीय फसल प्रणाली में देखा ही नहीं गया था, किसी प्रकार ऐसी बनस्पतियों का घासों का भी प्रादुर्भाव हो गया है । जिनका पहले अस्तित्व ही नहीं था । यह भी देखा गया है कि

वे कृषि क्षेत्र जहाँ वर्षा की मात्रा अधिक होने के कारण नमी अधिक रहती है वहाँ फसल बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है । कृषि प्रणाली के अनुभव यह भी संकेत देते हैं कि पहले फसलों का अधिक नुकसान टिड्डी जैसे जीवों तथा घुमन्तू जानवरों से अधिक होता था । परन्तु अब फसलों को अधिक छति पौध नाशक कीटों तथा रोगों से होती है, फसल को बिमारियों से बचाने के लिये स्वतंत्रता से पूर्व जो विधि अपनाई जाती थी वह परम्परागत थी । सर्वप्रथम तो यही माना जाता था कि स्वस्थ पौधे स्वयं बीमारियों से रोक थाम कर लेते हैं इस प्रतिरोधक माध्यम के अतिरिक्त नीम की खली, राख और गोबर का प्रयोग करके पौधों का उपचार कर लिया जाता था । नियोजन काल के बाद विशेष रूप से हरित क्रान्ति के बाद फसलों को विभिन्न बिमारियों और पौध नाशकों से बचाने के लिये कीटनाशक रासायनों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है । अब डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, सल्फर, ब्रोमाइड्स, लिम्डेन, जिन्क आदि फसल प्रणाली से घनिश्ठ हरूप से जुट गये है ।

जनपद की फसलों को कीटों तथा विभिन्न बीमारियों से बचाने के लिये सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं । कृषकों को समय-समय पर आवश्यक कीट नाशक रसायन/ पावडर उपलब्ध हो सकें इसके लिये जनपद के विभिन्न विकास खण्डों में 84 कीटनाशक डिपो कार्यरत हैं जिनकी भण्डारण क्षमता 8400 मी.टन है । विकासखण्ड स्तर पर देखें तो मानधाता तथा मगरौरा विकास खण्डों में प्रत्येक में 10 जिनकी भण्डारण क्षमता 1000 मी.टन प्रत्येक विकासखण्ड पर, विहार विकासखण्ड में 9 डिपों जिनकी भण्डारण क्षमता 900 मी.टन, कुण्डा में 7, भण्डारण क्षमता 700 मी,टन, काला कांकर तथा शिवगढ़ में छः - छः , बाबा गंज, रामपुर खास में पांच - पांच, सांगीपुर तथा लक्ष्मणपुर में चार-'चार, प्रतापगढ़ सदर, आसपुर देवसरा तथा गौरा विकास खण्डों में तीन-तीन, संडवा चन्द्रिका, पट्टी विकास खण्डों में दो-दो डिपो कार्यरत हैं, इनके प्रत्येक डिपो की भण्डारण क्षमता 100 मी.टन है ।

यद्यपि सम्पूर्ण जनपद में कीटनाशकों की आपूर्ति हेतु 84 डिपो कार्यरत हैं जिनकी भण्डारण क्षमता 8400 मी.टन है परन्तु कृषकों को आवश्यक मात्रा में और उपयुक्त समय में ये डिपो कीटनाशकों की आपूर्ति में अक्षम सिद्ध हुये हैं जिस कारण कृषकों में इन रसायनों का प्रयोग व्यापक स्तर पर नहीं किया जा सकता है । खद्यान्न फसलों में गेहूँ, धान, मटर, और यदा कदा चने की फसल, तिलहन में केवल लाही, सब्जियों में हरी सब्जियाँ, आलू के अतिरिक्त गन्ने की फसल में भी इन रसायनों का प्रयोग किया जाता है ।

5. उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग :

बीज कृषि उत्पादन का आधार है । कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए बच्छे बीजों का उत्पादन एवं वितरण आवश्यक है । बीज की गुणवत्ता तथा सामर्थ्य पर ही फसल उत्पादन निर्भर करता हे । भारत में कृषि एक आदि व्यवसाय है इसलिए विभिन्न बीजों की एक लम्बी श्रंखला रही है । यहाँ विभिन्न फसलों यथा धान, गेहूँ, ज्श्वार, बाजरा, मक्का आदि के कई प्रकार के बीज उपलब्ध रहे हैं विभिन्न क्षेत्रों में फसलों की किस्म बदल जाती है यह सवल कृषि व्यवस्था की सूचक है । अलग-अलग किस्म के बीजों से उत्पन्न अनाज के पोषण स्तर एवं स्वाद में अन्तर हो जाता है, विभिन्न बीजों की परिपक्वता अवधि, और उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अलग अलग होती है । यह कहा जा सकता हे कि भारत में बीज दीवार अत्यन्त मजबूत थी । कृषक पीढ़ी दर पीढ़ी इन बीजों का संरक्षण, उत्पादन और सम्वर्धन करते हाये हैं किन्तु कालक्रम में यह अनुभव किया गया कि परम्परागत बीजों की उत्पादकता अत्यन्त कम है इसलिए यह अनुीव किया गया कि नवीन उन्नत किस्म के बीजों का उत्पादन और वितरण किया जाये ताकि बढ़ती हुई मांग के अनुरूप फसल उत्पादन किया जा सके ।

जनपद में इस दृष्टि से देखा जाये तो 321308 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर खाद्यान्न फसलें बोई जाती हैं और 2776 हेक्टेयर क्षेत्र पर तिहलनी फसलें तथा 10044 हेक्टेयर क्षेत्रफल में गन्ना ओर आलू की खेती की जाती है । स्पष्ट है कि विभिन्न

फसलों के अन्तर्गत जनपद में खाद्यान्न फसलों की ही प्रमुखता है । खाद्यानें में 280672 हेक्टेयर है जिनमें उर्द, मूंग, चना मटर तथा अरहर प्रमुख है । जनपद में खाद्यान्न ृसलों में लगभग सभी फसलों के लिए उन्नतशील बीजों का प्रचलन है परन्तु धान तथा गेहँ में इनका प्रयोग व्यापक स्तर पर किया जा रहा हे । दलहनी फसलों में उर्द, मूंग, मटर तथा चना में उन्नत बीजों का व्यापक प्रचलन है, जबकि कुछ कृषक अरहर के लिए भी इन बीजों का प्रयोग करने लगे हैं । तिलहनी फसलों में लाही की फसल के लिए इन बीजों का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है, अन्य तिलहनी फसलों में अभी तक परम्परागत बीज ही प्रयोग होते हैं जायद की फसलों जिनमें हरी शब्जियां, खीरा, ककड़ी, खरबूजा तरबूज आदि में उन्नतशील बीजों का अधिकांश प्रयोग किया जाता हे । समान्यतया सिंचित भूमि पर ही इन बीजों का प्रयोग हो रहा है और असिंचित भूमि पर तो इनका प्रयोग न के बराबर है ।

उन्नत शील बीजों के प्रयोग का क्षेत्र सीमित होने के दो मुख्य कारण है । प्रथम तो इन बीजों की कीमत अधिक होने के कारण छोटे और मध्यम आकार वाले कृषक की क्रय करने की क्षमता नहीं होती है । दूसरे इन बीजों का वितरण अत्यन्त दोषपूर्ण है, सरकार के लाख प्रयास करने के बाद भी यह बीज कृषकों तक समय पर नहीं पहुंच पाते हैं । कभी कभी तो प्रामाणिक बीजों की उत्पादकता इतनी कम हो जाती है कि कृषकों का विश्वास इन बीजों से उठ जाता है क्योंकि कृषक जब मंहगे बीज खरीदकर बोता है तो उससे अपेक्षित प्रतिफल की आशा करता है । वास्तविकता यह है कि इन बीजों की घेषित उत्पादकता तभी प्राप्त हो सकती है जब कि कृषकों को भी वे समस्त सुविधाएं प्राप्त हो जों कि बीज उत्पन्न करने वाले कृषि फार्मो को प्राप्त होती हैं जबकि व्यवहार में कृषकों को वे समस्त सुविधाएं प्राप्त नहीं हो सकती हैं परिणाम स्वरूप बीजों की घोषित उत्पादकता तथा वास्तविक उत्पादकता में अन्तर हो जाता है, इसलिए कृषक इन बीजों के प्रति संदेह करने लगता है कि कृषकों को आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाये जिससे वह इन बीजों से अपेक्षित परिणाम प्राप्त कर सके

यद्यपि जनपद में उन्नत किस्म के बीजों की उपयुक्त वितरण व्यवस्था हेतु पर्याप्त भण्डारण क्षमता स्रजित कर ली गई है । जनपद में विकासखण्ड स्तर पर 204 बीज गोदाम उर्बरक डिपों तथा 198 ग्रामीण गोदाम स्थापित किए जा चुके हैं जिनकी भण्डारण क्षमता क्रमश 20100 मी.टन, तााि 19800 मी.टन है । विकासखण्ड प्रतापगढ़ सदर में तो 24 गोदामों के अतिरिक्त एक बीज वृद्धि फार्म भी कार्यरत है जो विभिन्न फसलों के अधिक उपज देने वाले बीजों को उत्पन्न करके कृषकों को उपलब्ध कराता हे । इस प्रकार प्रत्येक विकासखण्ड में 20 से अधिक बीज गोदाम/उर्बरक डिपो कृषकों को बीज एवं रासायनिक उर्बरक उपलब्ध करा रहे हैं ।

नवीन कृषि नीति जो 1 अक्टूवर 1988 को घोषित की गई है मे यह व्यवस्था की गई है कि कृषकों को विश्व में कही भी उपलब्ध बढ़िया बीजों की आपूर्ति की जायेगी, इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नवीन बीज नीति में तिलहन दलहन, मोटे अनाज, शब्जियों, फल और फलों के उन्नत बीजों के आयात को उदार कर दिया गया है । आयातित बीजों पर पुरानी वयवस्था के अनुसार उनके मूल्यों के 90 से 105 प्रतिशत तक आयात शुल्क को घटाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया है । इसी प्रकार बीज उत्पादन प्रक्रिया में सहायता करने वाली उन मशीनों के आयात को भी उदार बनाया गया हे, जिनका देश में उत्पादन नहीं होता है । कृषि विकास के सन्दर्भ में आवश्यकता इस बात की हे कि कृषि उत्पादन को प्राकृतिक घटकों के कुप्रभावों से यथा सम्भव बचाया जाये तथा खाद्य उत्पादन एवं वितरण की एक राष्ट्रीय नीति को अपनाया जाये । हरित क्रान्ति की व्यापक सफलता इसी तथ्य पर निर्भर है कि वैज्ञानिक कृषि की नवीनतम जानकारी प्रत्येक कृषक परिवार को यथा समय व उचित कीमत पर उपलब्ध हो सके । यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि कृषि की परम्परागत तकनीक को अधिक सक्षम बताया जाये ताकि अपेक्षाकृत कम लागत पर भी अधिक उपज प्राप्त की जा सके ।

अध्ययन क्षेत्र मे कृषि तकनीकी का स्तर

भारतवर्ष में कृषि आधुनिकीकरण का प्रारमी 1966 से प्रारम्भ हुआ, जब विशेष रूप से हरियाणा तथा पंजाब में एक नई कृषि ब्यूहरचना प्रारम्भ की गई । यह आधुनिकी करण पंजांब राज्य के लुधियाना जनपद में गेंहूँ तथा धान के अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रयोग से प्रारम्भ की गई, यही से सम्पूर्ण भारत में कृषि आधुनिकीकरण प्रारम्भ हुआ है । जनपद प्रतापगढ़ में इसका प्रारम्भ 1970 के उपरान्त हुआ, परन्तु प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक तथा प्रशासनिक कारणों से जनपद में कृषि तकनीकी की अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी और आज भी विभिन्न कारणों से कृषि का समग्र आधुनिकीकरण सम्भव नहीं हो सका । प्रदेश के पश्चिमी जिलों की तुलना में अध्ययन क्षेत्र का कृषि तकनीकी स्तर अत्यन्त निम्न है । विकासखण्ड स्तर पर यह भिन्नता देखने को मिलती है ।

कृषि आधुनिकीकरण की गणयना करते समय कृषि कार्यों में प्रयोग किए जाने वाले आधुनिक आगतों के विभिन्न सूचक (संकेतक) निर्धारित किए गये हैं, इन सूचकों की तुलना राष्ट्रीय स्तर से करके कृषि में आधुनिकीकरण के स्तर का संयुक्त सूचकांक प्राप्त किया गया है । संयुक्त सूचकांक में संकेतको की संख्या का भाग देकर भजनफल में 100 का गुणा करके कृषि के आधुनिकीकरण के स्तर को ज्ञात किया गया है । उक्त समस्त क्रिया को निम्नलिखित चरों द्वारा समीकरण का रूप दिया जा सकता है ।

$$Ima = \frac{Te}{Tr} + \frac{Toie}{Toir} + \frac{Hie}{Hir} + \frac{Ipse}{Ipsr} + \frac{Ppce}{Pper} + \frac{Hye}{Hyr} + \frac{Cfe}{Cfr} = \sum LQS$$

कृषि में आधुनिकी करण का कय (सूचकांक) $= \frac{\sum LQS}{n} \times 100$

जहाँ Ima	=	कृषि आधुनिकीकरण के स्तर का संयुक्त सूचकांक
T	=	प्रति 1000 हेक्टेयर सकल जोती गई भूमि पर ट्रक्टरों की संख्या
Toi	=	प्रति 1000 हेक्टेयर सकल जोती गई भूमि पर ट्रेक्टर चालित यंत्रों की संख्या
H i	=	प्रति 1000 हेक्टेयर सकल जोती गई भूमि पर थ्रेसरों की संख्या
IPs	=	प्रति 1000 हेक्टेयर सकल जोती गई भूमि पर नलकूपों की / पम्पसेट्स की संख्या
Ppc	=	प्रति 1000 हेक्टेयर सकल जोती गई भूमि पर कीटनाशक छिड़कने वाले स्प्रेयर संख्या
Hy	=	उन्नतशील बीजों वाली फसलों के क्षेत्रफल का सकल जोती गई भूमि से प्रातिशत
Cf	=	प्रति हेक्टेयर रासायनिक उर्बरकों का उपभोग किलोग्राम में
n	=	आधुनिक कृषि तकनीकी के संकेतों की संख्या
e	=	इकाई क्षेत्र में
r	=	राष्ट्रीय स्तर पर

उपर्युक्त समीकरण के आधार पर जनपद में कृषि आधुनिकीकरण की गणना की गई है :-

जनपद में कृषि आधुनिकी करण का सूचकांक

$$= \frac{6.60}{3} + \frac{15.30}{7} + \frac{22.15}{4} + \frac{158.72}{45} + \frac{2.60}{5} + \frac{31.62}{38} + \frac{110}{38}$$

$$\frac{17.698}{7} \times 100$$

$= 252\text{-}83$ प्रतिशत

जनपद में कृषि आधुनिकीकरण का स्तर 252.83 प्रतिशत है जबकि पंजाब तथा हरियाणा में यह 600 प्रतिशत से अधिक है ।

विकासखण्ड स्तर पर कृषि आधुनिकी करण का स्तर

सारिणी क्रमांक 3.9

क्र0	विकासखण्ड	आधुनिकीकरण का स्तर
1	काला कांकर	196
2	बाबागंज	181
3	कुण्डा	173
4	विहार	203
5	सांगीपुर	253
6	रामपुर खास	235
7	लक्ष्मणपुर	255
8	संडवा चंद्रिका	262
9	प्रतापगढ़ सदर	309
10	मन्धाता	266
11	मगरौरा	231
12	पट्टी	306
13	आसपुर देवसरा	334
14	शिवगढ़	265
15	गौरा	309

विकासखण्ड स्तर पर कृषि आधुनिकीकरण के स्तर में काफी भिन्नता देखने को मिलती है कुण्डा विकासखण्ड का आधुनिकीकरण सूचकांक केवल 173 प्रतिशत है जबकि आसपुर देवसरा विकासखण्ड का सूचकांक उच्चतम 334 है । न्यूनतम और उच्चतम बिन्दुओं के मध्य लगभग दुगने का अन्तर है जो इस बात का प्रतीक हे कि सम्पूर्ण जनपद अीाी आधुनिकीकरण के मध्यम स्तर को ही प्राप्त कर पा रहा है, परन्तु कृषि में यंत्रीकरण का विकास तेजी से हो रहा है ।

कृषि आधुनिकीकरण का स्तर

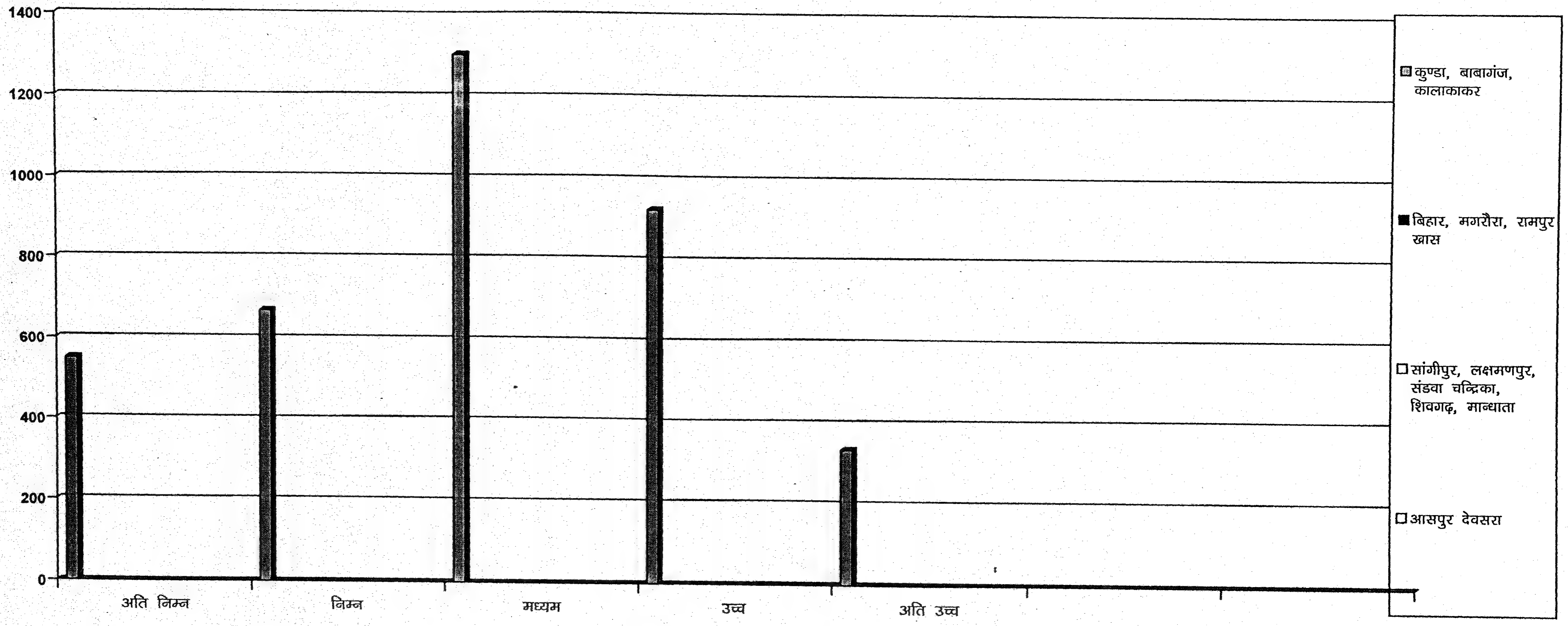

कृषि आधुनिकीकरण का स्तर

सारिणी 3.1॰

सूचकांक	आधुनिकीकरण का स्तर	विकास खण्डों की संख्या	विकासखण्डों का नाम
200 से कम	अतिनिम्न	3	1 कुण्डा, 2 बाबागंज 3. कालाकांकर
200 से 240	निम्न	3	1. विहार 2. मगरौरा 3. रामपुर खास
240 से 280	मध्यम	5	1. सांगीपुर 2. लक्ष्मणपुर 3. संडवा चन्द्रिका 4. शिवगढ़ 5. मान्धाता
280 से 320	उच्च	3	1. पट्टी 2. प्रतापगढ़ सदर 3. गौरा
गौरा 320 से अधिक	अतिउच्च	1	आसपुर देवसरा

सारिणी 3.10 में कृषि आधुनिकीकरण के स्तर की तुलना जनपदीय स्तर से की गई है । सम्पूर्ण जनपद के आधुनिकीकरण का स्तर 252.83 प्रतिशत है जिसे आधार मानकर विकास खण्ड स्तर को पांच श्रेणियों में वांटा गया हे जिसमें 200 से कम स्तर को न्यूनतम संकेत दिया गया है और इसमें कुण्ड, बाबागंज तथा कालाकांकर विकास खण्ड स्थित हैं । इन विकासखण्डों से कुछ अच्छी स्थिति में परन्तु जनपदीय औसत से तुलनात्मक रूप में निम्न स्तरीय प्रदर्शन विहार, मगरौरा तथा रामपुर खास विकास खण्डों का है । जनपदीय औसत से न्यानाधिक स्थिति में सांगीपुर, लक्ष्मणपुर, रामपुर खास विकास खण्डों का है । जनपदीय औसत से न्यूनाधिक स्थिति में सांगीपुर, लक्ष्मणपुर, संडवा चन्द्रिका, शिवगढ तथा मान्धाता कवास खण्ड हे जो यमध्यम आधुनिकीकरण के स्तर 240 से 280 प्रतिशत के मध्य स्थित है । आधुनिकीकरण के उच्च स्तर जो 280 से 320 प्रतिशत के मध्य प्रदर्शन करने वाले विकास खण्ड पट्टी, प्रतापगढ़ सदर तथा गौरा है। आधुनिकीकरण के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त करने वाला एक मात्र विकास खण्ड आसपुर देवसरा है जो 334 प्रतिशत आधुनिकीकरण स्तर को प्राप्त कर रहा हे इस प्रकार जनपदीय औसत से कम स्तर को प्राप्त करने वाले कुल 7 विकासखण्ड है और जनपदीय औसत से उच्च स्तर पर 8 विकास खण्ड हैं :-

अध्याय तृतीय

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. त्रिपाठी बद्री विशाल (1992) भारतीय कृषि पी. 215
2. हनुमन्त राव सी0एच0 - साइंस एण्उ टैक्नोलोजी पॉलिसी -एन ओवर आल ब्यू एण्ड ब्रोडर इम्प्लीकेशन इन एग्रीकल्चर डवलपमेन्ट इन इण्डिया - इण्डियन सोसाइटी आफ एग्रीकल्चर इकोनोमिक्स
3. दत्त आर एवम् सुन्दरम के0पी0एम0 (1994) भारतीय अर्थ व्यवस्था 497 - 498
4. भदौरिया के0एस0 (1997) 'भूमि उपयोग, पोषण स्तर एवम् मानव स्वास्थ्य' जनपद इटावा के विशेष सन्दर्भ में - अप्रकाशित शोध ग्रन्थ बन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी
5. त्रिपाठी बी0बी0 (1992) भारतीय कृषि पी0 223 - 224
6. दि. हिन्दू सर्वे ऑफइण्डियन एग्रीकल्चर 1988

अध्याय–चतुर्थ

कृषि उत्पादकता एवं जनसंख्या संतुलन

अनुकूलतम सस्य स्वरूप संकल्पना

रबी की प्रमुख फसलें

गेहूं

जौ

रबी मौसम के अन्तर्गत दलहनी फसलें

चना

मटर

तिलहन फसलें

खरीफ की प्रमुख फसलें

धान

ज्वार

बाजरा

मक्का

खरीफ की दलहनी फसलें

अरहर

उर्द/मूंग

जायद की फसलें

सस्य विभेदीकरण

सस्य संयोजन

अध्याय चतुर्थ

कृषि उत्पादकता एवं जनसंख्या संतुलन :-

किसी भी क्षेत्र की कृषि जटिलताओं को समझने के लिए उस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्त फसलों का एक साथ अध्ययन आवश्यक होता है। इस अध्ययन से कृषि क्षेत्रीय विशेषतायें स्पष्ट होती है। सस्य संयोजन अध्ययन के अध्यापन के अभाव में कृषि की क्षेत्रीय विशेषताओं का उपयुक्त ज्ञान नही होता है। फसल संयोजन स्वरूप वास्तव में अकस्मात नही होता है अपितु वहां के भौतिक (जलवायु,धरातल, अपवाह तथा मिट्टी) तथा सांस्कृतिक (आर्थिक, सामाजिक तथा संस्थागत) पर्यावरण की देन है। इस प्रकार का अध्ययन मानव तथा भौतिक पर्यावरण कके सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। मानव तथा भौतिक पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों द्वारा ही संस्कृति का विकास होता है। अतः सस्य संयोजन के परिसीमन से क्षेत्रीय कृषि विशेषताओं एवं भौतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का कृषि पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिससे वर्तमान कृषि समस्याओं को भली-भांति समझकर समायोजन योजनाबद्ध तरीके से लागू किया जा सकता है।

अनेक फसलों के क्षेत्रीय वितरण से बने प्रारूप की सस्य स्वरूप कहते है। इसमें प्रत्येक फसल क्षेत्र के प्रतिशत की गणना कुल फसल क्षेत्र से की जाती हे। विभिन्न फसलों की प्रतिशत गणना के पश्चात फसल श्रेणी क्रम ज्ञात किया जाता है जिससे सस्य स्वरूप के अनेक आर्थिक पहलुओं का ज्ञान होता है। कृषक परिवार से राष्ट्रीय स्तर तक अपनाये गये सस्य स्वरूप के अनेक रूप होते है सस्य स्वरूप में अन्तर वहां के भौतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा संस्थागत कारकों को प्रदर्शित करते हैं। इन कारकों के प्रभाव को मापने के उद्देश्य से अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये है। फसल वितरण में क्षेत्रीय एवं सामाजिक अन्तर

मिलता है। कृषि अर्थव्यवस्था में विकास के साथ-साथ फसलों के स्वरूप एवं क्षेत्र में अन्तर होता है। इस प्रकार कृषि एवं आर्थिक विकास की गति तेज होती है। इस दृष्टिकोण से सस्य स्वरूप का आर्थिक पक्ष भी अध्ययन का प्रमुख अंग होता है। अब प्रश्न उठता है कि किसी स्थान विशेष का वर्तमान सस्य स्वरूप अनुकूलित है या नही? अनुकूल सस्य स्वरूप का सुझाव देते समय विभिन्न फसलों के चुनाव तथा वरीयता का क्या आधार होना चाहिए।

फसलों के प्रकार तथा सस्य पद्धति का फार्म की मृदा, सिंचाई तथा अन्य साधनों के उपयोग पर उल्लेखनीय प्रभाव पडता है। फार्म पर उगाने के लिए चुनी गई फसले तथा सस्य पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे फार्म पर उपलब्ध सभी साधनों का समुचित तथा भरपूर उपयोग हो सके और मृदा उर्वरता तथा मृदा के अन्य गुणों में समय के साथ कमी न आये। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब फ़सलों तथा फसलचक्रों का चयन सुस्थापित बैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाये। जब हम फसलों के चयन की बात करते है तो इसके साथ सस्य पद्धति और फसल चक्रों पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। फसल चक्र से आशय एक फसल के बाद दूसरी फसल उगाने के क्रम से है। सभी कृषक कोई न कोई सस्य पद्धति अपनाते है जिसमें एक या अनेक फसल चक्र हो सकते हैं।

अनेक वर्षो से फसल चक्रो पर अनुसंधान किये जा रहे है और वैज्ञानिकों ने अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार के फसल चक्रों को अपनाने की अनुसंसाये की है। फसल चक्रो से खरपतवारों, हानिकारक कीटो, फसल के रोगों और भूमि कटाव की रोकथाम में सहायता मिलती है। फसल चक्र पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन विभिन्न कृषि अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया है। झा[1] ने उत्तरी विहार के चम्पारन जिले के कुछ कृषक परिवारों के सिंचाई साधनों से सम्पन्न फार्म के सस्य स्वरूप के आर्थिक पक्षों का अध्ययन किया है। रामालिंगन[2] ने लघु स्तर पर सस्य स्वरूप तथा अनेक कारक जैसे जोत का

आकार, सिंचाई, शुद्धलाभ, मिश्रित फसल व्यवस्था के प्रभावों का अध्ययन दो आधारों पर किया जाना चाहिए।

1. वृहत प्रदेशीय स्तर
2. लघु प्रदेशीय स्तर

सस्य स्वरूप को वृहत स्तर पर प्रभावित करने वाले कारक

1. मिट्टी
2. जलवायु भिन्नता
3. बाजार सुविधा
4. परिवहन विकास तथा
5. मांग और पूर्ति परिस्थितियां

जब कि लघु स्तर पर प्रभावित करने वाले कारम

1. जोत का आकार
2. रैइयतदारी
3. सिंचाई
4. प्रत्येक फसल से शुद्ध लाभ की प्राप्ति
5. खाद्य आदतें
6. जल संरचना
7. पारिवारिक आय
8. आधुनिक तकनीकी आविष्कारों को अपनाने की क्षमता
9. शिक्षा स्तर
10. सामाजिक व्यवस्थायें एवं परम्परायें आदि। रामालिंगन के कुछ निष्कर्ष इस प्रकार है-

1. जोत के आकार में बृद्धि के साथ-साथ उत्पादित फसलों की संख्या में भी

2. जोत के आकार में बृद्धि के साथ-साथ व्यापारिक फसलों के क्षेत्र में बृद्धि होती जाती है।

3. उत्पादित फसल पर बाजार में विकने वाली कीमत की भी प्रभाव पडता है। लेकिन बडे जोताकार के कृषकों पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पडता है।

4. कृषक परिवार से पूंछतांछ से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक तथा लम्बे समय से अपनाई गई फसल व्यवस्था का प्रभाव सस्य स्वरूप पर अधिकतम पडता है। मजीद का भी यही निष्कर्ष है कि सस्य स्वरूप को निर्धारित करने में जोत का आकार एक महत्त्वपूर्ण कारक है। विशेष रूप से खाद्यान्य तथा मुद्रादायनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र निर्धारित करने में कृषक जोत के आकार से प्रभावित होता है। शहरी सीमान्त क्षेत्रों के सस्य स्वरूप के अध्ययन के आधार पर जोगलेकर का निष्कर्ष है कि जोत के आकार में बृद्धि के साथ-साथ व्यवहारिक फसलों के क्षेत्र में बृद्धि होती है तथा खाद्यान्य फसलों में ह्रास होता है। मण्डल तथा घोष का निष्कर्ष है कि छोटी जोत के आकार वाले कृषकों को चार फसल से अधिक नही उगाना चाहिए। क्योंकि 4 या 4 से कम फसलों के उत्पादन से ही कृषक को अधिक लाभ हो सकता है तथा अनेक फसलोत्पादन की अपेक्षा जोखिम भी कम रहता है।

आर्थिक कारकों में बाजार में फसल की कीमत तथा सर्वाधिक आय भी सस्य स्वरूप को प्रभावित करती है इसलिए गन्ना क्षेत्र तथा बाजार क्षेत्र में प्राप्त कीमत का घनिष्ट सम्बन्ध मिलता है, जूट, चावल क्षेत्र तथा मूल्य का सह सम्बन्ध मिलता है। बाजार में इन फसलों की मूल्य बृद्धि के साथ क्षेत्र में भी बृद्धि हो जाती है। झा का भी यह निष्कर्ष है कि चम्पारन जिले में चावल तथा मेवडा सस्य समिश्रण से कृषकों को प्रति एकड सर्वाधिक आय होती है। राजकृष्ण के अनुसार पंजाब के सस्य स्वरूप में हाल के परिवर्तन का मुख्य कारण प्रति एकड पारस्परिक लाभ

की चेतना है। अनेक क्षेत्रों में फसल विनाश के जोखिम को कम करने की आवश्यकता के दृष्टिकोण से सस्य स्वरूप को अपनाया जाता है। अनेक क्षेत्रों में मक्का तथा ज्वार की खेती इसलिए की जाती है कि सूखे मौसम में फसलोंत्पादन के जोखिम को कम किया जा सके। पूर्व उत्तर प्रदेश में खरीफ फसलों की मिश्रित खेती सांवा+ अरहर+उर्द+बाजरा विषम मौसम में बीमा का कार्य करती है। फलस्वरूप पूर्वी उत्तर प्रदेश के सस्य स्वरूप के मिश्रित खेती का महत्वपूर्ण स्थान है जबकि प्रति एकड शुद्ध लाभ के दृष्टिकोण से सस्य स्वरूप अपेक्षाकृत कम लाभप्रद है, जोगलेकर के मतानुसार बीमारियों से प्रभावित हेने के कारण अनेक छोटे जोत वाले कृषक मिर्च की खेती नही करते हैं इसी प्रकार मूल्य में कमी वृद्धि के कारण तिलहन की खेती नही करते हैं।

खरीफ तथा रबी फसलों की कटाई की अवधि के बीच में मुद्रा प्राप्ति के दृष्टिकोण से भी कुछ फसलों का उत्पादन किया जाता है कोयम्बटूर के निकट केला तथा गन्ने की खेती श्रम अभाव का प्रतिफल है। माथुर के अध्ययन के अनुसार विदर्भ में एक ऐसे सस्य स्वरूप को अपनाया जाता है जिसमें पुरूष श्रमिकों को वर्ष भर कार्य मिलता है। लागत उपलब्धि सम्बन्धी सुविधायें भी सस्य स्वरूप को निर्धारित करती है। कृषक द्वारा फसल के चुनाव में बीज खाद सिंचाई तकनीकी ज्ञान पूंजी यातायात सम्भवरण तथा बाजार सुविधाओं का प्रभाव पडता है। माल्या के अनुसार उत्तरी तथा दक्षिणी आरकाट जिले में खाद्य फसल क्षेत्र तथा बाजार से दूरी का धनात्मक सह सम्बन्ध है। शासन द्वारा जारी किये गये अनेक भूमि अधिनियम योजनायें कर, खाद्य फसल कानून, भूमि उपयोग कानून, गहरी खेती योजना, उत्पादन कर, आयात निर्यात कर तथा ग्रामीण विद्युतीकरण का सस्य स्वरूप पर स्पष्ट प्रभाव पडता है।

फसलों का वितरण अध्ययन स्थान एवं समय के सन्दर्भ में किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन को तीन शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है।

1. फसलों का क्षेत्रीय वितरण अध्ययन :-

इस प्रकार के अध्ययन से फसल के क्षेत्रीय महत्व का ज्ञान प्राप्त होता है। तथा सम्बन्धित कारकों का भी अध्ययन एवं स्पष्टीकरण होता है। हुसेन ने उत्तर प्रदेश के सस्य एकागता के प्रतिरूपों का अध्ययन किया है। हुसेन के मतानुसार गन्ना फसल प्रदेश से आशय उस क्षेत्र की कृषि भूदृश्यावली में गन्ना फसल क्षेत्र के अधिकतम संकेदण से है। हुसेन ने उ0प्र0 की अनेक उत्पादित फसलों (चावल, बाजरा, मक्का, गेहूं, चना, जौ तथा गन्ना) की सकेद्रण सूची निकालते हुए प्रत्येक फसल को पांच वर्गो में विभाजित किया गया है। वास्तव में यह अध्ययन फसल वितरण सम्बन्धी विशेषताओं को भलीभांति समझने में महत्वपूर्ण है। क्षेत्रीय वितरण अध्ययन में दूसरे उपागम का सम्बन्ध सीधे फसल प्रतिशत के आधार पर सस्य वरीयता के विश्लेषण से है। ऐसा तरीका सामान्य रूप से कृषि अर्थशास्त्रियों द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय स्तरों पर अपनाया गया है इनमें कुछ अध्ययन तहसील तथा विकासखण्ड के स्तर से भी किये गये है। जिनमें गांव को न्यूनतम इकाई मानकर आंकडों को प्रदर्शित किया गया है। बृहद क्षेत्रीय अध्ययन में कुछ चुने गये प्रतिदर्शी गांवों में सस्य स्वरूप का अध्ययन भी किया गया है।

2. <u>फसलों का क्षेत्रीय परिवर्तन</u> :- साधारण फसलों के दो वर्षो (समयान्तर में) के आधार पर क्षेत्रीय परिवर्तन सम्बन्धी अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए गेहूं फसल के क्षेत्र में 1911 तथा 1971 के वर्षो में क्षेत्रीय परिवर्तन/इस प्रकार के अध्ययन में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

तालिका 4.1 ग्राम अ के सस्य स्वरूप में हटाव

विवरण	गेहूं	गेहू चना	दालें	धान	मक्का बाजरा	गन्ना	सब्जी	मूमफली	चारा
चार वर्षीय औसत अन्तिम वर्ष 1980-81	28.7	4.2	13.9	1.2	11.1	16.4	0.5	5.3	18.7
चार वर्षीय औसत अन्तिम वर्ष 1987-88	28.4	6.0	3.0	1.5	7.2	21.8	-	1.5	30.9
चार वर्षीय औसत अन्तिम वर्ष 1980-81	-0.3	+1.8	-10.9	+0.3	-3.9	+5.4	-	-4.2	+11.9
घट-बढ	-1.04	+42.8	-78.4	+29.4	-35.1	+32.9	-	-74.1	+68.1

अ. क्षेत्रीय घट बढ

ब. क्षेत्रीय परिवर्तन

स. हटाव

द. विचलन

जब फसल वितरण का अध्ययन दो विभिन्न समयों में प्रतिशत अन्तर के माध्यम से किया जाता है तो उसे क्षेत्रीय घट-बढ कहते हैं दो वर्षों में फसल अन्तर को मापने के लिए किसी एक वर्ष को आधार मानकर परिवर्तन प्रतिशत की गणना की जाती है तब उसे क्षेत्रीय परिवर्तन कहते है। इन शब्दों का प्रयोगात्मक अर्थ तालिका 4.1 के आधार पर समझा जा सकता है।

रामा सुब्बन ने सस्य स्वरूप परिवर्तन के अध्ययन में क्षेत्रीय घट-बढ तथा क्षेत्रीय परिवर्तन शब्दों के प्रयोग की आलोचना करते कम महत्वपूर्ण बताया । इनके अनुसार सस्य स्वरूप में दो प्रकार का परिवर्तन होता है, इन दोनों परिवर्तनों का नामकरण इन्होने हटाव विचलन के रूप में किया। अ' और ब' सस्य स्वरूपों में जो अन्तर होता है उसे हटाव कहते है। अ' सस्य स्वरूप के अन्तर्गत अनेक फसलों के क्षेत्र के अन्तर को विचलन कहते हैं। इस प्रकार हटाव शब्द का प्रयोग सस्य स्वरूप के वाह्य घटवढ के लिए किया जाता है जबकि विचलन शब्द का प्रयोग एक ही सस्य स्वरूप में अनेक फसलों के आन्तरिक अन्तर के लिए किया जाता है। सस्य स्वरूप में परिवर्तन सम्बन्धी दो दशायें-

1. दो सस्य स्वरूपों में बिना हटाव के भी विचतन की मात्रा अधिक हो सकती तथा
2. विचलन की अनुपस्थिति में भी सस्य स्वरूप में हटाव हो सकता है। इन दोनों परिस्थितियों के स्पष्टीकरण के लिए सुब्बन ने एक काल्पनिक तालिका प्रस्तुत की है।

तालिका 4.2 काल्पनिक उदाहरण द्वारा सस्य स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन

फसल	सस्य स्वरूप 'क'	सस्य स्वरूप 'ख'	सस्य स्वरूप 'ग'
फसल 1	70	40	20
फसल 2	20	30	10
फसल 3	8	20	30
फसल 4	2	10	40

सारिणी 4.2 से 'क' तथा 'ख' सस्य स्वरूप के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनो में फसलों का क्रम समान है जबकि दोनों में आन्तरिक भिन्नता अधिक है। इसी प्रकार 'ख' तथा 'ग' सस्य स्वरूप से निष्कर्ष निकलता है कि 'ख' तथा 'ग' में विभिन्न फसलों की श्रेणी समान नही है अर्थात हटाव की मात्रा अधिक है जबकि विचलन विहीन है। दोनो सस्य स्वरूपों में समान अंक जैसे 10,20,30,40, का प्रयोग किया गया है। इन दोनो परिस्थितियों के विश्लेषण से पता चलता है कि हटाव तथा विचलन समान नही है। रामसुब्बन ने हटाव की मात्रा तथा दिशा दोनों को निर्धारित करने में नई सांख्यिकी विधि का प्रयोग करते हुए अपने शोधपत्र में भिन्न-भिन्न जोताकार के सस्य स्वरूप का उदाहरण देकर हटाव तथा विचलन को समझाया है।

टी0 रामाकृष्णाराव[11] ने सस्य स्वरूप परिवर्तन का विश्लेषण तीन अवस्थाओं में किया है।

अ. पहचान

ब. मात्रा

स. दिशा

परिवर्तन पहचान के लिए इन्होने रामासुब्बन का अनुसरण किया, परन्तु इनके मतानुसार सीमान्तीय परिवर्तन के लिए रामासुब्बन का सूत्र उपयुक्त नही है इन्होने हटाव की मात्रा मालूम करने के लिए अपना सूत्र प्रस्तुत किया जो इस प्रकार है :-

हटाव का मात्रा = $\mathbf{n_1/y^2 - R/wi}$

y1	=	फसल में अन्तर की मात्रा
R	=	जिला में सम्पूर्ण फसल में अन्तर की मात्रा
wi	=	भार
n	=	जिला में उत्पादित फसलों की सख्या

3. फसलों का कालिक अन्तर :-

दो विभिन्न वर्षों के फसलान्तर के स्थान पर जब अनेक वर्षों के फसल क्षेत्र की अन्तप्रवृत्ति का अध्ययन करते हैं तब उसे सामयिक या कालिक विश्लेषण कहते हैं। वास्तव में दो वर्षों पर आधारित क्षेत्रीय अन्तर सम्बन्धी विश्लेषण अस्थायी प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है, जब कि अनेक वर्षों के विश्लेषण से स्थायी प्रवृत्ति की जानकारी होती है, फलस्वरूप प्रभावित करने वाले कारकों की प्रवृत्ति एवं कम को समझना सरल हो जाता है। सैनी12 ने उत्तर प्रदेश के परिवर्तनशील सस्य स्वरूप के कुछ पहलुओं का अध्ययन किया है। इनका निष्कर्ष है कि पश्चिम उत्तर प्रदेश के सस्य स्वरूप में मुद्रादायिनी तथ प्रमुख फसलों के क्षेत्र में निरन्तर बृद्धि हो रही है जबकि दालों तथा निम्नकोटि की खाद्यान्य फसलों के क्षेत्र में ह्रास हो रहा है। इसका मुख्य कारण सिंचाई सुविधाओं में सुधार, फसल की पारस्परिक लाभ प्रवृत्ति एवं आधुनिक तकनीकी पक्षों की कृषकों को जानकारी है। कौर13 ने अमृतसर तहसील में बोये गये क्षेत्र का क्षेत्रीय एवं कालिक विश्लेषण किया है। सिंह14 ने बडौत विकासखण्ड के सस्य स्वरूप का कालिक विश्लेषण किया है। इस आशय से 30 वर्षों के आंकडों के आधार पर बडौत विकासखण्ड के 5 ग्रामों में से 6 प्रतिदर्शी ग्रामों में सस्य स्वरूप प्रवृत्ति निर्धारित की गई है।

अनूकूलतम सस्य स्वरूप संकल्पना

अनुकूलतम सस्य स्वरूप संकल्पना वर्तमान परिस्थितियों में भूमि के प्रति इकाई अधिकतम लाभ पर आधारित है। अर्थात उस सस्य स्वरूप को अपनाया जाय जिससे अधिकतम आय प्राप्त हो सके तथा भूमि संसाधन को भी सुरक्षित रखा जा सके। अनुकूलतम सस्य स्वरूप प्राप्ति हेतु तीन मुख्य उपागम प्रचलित है जो अनेक कृषि अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनाये गये हैं।

1. प्रति एकड अधिक उपज उपागम :-

देशायी के अनुसार गुजरात राज्य की खेती से प्राप्त कुल आय में 39 प्रतिशत की बृद्धि केवल कम पैदावार वाली फसलों की उत्पादकता बढाने से हो सकती है। उनका मत है कि अनेक क्षेत्र है जहां निकटवर्ती क्षेत्र अपेक्षा प्रति एकड उत्पादन कम है, यदि ऐसे भागों की उत्पादकता स्तर निकटवर्ती क्षेत्रों की फसलों के समान किया जा सके तो कुल उपज में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। मुथीनान ने उपज सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त अनेक फसलों की अर्न्तक्षेत्रीय विशिष्टता पर आधारित है इनके मतानुसार जिस भाग में जिस फसल से प्रति एकड उत्पादन राष्ट्रीय औसत से अधिक होता है उस भाग में उसी फसल का उत्पादन होना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि दो फसलों का उत्पादन राष्ट्रीय औसत से अधिक हो तो उन फसलों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जिससे अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके।

3. सर्वाधिक शुद्ध आय उपागम :-

इस समय सर्वाधिक शुद्ध आय उपागम अधिक प्रचलित है। वास्तव में आधुनिकतम तकनीकी लागत का प्रयोग करके उत्पादकता किसी भी सीमा तक बढाई जा सकती है, लेकिन प्रश्न है कि शुद्ध लाभ का प्रतिशत या लागत आय अनुपात क्या होना चाहिए। सर्वाधिक शुद्ध लाभ उपागम वैज्ञानिक है। फसलों से प्राप्त शुद्ध आय की गणना दो मुख्य साख्यिकी विधियों से की जाती है।

अ. नीनियर प्रोग्रामिंग विधि :- अनेक कृषि अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न फसलों के अन्तर्गत अनुकूलतम क्षेत्र निर्धारित करते समय इस उपागम को अपनाया है। राजकृष्ण ने पंजाब में अनेक फसलों के अन्तर्गत अनुकूलित क्षेत्र निर्धारित करते समय लीनियर प्रोग्रामिंग विधि को अपनाया है। छोटे स्तर पर अनुकूलित भूमि का निर्धारण लीनियर प्रोग्रामिंग विधि द्वारा अधिक

उचित होता, जिसमें फसल की बाजार कीमत, प्रति एकड कृषि लागत, भिन्न भिन्न फसलों की प्रति एकड उपज मौसम तथा दूसरे संसाधन अवरोधों को ध्यान में रखकर फार्म से सर्वाधिक शुद्ध लाभ की गणना की जाती है।

ब. उत्पादन फसल उपागम :-

इस उपागम से आशय उत्पादन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों के प्रभाव को निर्धारित करके शुद्ध लाभ को ज्ञात किया जाना। इसलिए इस उपागम को लागत आय सम्बन्ध भी कहते हैं। कृषि अर्थशास्त्रियों ने अधिकांश भूमि, श्रम, पूंजी तथा प्रबन्ध लागत के आधार पर शुद्ध लाभ ज्ञात किया है। यदि y किसी समय किसी उत्पादक इकाई को प्रदर्शित करता है तथा जिसमें प्रयुक्त लागत का ($x_1, x_2, x_3, x_4 \ldots\ldots\ldots x_n$) का फलन है तो उत्पादन फलन को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

1. जिसमें एक चर लागत को ध्यान में रखा जाता है।

$$y = f(x_1/x_2, x_3, \ldots\ldots\ldots x_n)$$

2. जिसमें दो चर लागतों को ध्यान में रखा जाता है।

$$y = f(x_1/x_2, x_3, x_4 \ldots\ldots\ldots x_n)$$

3. जिसमें सभी लागत चरों को ध्यान में रखा जाता है।

$$y = f(x_1, x_2, x_3, x_4 \ldots\ldots\ldots x_n)$$

इस समीणकरण से यह स्पष्ट होता है कि y की आय सभी लागत चरो (x_1 x_2, x_3, ...x_n)से निर्धारित होती है।

अनेक कृषि अर्थशास्त्रियों ने फसलों के अनुकूलित क्षेत्र को निर्धारित करने उद्देश्य से उत्पादन फलन उपागम को अपनाया है जिसमें से चौधरी, देशाई, जिन्दाल तथा डे का अध्ययन महत्वपूर्ण है। इन लोगों ने दिल्ली के

विकास खण्ड स्तर पर विभिन्न फसलों का क्षेत्रफल 1995-96 (हेक्टेयर)

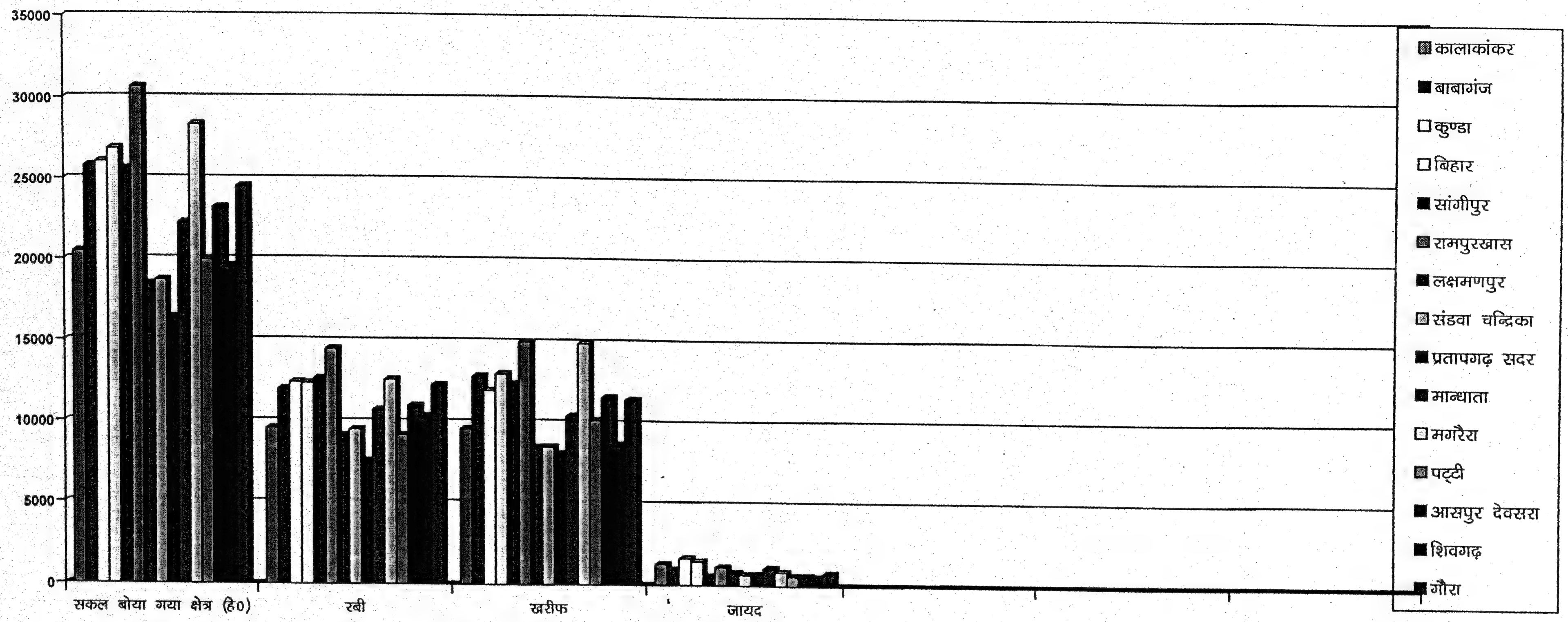

तालिका क्रमांक 4.3

विकासखण्ड स्तर पर विभिन्न फसलों का क्षेत्रफल 1995-96 (हे0)

विकासखण्ड	सकल बोया गया क्षेत्र (हे0)	रबी		खरीफ		जायद	
कालाकांकर	20506	9585	(46.74)	9608	(46.86)	1313	(6.40)
बाबागंज	25829	11999	(46.46)	12855	(49.77)	975	(3.77)
कुण्डा	26063	12435	(47.71)	11962	(45.90)	1666	(6.39)
विहार	26868	12388	(46.11)	12991	(48.35)	1489	(5.54)
सांगीपुर	25631	12673	(49.94)	12402	(48.31)	574	(2.24)
रामपुर खास	30656	14512	(47.34)	14998	(48.92)	1164	(3.74)
लक्ष्मणपुर	18470	9175	(49.68)	8488	(45.96)	807	(4.37)
संडवा चन्द्रिका	18700	9541	(51.02)	8492	(45.41)	667	(3.57)
प्रतापगढ सदर	16417	7625	(46.45))	8097	(49.32)	695	(4.23)
मान्धाता	22261	10745	(48.27)	10426	(46.83)	1090	(4.90)
मगरौरा	28383	12629	(44.50)	14912	(52.54)	842	(2.96)
पट्टी	19958	9203	(46.11)	10157	(50.89)	598	(3.00)
आसपुर देवसरा	23233	11025	(47.45)	11603	(49.94)	605	(2.61)
शिवगढ	19599	10369	(52.91)	8692	(44.35)	538	(2.74)
गौरा	24545	12307	(50.14)	11465	(46.71)	773	(3.15)
योग ग्रामीण	347117	166211	(47.88)	167148	(48.15)	13758	(3.97)
योग नगरीय	1693	866	(51.15)	653	(38.57)	174	(10.28)
योग जनपद	**348810**	**167077**	**(47.90)**	**167801**	**(48.11)**	**13932**	**(3.99)**

सारिणी क्रमांक 4.3 विकासखण्ड स्तर पर तीनों फसलों रबी खरीफ तथा जायद फसलों के क्षेत्रफल को प्रदर्शित कर रही है। रबी की फसल के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में न्यूनतम मगरौरा विकासखण्ड 44.50 प्रतिशत तथा उच्चतम भागेदारी शिवगढ विकासखण्ड 52.91 प्रतिशत है। इन दोनों विकासखण्डों में लगभग 8.41 प्रतिशत का अन्तर है। रबी की फसल के लिए 50 प्रतिशत से अधिक भागेदारी करने वाले विकासखण्डों में शिवगढ के अतिरिक्त संडवा चन्द्रिका 51.02 प्रतिशत तथा गौरा विकासखण्ड 50.14 प्रतिशत है। मगरौरा विकासखण्ड के अतिरिक्त अन्य विकासखण्ड 45 से 50 प्रतिशत के मध्य स्थित है। खरीफ फसल के क्षेत्रफल की दृष्टि से मगरौरा विकासखण्ड सर्वोच्च स्थान पर है। और यह विकासखण्ड खरीफ फसल के लिए सकल बोये गये क्षेत्र में से 52.54 प्रतिशत क्षेत्र प्रयोग कर रहा है। जबकि पट्टी विकासखण्ड इस हेतु 50.89 प्रतिशत भूमि उपयोग कर रहा है। शिवगढ विकासखण्ड जो रबी फसल क्षेत्र की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। परन्तु खरीफ फसल क्षेत्र की दृष्टि से अन्तिम स्थान पर है। और 44.35 प्रतिशत भूमि को इस हेतु प्रयोग कर रहा है। खरीफ फसल के लिए भी विभिन्न विकासखण्डों में लगभग वही अन्तर है। जो रबी फसल क्षेत्र में देखने को मिलता है। सामान्यतया जिन विकासखण्डों में रबी का क्षेत्रफल अधिक है। उनमें खरीफ फसल की भागेदारी कम है। केवल कालाकांकर विकासखण्ड दोनो फसलों के लिए लगभग समान भू भाग प्रयोग कर रहा है। जायद फसल के लिए सर्वाधिक भूमि उपयोग करने वाली विकासखण्डों में कालाकांकर विकासखण्ड हैं जो सकल जोती गयी भूमि के 6.4 प्रतिशत हिस्से पर इन फसलों को उगा रहा है। कुण्डा विकासखण्ड का प्रदर्शन भी कालाकांकर के समकक्ष ही कहा जायेगा जो 6.39 प्रतिशत भूमि को जायद फसल के लिए आवंटित कर रहा है। इस फसल के लिए सांगीपुर विकासखण्ड मात्र 2.24 प्रतिशत भूमि का प्रयोग करके न्यूनतम स्थिति को दर्शा रहा है। इसके अतिरिक्त आसपुरदेवसरा 2.61 प्रतिशत, शिवगढ 2.74

प्रतिशत मगरौरा 2.96 तथा पट्टी विकासखण्ड 3.00 प्रति क्षेत्र प्रयोग करके ऐसे विकासखण्डों की श्रेणी में है जो 3प्रतिशत या इससे भी कम भूमि को जायद फसल के अन्तर्गत प्रयोग कर रहे हैं अन्य विकासखण्ड तीन प्रतिशत से अधिक भूमिका जायद फसल के लिए उपयोग कर रहे हैं।

अ. रबी की प्रमुख फसलें :-

मात्रात्मक उपलब्धियों के अतिरिक्त कृषि विकास प्रयासों से अब जनपद की कृषि व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन भी हो रहे हैं कृषि को अब जीवन निर्वाह का साधन न मानकर इसकी व्यासायिक प्रतिष्ठा भी प्रदान की गयी है। कृषक अब लाभ कमाने के लिए नवीन तकनीकी का प्रयोग करने को तत्पर है। श्रेष्कर कृषि विधियों तथा श्रेयस्कर जीवन यापन की आकाक्षा न केवल उत्पादन तकनीकी का प्रयोग करने वाले एक छोटे से धनी वर्ग तक सीमित नही है बल्कि उन कृषकों तक फैल गयी है जिन्होने इसे अब तक अपनाया नही है। और जिनके लिए उच्च जीवन स्तर अभी तक एक सपना मात्र है। कृषकों के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन निश्चय ही कृषि विकास में सहायक है। हरितक्रान्ति के कारण अब जनपद में कृषक अच्छे अनाजों के उत्पादन के प्रति अग्रसर हुए है। छोटे कृषकों का झुकाव सब्जियों तथा मसालों के प्रति बढा है। कृषि विकास प्रयासों के परिणाम स्वरूप फसलों की संरचना में आधारभूत परिवर्तन आया है। भूमि उपयोग आंकडों से पता चलता है कि रबी की फसल में गेहूं का क्षेत्र बढा हैं इसी प्रकार तिलहनी फसलों में लाही तथा सब्जी वाली फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में भी बृद्धि हुई है। परन्तु सर्वाधिक बृद्धि गेहूं के फसल क्षेत्र में हुई है।

जनपद में रबी फसल के अन्तर्गत धान्य फसलों में केवल दो ही फसलों गेहूं तथा जौ की प्रधानता है। दलहनी फसलों में चना तथा

मटर और तिलहनी फसलों में लाही का प्रभुत्व है। यद्यपि कुछ विकासखण्डों में मसूर तथा अलसी में अपनी उपस्थिति का अहसास कराया है। परन्तु इनका क्षेत्रफल अभी महत्वपूर्ण नही है। हां इन फसलों की उपस्थिति इस बात का प्रतीक वश्य हैं कि प्रोत्साहन मिलने पर इन फसलों का उत्पादन किया जा सकता है।

1. गेहूं :-

विश्व की धान्य फसलों में गेहूं बहुत ही महत्वपूर्ण फसल है। क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में धान के बाद गेहूं का स्थान है। गेहूं का उपयोग चपाती (रोटी, डबल रोटी, बिस्कुट, मैदा सूजी) बनाने में किया जाता है इसका भूसा पशुओं के खिलाने के काम आता है। इनके दाने में 9 से 15 प्रतिशत प्रोटीन 70 से 72 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस तथा प्रचुर मात्रा में खनिज तत्व व विटामिन भी पाये जाते हैं गेहूं का उपयोग जहां मनुष्यों के भोजन के रूप में किया जाता है वहां इसे बीज के रूप में पशुओं को खिलाने के लिए तथा कुछ भाग विभिन्न उद्योगों में स्टार्च आदि बनाने के काम भी आता है। एक अनुमान के अनुसार गेहूं का उपयोग 74 प्रतिशत मनुष्यों के भोजन में 11 प्रतिशत बीज के रूप में तथा 15 प्रतिशत पशुओं का भोजन औद्योगिक उपयोग तथा व्यर्थ में प्रयुक्त होता है। गेहूं की उत्पति के विषय में विद्धानों में अलग-अलग मत है। डी0कन्डोले के मतानुसार गेहूं का जन्म स्थान दजला और फरात की घाटियां है जहां से चीन मिश्र, तथा अन्य देशों में गया। राबर्ट ब्रेड बुट ने गेहूं के कार्बन युक्त दाने इराक के जार्मो नामक स्थान से प्राप्त किये जो 6700 वर्ष पुराने बताये जाते हैं बेबीलोव के मतानुसार ड्यूरम (कडे) गेहूं की उत्पत्ति अबीसीनिया तथा कोमल गेहूं का जन्म स्थान भारत तथा अफगानिस्तान है। अधिकांश

तत्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है। कि गेहूं की उत्पत्ति दक्षिणी पश्चिमी एशिया में हुई।

अध्ययन क्षेत्र में गेहूं एक प्रमुख खाद्य फसल है। जिसके अन्तर्गत शुद्ध बोये गये क्षेत्र का 60 प्रतिशत से अधिक भाग इस फसल के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जनपद में इसकी अनेकों किस्में बोयी जाती है जिसमें ऊंची बढवार वाली जातियां के065, केक068, सी0306, के078 तथा के072 प्रमुख रूप से उगायी जाती है। जबकि बौनी जातियों में लरमा रोजो सोनारा-63 एस 227 यू0पी0-2003, एच0डी0 2004 रोहनी मालवीय 37 यू0पी0 262 च0डी0 2210, यू0पी0 115 कुन्दन, सुजाता, मुक्ता, मेघदूत, कल्याण सोना, मालवीय 55, सीयान 2016, यू0पी0 2402 जातियां प्रमुख रूप से प्रयोग में लायी जाती है इसकी खेती सभी प्रकार की भूमियों पर की जा सकती है। 5.0 से 7.50 पी0एच0 मानवाली भूमियां गेहूं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। गेहूं की बौनी जातियों में प्रोटीन की मात्रा 13 से 16 प्रतिशत तथा ऊंची बाढ वाली जातियों में 9 से 12 प्रतिशत होती है। अब तक गेहूं की एक जीन वाली (110 से 120 सेमी0 ऊंची) दो जीन वाली (100 से 110 सेमी0 ऊंची) तथा तीन जीन वाली (70 से 90 सेमी0 ऊंची) जातियां विकसित की जा चुकी है।

2. जौ :-

संसार के विभिन्न भागों में जौ की खेती प्राचीन काल से की जा रही है इसका प्रयोग प्राचीन काल से मनुष्यों के भोजन तथा जानवरों के रातिब के लिए किया जा रहा है।

हमारे देश में जौ का प्रयोग रोटी बनाने के लिए शुद्ध रूप में या चने के साथ अथवा गेहूं के साथ मिलाकर किया जाता है कहीं-कही इसको भूनकर चने (भुना हुआ) के साथ पीसकर सत्त के

रूप में भी प्रयोग करते है। इसके साथ ही जौ को शराब बनाने के काम में भी प्रयोग किया जाता है। जौ के दाने में 11 से 12 प्रतिशत प्रोटीन 1.8 प्रतिशत बसा, 0.42 प्रतिशत फासफोरस, .08 प्रतिशत कैल्शियम तथा 5 प्रतिशत रेसा भी पाया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र में जौ भी रबी की प्रमुख फसल है। लेकिन गेहूं के फसल के क्षेत्रफल में विस्तार के साथ जौ के क्षेत्रफल में कमी होती जा रही है यह फसल अधिकांश असिंचित क्षेत्रों में उगाई जाती है क्योंकि इस फसल को अधिक पानी की आवश्यकता नही पडती है। 1971 में इस फसल का जनपद में महत्वपूर्ण स्थान रहा है और यह 44972 हे0 अर्थात रबी फसल के क्षेत्रफल के लगभग 27 प्रतिशत क्षेत्र में बोयी जाती थी। परन्तु इसके उपरान्त सिंचाई तथा उर्बरकों की सुविधा में बृद्धि के साथ इस फसल क्षेत्र में महत्वपूर्ण गिरावट आयी है जिसका कारण गेहूं की फसल का प्रतिस्थापन इस फसल के स्थान पर होना है। 70 के दशक तथा इस फसल का उत्पादन खाद्यान्य आपूर्ति के रूप में किया जाता था परन्तु अब लोगों के खान-पान में परिवर्तन के साथ इसका स्थान गेहूं ने ले लिया है अब इस फसल को खाद्य की दृष्टि से निकृष्ट खाद्यान्य की श्रेणी में समझा जाने लगा है। जनपद में जौ की अनेकों किस्में बोयी जाती है जिनमें ज्योति, जाग्रति, करण 19, विजया, आजाद, रतना, करण 18 जातियां प्रमुख रूप्र से उगाई जाती है।

तालिका क्रमांक 4.4

विकासखण्ड स्तर पर गेहूं तथा जौ का वितरण 1995-96 (हे0)

विकासखण्ड	रबी फसल का कुल क्षेत्रफल	गेहूं		जौ	
		क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
कालाकांकर	9585	8549	89.19	118	1.23
बाबागंज	11999	11291	94.10	136	1.13
कुण्डा	12435	10820	87.01	407	3.27
विहार	12388	11534	93.11	151	1.22
सांगीपुर	12673	10191	80.42	332	2.62
रामपुर खास	14512	12791	88.14	256	2.76
लक्ष्मणपुर	9175	7849	85.55	261	2.84
संडवा चन्द्रिका	9541	6706	70.28	541	5.67
प्रतापगढ सदर	7625	5285	69.31	418	5.48
मान्धाता	10745	8749	81.42	152	1.41
मगरौरा	12629	11048	87.48	198	1.57
पट्टी	9203	8330	90.51	62	0.67
आसपुर देवसरा	11025	10234	92.83	90	0.81
शिवगढ	10369	7592	73.22	326	3.14
गौरा	12307	11084	90.06	107	0.87
योग ग्रामीण	166211	142053	85.47	3555	2.14
योग नगरीय	866	785	90.65	30	3.46
योग जनपद	**167077**	**142838**	**85.49**	**3585**	**2.15**

सारिणी क्रमांक 4.4 में विकासखण्ड स्तर पर रबि फसल के अन्तर्गत उगाई जाने वाली प्रमुख धान्य फसलें गेहूं तथा जौ के क्षेत्रफल का चित्रण कर रही है जनपद में इन दोनों फसलों के अन्तर्गत 146423 हे0 भूमि प्रयुक्त हो रही है जिसमें गेहूं के लिए 142838 हे0 तथा जौ की फसल के लिए 3585 हे0 क्षेत्रफल प्रयोग किया जा रहा है इसप्रकार रवी फसल के अन्तर्गत गेहूं की फसल का भाग 85.49 प्रतिशत जबकि जौ का मात्र 2.15 प्रतिशत भाग निर्धारित हो रहा है विकासखण्ड स्तर पर विचार करें तो रवी में गेहूं के लिए 90 प्रतिशत से अधिक हिस्सा रखने वाले विकासखण्डों में बाबागंज 94.10 प्रतिशत विहार 93.11 प्रतिशत आसपुर देवसरा 92.83 प्रतिशत, पट्टी, 90.51 प्रतिशत तथा गौरा विकासखण्ड 90.06 प्रतिशत रख रहे हैं इस फसल के लिए 80 से 90 प्रतिशत के मध्य क्षेत्रफल रखने वाले विकासखण्ड कालाकांकर 89.19 प्रतिशत रामपुर खास 88.14 प्रतिशत मगरौरा 87.48 प्रतिशत कुण्डा 87.01 प्रतिशत लक्ष्मणपुर 85.55 प्रतिशत मान्धाता 81.42 प्रतिशत सांगीपुर 80.42 प्रतिशत है। केवल प्रतापगढ सदर 69.31 प्रतिशत को छोडकर अन्य विकासखण्ड 70 से 80 प्रतिशत के मध्य स्थित है। जिनमें से शिवगढ 73.22 प्रतिशत तथा संडवा चन्द्रिका 70.28 प्रतिशत हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जनपद में रवी मौसम में गेहूं का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। और यह फसल 85 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में बोयी जाती है।

जनपद में जौ फसल के वितरण को विकासखण्ड स्तर पर देंखें तो इसका क्षेत्रफल केवल अपनी उपस्थिति ही दर्शा पा रहा है क्यों जहां रवी मौसम में गेहूं का जनपदीय क्षेत्रफल 85.49 प्रतिशत है वहीं पर जौ

फसल का क्षेत्रफल मात्र 2.15 प्रतिशत ही है जो अत्यन्त न्यून कहा जायेगा विकासखण्ड स्तर पर दृष्टि डाले तो पट्टी आसपुर देवसरा तथा गौरा विकासखण्ड जौ फसल के लिए एक प्रतिशत क्षेत्रफल भी नही रख पा रहे है। वही पर कालाकांकर बाबागंज विहार रामपुर ख,ास, मान्धाता तथा मगरौरा विकासखण्ड जौ की भागेदारी में 1 से 2 प्रतिशत के मध्य स्थित है अन्य विकासखण्डों में संडवा चन्द्रिका 5.67 प्रतिशत तथा प्रतापगढ सदर 5.48 प्रतिशत को छोडकर 2 से 5 प्रतिशत के मध्य भागेदारी कर रहे है। गेहूं तथा जौ के फसल के क्षेत्रफल पर तुलनात्मक दृष्टिपात करें तो यह तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है कि जिन विकासखण्डों में गेहूं का क्षेत्रफल अधिक है। वहां पर जौ फसल का क्षेत्रफल कम है। जहां पर गेहूं का क्षेत्रफल कम है। वहां पर जौ फसल की हिस्सेदारी अधिक है। स्पष्ट है कि कृषि उन्नति तकनीकी के साथ गेहूं के प्रतिस्थापन जौ की फसल के स्थान पर होता जा रहा है।

2. रवी मौसम के अन्तर्गत दलहनी फसले :-

हमारे भोजन में प्रोटीन का विशेष महत्व है। दाले ही आम जनता के लिए प्रोटीन का सबसे बडा श्रोत है। प्रोटीन की कमी के कारण हमारा शारीरिक और मानसिक विकास पूरी तरह नही हो पाता है। अतः भोजन में दालों का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रोटीन का व्यवहारिक एवं सस्ता श्रोत दाले ही है इनमें 20 से 25 प्रतिशत तक प्रोटीन प्राप्त होता है दालों के सेवन से विटामिन कैल्शियम तथा फासफोरस भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। दाले कृषकों के लिए उलटफेर वाली फसले भी है। क्योंकि इनको बोने से खेतों को नाईट्रोजन भी मिलती है जिससे भूमि की उर्वरा

तालिका क्रमांक 4.5

विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों का वितरण 1995-96 (हे0)

विकासखण्ड	चना		मटर	
	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
कालाकांकर	257	2.68	134	1.40
बाबागंज	86	0.72	316	2.63
कुण्डा	686	5.52	244	1.96
विहार	174	1.40	287	2.32
सांगीपुर	986	7.78	604	4.77
रामपुर खास	410	2.83	398	2.74
लक्ष्मणपुर	396	4.32	248	2.70
संडवा चन्द्रिका	1315	13.78	364	3.82
प्रतापगढ सदर	1134	14.87	287	3.76
मान्धाता	338	3.15	281	2.62
मगरौरा	680	5.38	483	3.82
पट्टी	432	4.69	382	4.15
आसपुर देवसरा	379	3.44	402	3.65
शिवगढ	1237	11.93	280	2.70
गौरा	338	2.75	385	3.13
योग ग्रामीण	8848	5.32	5095	3.07
योग नगरीय	62	7.16	26	3.00
योग जनपद	**8910**	**5.33**	**5121**	**3.0065**

शक्ति बढ जाती हैं जनपद में रवी मौसम के अन्तर्गत चना तथा मटर दो ही प्रमुख फसले हैं।

अ. चना :-

इस देश में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में चना सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण फसल हैं चने का प्रयोग दाल रोटी, स्वादिष्ट मिठाइयां नमकीन बनाने तथा सब्जियों के रूप में किया जाता है चने का सेवन करने से मनुष्य के शारीरिक विकास उचित व उचित पोषण के लिए इसमें प्रोटीन 21 प्रतिशत तथा आवश्यक अमीनों अम्ल काबोहाइड्रेट तथा खनिज लवण पाये जाते है। वसा 4.5 प्रतिशत कार्वोहाइड्रेट 61.5 प्रतिशत कैल्शियम 1.49 प्रतिशत लोहा 0.072 प्रतिशत राइबोफ्लेविन 0.09 प्रतिशत तथा नियासिन 0.023 प्रतिशत प्राप्त होता है। चना ठण्डे व शुष्क मौसम की फसल है। बहुत अधिक शर्दी व पाला चने के लिए हानिकारक होता है। चने की खेती अधिंकांश असिंचित क्षेत्रों में की जाती है। अधिक उपजाऊ भूमि इस फसल के लिए अच्दी नही होती है। क्योंकि ऐसी भूमि पर पौधों की बढवार तो अधिक होती है परन्तु फलियां कम लगती है।

चना जनपद की दलहनी फसलों में प्रमुख फसल है। यह अधिकतम धान के खेतों में धान की फसल काटने के बाद बोया जाता है कहीं-कही बाज़रे की फसल कटने के बाद उसी खेत में चना बो दिया जाता है। इनकी अनेकों किस्में अध्ययन क्षेत्र में बोयी जाती है जिनमें से टाइप-3 राधे, के0 468, पन्त जी 114 पूसा, 408, गौरव, कावुली के04, काबुली के0-5, काबुली एल0 550 पूसा 417 आदि प्रमुख है।

ब. मटर :-

शरद कालीन सब्ज़ियों में मटर का एक प्रमुख स्थान है मटर में केवल 22.0 प्रतिशत प्रोटीन ही नही होता है बल्कि बसा 1.8 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट 62.1 प्रतिशत कैल्शियम 0.64 प्रतिशत लोहा 0.048 प्रतिशत तथा नियासिन 0.024 प्रतिशत पाया जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार सब्जी मटर की मूल उत्पत्ति स्थल इथीयोपिया है। दाने वाली मटर के पौधे इटली के जंगलों में पाये गये हैं बेबीलोन का मत है कि इस इसका उत्पत्ति स्थल इटली व पश्चिमी भारत के बीच कहीं हुआ होगा। मटर के लिए शुष्क तथा ठण्डी जलवायु की आवश्यकता होती है। मटर की बृद्धिकाल में अधिक वर्षा हानिकारक होती है। फसल के पकने के समय उच्च ताप तथा शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। अच्छे जल निकास वाली दोमट या हल्की दोमट भूमि जिसका पी0एच0 मान 6 से 7.5 के बीच हो मटर के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है।

जनपद में दलहनी फसलों में मटर भी एक प्रमुख स्थान रखती है यह कम लागत पर अच्छी उपज देने वाली फसल है। मटर का ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में उपभोग अधिक होता है। हरे दानों का प्रयोग सब्जियों में तथा सूखें दानों का प्रयोग दालों, छोले तथा चाट आदि में किया जाता है। इसकी अनेकों किस्में अध्ययन क्षेत्र में बोई जाती है जिनमें से रचना, स्वर्ण रेखा, किन्नडी, आर्केल, कोनविले, पन्त उपहार, जवाहर-4 आर्लीबैजर हंस तथा असौनी जातियां प्रमुख है।

तालिका क्रमांक 4.6

विकासखण्ड स्तर पर तिलहनी फसलों का वितरण 1995-96 (हे0)

विकासखण्ड	लाही/सरसों		अन्य तिलहन		कुल तिलहन	
	क्षेत्रफल	रबी का प्रतिशत	क्षेत्रफल	रबी का प्रतिशत	क्षेत्रफल	रबी का प्रतिशत
कालाकांकर	99	1.03	96	1.00	195	2.03
बाबागंज	49	0.41	86	0.72	135	1.13
कुण्डा	246	1.98	57	0.46	303	2.44
विहार	85	0.69	27	0.22	112	0.91
सांगीपुर	194	1.53	107	0.84	301	2.37
रामपुर खास	138	0.96	233	1.61	371	1.56
लक्ष्मणपुर	98	1.07	37	0.40	135	1.47
संडवा चन्द्रिका	177	1.86	125	1.31	302	3.17
प्रतापगढ सदर	123	1.61	75	0.98	198	2.59
मान्धाता	149	1.39	21	0.20	170	1.59
मगरौरा	222	1.76	62	0.49	284	2.25
पट्टी	152	1.65	43	0.47	195	2.12
आसपुर देवसरा	188	1.71	22	0.20	210	1.91
शिवगढ	165	1.59	84	0.81	249	2.40
गौरा	69	0.56	35	0.28	104	0.87
योग ग्रामीण	2154	1.30	1110	0.67	3264	1.97
योग नगरीय	24	2.77	02	0.23	26	3.00
योग ज़नपद	**2178**	**1.304**	**1112**	**0.665**	**3290**	**1.969**

सारिणी क्रमांक 4.5 विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों के क्षेत्रीय वितरण का चित्र प्रस्तुत कर रही है। सम्पूर्ण ग्रामीण स्तर पर चने की फसल कुल 8910 हेक्टेयर क्षेत्र पर उगाई जाती है जबकि मटर की फसल कुल 5121 हे0 क्षेत्र पर बोई जाती है। जनपद में चने की भागेदारी 5.33 प्रतिशत और मटर की 3.065 प्रतिशत है। विकासखण्ड स्तर पर चने की सर्वाधिक भागेदारी प्रतापगढ सदर विकासखण्ड की है जहां पर रवी मौसम के 14.87 प्रतिशत क्षेत्र पर बोयी जाती है। इससे लगभग 1 प्रतिशत कम अर्थात 13.78 प्रतिशत की भागेदारी संडवा चन्द्रिका की है। तीसरा स्थान शिवगढ विकासखण्ड का है। जो 11.93 प्रतिसत हिस्से पर चने की फसल उगाता है। उक्त तीनों ही विकासखण्डों में सिंचन सुविधाओं का अन्य विकासखण्डों की अपेक्षा कम प्रसार है। जिससे चने की फसल को उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है। इस दृष्टि से बाबागंज विकासखण्ड में चने की फसल मात्र 0.72 प्रतिशत भाग पर बोयी जाती है। इससे कमोवेश स्थिति का प्रदर्शन विहार विकासखण्ड का है। अन्य विकासखण्ड 2.68 से 7.78 में मध्य स्थित है।

मटर फसल के क्षेत्रीय वितरण पर दृष्टिपात करें तो जनपदीय औसत 3.065 प्रतिशत है इस औसत से अधिक गौरा विकासखण्ड 3.13 प्रतिशत, आसपुर देवसरा 3.65 प्रतिशत मगरौरा 3.82 प्रतिशत, प्रतापगढ सदर 3.76 प्रतिशत सडंवा चन्द्रिका 3.82 प्रतिशत तथा सांगीपुर सर्वाधिक 4.47 प्रतिशत की हिस्सेदारी कर रहे है जबकि कालाकांकर विकासखण्ड न्यूनतम 1.40 प्रतिशत भागेदारी करते हुए मटर की फसल उगा रहा है अन्य विकासखण्ड 1.96 से 2.74 प्रतिशत के मध्य स्थित है। इस प्रकार 9 विकासखण्ड जनपदीय स्तर से निचला स्तर प्रदर्शित कर रहे हैं।

3. तिलहनी फसले :-

तिलहनी फसलों में लाही तथा सरसों का क्षेत्रीय भाषा में तोरिया (इण्डियन रेप) रवी मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख फसल है। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में अलसी, तिल, तथा सूरजमुखी की फसले भी अपनी उपस्थिति रखती है। वैसे तो सूरज मुखी अप्रैल में बोयी जाने वाली फसल है परन्तु अभी इस फसल का क्षेत्र में पर्याप्त विस्तार नही हो सका है। भारतीय कृषि में तिलहनी फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ये फसले करोडों लोगों के लिए खाद्य तेल का प्रमुख श्रोत है इन फसलों में तेल की मात्रा 35 से 38 प्रतिशत के मध्य होती है। सरसों तथा तोरिया का तेल खाने के अतिरिक्त जलाने के लिए शरीर की मालिस के लिए, चमडे व लकडी के समान पर लगाने के लिए, रबर तथा साबुन के निर्माण के अतिरिक्त अचार में प्रयोग किया जाता है। इनकी खली पशु बडे चाव से खाते हैं। इसमें 30 से 35 प्रतिशत तक प्रोटीन होता है।

सरसों तथा लाही के लिए दोमट मिट्टी या हल्की दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती है भूमि का पी0एच0मान 6.5 से 7.5 के मध्य रहे, तो उपज अच्छी रहती है। अध्ययन क्षेत्र में लाही की विभिन्न किस्मों में वरूणा (टाइप 59) रोहिणी, कान्ति (पन्त 15) कृष्णा, (पन्त 18) वरदान, वैभव तथा शेषर (के0आर0-6510) प्रमुख रूप से उगाई जाती है। सरसों की पूसा कल्याणी, के-88 टाइप-151 टाइप-9, टाइप-36, भवानी, पी0टी0 30 अधिकांश बोई जाती है।

सारिणी क्रमांक 4.6 जनपद में विकासखण्ड स्तर पर तिलहनी फसलों के क्षेत्रीय वितरण को दर्शा रही है। तालिका से ज्ञात होता है कि जनपद में लाही/सरसों का तिलहनी फसलों में प्रमुख स्थान है जो कुल 2178 हे0 में उगाई जाती है। अन्य तिलहनी फसलों में अलसी, तिल तथा सूरजमुखी प्रमुख है। विकासखण्ड स्तर पर लाही सरसों के क्षेत्रीय वितरण को देखें तो समस्त विकासखण्डों में यह फसल 1 से 2 प्रतिशत में मध्य उगाई जाती है। केवल केवल बाबागंज तथा गौरा विकासखण्ड ऐसे है जहां इस फसल का भाग केवल 0.41 तथा 0.56प्रतिशत है। विहार तथा रामपुर खास विकासखण्ड भी कमोवेश यही स्थिति दर्शा रहे है। जहां यह फसल क्रमशः 0.69 प्रतिशत तथा 0.95 प्रतिशत क्षेत्रफल पर आच्छादितं है।

अन्य तिलहनी फसलों में तिल का स्थान आता है जो सम्पूर्ण जनपद के 634 हे0 क्षेत्रफल पर उगाई जाती है जिसमें संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड 112 हे0 सांगीपुर 98 हे0 रामपुर खास 76 हे0 शिवगढ 68 हे0 प्रतापगढ सदर 61हे0 तथा कुण्डा विकासखण्ड 52 हे0 के अतिरिक्त अन्य विकासखण्ड 50 हे0 से कम क्षेत्रफल पर इस फसल को उगाते हैं। इसी प्रकार अलसी का क्षेत्रफल कुल 352 हे0 है। जिसमें रामपुर खास 149 हे0 में इस फसल को उगाकर 42 प्रतिशत से अधिक की भागेदारी कर रहा है। कालाकांकर तथा बाबागंज क्रमशः 72 हे0 तथा 67 हे0 क्षेत्रफल पर इस फसल को वो रहे है। सूरजमुखी कुल 126 हे0 में बोयी जाती है। और लगभग प्रत्येक विकासखण्ड में 4 से 12 हे0 के मध्य उगाई जाती है। यदि इस फसल को प्रोत्साहन प्रदान किया जाये तो यह एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल वन सकती है।

4. अन्य फसलें :-

अन्य फसलों में गन्ना, आलू, सब्जियां तथा चारे की फसले प्रमुख हैं। सब्जियों में टमाटर, वैगन, फूलगोभी, पत्ता गोभी, मिर्च, धनियां, मूली, गाजर, आदि प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

अ. गन्ना :-

भारत में शर्करा के प्रमुख श्रोत के रूप में गन्ने की खेती प्राचीन काल से होती आई है। गन्ने का उपयोग विभिन्न रूपो में किया जाता है। इससे चीनी गुड खांड के अतिरिक्त शीरा भी मिलता है जो तम्बाकू, अल्कोहल यीष्ट तथा पशुओं के आहार बनाने के रूप में काम आता है। गन्ने का हरा अगोला पशुओं के चारें के रूप में तथा सूखी पत्ती ईधन और छावनी के लिए प्रयोग की जाती है। गन्ने की खोई से कार्डवोर्ड और मोटा कागज बनाया जाता है। भारत में गन्ने की खेती प्राचीन काल से होती आ रही हे। कुछ ऐसे प्रमाण उपलब्ध है कि भारत में गन्ने की कृषि ऋगुवेद काल (2500-1400ई0पूर्व) में की जाती थी। जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण (326ई0पूर्व) किया था तो उसके सैनिको ने नरकुल जैसे पौधों के तने को चूसा था जिसमें मिठास थी इन्ही तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि गन्ने की उत्पत्ति केन्द्र भारत है। गन्ना लगभग सभी प्रकार की भूमियों पर उगाया जाता है। 6.1 से 7.5 पी.एच. मान वाली भूमियां इसके लिए सर्वोत्तम रहती है। अध्ययन क्षेत्र में इसकी अनेकों किस्में बोई जाती है। जिनमें से को0-1148, को0-1158, को0-7321, को0 शा0 510 को0शा0

770, 802, बी0ओ0 54, 70, पन्त 84211, पन्त 84215, कोशा 758, को0 395 तथा को0शा0687 प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

ब. आलू :-

वर्ष भर प्राप्त होने वाली सब्जियों में आलू का प्रमुख स्थान है। आलू एक पूर्ण भोजन है, इसमें 22.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस 1.6 प्रतिशत प्रोटीन, 0.1 प्रतिशत वसा तथा 0.6 प्रतिशत खनिज पदार्थ पाया जाता है। आलू के प्रोटीन में अधिकतर खाद्यान्यों की अपेक्षा शरीर के लिए आवश्यक अमीनों अम्ल में से एक नियासिन की मात्रा अधिक होती है। विटामिन बी तथा सी भी बहुतायत होती है। आलू से ग्लूकोज, स्टार्च, शराब, कागज साइट्रिक अम्ल तैयार किये जाते हैं। आलू का उत्पत्ति स्थल दक्षिणी अमेरिका है जहां से यह यूरोप तथा अन्य देशों में फैला। भारत में आलू सत्रहवी सताब्दी में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया (1915 में सर थामस रो की दावत में पहलीबार आलू का प्रयोग किया गया था। आलू की खेती के लिए ठण्डी जलवायु, बलुई दोमट या दोमट भूमि जो अच्छे जल निकास वाली हो, सर्वोत्तम रहती है।

हल्की अम्लीय भूमि जिसका पी0एच0मान 6.0 के मध्य हो, अच्छी उपज मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में बुफरी चन्द्रमुखी (ए02708) कुफरी बहार, (ई03797) बुफरी नवताल (जे02524) बुफरी बादशाह (जे0एस04870) कुफरी किसान बुफरी शीतमान (सी 745) बुफरी चमत्कार (ओ0एन01202) आदि प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

स. अन्य सब्जियाँ :-

रवी मौसम में सब्जियों की फसलों में प्याज, टमाटर, वैगन, फूलगोभी, पातगोभी, मिर्च, मूली, गाजर, तथा शकरकंद प्रमुख रूप से उगाई जाती है। पालक तथा मेथी भी सीमित क्षेत्र में उगाई जाती हे।

द. चारा फसले :-

चारा फसलों में जई रिजका तथा वरसीम का प्रमुख स्थान है। जई एक पौष्टिक चारा है जो कि सभी वर्गो में पशुओं को अधिक मात्रा में खिलाया जा सकता है प्रोटीन इसमें अपेक्षाकृत कम होती है। इसकी केन्ट फ्लेमिंग गोल्ड तथा यू0पी0ओ0 94 किस्मे अधिकांश बोयी जाती हे। यह मक्का, धान के वाद आसानी से उगाई जा सकती है। भूमि का पी0एच0 मान 6.0 या इससे अधिक होना चाहिए। इसकी मेसकवी तथा पूसा ज्वाइन्ट किस्में प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

तालिका क्रमांक 4.7

विकासखण्ड स्तर पर सब्जियां तथा अन्य फसलों का वितरण 1995-96

विकासखण्ड	गन्ना	सब्जियां		चारा फसलें	अन्य फसलें
		आलू	अन्य		
कालाकांकर	63	339	97	65	27
बाबागंज	35	482	76	78	20
कुण्डा	38	448	182	52	56
विहार	51	483	84	76	41
सांगीपुर	68	419	71	60	48
रामपुर खास	75	607	174	58	52
लक्ष्मणपुर	39	400	9	26	35
संडवा चन्द्रिका	131	403	74	17	22
प्रतापगढ सदर	21	351	108	18	20
मान्धाता	95	947	82	44	32
मगरौरा	449	490	120	54	44
पट्टी	510	386	54	42	30
आसपुर देवसरा	813	451	91	100	46
शिवगढ	220	499	88	44	31
गौरा	413	674	46	68	28
योग ग्रामीण	3021	7579	1354	802	532
योग नगरीय	-	56	28	7	10
योग जनपद	**3021**	**7635**	**1382**	**809**	**542**

तालिका 4.7 विकासखण्ड स्तर पर विभिन्न फसलों के क्षेत्रीय वितरण को प्रदर्शित कर रही हैं रबी फसल के अन्तर्गत सब्जियों का एक विशिष्ट स्थान है जो 8933 हे0 क्षेत्रफल पर उगाई जा रही है जिसमें आलू की भागीदारी लगभग 85 प्रतिशत है। विकासखण्ड स्तर पर देखें तो मान्धाता विकासखण्ड 947 हे0 क्षेत्र पर आलू तथा 82 हे0 पर अन्य सब्जियों को उगाता है। गौरा तथा रामपुर खास की स्थिति न्यूनाधिक एक समान है जो क्रमशः 674 तथा 607 हे0 पर आलू उगा रहे हैं अन्य विकासखण्ड 350 से 500 हे0 के मध्य आलू का क्षेत्रफल रख रहे हैं। केवल कालाकांकर 339 हे0 क्षेत्र पर आलू उगाकर न्यूनतम स्थिति प्रदर्शित कर रहा है। वहीं अन्य सब्जियों के सम्बन्ध में लक्ष्मणपुर विकासखण्ड केवल 9 हे0 क्षेत्र पर अन्य सब्जियां उगाकर न्यूनतम स्तर पर हैं।

गन्ने की फसल के दृष्टिकोण से आसपुर देवसरा विकासखण्ड सर्वाधिक क्षेत्र 813 हे0 पर गन्ना बोकर प्रथम स्थान पर है। परन्तु मगरौरा पट्टी शिवगढ तथा गौरा विकासखण्डों को इसमें सम्मिलित कर दिया जाये तो पांचों विकासखण्ड मिलकर गन्ने के कुल क्षेत्रफल के लगभग 80 प्रतिशत हिस्से पर गन्ना बो रहे है। 20 प्रतिशत क्षेत्रफल पर अन्य 10 विकासखण्डों की भागेदारी है। जहां तक चारा फसलों का प्रश्न है तो केवल आसपुर देवसरा 100 हे0 क्षेत्रफल पर चारा फसलें उगा रहा है बाबागंज 78 हे0 तथा विहार 76 हे0 क्षेत्रफल इन फसलों के लिए रख रहे हैं संडवा चन्द्रिका तथा प्रतापगढ सदर क्रमशः 17 और 18 हे0 क्षेत्रफल पर चारा फसले उगा रहे है।

ब. खरीफ की प्रमुख फसलें :-

ऊचें तापक्रम तथा आद्र वायुमण्डलीय दशाओं में खरीफ मौसम प्रारम्भ होता है। इस मौसम की फसलें जून-जुलाई में बोयी जाती है और अक्टूबर नवम्बर तक पक कर तैयार हो जाती है। इस दृष्टि से देखा जाये तो अध्ययन क्षेत्र में खरीफ की फसलों में धान, ज्वार, बाजरा तथा मक्का आदि खाद्यान्य फसलों की प्रमुख फसलें हैं जबकि दलहनी फसलों में उर्द मूंग तथा अरहर प्रमुख रूप से उगाई जाती है। कुछ कृषकों ने सोयाबीन को भी उगाना प्रारम्भ किया है इसके अतिरिक्त इस मौसम में सब्जियां भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जनपद में खरीफ फसलों का विवरण निम्नवत है :-

1. धान :-

धान फसल जनपद में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। चावल अन्य धान्य फसलों से कैलोरी एवं भोजनात्मक मान के दृष्टिकोण से कम नही हे इसमें 7.7 प्रतिशत प्रोटीन 72.5 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस (स्टार्च) 2.2 प्रतिशत बसा 11.8 प्रतिशत शेल्यूलोज पाया जाता है। जनपद के सकल बोये गये क्षेत्रफल के लगभग 32 प्रतिशत क्षेत्रफल पर तथा खरीफ फसल के लगभग 67 प्रतिशत क्षेत्रफल पर धान फसल का विस्तार है वर्ष में उगाई जाने वाली फसलों में गेहूं के बाद इस फसल का स्थान आता है जबकि खरीफ मौसम की विभिन्न फसलों में इसका एकाधिकार जैसा है भोजन के रूप में प्रयोग करने के अतिरिक्त चावल का प्रयोग विभिन्न उद्योगों में भी किया जाता है। चावल में पाये जाने वाले स्टार्च का प्रयोग कपडा उद्योग में विशेष रूप से किया जाता है। धान के सूखें पौधों को कांच का सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजते समय पैकिंग में

प्रयोग किया जाता है हरे पौंधें को चारे के रूप में तथा सूखें पौधों को निर्धन लोग विछावन के रूप में प्रयोग करते है।

धान की अच्छी उपज के लिए अधिक वर्षा तथा अधिक नमी की आवश्यकता होती है। जिन क्षेत्रों में 100 सेमी0 से कम वर्षा होती है वहां पर कृतिम सिंचाई की आवश्यकता होती हैं इसलिए कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यदि सिंचाई की कृतिम सुविधा उपलब्ध होगी तभी धान की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। साथ ही इस फसल को पानी की अधिक आवश्यकता होती है इसलिए पानी का मूल्य कम होना चाहिए अन्यथा उत्पादन लागत बढ जाने के कारण यह फसल लाभदायक नही रह जायेगी। और यही कारण है कि विभिन्न विकासखण्डों में सिंचाई सुविधओं में भिन्नता के कारण इस फसल के क्षेत्रीय वितरण में भिन्नता देखने को मिलती है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जो इस फसल क्षेत्र को प्रभावित करता है वह है उस क्षेत्र की मिट्टी। धान की खेती के लिए भारी भूमि की आवश्यकता होती है। जिसमें पानी रोंकने की क्षमता अधिक होती है। चिकनी दोमट मिट्टी धान की खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। 6.5 पी.एच. मान वाली भूमि इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

धान की उत्पत्ति के विषय में भिन्न मत हैं अनेक भारतीय विद्धानों का मत है कि धान का जन्म स्थान भारत वर्ष, वर्मा, तथा इण्टो चाइना हो सकता है क्योंकि धान की जंगली जातियां भारत वर्ष तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया में बहुतायत में पाई जाती है हिन्दुओं के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋगुवेद में भी चावल का वर्णन पाया जाता है। घोष और उनके सार्थी पाक सार्थी 1960 के अनुसार चावल का प्राचीनतम अवशेष उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर ग्राम की खुदाई से प्राप्त हुआ है। मोहनजोदडों तथा हडप्पा की खुदाइयों से प्राप्त अवशेषों के आधार पर भारत वर्ष में चावल ईसा

से 5000 वर्ष पूर्व से ही उगाया जाता है। बेविलोव 1926 के मतानुसार भारत तथा वर्मा दोनों ही चावल के जन्म स्थान है।

जनपद में धान की खेती के दो प्रकार प्रचलित है।

1. खेत में धान की पौध की रोपाई करके :- यह विधि उन्ही क्षेत्रों में अपनाई जाती है जहां पर पानी की उचित व्यवस्था होती है। या वर्षाकाल में धान लगाने वाले खेतों में पानी इकट्‌टा हो जाता है तथा श्रम भी सरलता से उपलब्ध हो जाता है।

2. खेत में सीधी बोआई करके :-

सीधी बुआई की दशा में शीघ्र पकने वाली जातियां जैसे साकेत-4, गोविन्द, कावेरी, वाला, तथा नगीना-22 आदि उगाई जाती है। जनपद में धान की कई जातियां उगाने का प्रचलन है। इनमें देशी जातियों में वासमती, हंसराज, रामभोग, विष्धुपराग, लकडा, श्यामजीरा, लटेरा तथा इन्द्रासन प्रमुख हैं जबकि उन्नति किस्म की जातियों में नगीना 22 गोविन्द प्रसाद, पूसा-33 साकेत-4, कावेरी, रत्ना, पद्यमा, सरजू-49 विजया, जया, कृष्ना, आई0आर0आठ तथा जयन्ती प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं।

2. मोटे अनाज :-

हमारे देश में ज्वार बाजारा, तथा मक्का मोटे अनाज के रूप में जाने जाते हैं ये फसलें न केवल मनुष्यों को खाद्यान्य ही उपलब्ध कराती हैं बल्कि पशुओं के लिए सूखा चारा की आपूति करती है। ज्वार तथा बाजरा के पौधे लगभग एक समान ऊंचाई के होते हैं परन्तु मक्का का पौध ऊंचाई में कम होता है इन फसलों का भी खरीफ मौसम में महत्वपूर्ण स्थान है। यदि तीनों की भागीदारी तो इन तीनों फसलों की खरीफ में भागेदारी लगभग 13 प्रतिशत है।

ज्वार :-

अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्य फसलों में ज्वार का एक महत्वपूर्ण स्थान है सभी विकासखण्डों में न्यूनाधिक ज्वार की फसल उगाई जाती है। इसमें 10.4 प्रतिशत प्रोटीन प्रति 100 ग्राम में 349 कैलोरी ऊर्जा 72.6 ग्राम कार्वोहाईड्रेटस पाया जाता है। ज्वार की उत्पत्ति स्थान के बारे में अलग-अलग मत है- डींकडोल तथा हूकर के अनुसार :- ज्वार का उत्पत्ति स्थान अफ्रीका है जबकि वर्थ के अनुसार भारत व अफ्रीका है। बेबीलोव इसके उत्पत्ति स्थान को अबीसिनिया मानते हैं ज्वार गर्म जलवायु की फसल है 30 से 100 सेमी वर्षा वाले स्थानों में ज्वार की खेती की जाती हे। 25 अंश सेंटीग्रेड से 35 अंश सेन्टीग्रेड तापमान इस फसल के अनुकूल पडता है। इसके फूल पडते समय तथा परागकण के समय वर्षा हानिकारक होती है। अध्ययन क्षेत्र में देशी जातियों में वर्षा टाइप-22 मऊ टाइप-1 तथा उन्नतिशील जातियों में एस0पी0एच0 196 सी0एस0एच0-5 सी0एस0एच0-9 सी0एस0बी0-1 प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

बाजरा :-

मोटे अनाजों में बाजरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल है। इसके दानों में 11.6 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है तथा 67.5 प्रतिशत कार्वोहाइड्रेट होता है। प्रति 100 ग्राम बाजरे के दानों में 391 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। इसकी खेती 40 से 75 सेमी0 वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। बाजरे की फसल के लिए 21 से 27 सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त रहता है। अच्छे जल निकासवाली बलुई दोमट भूमि बाजरा के लिए सर्वोत्तम होती है।

अधिकांश विद्धानों के अनुसार बाजरा की उत्पत्ति का स्थल अफ्रीका है। वर्थ के मतानुसार इसकी उत्पत्ति स्थान भारत है। अध्ययन क्षेत्र में

यह न्यूनाधिक सभी विकासखण्डों में उगाया जाता है। देशी जातियों में मैनुपुर पूसा, मोती, बाजरा, फतेहाबाद आदि किस्में प्रमुख रूप से उगाई जाती हें जबकि उन्नति किस्म की जातियों में डब्लू सी सी-75 एम0पी0-15, एम0पी0-19 विजय, पी0एस0वी-8 पी0एच0वी0-14 तथा बी0के0-104 प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

मक्का :-

मक्का भी मोटे अनाज की एक महत्वपूर्ण फसल है। मक्का दाने, चारे व भुटटे के लिए उगाई जाती है। मक्का में 11.6 प्रतिशत प्रोटीन 78.9 प्रतिशत कार्वोहाइड्रेट 5.3 प्रतिशत वसा, 1.5 प्रतिशत राख तथा 2.6 प्रतिशत शेल्यूलोज पाया जाता है। मक्का के हरे भुट्टे खाने में स्वादिस्ट होते हैं मक्का का प्रयोग औद्योगिक रूप में शराब स्टार्च प्लास्टिक गोंद रंग ग्लूकोज रेयन आदि को तैयार करने में किया जाता है।

अधिकतर विद्धानों के मतानुसार मक्का का जन्म स्थान मध्य अमेरिका तथा मैक्सिकों है। इन क्षेत्रों में की गयी खुदाइयों में मक्का के अवेशष पाये गये है। भारत में मक्का का प्रवेश 16वी शताब्दी में पुर्तगालियों द्वारा हुआ। मक्का के लिए ऊंची समतल व उत्तम जल निकासों वाली भूमि उपयुक्त मानी जाती हैं इसके लिए बलुई दोमट या दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है मिटटी का पी0एच0 मान 6.5 से 7.5 होना चाहिए। अध्ययन क्षेत्र में टाइप 41 जौनपुरी सफेद मेरठ पीली गंगा दो बी0एल0-42 तथा संगम-54 आदि जातियां बोयी जाती हे इनमें से गंगा-2 तथा टाइप 41 भुटटे के लिए उगाई जाती है। इन दोनों जातियों के अतिरिक्त कस्वों तथा नगरों के आसपास विजय तरूण तथा कंचन जातियां भी भुट्टे के लिए उगाई जाती है।

तालिका क्रमांक- 4.8

विकासखण्ड स्तर पर धान तथा मोटे अनाज का वितरण 1995-96 हे0 में

विकासखण्ड	कुल खरीफ फसल का क्षेत्रफल	धान	ज्वार	बाजरा	मक्का
कालाकांकर	9608	7930 (82.54)	208 (2.16)	231 (2.40)	2 (0.02)
बाबागंज	12855	11438 (88.98)	136 (1.06)	1237 (0.99)	- (0.0)
कुण्डा	11962	8867 (74.13)	516 (4.31)	1301 (10.88)	5 (0.04)
विहार	12991	12436 (95.73)	124 (0.95)	386 (2.97)	1 (0.007)
सांगीपुर	12402	5365 (43.26)	1412 (11.39)	648 (5.22)	2 (0.016)
रामपुर खास	14998	12683 (84.56)	382 (2.55)	460 (3.07)	31 (0.21)
लक्ष्मणपुर	8488	5328 (62.77)	356 (4.19)	1262 (14.87)	4 (0.05)
संडवा चन्द्रिका	8492	2228 (26.24)	838 (9.87)	1874 (22.07)	12 (0.14)

प्रतापगढ सदर	8097	1628 (20.11)	705 (8.71)	2349 (29.01)	43 (0.53)
मान्धाता	10426	7462 (71.57)	206 (1.98)	1423 (13.65)	6 (0.06)
मगरौरा	14912	9949 (66.72)	224 (1.50)	891 (5.98)	94 (0.63)
पट्टी	10157	8341 (81.92)	130 (1.28)	484 (4.77)	502 (4.94)
आसपुर देवसरा	11603	6938 (59.79)	381 (3.28)	156 (1.35)	1037 (8.94)
शिवगढ	8692	4027 (46.33)	234 (2.69)	1984 (22.83)	216 (2.49)
गौरा	11465	6938 (60.51)	108 (0.94)	334 (2.91)	124 (1.08)
योग ग्रामीण	167148	111538 (66.73)	5960 (3.57)	13910 (8.32)	2079 (1.24)
योग नगरीय	653	367 (56.20)	48 (7.35)	87 (13.32)	3 (0.46)
योग जनपद	**167801**	**111905** **(66.69)**	**6008** **(3.58)**	**13997** **(8.34)**	**2082** **(1.24)**

(कोष्टक में दिये गये समंक प्रतिशत दर्शा रहे हैं।)

सारिणी 4.8 जनपद में विकासखण्ड स्तर पर खरीफ मौसम की फसलों को प्रदर्शित कर रही है। खरीफ मौसम में सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल धान की है। जो 66.69 प्रतिशत पर अपनी भागेदारी प्रदर्शित कर रही है दूसरा स्थान बाजरा का है जो केवल 8.34 प्रतिशत की भागेदारी कर रहा है। ज्वार का स्थान जनपद में तीसरा है जो 3.58 प्रतिशत पर हिस्सेदारी प्रदर्शित कर रहा है। मक्का का स्थान मोटे अनाजों में न्यूनतम है। और यह फसल केवल 1.24 प्रतिशत ही भागेदारी कर पा रही है वैसे जैसे-जैसे सिंचाई के साधनों में बृद्धि हो रही है वैसे-वैसे ही धान के क्षेत्रफल में विस्तार हो रहा है जबकि मोटे अनाजों की फसलों का क्षेत्रफल घटता जा रहा है।

विकासखण्ड स्तर में देखें तो धान की फसल का सर्वाधिक विस्तार विहार विकासखण्ड में है जहां कुल खरीफ फसलों के 95.73 प्रतिशत क्षेत्रफल पर थान की फसल उगाई जाती है दूसरा स्थान बाबागंज विकासखण्ड का है जहां पर 88.98 प्रतिशत क्षेत्रफल पर धान की फसल आच्छादित है। प्रतापगढ सदर इस फसल के लिए न्यूनतम 20.11 प्रतिशत भागेदारी कर रहा है। इसके अतिरिक्त संडवा चन्द्रिका तथा सांगीपुर क्रमशः 26.24 प्रतिशत तथा 43.26 प्रतिशत भागेदारी करके 50 प्रतिशत से कम की हिस्सेदारी पर स्थित है। अन्य विकासखण्डों में शिवगढ भी 46..33 प्रतिशत धान की फसल को आवंटित करते लगभग आधे क्षेत्रफल को छूने का प्रयास कर रहा है अन्य विकासखण्ड 60 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल पर धान की फसल उगा रहे हैं केवल आसपुर देवसरा विकासखण्ड 59.79 प्रतिशत पर स्थित है।

मोटे अनाजों में ज्वार बाजरा तथा मक्का तीनों फसलें संयुक्त रूप से खरीफ मौसम में 13.16 प्रतिशत क्षेत्रफल पर उगाई जाती है। जिसमें बाजरा सर्वाधिक क्षेत्र 8.34 प्रतिशत क्षेत्रफल पर उगाई जाती है जबकि ज्वार 3.58 प्रतिशत और मक्का केवल 1.24 प्रतिशत क्षेत्रफल पर उगाई जा रही है। विकासखण्ड स्तर पर बाजरा का सर्वाधिक क्षेत्रफल प्रतापगढ सदर मुं 29.01 प्रतिशत पाया जा रहा है। जबकि दूसरे स्थान पर शिवगढ विकासखण्ड स्थित है। जहां 22.83 प्रतिशत खरीफ फसल क्षेत्र पर बाजरा की फसल उगाई जा रही है। सडंवा चन्द्रिका विकासखण्ड में 22.07 प्रतिशत क्षेत्र बाजरा फसल के लिए आवंटित करके शिवगढ का पीछा करता प्रतीत हो रहा है। इस दृष्टि से न्यूनतम भागेदारी बाबागंज विकासखण्ड कर रहा है जो इस फसल को 1 प्रतिशत से ही कम क्षेत्रफल छोड रहा है। अन्य विकासखण्डों में न्यूनाधिक बाजरा फसल भोगदारी कर रही है। मोटे अनाजों में ज्वार फसल ही जनपद में महत्वपूर्ण रही है। परन्तु कृषि की नयी तकनीकी क कारण मोटे अनाजों की फसलों का स्थान घटता जा रहा है। ज्वार की फसल भी कृषि की नई तकनीकि के कारण प्रभावित हुई है। और अब इस फसल का क्षेत्रफल घटकर मात्र 3.58 प्रतिशत रह गया है। ज्वार की फसल की दृष्टि से सांगीपुर विकासखण्ड 11.39 प्रतिशत क्षेत्रफल पर ज्वार की फसल उगाकर सर्वोच्च स्थान पर है। संडवा चन्द्रिका 9.87 प्रतिशत क्षेत्रफल पर इस फसल को बोकर द्वितीय स्थान पर है। विकासखण्ड तथा गौरा विकासखण्ड क्रमशः 0.95 प्रतिशत तथा 0.94 प्रतिशत क्षेत्रफल रखकर लगभग एक समान न्यूनतम स्थिति में स्थित है। मक्का का स्थान जनपद में अधिक महत्वपूर्ण नही है केवल आसपुर देवसरा तथा पट्टी विकासखण्डों में ही यह क्रमशः 8.94 प्रतिशत तथा 4.94 प्रतिशत क्षेत्रफल

पर ही उगाई जाती है। अन्य विकासखण्डों में मक्का की भागेदारी 1 प्रतिशत से भी कम है। और बाबागंज विकासखण्ड तो मक्का रहित विकासखण्ड है।

खरीफ की दलहनी फसलें :-

दालों में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने से भारतीय भोजन में दालों का विशेष महत्व है। कार्यशील जनसंख्या की बहुलता दालों की महत्व को और धिक बढा देती है। इन फसलों में अरहर, उर्द तथा मूंग की फसलें ही खरीफ की दलहनी फसलें है। खरीफ की दलहनी फसलों में अरहर फसल की प्रधानता है। अरहर कहीं-कही स्वतंत्र रूप से बोयी जाती है परन्तु अधिकांश कृषकों द्वारा इसे मिश्रित फसल के रूप में उगाई जाती है जो ज्वार बाजरा तथा मक्का के साथ बोयी जाती है। यह कहीं-कही गन्ने के साथ भी अरहर बोने का प्रचलन है मिश्रित फसलों के साथ यह बोयी तो खरीफ फसलों के साथ जाती है परन्तु यह पकती रबी फसल के साथ है अब तो उन्नत किस्म के बीजों के प्रचलन के साथ इसके पकने का समय अत्यन्त कम हो गया है जिससे यह फसल अब स्वतंत्र रूप से बोयी जाने लगी है क्योंकि इसके पकने के बाद गेहूं की फसल उगाई जाती है।

1. अरहर :-

खरीफ की दलहनी फसलों में अरहर का महत्वपूर्ण स्थान है यह स्वतंत्र रूप से तथा मिश्रित रूप में अन्य फसलों के साथ बोयी जाती है। अरहर की देर से पकने वाली प्रजातियां 9-10 महीने में पकती है और शीघ्र पकने वाली प्रजातियां 4-5 महीने में पककर तैयार होती है इसके दाने में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा 20.9 प्रतिशत पायी जाती है लोहा और

आयोडीन भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। विद्वानों के मतानुसार इसका उत्पत्ति स्थल अफ्रीका माना जाता है वही से इसका प्रसार अन्य देशों को हुआ। अरहर नम एवं शुष्क दोनो ही प्रकार की जलवायु में सफलता पूर्वक उगाई जा सकती है। यह पाले से अत्याधिक प्रभावित होने वाली फसल है। अधिक वर्षा भी इसके लिए हानिकारक होती है। यह बलुई-दोमट तथा दोमट भूमि पर उगाई जाती है। अध्ययन क्षेत्र में कम समय में पकने वाली प्रजातियों में पूसा, अगेती, पूसा 74 पन्त ए0-3 तथा मानक टाइप-21 प्रमुख रूप से बोयी जाती है देर से पकने वाली प्रजातियां टाइप-7 तथा टाइप 17 ही प्रमुख रूप से प्रचलित है।

2. उर्दू/मूंग :-

दलहनी फसलें उगाने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढती है क्योंकि इनकी जडों में पाये जाने वाले राइजोबियम बैक्टीरिया वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर उसे जमीन में संचित कर लेते हैं। मूंग उडद भूमि में लगभग 30 से 40 कि0ग्रा0 नाईट्रेजन प्रति हे0 की दर से संचित कर सकती है। इन फसलों को हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। ये फसलें अल्प अवधि की होने के कारण सस्य सघनता बढाकर भूमि का अधिकतम उपयोग होने में सहायक होती है। ये फसलें भूमि को आच्छादन भी प्रदान करती है जिससे भूमि कटाव रेंकने में सहायता मिलती है। इन फसलों को कम खाद तथा कम पानी की आवश्यकता होती है। उत्पादन लागत भी कम होती है। उर्द में प्रोटीन की मात्रा 24 प्रतिशत होती है जबकि उद्र में 24 से 24.5 प्रतिशत तक प्रोटीन पायी जाती है।

तालिका क्रमांक- 4.9

विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों का वितरण 1995-96 हे0 में

विकासखण्ड	उर्द		मूंग		अरहर	
कालाकांकर	632	6.58	345	3.59	421	4.38
बाबागंज	493	3.84	342	2.66	255	1.98
कुण्डा	406	3.39	183	1.53	1273	10.64
विहार	704	5.42	543	4.18	419	3.23
सांगीपुर	1684	13.58	150	1.21	1395	11.25
रामपुर खास	1116	7.44	284	1.89	799	5.33
लक्ष्मणपुर	552	6.50	62	0.73	875	10.31
संडवा चन्द्रिका	894	10.53	139	1.64	1650	19.43
प्रतापगढ सदर	668	8.25	102	1.26	1766	21.81
मान्धाता	781	7.49	122	1.17	850	8.15
मगरौरा	338	2.27	188	1.26	1086	7.28
पट्टी	232	2.28	200	1.97	773	7.61
आसपुर देवसरा	246	2.12	146	1.26	561	4.83
शिवगढ	381	4.38	193	2.22	2045	23.53
गौरा	692	6.04	437	3.81	417	3.64
योग ग्रामीण	9819	5.87	3436	2.05	14585	8.73
योग नगरीय	33	5.05	29	4.44	94	14.40
योग जनपद	**9852**	**5.87**	**3465**	**2.06**	**14679**	**8.75**

तालिका क्रमांक 4.9 विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों के क्षेत्रफल पर प्रकाश डाल रही है सम्पूर्ण जनपद में दलहनी फसलों के क्षेत्रीय वितरण को देखा जाये तो ज्ञात होता है कि दलहनी फसलों में अरहर सर्वाधिक 146.79 हे0 क्षेत्र पर बोयी जाती है जो कुल खरीफ फसल का 8.75 प्रतिशत है कुल दलहनी फसलों में इस फसल के अनुपात को देखे तो अरहर फसल आधे से अधिक क्षेत्रफल पर अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं दूसरे स्थान पर उर्द की फसल है जो 9852 हे0 क्षेत्रफल पर आच्छादित है और कुल खरीफ के 5.87 प्रतिशत पर अपनी हिस्सेदारी कर रही है। मूंग कुल 3465 हे0 क्षेत्रफल पर काबिज रह कर 2.06 प्रतिशत भागेदारी कर रही है।

विकासखण्ड स्तर पर दलहनी फसलों का असमान वितरण देखा जा सकता है। अरहर फसल का सर्वाधिक विस्तार शिवगढ विकासखण्ड में पाया जा रहा है जहां पर यह फसल 23.53 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जा रही है इस विकासखण्ड से ही मिलती जुलती स्थिति प्रतापगढ सदर में देखी जा रही है जहां पर 21.81 प्रतिशत क्षेत्र पर यह फसल बोयी जा रही है संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड 19.43 प्रतिशत भागेदारी करके तीसरे स्थान पर स्थित है। 10 प्रतिशत से अधिक भागेदारी करने वाले विकासखण्डों में सांगीपुर 11.25 प्रतिशत तथा कुण्डा 10.64 प्रतिशत है। अन्य विकासखण्ड 1.98 तथा 10 प्रतिशत के मध्य स्थित है। जिनमें बाबागंज विकासखण्ड मात्र 1.98 प्रतिशत की भागेदारी करके न्यूनतम स्थिति दर्शा रहा है।

दलहनी फसलों में उदड भी एक महत्वपूर्ण फसल है। इस फसल की दृष्टि से सांगीपुर विकासखण्ड 13.58 प्रतिशत की भागेदारी करके सबसे अच्छी स्थिति में है। संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड 10.53 प्रतिशत

क्षेत्रफल पर इस फसल को उगाकर दूसरे स्थान पर स्थित है। जबकि आसपुर देवसरा विकासखण्ड केवल 2.12 प्रतिशत की भागेदारी करके न्यूनतम स्तर को प्रदर्शित कर रहा है अन्य विकासखण्ड 2.27 प्रतिशत से 8.25 प्रतिशत के मध्य स्थित है। मूंग की फसल की दृष्टि से विहार विकासखण्ड 4.18 प्रतिशत क्षेत्रफल पर इस फसल को उगाकर सबसे अच्छी स्थिति में हैं जबकि लक्ष्मणपुर मात्र 0.73 प्रतिशत क्षेत्रफल पर इस फसल को बोकर न्यूनतम स्तर पर है। अन्य विकासखण्डों में गौरा 3.81 प्रतिशत तथा कालाकांकर 3.59 प्रतिशत क्षेत्र पर इस फसल को बो रहे हैं बाबागंज 2.66 प्रतिशत तथा शिवगढ 2.22 प्रतिशत भागेदारी करके 2 प्रतिशत से अधिक स्तर को प्राप्त कर रहे हैं अन्य विकासखण्ड 1 से 2 प्रतिशत के मध्य स्थित है।।

4. अन्य फसलें :-

खरीफ मौसम की अन्य फसलों में मडुवा, सांवा तिल तथा सनई ही महत्वपूर्ण फसलें हैं इस मौसम में हरे चाले की फसलें भी जनपद में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। मडुवा तथा सांवा की फसलें खाद्यान्य फसलों के रूप में तिल एक तिलहनी फसल है जबकि सनई फसल रेसेदार होने के कारण जनपद में रस्सियों की आवश्यकता की पूर्ति करती है। जनपद में मडुवा की फसल कुल 86 हे0 में बोयी जाती है। रामपुर खास लक्ष्मणपुर सांगीपुर तथा संडवा चन्द्रिका विकासखण्डों में यह फसल केन्द्रित है। सांवा फसल का कुल क्षेत्रफल 629 हे0 है और यह फसल न्यूनाधिक समस्त विकासखण्डों में उगाई जाती है। जिसमें सर्वाधिक इस फसल का सकेंद्रड सांगीपुर 121 हे0 तथा संडवा चन्द्रिका 102 हे0 हैं। 50 हे0 से अधिक इस फसल का क्षेत्रफल शिवगढ 86 हे0 मगरौरा 82 हे0 तथा प्रतापगढ सदर 55 हे0 हैं बाबागंज तथा कुण्डा विकासखण्ड कमशः 2

तथा 2 हे0 क्षेत्रफल में इस फसल को बोकर न्यूनतम स्थिति का प्रदर्शन कर रहे है। इस फसल में तिलहनी फसलों में तिल कुल 634 हे0 क्षेत्रफल में उगाया जाता है समस्त विकासखण्ड न्यूनाधिक तिल की खेती करते हैं परन्तु संडवा चन्द्रिका 112 हे0 में इस फसल को उगाकर सर्वोच्च स्तर पर है। सांगीपुर विकासखण्ड 98 हे0 में इस फसल को उगाता है सनई का कुल क्षेत्रफल 440 हे0 है जिसमें संडवा चन्द्रिका 88 हे0 तथा मगरौरा 79 हे0 क्षेत्रफल में सनई बोते हैं। विहार मात्र तीन हे0 में सनई बोकर न्यूनतम स्थिति प्रदर्शित कर रहा है। खरीफ मौसम में चारा फसलें सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रफल पर आच्छादित है। फसलें कुल 2495 हे0 क्षेत्रफल पर उगाई जाती है। इस फसल के अन्तर्गत 200 हे0 से अधिक क्षेत्रफल रखने वाले विकासखण्डों में मगरौरा 273 हे0 पट्टी तथा शिवगढ प्रत्येक 257 हे0 क्षेत्रफल पर चारा फसलें उगाते हैं अन्य विकासखण्ड 110 हे0 से 192 हे0 के मध्य स्थित हैं। केवल कालाकांकर तथा बाबागंज क्रमशः 98 हे0 तथा 74 हे0 पर इस फसल को उगाकर न्यूनतम स्तर प्रदर्शित कर रहे है।

3. जायद की फसलें :-

इस वर्ग की फसलों में तेल गर्मी शुष्क हवायें तथा लू सहन करने की बडी क्षमता होती है। इन फसलों की बुवाई मार्च अप्रैल में की जाती है इस मौसम में खरबूजा, तरबूज, खीरा तथा मूंग आदि प्रमुख फसलें हैं इनके अतिरिक्त इस मौसम में सब्जियां भी प्रमुख स्थान रखती है। जिनमें लौकी करैला, काशीफल, तरोई, भेंण्डी तथा बैगन आदि प्रमुख रूप से उगाई जाती है। जायद मौसम में हरे चारे की फसलों का भी प्रमुख स्थान है।

तालिका 4.10

विकासखण्ड स्तर पर जायद फसलों का वितरण 1995-96 हे0 में

विकासखण्ड	जायद का क्षेत्रफल	खरबूज/तरबूज		सब्जियां		ककरी/खीरा		मूंग		चारा फसले	
		क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
कालाकांकर	1313	315	23.99	472	35.95	167	12.72	328	24.98	31	2.36
बाबागंज	975	285	29.23	214	21.95	115	11.79	328	33.64	33	3.39
कुण्डा	1666	542	32.53	663	38.18	284	17.05	170	10.20	34	2.04
विहार	1489	376	25.25	264	17.73	248	16.66	517	34.72	84	5.56
सांगीपुर	554	202	36.46	137	24.73	112	20.22	77	13.90	26	4.69
रामपुर खास	1146	188	16.40	309	26.96	372	32.46	245	21.38	32	2.79
लक्ष्मणपुर	807	216	26.77	284	35.19	225	27.88	57	7.06	25	3.10
संडवा चन्द्रिका	667	215	32.23	210	31.48	198	29.69	18	2.70	26	3.90
प्रतापगढ सदर	695	192	27.63	208	29.93	227	32.66	42	6.04	26	3.74
मान्धाता	1090	314	28.81	215	19.72	356	32.66	107	9.82	98	8.99
मगरौरा	842	224	26.60	245	29.10	156	18.53	141	16.75	76	9.03
पट्टी	598	116	19.40	138	23.08	140	23.41	158	26.42	46	7.69
आसपुर देवसरा	605	51	8.43	206	34.05	178	29.42	131	21.65	39	6.45
शिवगढ	538	132	24.54	109	20.26	119	22.12	129	23.98	49	9.11
गौरा	773	110	14.23	98	12.68	61	7.89	401	51.88	103	13.32
योग ग्रामीण	13758	3478	25.28	3745	27.22	2958	21.50	2849	20.71	728	5.29
योग नगरीय	174	56	32.18	41	23.56	47	27.01	23	13.22	7	4.02
योग जनपद	13932	3534	25.37	3786	27.17	3005	21.57	2872	20.61	735	5.28

सारिणी क्रमांक 4.10 जनपद में जायद मौसम के अन्तर्गत विभिन्न फसलों के क्षेत्रफल को विकासखण्ड स्तर पर दर्शाया गया है। सारिणी से ज्ञात होता है कि जनपद में 27.17 प्रतिशत क्षेत्रफल पर सब्जियों को उगाकर यह फसलें सर्वोच्य स्थान प्राप्त कर रही है इसके उपरान्त खरबूजा, तरबूज का स्थान आता है जो 25.37 प्रतिशत क्षेत्र पर आच्छादित है। ककरी, खीरा तथा मूंग की स्थिति लगभग एक समान है जो क्रमशः 21.57 प्रतिशत तथा 20.61 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाती हैं चारा फसलें 5.28 प्रतिशत क्षेत्रफल को रखकर अन्तिम स्थान पर है।

विकासखण्ड स्तर पर देखें तो सर्वाधिक क्षेत्र पर उगाई जाने वाली सब्जियों की फसलें क्षेत्रीय वितरण में भिन्नता दर्शा रही हैं और यह फसलें कुण्डा विकासखण्ड में जायद फसल के क्षेत्रफल का 38.18 प्रतिशत क्षेत्र घेरे हुए है जबकि गौरा विकासखण्ड इस फसल को मात्र 12.68 प्रतिशत क्षेत्रफल आवंटित करके न्यूनतम स्तर को दर्शा रहा है। 30 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल पर इन फसलों को उगाने वाले विकासखण्डों में कालाकांकर 35.95 प्रतिशत लक्ष्मणपुर 35.19 प्रतिशत संडवा चन्द्रिका 31.48 प्रतिशत तथा आसपुर देवसरा 34.05 प्रतिशत है। 20 से 30 प्रतिशत के मध्य बाबागंज 21.95 प्रतिशत सांगीपुर 24.73 प्रतिशत रामपुर खास 26.96 प्रतिशत प्रतापगढ सदर 29.93 प्रतिशत पट्टी 23.08 प्रतिशत मगरौरा, 29.10 प्रतिशत तथा शिवगढ 20.26 प्रतिशत है 20 प्रतिशत से कम क्षेत्रफल वाले विकासखण्डों में गौरा के अतिरिक्त विहार 17.73 प्रतिशत मान्धाता 19.72 प्रतिशत है।

खरबूजा, तरबूज फसलों का जनपद में द्वितीय स्थान है। जो जायद मौसम में 25.37 प्रतिशत क्षेत्रफल पर उगाई जा रही है विकासखण्ड स्तर पर सांगीपुर विकासखण्ड 36.46 प्रतिशत क्षेत्र पर इस फसल को उगाकर प्राथमिकता क्रम में प्रथम स्थान पर है। जबकि आसपुर देवसरा 8.43 प्रतिशत इस फसल को आवंटित करके न्यूनतम स्तर पर है। 30 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल रखने वाले विकासखण्डों में आसपुर देवसरा के अतिरिक्त कुण्डा 32.53 प्रतिशत संडवा चन्द्रिका 32.23 प्रतिशत है जबकि 20 से 30 प्रतिशत के मध्य कालाकांकर 23.99 प्रतिशत बाबागंज 29.23 प्रतिशत विहार 25.25 प्रतिशत लक्षमणपुर 26.77 प्रतिशत प्रतापगढ सदर 27.63 प्रतिशत मान्धाता 28.81 प्रतिशत मगरौरा 26.60 प्रतिशत तथा शिवगढ 24.54 प्रतिशत है और रामपुर खास 16.40 प्रतिशत पट्टी 19.40 प्रतिशत तथा गौरा विकासखण्ड 14.23 प्रतिशत क्षेत्रफल रखकर 20 प्रतिशत से कम स्तर पर है।

ककरी खीरा का स्थान जनपद में तीसरा है और यह सम्पूर्ण जनपद में जायद फसल के 21.57 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाये जाते हैं जिसमें प्रतापगढ सदर तथा मान्धाता विकासखण्ड प्रत्येक 32.66 प्रतिशत क्षेत्र आवंटित करके जनपद में सर्वोच्च स्थान पर है जबकि रामपुर खास भी 32.46 प्रतिशत क्षेत्र पर इस फसल को उगाकर सर्वोच्च स्तर को प्रापत करने के लिए प्रयासरत है। गौरा विकासखण्ड 7.89 प्रतिशत क्षेत्र पर काबिज रह कर न्यूनतम स्तर दर्शा रहा है अन्य विकासखण्ड 29.69 प्रतिशत से 11.79 प्रतिशत के मध्य स्थित है। मूंग का स्थान जनपद में चौथा है जिसमें गौरा विकासखण्ड जायद क्षेत्रफल के आधे से अधिक 51.88 प्रतिशत क्षेत्रफल पर इस फसल को उगा रहा है। जबकि संडवा चन्द्रिका 2.70 प्रतिशत क्षेत्रफल पर इस फसल को उगा रहा है। इस फसल के लिए 30 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल आंवटित

करने वाले विकासखण्ड बाबागंज 33.64 प्रतिशत और विहार विकासखण्ड 34.72 प्रतिशत क्षेत्र पर आवंटित कर रहे हैं अन्य विकासखण्ड 6 प्रतिशत से अधिक परन्तु 27 प्रतिशत से कम क्षेत्र आवंटित कर रहे हैं चारा फसलों का स्थान जनपद में पांचवा हैं 2.04 प्रतिशत से 13.32 प्रतिशत के मध्य फैली हुई है।

सस्य विभेदीकरण :-

किसी भी क्षेत्र की कृषि स्थिति के पूर्ण अर्थ ग्रहण के लिए यह आवश्यक होता है कि उस क्षेत्र के सस्य विभेदीकरण का ज्ञान प्राप्त हो जाये कृषि के इस स्वभाव की जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेकों कृषि अर्थशास्त्रियों ने प्रयास किये हैं सस्य विभेदीकरण इस तथ्य का ज्ञान रखता है कि किसी क्षेत्र विशेष में कितनी फसलों की प्रधानता है यदि किसी क्षेत्र विशेष में अधिक फसलें उगाई जाती है और उनका क्षेत्रफलीय वितरण भी लगभग एक समान है तो उस क्षेत्र विशेष में फसलों का विभेदीकरण अधिक होगा। इसके विपरीत जिन क्षेत्रों में फसलों की संख्या कम होगी वहां पर विभेदीकरण भी कम होगा। उदाहरण के लिए यदि किसी क्षेत्र में 10 फसलें उगाई जाती है तो यह माना जाता है कि उन सभी फसलों में लगभग 10 प्रतिशत क्षेत्र प्रत्येक फसल के लिए आच्छादित होगा। इस स्थिति में सस्य विभेदीकरण उच्च श्रेणी का होगा यदि किसी क्षेत्र में एक ही फसल सतप्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाती है तो वहां पर विभेदीकरण 100 होगा और वह क्षेत्र उस फसल के लिए विशिष्ट होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि शस्य विभेदीकरण सूचकांक तथा विभेदीकरण की श्रेणी में विपरीत संबध होता है। अर्थात यदि

सस्य विभेदीकरण सूचकांक निम्न होगा तो सस्य विभेदीकरण उच्च्य होगा इसके विपरीत सूचकांक यदि उच्च्य होगा तो सस्य विभेदीकरण की श्रेणी निम्न होगी।

भाटिया एस0एस0 ने सस्य विभेदीकरण को ज्ञात करने के लिए एक सरल विधि प्रस्तुत की है।

$$\text{सस्य विभेदीकरण सूचकांक} = \frac{\text{x फसलों के अन्तर्गत बोये जाने वाले क्षे0फ0 का प्रतिशत}}{\text{x फसलों की संख्या}}$$

भाटिया ने एक्स फसलों में केवल उन्ही फसलों को अपनी गणना में सम्मिलित किया जिन फसलों के अन्तर्गत 10 प्रतिशत या इससे अधिक क्षेत्रफल संलग्न है।

सिंह जसबीर (1976) ने हरियाणा राज्य के सस्य विभेदीकरण को ज्ञात करने के लिए भाटिया के गणना विधि में न्यूनतम परिवर्तन करके गणना की है सिंह द्वारा प्रस्तुत सूत्र निम्न प्रकार है :-

$$\text{सस्य विभेदीकरण सूचकांक} = \frac{\text{n फसलों के अन्तर्गत कुल काटे जाने वाले क्षे0फ0 का प्रतिशत}}{\text{n फसलों की संख्या}}$$

सिंह ने एन फसलों के अन्तर्गत 5 प्रतिशत या इससे अधिक क्षेत्रफल वाली फसलों की गणना में सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र में सस्य विभेदीकरण के विस्तार को जानने के लिए भाटिया की विधि के आधार पर गणना करके सस्य विभेदीकरण सूचकांक प्राप्त किया गया जिससे सारिणी कमांक 4.11 में प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर सस्य विभेदीकरण सूचकांक

क्र0सं0	विकासखण्ड	फसलों की संख्या	विभिन्न फसलों के अन्तर्गत बोये जाने वाले क्षेत्र का प्रतिशत	सस्य विभेदीकरण सूचकांक
1	कालाकांकर	2	80.36	40.18
2	बाबागंज	2	87.99	43.99
3	कुण्डा	4	85.41	21.35
4	विहार	2	89.22	44.61
5	सांगीपुर	6	82.06	13.68
6	रामपुर खास	3	86.73	28.91
7	लक्ष्मणपुर	4	82.92	20.73
8	संडवा चन्द्रिका	7	84.90	12.13
9	प्रतापगढ सदर	7	82.45	11.78
10	मान्धाता	6	90.79	15.13
11	मगरौरा	4	80.94	20.23
12	पट्टी	3	87.34	29.11
13	आसपुर देवसरा	3	77.41	25.80
14	शिवगढ	5	86.15	17.23
15	गौरा	2	7343	36.71

अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर सस्य विभेदीकरण सूचकांक

सारिणी 4.11 जनपद में सस्य विभेदीकरण का चित्र प्रस्तुत कर रही है सर्वाधिक फसल संख्या 7-7 चन्द्रिका तथा प्रतापगढ सदर की है न्यूनतम फसल संख्या 2 है स्वाभाविक है कि सस्य विभेदीकरण जहां फसल संख्या अधिक होगी अधिक होगा। विकासखण्ड स्तर पर 2 से लगाकर 7 फसलों का विस्तार है विभिन्न फसलों के अन्तर्गत जोते गये फसलों का क्षेत्रफलीय प्रतिशत का योग 73.43 से लेकर 90.79 तक विस्तृत हैं जबकि सस्य विभेदीकरण सूचकांक का विस्तार 11.78 से लेकर 44.61 तक है जिसे पांच वर्गो में बाटा गया है।

सारिणी कमांक 4.12 विकासखण्ड स्तर पर सस्य विभेदीकरण

सस्य विभेदीकरण सूचकांक	सस्य विभेदीकरण की श्रेणी	विकासखण्ड
10 से कम	अति उच्च	कोई नही
10 से 20	उच्च	1. सांगीपुर 2. संडवाचन्द्रिका 3. प्रतापगढ सदर 4. शिवगढ 5. मान्धाता
20 से 30	मध्यम	1. कुण्डा 2. रामपुरखास 3. लक्ष्मणपुर 4. मगरौरा 5. पट्टी 6. आसपुर देवसरा
30 से 40	निम्न	1. गौरा
40 से अधिक	अति निम्न	1. कालाकांकर 2. बाबागंज 3. विहार

सारिणी क्रमांक 4.12 जनपद में सस्य विभेदीकरण का चित्र प्रस्तुत कर रही है सारिणी से ज्ञात होता है कि अति उच्च श्रेणी का सस्य विभेदीकरण जनपद के किसी भी विकासखण्ड में नही पाया गया है क्योंकि किसी भी विकासखण्ड में फसलों की अधिकतम संख्या 7 से अधिक नही है और इसी कारण सूंचकांक भी 10 से कम नही प्राप्त हुआ है। उच्च श्रेणी का सस्य विभेदीकरण कुल 5 विकासखण्डों सांगीपुर, संडवा चन्द्रिका, प्रतापगढ सदर, शिवगढ तथा मान्धाता में गणना की गयी है। इन विकासखण्डों में फसलों का विस्तार 5 से 7 फसलों तक पाया गया जिसके कारण ये विकासखण्ड सस्य विभेदीकरण की उच्च श्रेणी के अन्तर्गत स्थित पाये गये। मध्यम सस्य विभेदीकरण की श्रेणी के अन्तर्गत विकासखण्ड कुण्डा रामपुरखास, लक्षमणपुर मगरौरा पट्टी तथा आसपुर देवसरा स्थित हैं जहां पर फसलों का विस्तार 3 से 4 तक प्राप्त हुआ। इन विकासखण्डों में यद्यपि गेहूं तथा धान फसलों की प्रधानता हैं परन्तु कहीं बाजरा तथा चना महत्वपूर्ण है तो कहीं चना तथा अरहर जिसके कारण ये विकासखण्उ मध्यम श्रेणी में स्थित हैं 30 से 40 के मध्य केवल गौरा विकासखण्ड स्थित है। इस श्रेणी में केवल 2 फसलों की प्रधानता है। परन्तु इन दो फसलों में गेहूं का क्षेत्रफल प्रतिशत 45 प्रतिशत से अधिक होने के कारण यह कहा जा सकता है कि इस विकासखण्ड में गेहूं की ही प्रधानता हैं 40 से अधिक श्रेणी प्राप्त करने वाले अतिरिक्त सस्य विभेदीकरण के अन्तर्गत कालाकांकर बाबागंज तथा विहार विकासखण्ड स्थित है। इन तीनों विकासखण्डों में गेहूं तथा धान दोनों फसलों की प्रधानता है और दोनों फसलों का क्षेत्रफल 40 प्रतिशत से अधिक है इन तीनों ही विकासखण्डों में गेहूं तथा धान की फसल लगभग महत्व की है। जिसके कारण यह तीनों ही विकासखण्ड सस्य विभेदीकरण की दृष्टि से अति निम्न स्तर पर स्थिति हैं । उक्त सारिणी में यह तथ्य भी स्पष्ट हो रहा है कि जिन विकासखण्डों में गेहूं तथा

धान दो फसलों की प्रधानता है वहां अन्य फसलों की कोई महत्वपूर्ण भागेदारी नही हो रही है परन्तु जहां पर ये दोनों फसलें अपना बर्चस्व नही बना पायी है वहां पर अन्य फसलें अभी भी महत्वपूर्ण बनी हुई हैं।

स. सस्य संयोजन :-

सस्य संयोजन के अन्तर्गत किसी क्षेत्र विशेष में उत्पन्न की जाने वाली सभी फसलों का अध्ययन होता है किसी इकाई क्षेत्र में एक या दो विशिष्ट फसलें होती है और उन्ही के साथ अन्य अनेक गौण फसलें भी पैदा की जाती है कृषक मुख्य फसल के साथ ही कोई न कोई खाद्यान्य दलहन, तिलहन या रेसेदार फसल की खेती करते हैं प्रायः यह भी देखने को मिलता है कि यदि विशिष्ट क्षेत्र में दलहन या तिलहन फसल प्रथम वरीयता क्रम में है तो इसके साथ ही कृषक कोई न कोई खाद्यान्य फसल अवश्य ही उत्पन्न करता है इस प्रकार किसी क्षेत्र या प्रदेश में उत्पन्न की जाने वाली प्रमुख फसलों के समूह को सस्य संयोजन कहते हैं कृषि प्रदेशीयकरण के अध्ययन में फसल प्रतिरूप के प्रादेशिक अध्ययन के साथ ही सस्य संयोजन का अध्ययन महत्वपूर्ण होता हैं इससे कृषि की क्षेत्रीय विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकता है। अतः सस्य संयोजन प्रदेशों का निर्धारण उन फसलों के स्थानिक वर्चस्व के आधार पर किया जाता है जिनमें क्षेत्रीय सह सम्बन्ध पाया जाता है एवं जो साथ-साथ विभिन्न रूपो में उगाई जाती है फसलों के ऐसे अध्ययन से कृषि प्रकृति पद्धति और उसकी विशेषताओं के आधार पर कृषि प्रदेशीकरण हेतु उपागम प्राप्त होते हैं सस्य सयोंजन प्रदेशों के अध्ययन से जहां एक तरफ क्षेत्रीय कृषि विशेषताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है वही वर्तमान कृषि समस्याओं के निराकरण हेतु समुचित सुझाव दिये जा सकते हैं। किसी भी क्षेत्र के फसल संयोजन का स्वरूप मुख्यतः उस क्षेत्र विशेष के भौतिक (जलवायु, जलप्रवाह, मृदा) तथा सांस्कृतिक (आर्थिक, सामाजिक

तथा संस्थागत) वातावरण की देना होता है। यह मानव तथा भौतिक वातावरण के सम्बघों को प्रदर्शित करता है।

सस्य संयोजन से सम्बन्धित सर्बप्रथम जान बीबर महोदय ने महत्वपूर्ण प्रयास किया इन्होने फसलों से सम्बन्धित अध्ययन को एक नई दिशा दी। इनका सूत्र कुल फसल क्षेत्र से अनेक फसलों को अधिकृत प्रतिशत द्वारा तथा कुल क्षेत्र के सैद्धान्तिक वितरण जिसमें सम्पूर्ण फसल क्षेत्र को बराबर अनेक भागों में विभाजित किया है कि तुलनात्मक विधि पर आधारित है। थामस 17 से बीवर महोदय के सूत्र में सुधार प्रस्तुत किया। थामस ने प्रत्येक संयोजन में सभी फसलों के वास्तविक तथा सैद्धान्तिक प्रतिशत के अन्तर के आधार पर गणना की शेष फसलों की गणना शून्य से विचलन के आधार पर की।

भारत में सर्वप्रथम वनर्जी 18 ने पश्चिमी वंगाल के लिए बीवर महोदय की संसोधित विधि को अपनाया। हरपाल सिंह ने पंजांब मैदान के मालवा क्षेत्र के सस्य संयोजन का निर्धारण करते समय बीवर की विधि को अपनाया। ई0 दयाल ने पंजाब मैदान के सस्य संयोजन प्रदेशों का परिसीमन के उद्देश्य से एक नई विधि को अपनाया। प्रत्येक क्षेत्रीय इकाई में मुख्य फसलों के चयन हेतु 50 प्रतिशत मापदण्ड का प्रयोग किया दूसरे शब्दों में कुल फसल क्षेत्र के 50 प्रतिशत के अन्तर्गत आने वाली फसलों को सस्य संयोजन विश्लेशण के लिए चुना गया। राम ने पूर्वी गंगा घाघरा के दोआव के फसलों के बदलते सस्य स्वरूप का अध्ययन करते समय सस्य साहचर्य प्रदेशों का निर्धारण किया है। अहमद तथा सिद्दीकी ने लूनी बेसिन के सस्य साहचर्य का अध्ययन कम विभिन्नता तथा सभी कृषि सम्भावना वाले प्रदेशों में समिश्रण विश्लेषण को दृष्टिगत रखते हुए किया है।

अध्ययन क्षेत्र में जनपदीय स्तर पर सस्य संयोजन का निर्धारण करने के लिए दोई, थामस तथा रफीउल्लाह की विधियों का प्रयोग किया

है। किकू काजू दाई की विधि वीवर की ही संसोधित विधि है जिसमें दोई महोदय ने के $\Sigma d^2/n$ के स्थान पर Σd^2 को ही सस्य संयोजन का आधार माना। दोई महोदय की गणना के आधार पर अध्ययन क्षेत्र में सस्य संयोजन का निर्धारण करके यह पाया गया कि विकासखण्ड स्तर पर सस्य संयोजन के निर्धारण में इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र में सस्य सयोंजन की गणना करते समय उन फसलों को समिलित किया गया है जिनका क्षेत्रफल सकल कृषि क्षेत्र में 2 प्रतिशत से अधिक की भागेदारी कर रहा है।

थामस ने वीवर के विचलन निकालने की विधि में संशोधित किया है वीवर ने 2 सस्य समिश्रण में दो मुख्य फसलों के अन्तर के आधार पर गणना की थी जबकि थामस महोदय ने प्रत्येक सस्य समिश्रण में सभी फसलों के लिए वास्तविक एवं सैद्धान्तिक प्रतिशत के अन्तर के आधार पर गणना की है। थामस के अनुसार जब दो सस्य समिश्रण में प्रत्येक फसल के अन्तर्गत 50 प्रतिशत क्षेत्र है तो शेष फसलों के लिए शून्य प्रतिशत की कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार इन्होने सस्य समिश्रण की गणना प्रत्येक सस्य संयोजन में फसलों के सैद्धान्तिक प्रतिशत में फसलों की संख्या के बाद शेष फसलों के लिए सैद्धान्तिक प्रतिशत शून्य मानकर विचलन की गणना की और प्रत्येक सस्य संयोजन में सभी फसलों को सम्मिलित करके सस्य संयोजन का निर्धारण किया।

प्रो0 रफीउल्लाह ने सस्य सयोंजन निर्धारण के लिए अधिकतम सकारात्मक विधि को अपनाया इससे पूर्व सस्य संयोजन के निर्धारण में सभी फसलों को समान महत्व प्रदान किया गया था। प्रो0 रफीउल्लाह को इस कमी को दूर करने का प्रयास किया। प्रो0 रफीउल्लाह ने सस्य संयोजन निर्धारण के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया।

$$\delta = \sqrt{\frac{\Sigma DP^2 - \Sigma DN^2}{N^2}}$$

अथवा

$$\delta = \frac{\Sigma DP^2 - \Sigma DN^2}{N^2}$$

जहां	δ	=	विचलन
	DP	=	सकारात्मक (धनात्मक) विचलन
	DN	=	नकारात्मक (ऋणात्मक) विचलन
	N	=	संयोजन में फसलों की संख्या

प्रो0 रफीउल्लाह ने यह माना कि सकारात्मक तथा नकारात्मक विचलनों का अन्तर सैद्धान्तिक वक्र के माध्यिका मूल्य से होता है अतः उन्होने सैद्धान्तिक मान के मध्यमान से वास्तविक मान की गणना की है तथा सर्वाधित धनात्मक मूल्य से सस्य समिश्रण को ज्ञात किया। रफीउल्लाह के सूत्र के आधार पर निकाले गये सस्य समिश्रण में फसलों की संख्या कम तथा वास्तविकता के अनुरूप है।

सारिणी क्रमांक 4.12 विकासखण्ड स्तर पर सस्य सयोंजन का निर्धारण

WR = गेहूं, R = चावल/धान, Gg = उर्द/मूंग, Bg = अरहर, G = चना, M = बाजरा

सारिणी क्रमांक 4.12 स्पष्ट कर रही है कि दोई विधि से अध्ययन क्षेत्र पांच फसल संयोजन तक पहुंचता है जिसमें दो फसल संयोजन श्रेणी में सर्वाधिक 12 विकासखण्ड स्थित है। जबकि एक-एक विकासखण्ड क्रमशः तीन, चार, तथा पांच फसल संयोजन में स्थित है। थामस विधि से अध्ययन क्षेत्र छः फसल संयोजन तक पहुंचता है जिसमें दो फसल संयोजन में 11 विकासखण्ड स्थित है तथा एक-एक विकासखण्ड क्रमशः तीन, चार, पांच तथा छः श्रेणी में स्थित है। प्रो0 रफीउल्लाह की गणना विधि से दो फसल श्रेणी में 10 विकासखण्ड तीन फसल श्रेणी में 4 विकासखण्ड तथा चार फसल श्रेणी में एक विकासखण्ड स्थित है। इस प्रकार फसलों की संख्या की दृष्टि से प्रो0 रफीउल्लाह की गणना विधि के आधार पर अध्ययन क्षेत्र चार फसल श्रेणी तक निर्धारित हो जाता है जबकि दोई विधि में पांच तथा थामस विधि से छः फसल श्रेणी तक अध्ययन क्षेत्र विस्तृत है।

अध्ययन क्षेत्र में तीनों सस्य संयोजन विधियों की तुलना :-

दोई थामस तथा रफीउल्लाह की पद्धतियों की तुलना अध्ययन क्षेत्र में 15 विकासखण्डों को आधार मानकर निम्न विन्दुओं पर की जा सकती है।

1. यथार्थ फसल श्रेणी तथा सस्य संयोजन में फसल श्रेणी-

   अध्ययन क्षेत्र के 15 विकासखण्डों में उक्त तीनों विद्धानों में से केवल प्रो0 रफीउल्लाह की विधि से यथार्थ फसल श्रेणी तथा सस्य संयोजन में फसल श्रेणी एक समान प्राप्त होती है। इस दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के लिए रफीउल्लाह की विधि अधिक उपयुक्त है।

सारिणी क्रमांक 4.13

यथार्थ फसल श्रेणी तथा सस्य संयोजन में फसल श्रेणी

विकासखण्ड	फसलों का यथार्थ श्रेणीक्रम	सस्य संयोजन में फसलों का श्रेणीक्रम		
		दोई	थामस	रफीउल्लाह
कालाकांकर	W,R,Gg,Bg,G,P,M,	WR	WR	WR
बाबागंज	R,W,Gg,,P,Pe,	RW	RW	RW
कुण्डा	W,R,M,Bg,G,Gg,	WR	WR	WR
विहार	R,W,Gg,,P,Bg,M,	RW	RW	RW
सांगीपुर	W,R,Gg,J,Bg,	WRGg	WRGg	WRGg
रामपुर खास	W,R,Gg,Bg,P,	WR	WR	WR
लक्ष्मणपुर	W,R,M,Bg,Gg,	WR	WR	WR
संडवा चन्द्रिका	WRMBgGGgJ	WR	WR	WR
प्रतापगढ	WRMBgRGGg	MBgRWG	MBgRWG	MBgRWG
मान्धाता	WRMPGgBgG	WR	WR	WR
मगरौरा	WRBgMGGg	WR	WR	WR
पट्टी	WRBgMGgG	WR	WR	WR
आसपुर देवसरा	WRBgPPeGg	WR	WR	WR
शिवगढ	WRBgM,GP	RWBgM	RWBgM	WRBg
गौरा	WRGg PBg Pe	WR	WR	WR

सारिणी क्रमांक 4.13 यथार्थ फसल श्रेणी तथा सस्य संयोजन में फसल श्रेणी को प्रदर्शित करती है। सारिणी में केवल रफीउल्लाह की विधि द्वारा सस्य संयोजन के निर्धारण में फसलों का क्रम तथा वास्तविक फसल क्रम में समानता प्राप्त होती है। दोई विधि में प्रतापगढ सदर तथा शिवगढ विकासखण्डों को छोडकर अन्य तेरह विकासखण्डों में यथार्थ फसल श्रेणी तथा निर्धारित फसल श्रेणी के अन्तर्गत स्थित है। प्रतापगढ सदर में वास्तविक फसल श्रेणी में गेहूं प्रथम स्थान पर, जबकि निर्धारित फसल श्रेणी में चौथे स्थान पर है, इसी प्रकार शिवगढ में गेहूं प्रथम स्थान पर न होकर द्वितीय स्थान पर है। थामस विधि में भी संडवा चन्द्रिका प्रतापगढ सदर तथा शिवगढ विकासखण्डों में यथार्थ फसल श्रेणी तथा निर्धारित फसल श्रेणी में अन्तर है। रफीउल्लाह विधि में समस्त विकासखण्डों में यथार्थ फसल श्रेणी तथा निर्धारित फसल श्रेणी में पूर्णतया समानता है।

अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर सस्य संयोजन के निर्धारण हेतु वर्ष 1995-96 फसल वर्ष के आधार पर भूमि उपयोग सम्बन्धी आंकडों का प्रयोग किया गया है। प्रथम स्तर को प्रदेशों के अन्तर्गत जनपद में गेहूं तथा धान फसलों की ही प्रधानता पाई जाती है इसमें से 13 विकासखण्डों में गेहूं प्रथम स्थान पर है जबकि बाबागंज तथा विहार विकासखण्डों में धान प्रथम स्थान पर है। इन दो फसलों के अतिरिक्त संडवा चन्द्रिका तथा मान्धाता विकासखण्डों में बाजरा तीसरी फसल के रूप में महत्वपूर्ण है जबकि प्रतापगढ सदर मगरौरा तथा शिवगढ में अरहर तीसरी फसल के रूप में मान्यता प्राप्त है।

....

....

....

अध्याय-पंचम

कृषि उत्पादकता एवं जनसंख्या संतुलन

कृषि उत्पादकता मापन विधियां

अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादकता का स्तर

कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार

विभिन्न घनत्वों का तुलनात्मक विवेचन

विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्य उपलब्धता

अध्याय पंचम

कृषि उत्पादकता एवं जनसंख्या संतुलन :-

प्राकृतिक संसाधन किसी देश की अमूल्य निधि होते हैं, परन्तु उन्हे गतिशील बनाने बनाने, जीवन देने और उपयोगी बनाने का दायित्व देश की मानव शक्ति पर ही होता है, इस दृष्टि से देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास एवं समृद्धि का आधार स्तम्भ होती है। जनसंख्या को मानवीय पूंजी कहना कदाचित अनुचित न होगा। विकसित देशों की वर्तमान प्रगति, समृद्धि व सम्पन्नता की पृष्ठभूमि में वहां की मानव शक्ति ही है जिसने प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण और शासन द्वारा उन्हे अपनी समृद्धि का अंग बना लिया है, परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जनसंख्या देश की मानवीय पूंजी की श्रेणी में तभी आ सकती है जबकि वह शिक्षित हो, कुशल हो, दूरदर्शी हो और उसकी उत्पादकता उच्च कोटि की हो। कदाचित यदि ऐसा नही होता है तो मानवीय संसाधन के रूप में वह वरदान के स्थान पर एक अभिशाप से परिणित हो जायेगी क्योंकि उत्पादन कार्यों में उसका विनियोजन सम्भव नही हो पायेगा। स्पष्ट है कि मानवीय शक्ति किसी देश के निवासियों की संख्या पर नही वरन गुणों पर निर्भर करती है।

साधन सेवाओं के रूप में मानवीय संसाधन श्रम तथा उद्यमी को सेवाएं प्रदान करते हैं, यदि मानवीय संसाधन उच्च कोटि के हैं, तो आर्थिक विकास की गति तेल हो जाती है। अत: आर्थिक विकास की दर के निर्धारण में मानवीय संसाधनों की गुणात्मक श्रेष्ठता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। उपयोग की इकाई के रूप में मानवीय संसाधन राष्ट्रीय उत्पाद के लिए मांग का निर्माण करते हैं। यदि मनुष्यों की संख्या राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में अधिक है तो जनंसख्या सम्बन्धी अनेक समस्यायें उठ खडी होती है, जैसे बढती जनसंख्या के कारण देश में खाद्यान्य की मांग बढ जाती है। इससे खाद्यान्यों की स्वल्पता की समस्या उत्पन्न हो जाती है, इसके अतिरिक्त बढती हुई जनसंख्या के कारण राष्ट्रीय उत्पादन के एक बडे भाग

का उपयोग, उपभोग कार्यो में कर लिया जाता है और निवेश कार्यो के लिए बहुत कम उत्पादन शेष बच पाता है इससे पूंजी निर्माण की गति धीमी पड जाती है, साथ ही बढती जनसंख्या बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न करती है जिसके आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम बहकुत दुष्कर होते हैं,। सर्वाधिक महत्व एवं चिन्ता की बात यह है कि हमारे देश की जनंसख्या निरन्तर तेज गति से बढ रही है। जनसंख्या में तीव्र बृद्धि के कारण जीवन को गुणात्मक श्रेष्ठता और उन्नत बनाने के सभी प्रयास असफल सिद्ध हुए है। भारत जैसे विकासशील देश में जहां पूजी का अभाव है और मानवीय संसाधन की अधिकता है वहां जनसंख्या परिसम्पत्ति के बजाय दायित्व बन गई है।

आर्थिक विकास का ऐतिहासिक अनुभव और आर्थिक विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक अर्थ व्यवस्था में कृषि क्षेत्र का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। विकसित अर्थ व्यवस्थाओं के विकास अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के राष्ट्रीय उत्पाद, रोजगार और निर्यात की संरचना में कृषि क्षेत्र का योगदान उद्योग और सेवा क्षेत्र की तुलना में अधिक होता है। ऐसी स्थिति में कृषि का पिछडान सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को पिछडा बनाये रखती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्ग के लोग जिसमें लघु एवं अति लघु कृषक और खेतिहर मजदूर सम्मिलित हैं और जिनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है, अधिकांशतः गरीबी के दुश्चक्र में फसे रहते हैं, इनकी गरीबी अर्थव्यवस्था के पिछडेपन का मुख्य कारण होती है।

आज के विभिन्न विकसित देशों का आर्थिक इतिहास यह स्पष्ट करता है कि कृषि विकास ने ही उनके औद्योगिक क्षेत्र के विकास का मार्ग प्रसस्त किया है। कृषि क्षेत्र ने ही उनके परिवहन और गैर कृषि आर्थिक कियाओं के लिए अवसर उत्पन्न किये हैं। आज के विकसित पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के आरम्भिक चरण में कृषि क्षेत्र ने वहां के गैर कृषि क्षेत्र के विकास हेतु श्रम शक्ति, कच्चा पदार्थ, भोज्य सामाग्री और पूजी की आपूर्ति की है। यू0एस0एस0आर0 ने 1927 में सामूहिक कृषि प्रणाली अपनाकर बडे पैमाने पर यंत्रीकरण का प्रयोग करके अपनी कृषि का विकास किया। सामूहिक कृषि फार्मो पर भारी

करारोपण एवं औद्योगिक उत्पादों की कीमतें बढाकर कृषि अतिरेक को गैर कृषि क्षेत्र के विकास हेतु प्रयुक्त किया गया जिससे खाद्यान्य एवं व्यापारिक फसलों का उत्पादन तेजी से बढा और कृषि श्रमिकों की उत्पादकता में 1926 से 1938 की अवधि में 25 से 30 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। जापान में भी आर्थिक विकास की प्राथमिक अवस्था में कृषि अतिरेक का गैर कृषि कार्यों में प्रयोग किया। विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के उपरोक्त अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की पूर्वापेक्षा कृषि क्षेत्र का विकास है। कृषि क्षेत्र का विकास कृषि एवं सम्बद्ध कियाओं में लगे लोगों की आर्थिक स्थिति में तो सुधार करता ही है साथ-साथ यह गैर कृषि क्षेत्र के लिए खाद्यान्य कच्चा पदार्थ, बाजार और श्रम की आपूर्ति करता है।

अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में विकसित अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा खाद्यान्य उत्पादन में तीब्र बृद्धि आवश्यक है क्योंकि इन अर्थ व्यवस्थाओं मे जनसंख्या वृद्धि दर अत्यन्त ऊंची 1.5 से 3.0 प्रतिशत तक होती है, दूसरी ओर व्यापक जनसमूह का उपभोग स्तर अत्यन्त निम्न होता है। जन संख्या वृद्धि नगरीकरण और आयवृद्धि के कारण कृषि उत्पादन की मांग बढती है। जनसंख्या आयवृद्धि और आद्यान्य की मांग की लोच को ध्यान में रखकर खाद्यान्य की मांग में वार्षिक बृद्धि निम्न प्रकार से स्पष्ट की जा सकती है।

	D	= P	+ ng
यहां	D	=	खाद्यान्य मांग की वार्षिक वृद्धि
	P	=	जनसंख्या वृद्धि दर
	g	=	प्रति व्यक्ति आय वृद्धि दर
	n	=	खाद्यान्य हेतु आय मांग की लोच

इस आधार पर यदि जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय वृद्धि दर 2 प्रतिशत और खाद्यान्यों के लिए आय मांग की लोच 0.8 प्रतिशत हो तो कृषि उत्पादन में (2.5+2x0-8) = 4 प्रतिशत वृद्धि की आवश्यकता होगी ताकि कृषि उत्पादन

की कीमतों को स्थित रखा जा सके। यह अनुमान है कि विश्व की लगभग 2/3 जनसंख्या अल्पपोषिक है, इनके आहार स्तर में सुधार के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता है। विकासशील अर्थव्यवस्थओं में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं में प्रसार और पोषक तत्वों में वृद्धि होने के कारण मृत्यु दर घटी है परन्तु जन्म दर में तदनुसार कमी न होने से जनसंख्या में तीब्र बृद्धि हो रही है। विकसित देशों की खाद्यान्य आय मांग की लोच 0.3 या इससे कम होती है, इसके विपरीत विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह 0.6 या इससे कम होती है, इसके विपरीत विकासशील अर्थव्यवस्थों के लिए यह 0.6 या इससे अधिक है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इन अर्थव्यवस्थाओं में लोग अपने कुल उपभोग व्यय का 50 से 70 प्रतिशत तक भाग खाद्यान्यों पर व्यय करते है और 60 से 85 प्रतिशत तक ऊष्मांक (ऊर्जा) खाद्यान्यों से प्राप्त करते हैं।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास के अनुभवों से स्पष्ट होता है कि उनके आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिससे आर्थिक विकास हेतु वित्त की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि क्षेत्र की महत्वूपर्ण भूमिका रही है, जिससे आर्थिक विकास हेतु वित्त की आपूर्ति हुई है। कृषि विकासशील अर्थ व्यवस्थाओं का प्रमुख व्यवसाय होता है क्योंकि कृषि को न केवल खाद्य पदार्थो की आपूर्ति करनी होती है अपितु आर्थिक विकास हेतु अतिरेक भी सृजित करना होता है। कृषि क्षेत्र के अतिरेक से उत्पन्न बचत को विनियोग किया जा सकता है। कृषि क्षेत्र की बचत से ही जापान और इग्लैण्ड को अपने आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सहयोग प्राप्त हुआ है। यदि कृषि बचत से ही जापान और इग्लैण्ड को अपने आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सहयोग प्राप्त हुआ है। यदि कृषि बचत का सम्यक उपयोग न हुआ हो तो वांछित परिणाम प्राप्त नही होते हैं। जैसा कि भारत में एक बडी समयावधि तक कृषि अतिरेक का उपभोग बडे भू-स्वामियों द्वारा सुविधा एवं विलासिता युक्त जीवन यापन में किया गया। एम0एल0डार्लिंग ने अपने अध्ययन में इस भारतीय पद्धति पर खेद व्यक्त किया था।

1. कृषि उत्पादकता मापन विधिया :-

कृषि अध्ययन में कृषि उत्पादकता को निर्धारित करने के लिए विधि सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य मिलता है। भिन्न-भिन्न विद्धानों ने कृषि उत्पादकता को निर्धारित करने में अलग-अलग विधियों को अपनाया है। विधि सम्बन्धी इन सभी उपागमों को सात वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1. कृषि उत्पादन से प्राप्त आय पर आधारित विधि।
2. प्रति श्रम लागत इकाई उत्पादन पर आधारित विधि।
3. कृषि उत्पादन से प्रतिव्यक्ति उपलब्ध अन्न पर आधारित विधि।
4. कृषि लागत पर आधारित विधि।
5. प्रति एकड उपज तथा कोटि गुणांक पर आधारित विधि।
6. फसल क्षेत्र तथा प्रति क्षेत्र इकाई उत्पादन पर आधारित विधि।
7. भूमि के पोषक भार क्षमता पर आधारित विधि।

उर्पयुक्त विधियों से एक, दो तथा चौथे उपागम के लिए संसार के अधिकांश देशों में उपयुक्त आंकडे नही मिल पाते हैं। भारत के अधिकांश राज्यों में कृषि आंकडे इस दृष्टिकोण से अधूरे है। तृतीय उपागम कृषि उत्पादन से प्रति व्यक्ति उपलब्ध अन्न पर आधारित विधि को सर्वप्रथम बक महोदय ने अपनाया। बक महोदय ने अनुभव किया कि चीन जैसे देश में जहा जीवन निर्वहन व्यवस्था प्रचलित है, कृषि उत्पादकता का मूल्यांकन मुद्रा के रूप में उचित नही होगा, जबकि अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोंप की कृषि क्षमता का निर्धारिण अन्न तुल्य विधि के आधार पर निर्धारित करना उचित नही होगा क्योंकि वहां पर अनेक मुद्रा दायिनी फसलों का उत्पादन होता है, इनको अन्न के बराबर या किसी भार इकाई के बराबर बदलना न्यायकर प्रतीत नही होता है।

क्लार्क तथा हैसवेल ने भी यही विधि अपनाई जो प्रतिव्यक्ति गेहूं तुल्य पर आधारित है। इस मापक में सम्पूर्ण कृषि उत्पादन को प्रति व्यक्ति वार्षिष्क गेहूं की

मात्रा (किलोग्राम) के रूप में प्रदर्शित किया गया, इस आधार पर कृषि उन्नति का तुलनात्मक अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।

प्रति एकड उपज तथा कोटि गुणांक पर आधारित विधि का सम्बन्ध फसलों की प्रति एकड उपज से है। कैण्डल की कृषि क्षमता निर्धारण विधि प्रति क्षेत्र इकाई के उत्पादन पर आधारित है। इन्होने इग्लैण्ड के 48 काउन्टीज की क्षमता निर्धारण में दस प्रमुख फसलों के प्रति एकड उपज को आधार माना तथा श्रेणी गुणांक विधि को अपनाया। भारत वर्ष में इस विधि का सर्व प्रथम प्रयोग मुहम्मद सफी ने किया। इन्होने उत्तर प्रदेश के सभी जनपदों की कृषि क्षमता का निर्धारण आठ खाद्यान्य फसलों के प्रति एकड उपज के आधार पर किया। इस विधि की आलोचना इस आधार पर की गई कि फसलों के प्रति एकड उत्पादन के विश्लेषण के साथ उस फसल के क्षेत्र का ध्यान नही रखा जाता है। उदाहरण के लिए अ इकाई की श्रेणी गेहूं के प्रति एकड उत्पादन के लिए प्रथम स्थान पर है लेकिन क्षेत्र केवल 1 प्रतिशत है, प्रति एकड उत्पादन अधिक होते हुए भी क्षेत्र के दृष्टिकोण से स्थान नगण्य हो सकता है फलस्वरूप 'अ' इकाई का महत्व कृषि उत्पादकता की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण होगा जबकि श्रेणी गुणांक विधि के अनुसार कृषि क्षमता अधिक होगी।

श्रेणी गुणांक विधि की इस कमजोरी को सप्रे तथा देशपाण्डे ने दूर किया इन्होने फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र को स्थान देकर श्रेणी गुणांक उपागम में सुधार किया। इस विधि की मूल कमी यह है कि इसमें प्रत्येक फसल की प्रतिशत की गणना कुल फसल क्षेत्र से किया गया है जबकि कृषि क्षमता निर्धारित करते समय कुल बोई गई भूमि ही उत्पादन तथा प्रति एकड उत्पादन को प्रभावित करती है। गांगुली ने फसल उपज सूची विधि को अपनाया। इन्होने नौ मुख्य फसलों को चुना तथा प्रत्येक फसल की सूची की गणना की, इनका उपज सूची सूत्र निम्न लिखित है।

$$\frac{\text{अध्ययन इकाई के 'क' फसल की प्रति एकड उपज}}{\text{सम्पूर्ण प्रदेश में 'क' फसल की औसत उपज}} \times 100$$

उपज सूची ज्ञात करने के बाद उस फसल की प्रतिशत से गुणा करके कार्यक्षमता सूची की गणना की गई है। इस अध्ययन में भी कार्य क्षमता सूची की गणना कुल फसल क्षेत्र के स्थान पर कुल बोई गई भूमि के सन्दर्भ में किया गया होता तो परिणाम अधिक सही होता। माटिया ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों की कृषि क्षमता निर्धारित करने में एक विशेष सूत्र का प्रयोग किया, इनका अनुमान है कि (क) प्रति एकड उपजल भौतिक एवं मानवीय पर्यावरण का प्रतिफल है, (ख) अनेक फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र भूमि उपयोग से सम्बन्धित अनेक कारकों के प्रभाव को प्रदर्शित करता है, फलस्वरूप कृषि क्षमता प्रति एकड उत्पादन तथा फसल क्षेत्र दोनों, तथ्यों की देन है। माटिया ने निम्नलिखित सूत्र के आधार पर उत्तर प्रदेश की कृषि क्षमता को निर्धारित किया-

1. $$Lya = \frac{YC}{Yr} \times 100$$

जहां Lya = 'a' फसल की उपज सूची

Yc = 'a' फसल की प्रति एकड उपज

Yr = 'a' फसल की सम्पूर्ण क्षेत्र की प्रति एकड उपज

2. $$Ei = \frac{Lya.\ Ca + Lyb.\ Cb \ldots\ldots\ldots + cn}{Ca + cb \ldots\ldots\ldots + cn}$$

Ei = कृषि क्षमता की सूची

Lya, Lyb = अनेक फसलों की उपज सूची

Ca, cb = अनेक फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र का कुल फसल क्षेत्र से प्रतिशत

सिन्हा 8 ने माटिया की विधि का समर्थन करते हुए जनपद स्तरीय अध्ययन के लिए दोषपूर्ण बताया, इन्होने भारतवर्ष स्तर पर आंकड़ों की ओर ध्यान दिलाते हुए कृषि क्षमता निर्धारण में प्रति हे0 उपज को ही लाभप्रद बताया। सिंन्हा9 ने कृषि क्षमता का निर्धारण प्रति एकड भूमि भार क्षमता के आधार पर किया है। इनके मतानुसार कृषि क्षमता भूमि उत्पादन जितना अधिक होगा, भूमि पोषक क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी, फलतः फार्मिंग क्षमता भी अधिक होगी। वास्तव में भूमि भार को क्षमता विधि की मुख्य विशेषता यह है कि संसार के किसी भी भाग में फसलों की विभिन्नताओं का तुलनात्मक अध्ययन आसानी से किया जा सकता है। इस विधि में उत्पादन को कैलोरीज में बदल लिया जाता है इन्होने कृषि क्षमता की सूची को इस प्रकार निर्धारित किया।

$$Lae = \frac{Cpe}{Cpr} \times 100$$

जहां Lae = इकाई की कृषि क्षमता सूची

Cpe = इकाई की भूमिभार पोषक क्षमता

यह उपागम उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होगा जहां कुल फसल क्षेत्र का 95 प्रतिशत भाग खाद्यान्य फसलों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

कृषि क्षमता के स्थान पर कृषि उत्पादकता शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन करने वाले विद्धान ईनेदी 10 ने कृषि की मौलिक किस्मों का वर्णन करते समय कृषि उत्पादकता को निर्धारित करने के लिए निम्न सूत्र प्रतिपादित किया।

$$\frac{Y}{Yn} \div \frac{T}{Tn} \quad \text{अथवा} \quad \frac{Y}{Yn} \times \frac{T}{Tn}$$

जहां Y = इकाई क्षेत्र में चुनी फसल की पैदावार की कुल मात्रा

Yn = राष्ट्रीय स्तर पर फसल की पैदावार की कुल मात्रा

T = जिला में फसल के अन्तर्गत कुल क्षेत्र

Tn = राष्ट्रीय स्तर पर फसल के अन्तर्गत कुल क्षेत्र

सफी[11] ने भारत वर्ष के बृहद मैदान की कृषि उत्पादकता को निर्धारित करते समय ईनेदी के सूत्र में संसोधन प्रस्तुत किया। ईनेदी के सूत्र में प्रमुख दोष यह था कि उत्पादकता

सूची पर फसल क्षेत्र की मात्रा का अधिक प्रभाव पडता था। राष्ट्रीय या जिला स्तर पर प्रति हे0 पैदावार समान या कम होने पर भी राष्ट्रीय स्तर की अपेक्षा जिला स्तर पर उत्पादकता सूची अधिक होती है। सफी ने ईनेदी के सूत्र में सुधार किया जो इस प्रकार है –

$$\frac{\sum \underline{Y1/}\, t1 + y2 / t2 \ldots\ldots n}{\sum \underline{Yn/}\, tn : \sum Yn/Tn} \qquad \sum \underline{Y1/}\, t1 + y2 / t2 + \ldots\ldots n$$

जहां	Y1 Y2 ....n	इकाई क्षेत्र में चुनी गई फसलों का कुल उत्पादन
	T1 T2 ....n	इकाई क्षेत्र में चुनी गई फसलों का कुल क्षेत्रफल
	Y1 Y2 ....n	राष्ट्रीय स्तर पर उन फसलों का कुल उत्पादन
	T1 T2 ....n	राष्ट्रीय स्तर पर उन फसलों का कुल क्षेत्रफल
	n	चुनी गयी फसलें

इस सूत्र में जनपद में सभी फसलों से प्राप्त कुल उपज को सभी फसलों के कुल क्षेत्र से विभाजित किया गया है और प्रति हे0 उपज मालुम की गयी है इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर सभी फसलों से प्राप्त कुल उपज को भी कुल क्षेत्र से विभाजित करके प्रति हे0 उपज मालुम की गयी है। तत्पश्चात जनपद के प्रति हे0 उपज में राष्ट्रीय स्तर के प्रति हे0 उपज से विभाजित किया गया है। हुसैन[12] ने सतलज गंगा मैदान की कृषि उत्पादकता प्रदेश निर्धारण में एक नूतन विधि का सुझाव दिया है। इनका कहना है कि उत्पादकता अध्ययन में सभी उत्पादित फसलों की गणना की जानी चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि किसी एक इकाई क्षेत्र में कुछ फसलें प्रमुख होती है तथा ऐसी अनेक फसले होती है जो मुद्रा की दृष्टिकोण से प्रमुख होती है जबकि क्षेत्र न्यूनतम होता है अब तक अपनायी गयी विधियों में न्यून क्षेत्र वाली फसलों की गणना नही की गयी है इन्होंने सभी उत्पादित फसलों की उपज से प्राप्त मुद्रा की गणना की सूत्र इस प्रकार है –

$$Lj = \frac{\sum_{J=i}^{n} rij\ \ Cij}{aij} \times \frac{\sum_{i=j}^{n} ri\ \ Ci}{Ai}$$

जहां L_j = J जनपद में उत्पादकता सूची

Y_{ij} = J जनपद में i फसल का उत्पादन

C_{ij} = J जनपद में i फसल का मूल्य

n = J जनपद में उगाई गई फसलों की कुल संख्या

a_{ij} = J जनपद में i फसल के अन्तर्गत क्षेत्र

Y_i = सम्पूर्ण प्रदेश i फसल का औसत मूल्य

C_i = सम्पूर्ण प्रदेश i फसल का औसत मूल्य

A_i = सम्पूर्ण प्रदेश i फसल के अन्तर्गत कुल क्षेत्र

सूत्र का स्पष्टीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है।

$$\textbf{Productivity Index} = \frac{\text{Productivity Value in money of all crops in a unit}}{\text{Total cropped area in a district}} \times \frac{\text{Production Value in money of all crops in the region}}{\text{Total cropped area in region}}$$

2. **अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादकता का स्तर :-**

किसी भी क्षेत्र में कृषि सक्रियता कृषि गहनता एवं कृषि कुशलता को प्रदर्शित करने में कृषि उत्पादकता का विशेष स्थान है। यदि उत्पादकता क्षीण होती है तो स्वत: कृषि कुशलता घट जाती है। कृषि उत्पादकता बढाने में जिन कारकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है उनमें भौतिक पृष्टभूमि के अतिरिक्त सुधरे हुए बीजों, उर्बरकों सिंचन सुविधाओं कृषि यंन्त्रीकरण तथा कृषक प्रशिक्षण विशेष उल्लेखनीय है। कुछ विद्वानों ने उर्बरकों के आधार पर उत्पादकता बढाने के प्रयासों का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग एक सीमा तक ही लाभदायक होता है उस सीमा के बाद उर्बरकों का अधिक प्रयोग हानिकारक होता है अत: उस उपयुक्त सीमा का निर्धारण करना आवश्यक हो जाता है जिस पर उर्वरकों की सीमान्त उत्पादकता अधिकतम हो साधारण कृषक ऐसे प्रायोगिक पक्षो से अनभिज्ञ होते हैं इसलिए कृषि प्रसार सेवाओं द्वारा कृषकों को इस सम्बन्ध में ज्ञान कराया जाना चाहिए।

कृषि उत्पादकता से कृषि उत्पादन का गहरा सम्बन्ध है क्योंकि कृषि उत्पादकता जहां सक्षमता का द्योतक है वही कृषि उत्पादन वास्तविकता का प्रतीक भी है। यदि कृषि उत्पादकता बृद्धि के सक्रिय प्रयास के बाद भी वास्तविक कृषि उत्पादन न बढ सके तो सारा प्रयास असफल दीखता है। अत: अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादकता तथा कृषि उत्पादन का निर्धारण भी आवश्यक हो जाता है जिससे कृषि उत्पादकता वृद्धि के प्रयासों के प्रतिफल को ज्ञात किया जा सके। कुछ विद्धानों ने इसके लिए सफल गहनता तथा फसल उपज समकक्षता संकेतांकों का प्रयोग किया गया। फसल गहनता में फसलों की लागत को ध्यान में रखकर अतिरिक्त उपज का अनुमान लगाया जा सकता है। जबकि फसल उपज समकक्षता द्वारा भिन्न फसलों के सापेक्ष महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है।

अ. फसल गहनता :-

फसल गहनता से आशय उस फसल क्षेत्र से है जिसपर वर्ष में एक फसल केक अतिरिक्त अन्य कई फसलें उगाई जाती है। शुद्ध कृषि क्षेत्र तथा दोहरी या अनेक फसल क्षेत्र को मिला कर कुल फसल क्षेत्र का सम्बोधन होता है। किसी भी क्षेत्र में शुद्ध बोये गये क्षेत्र की अपेक्षा कुल फसल क्षेत्र का अधिक होना फसल गहनता की मात्रा को प्रदर्शित करता है। फसल गहनता वह सामयिक विन्दु है जहां भूमि श्रम, पूंजी, तथा प्रबन्ध का समिश्रण सर्वाधिक लाभप्रद होता है। भारत वर्ष की वर्तमान कृषि अर्थ व्यवस्था में फसल गहनता का निर्धारण अधिक लाभप्रद होता है। भारत वर्ष की वर्तमान कृषि अर्थ व्यवस्था में फसल गहनता का निर्धारण इन चरों के अनुपात में नही किया जाता है क्योंकि भूमि एक स्थायी कारक है। मानवीय श्रम की अधिकता तथा बेरोजगारी भी अधिक है। कृषि, जीवन निर्वाह का एक माध्यम मात्र है। फार्म का आकर छोटा है और कृषि उद्यम का रूप धारण नही कर पायी है। वास्तव में यहां फसल गहनता सिंचाई के साधन बीज, उर्बरक तथा कृषि यंत्रों की उपलब्धि पर आधारित रहती है। यही कारण है कि भारतीय कृषि अर्थ व्यवस्था में बडे कृषि फार्मों की अपेक्षा छोटे आकार के फार्मों में फसल गहनता अधिक होती है। क्योंकि कृषक पारिवारिक श्रम तथा अध्ययन लागतों का भरपूर प्रयोग करता है जबकि बडे आकार के कृषि फार्म्रे में पूंजी का वितरण असमान हो जाता है। इस प्रकार फसल गहनता की संकल्पना का प्रार्दुभाव एक ही खेत में एक ही वर्ष में एक से अनेक फसलों के उत्पादन से होता है। फसल गहनता की गणना निम्नलिखित सूत्र के आधार पर की जाती है।

$$\textbf{फसल गहनता सूची} = \frac{\text{कुल फसल क्षेत्र}}{\text{शुद्ध बोया गया क्षेत्र}} \times 100$$

उदाहरण के लिए 'क' इकाई क्षेत्र में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 100 हे0 है तथा 20 हे0 दो फसली क्षेत्र है इस प्रकार कुल फसल क्षेत्र 100+20 = 120 हे0 होगा,

अतः फसल गहनता सूची = $\frac{120}{100} \times 100$

तालिका कमांक 5.1

विकासखण्ड स्तर पर फसल गहनता सूची 1995–96

क0	विकासखण्ड	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	सकल बोया गया क्षेत्र	फसल गहनता
1.	कालाकांकर	12391	20506	165.49
2.	बाबागंज	15475	25829	166.91
3.	कुण्डा	15642	26063	166.62
4.	विहार	16137	26868	166.50
5.	सांगीपुर	16906	25629	151.60
6.	रामपुरखास	19690	30656	155.69
7.	लक्षमणपुर	12680	18470	145.66
8.	संडवा चन्द्रिका	13496	18700	138.56
9.	प्रतापगढ सदर	11906	16417	137.89
10.	मान्धाता	13697	22261	162.52
11.	मगरौरा	17792	28383	159.53
12.	पट्टी	12723	19958	156.87
13.	आसपुर देवसरा	14057	23233	165.28
14.	शिवगढ	13779	19599	142.24
15.	गौरा	14671	24545	166.30
	ग्रामीण	221042	347117	157.04
	नगरीय	1064	1693	159.12
	जनपद	222106	348810	157.05

फसल गहनता का स्तर

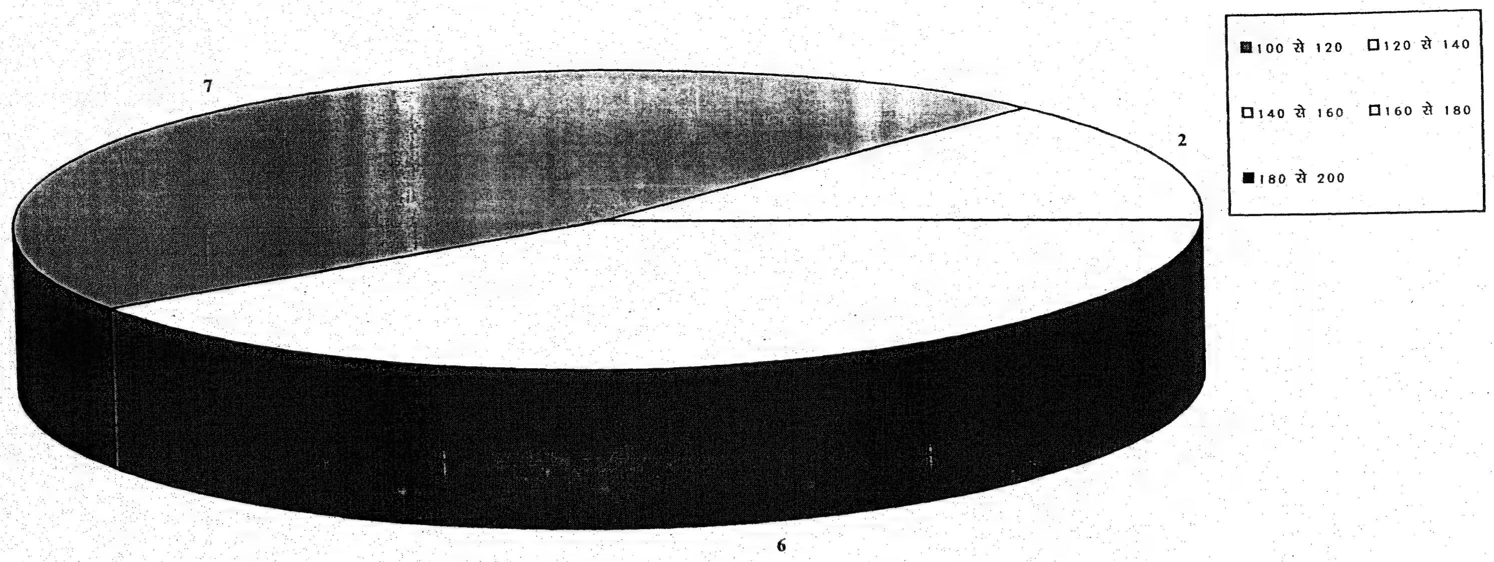

तालिका कमांक 5.1 विकासखण्ड स्तर पर फसल गहनता सूची का चित्र प्रस्तुत कर रही है। तालिका से ज्ञात होता है कि फसल गहनता का जनपदीय स्तर 157.05 प्रतिशत है अर्थात 57 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल पर दो या दो से अधिक फसलें उगाई जाती है। विकासखण्ड स्तर पर देखें तो जनपदीय स्तर से ऊंचा स्तर प्रदर्शित करने वाले विकासखण्डों में गौरा, 167. 30 प्रतिशत फसल गहनता रखकर वरीयता कम में सर्वोच्च स्तर को प्राप्त कर रहा है जबकि बाबागंज 166.91 प्रतिशत, कुण्डा 166.62 प्रतिशत, विहार 166.50 प्रतिशत कालाकांकर 166.49 प्रतिशत तथा आसपुर देवसरा 165.28 प्रतिशत फसल गहनता रखकर लगभग एक समान स्तर को प्रदर्शित कर रहे हैं। इन विकासखण्डों के अतिरिक्त मगरौरा 159.53 प्रतिशत, मान्धाता 162.52 प्रतिशत, भी जनपदीय औसत से अधिक फसल गहनता रख रहे हैं। जनपदीय स्तर से निम्न फसल गहनता वाले विकासखण्डों में प्रतापगढ सदर 137.89 प्रतिशत फसल गहनता रखकर न्यूनतम स्तर प्राप्त कर रहा है। जबकि इसके अतिरिक्त संडवा चन्द्रिका 138.56 प्रतिशत, शिवगढ 142.24 प्रतिशत, लक्ष्मणपुर 145.66 प्रतिशत, सांगीपुर 151.60 प्रतिशत, रामपुर खास 155.69 प्रतिशत तथा पट्टी 156.87 प्रतिशत है।

सारिणी कमांक 5.2

फसल गहनता का स्तर

फसल गहनता सूची	फसल गहनता स्तर	विकासखण्डों की संख्या	विकासखण्डों के नाम
100 से 120	अति निम्न	-	कोई नही
120 से 140	निम्न	02	प्रतापगढ सदर, संडवा चन्द्रिका
140 से 160	मध्यम	06	शिवगढ, लक्ष्मणपुर, सांगीपुर, रामपुरखास, पट्टी, मगरौरा, मान्धाता, आसपुर देवसरा, बाबागंज, कालाकांकर, कुण्डा, विहार, गौरा।
160 से 180	उच्च	07	कोई नही
180 से 200	अति उत्त	-	

फसल गहनता के स्तर की दृष्टि से सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र निम्न फसल गहनता से उच्च फसल गहनता के मध्य स्थित है, जबकि अतिनिम्न श्रेणी तथा अति उच्च श्रेणी के अन्तर्गत कोई भी विकासखण्ड स्थित नही है। 120 से 140 प्रतिशत निम्न फसल गहनता स्तर में दो विकासखण्ड प्रतापगढ सदर तथा संडवा चन्द्रिका स्थित है। मध्यम फसल गहनता स्तर 140 से 160 प्रतिशत के मध्य कुल छ विकासखण्ड शिवगढ, लक्ष्मणपुर, सांगीपुर, रामपुर खास, पट्टी तथा मगरौरा स्थित है। जबकि उच्च फसल गहनता स्तर 160 से 180 प्रतिशत के मध्य मान्धाता, आसपुर देवसरा बाबागंज, कुण्डा, विहार, कालाकांकर तथा गौरा विकासखण्ड स्थित है।

ब. **प्रति एकड भूमि के आधार पर कृक्षि क्षमता -**

प्रो0 सफी के सूत्र के आधार पर अध्ययन क्षेत्र की कृषि क्षमता को निर्धारित किया गया है। गणना में जनपद की 10 फसलों को सम्मिलित किया गया है। जनपद की दस फसलों से प्राप्त कुल उपज को दसों फसलों के कुल क्षेत्र से विभाजित करके प्रति हे0 उपज ज्ञात की गयी है। इसके उपराज जनपद की औसत उपज में राष्ट्रीय औसत उपज का भाग देकर विकासखण्ड स्तर पर कृषि उत्पादकता सूची ज्ञात की गई है। उत्पादकता सूची में 100 का गुणा करके उत्पादकता गुणांक प्राप्त किया गया है।

विकास खण्ड स्तर पर उत्पादकता सूची तथा उत्पादकता गुणांक

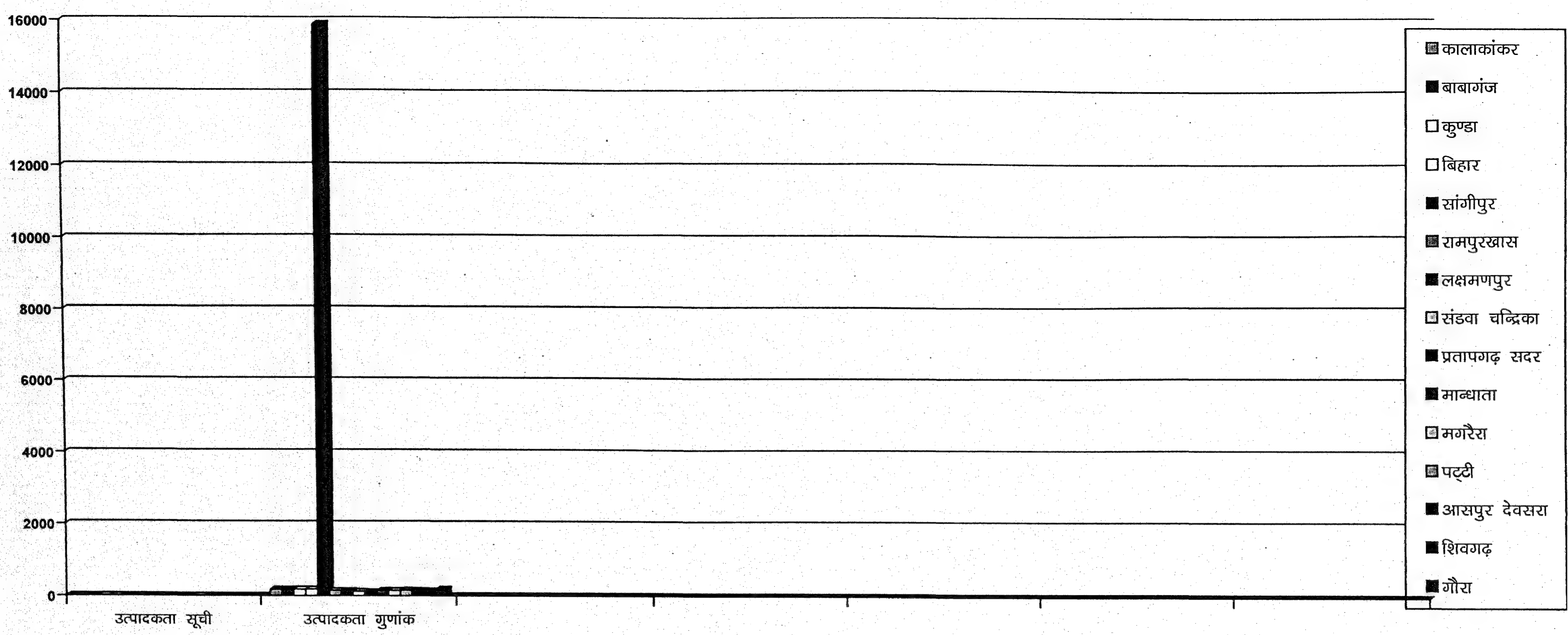

सारिणी क्रमांक 5.3
विकासखण्ड स्तर पर उत्पादकता सूची तथा उत्पादकता गुणांक

क्र0सं0	विकासखण्ड	उत्पादकता सूची	उत्पादकता गुणांक
1.	कालाकांकर	1.7816	178.16
2.	बाबागंज	1.7928	179.28
3.	कुण्डा	1.7484	174.84
4.	विहार	1.8337	178.37
5.	सांगीपुर	1.5894	158.94
6.	रामपुरखास	1.4424	144.24
7.	लक्ष्मणपुर	1.4276	142.76
8.	संडवा चन्द्रिका	1.1875	118.75
9.	प्रतापगढ सदर	1.0628	106.28
10.	मान्धाता	1.4896	148.96
11.	मगरौरा	1.4325	143.25
12.	पट्टी	1.5284	152.84
13.	आसपुर देवसरा	1.4947	149.47
14.	शिवगढ	1.4028	140.28
15.	गौरा	1.8042	180.42
ग्रामीण		**1.5645**	**156.45**

सारिणी क्रमांक 5.3 विकासखण्ड स्तर पर कृषि उत्पादकता पर प्रकाश डाल रही हे जिसमें जनपद की उत्पादकता सूची 1.5645 प्राप्त हुई है जिसे सामान्य से कुछ अधिक कहा जा सकता है। विकासखण्ड स्तर पर प्रतापगढ सदर वरीयता क्रम में सर्वाधिक निम्न स्तर का प्रदर्शन कर रहा है जबकि गौरा विकासखण्ड सर्वोच्च स्तर को दर्शा रहा है जिसकी कृषि उत्पादकता सूची 1.8042 प्राप्त हुई है। अन्य विकासखण्ड इन दोनों सीमाओं के मध्य में स्थित है।

विकास खण्ड स्तर पर कृषि उत्पादकता का स्तर

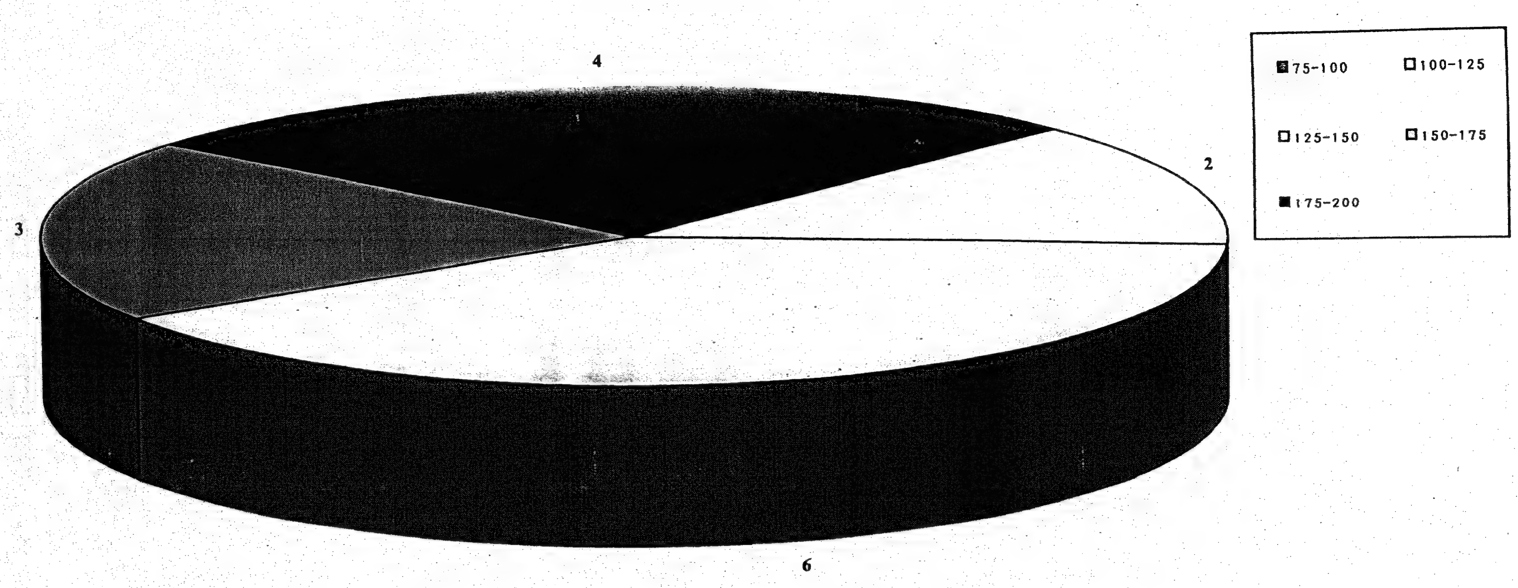

सारिणी 5.4

विकासखण्ड स्तर पर कृषि उत्पादकता का स्तर

फसल गहनता सूची	फसल गहनता स्तर	विकासखण्डों की संख्या	विकासखण्डों के नाम
75 से 100	अति निम्न	-	कोई नही
100 से 125	निम्न	02	प्रतापगढ सदर, संडवा चन्द्रिका
125 से 150	मध्यम	06	शिवगढ, लक्ष्मणपुर, रामपुरखास,, मगरौरा, मान्धाता, आसपुर देवसरा,
150 से 175	उच्च	03	कोई नही
175 से 200	अति उत्त	04	कालाकांकर, बाबागंज, विहार तथा गौरा

सारिणी कमांक 5.4 के अनुसार अतिनिम्न उत्पादकता श्रेणी में कोई खण्ड स्थित नहीं है। निम्न उत्पादकता श्रेणी मं प्रतापगढ सदर तथा संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड स्थित है। जबकि मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत 6 विकासखण्ड रामपुर खास, लक्षमणपुर, मान्धाता मगरौरा आसपुर देवसरा तथा शिवगढ स्थित है। तीन विकासखण्ड पट्टी, सांगीपुर तथा कुण्डा उच्च कृषि उत्पादकता स्तर 150-175 प्रतिशत को प्राप्त कर रहे हैं जबकि चार विकासखण्ड कालाकांकर बाबागंज, विहार तथा गौरा अति उच्च कृषि उत्पादकता स्तर को प्राप्त कर रहे है इनमें से गौरा विकासखण्ड सर्वोच्च 180.42 प्रतिशत स्तर को प्राप्त करके वरीयता कम में प्रथम स्थान पर स्थित है।

3. कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार :-

प्राकृतिक संसाधन किसी देश की अमूल्य निधि होते हैं परन्तु उन्हे गतिशील बनाने जीवन देने और उपयोगी बनाने का दायित्व देश की मानव शक्ति पर ही निर्भर करता है। इस दृष्टि से देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास और समृद्धि का आधार स्तम्भ होती है। जनसंख्या को मानवीय पूंजी कहना कदाचित अनुचित न होगा।

विकसित देशों की वर्तमान प्रगति तथा समृद्धि व सम्पन्नता की पृष्ठभूमि में वहां की मानव शक्ति ही है। जिसने प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण और शासन द्वारा उन्हे अपनी समृद्धि का अंग बना लिया है। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जनसंख्या देश की मानवीय पूंजी की श्रेणी में तभी आ सकती है जबकि वह शिक्षित हो, कुशल हो, दूरदर्शी हो और उसकी उत्पादकता उच्च्व कोटि की हो, यदि ऐसा न हुआ तो मानवीय संसाधन के रूप में वह वरदान के स्थान पर अभिशाप में परिणित हो जायेगी क्योंकि उत्पादक कार्यो में उसका विनियोग सम्भव न हो सकेगा। स्पष्ट है कि मानवीय शक्ति किसी देश की जनता की संख्या पर निर्भर नही वरन गुणों पर निर्भर करती है। इसलिए प्रो0 हिप्पल ने लिखा है कि " एक देश की वास्तविक सम्पत्ति उसकी भूमि, जल वनों, खानों, पशुपक्षियों के झुण्डों और डालरों में नही, वरन देश के समृद्ध एवं प्रसन्नचित पुरूषों स्त्रियों और बच्चों में निहित होती है"

अ. **जनसंख्या वितरण :-**

जनसंख्या वितरण के अध्ययन से किसी क्षेत्र में जनसंख्या सन्तुलन का बोध होता है। जनसंख्या वितरण को विभिन्न प्रकार के घनत्वों के माध्यम से ब्यक्त किया जा सकता है।

1. **सामान्य घनत्व :-** किसी क्षेत्र की कुल जनसंख्या तथा कुल क्षेत्रफल के अनुपात को सामान्य घनत्व कहा जाता है। सामान्य घनत्व जितना अधिक होता है, जनसंख्या का उतना ही अधिक सघन वितरण होता है इसके विपरीत क्रम सामान्य घनत्व जनसंख्या के विरल वितरण का संकेत करती है। जनसंख्या का वितरण लोगों के जीवन स्तर को प्रभावित करती है।

सारिणी कमांक 5.5

विकासखण्ड स्तर पर जनसंख्या का सामान्य घनत्व 1996

क0	विकासखण्ड	कुल जनसंख्या 1996 (प्रक्षेपित)	क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0 में	घनत्व प्रति वर्ग कि0मी0
1.	कालाकांकर	136460	210.65	648
2.	बाबागंज	148553	264.87	561
3.	कुण्डा	186008	277.71	670
4.	विहार	170468	269.95	631
5.	सांगीपुर	147838	276.68	552
6.	रामपुरखास	185973	322.03	577
7.	लक्ष्मणपुर	137936	206.02	669
8.	संडवा चन्द्रिका	129507	218.65	592
9.	प्रतापगढ सदर	150675	196.61	766
10.	मान्धाता	166054	215.82	769
11.	मगरौरा	170344	285.61	596
12.	पट्टी	117893	196.20	601
13.	आसपुर देवसरा	146612	212.50	690
14.	शिवगढ	150020	220.29	681
15.	गौरा	149981	237.96	630
समस्त विकासखण्ड		2294322	3602.55	637
नगरीय		138536	21.68	6390
जनपद		2432858	3624.23	671

सारिणी कमांक 5.5 विकासखण्डवार समान्य घनत्व का चित्र प्रस्तुत कर रही है। विकासखण्डवार जनसंख्या घनत्व पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि जनसंख्या का

सर्वाधिक घनत्व मान्धाता विकासखण्ड का है जहां पर 769 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हैं, इसी विकासखण्ड से मिलती जुलती स्थिति प्रतापगढ सदर की है जहां पर 766 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हैं। यही दोनों विकासखण्ड 700 व्यक्तियों से व्यक्तियों का औसत दर्शा रहे हैं। 600 से 700 व्यक्तियों के मध्य सामान्य घनत्व को प्रदर्शित करने वाले विकासखण्डों में शिवगढ 681 व्यक्ति, आसपुर देवसरा, 690 व्यक्ति लक्ष्मणपुर 669 व्यक्ति कुण्डा 670 व्यक्ति, कालाकांकर 648 व्यक्ति, विहार 631 व्यक्ति गौरा 630, तथा पट्टी 601 व्यक्ति हैं। जनसंख्या का न्यूनतम सामान्य घनत्व सांगीपुर विकासखण्डों का है जहां केवल 552 व्यक्ति निवास करते हे, अन्य विकासखण्डों में बाबागंज 561 व्यक्ति, रामपुरखास 577 व्यक्ति, संडवा चन्द्रिका 592 व्यक्ति तथा मगरौरा 596 व्यक्ति है। जनपदीय औसत से यदि तुलना करें तो पांच विकासखण्ड 671 व्यक्ति से अधिक घनत्व वाले हैं जबकि दस विकासखण्ड जनपद के औसत से कम घनत्व वाले हैं।

2. **कायिक घनत्व :-**

किसी क्षेत्र की सकल बोयी गई भूमि तथा उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या के अनुपात को कायिक घनत्व कहा जाता है।

सारिणी कमांक 5.6

विकासखण्ड स्तर पर कायिक घनत्व 1996

क0	विकासखण्ड	कुल जनसंख्या 1996 (प्रक्षेपित)	क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0 में	घनत्व प्रति वर्ग कि0मी0
1.	कालाकांकर	136460	20506	656
2.	बाबागंज	148553	25829	575
3.	कुण्डा	186008	26063	714
4.	विहार	170468	26868	634
5.	सांगीपुर	147838	25629	577
6.	रामपुरखास	185973	30656	607
7.	लक्ष्मणपुर	137936	18470	747
8.	संडवा चन्द्रिका	129507	18700	693
9.	प्रतापगढ सदर	150675	16417	918
10.	मान्धाता	166054	22261	746
11.	मगरौरा	170344	28383	600
12.	पट्टी	117893	19958	591
13.	आसपुर देवसरा	146612	23233	631
14.	शिवगढ	150020	19599	765
15.	गौरा	149981	24545	611
समस्त विकासखण्ड		2294322	347117	661
नगरीय		138536	1693	8133
जनपद		2432858	348810	697

सारिणी कमांक 5.6 अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर कायिक घनत्व के चित्र को प्रस्तुत कर रही है। विकासखण्ड स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। अर्थात जहां प्रतापगढ सदर विकासखण्ड में यह 9.18 व्यक्ति प्रति हे0 अथवा 918 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर प्राप्त होता है, वहीं बाबागंज विकासखण्ड में न्यूनतम अर्थात 5.75 व्यक्ति प्रति हे0 अथवा 575 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में केवल प्रतापगढ सदर विकास खण्ड ही 918 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के स्तर को प्राप्त कर रहा है। जबकि अन्य विकासखण्ड 800 व्यक्ति से कम कायिक घनत्व में स्थित है जिसमें शिवगढ 765 व्यक्ति, लक्ष्मणपुर 747 व्यक्ति, मान्धाता 746 व्यक्ति तथा कुण्डा 714 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करके 700 से 800 व्यक्तियों के मध्य स्थित है। 600 से 700 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के विस्तार में संडवा चन्द्रिका 693 व्यक्ति कालाकांकर 665 व्यक्ति, विहार, 634 व्यक्ति रामपुर खास 607 व्यक्ति तथा मगरौरा 600 व्यक्ति निवास कर रहे है। अन्य विकासखण्ड 577 से 600 व्यक्तियों के मध्य स्थित है। इस प्रकार कायिक घनत्व का जनपदीय औसत 6.97 व्यक्ति प्रतिहे0 अथवा 697 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर निवासकररहे हैं।

3. **कृषि घनत्व :-**

किसी क्षेत्र में कृषि भूमि तथा कृषि कार्य में लगी हुई जनसंख्या के अनुपात को कृषि घनत्व कहा जाता है। इससे कृषि भूमि पर जनसंख्या के भार का आभास मिलता है जिससे ग्रामीण विकास तथा नियोजन में सहायता मिलती है।

सारिणी कमांक 5.6

विकासखण्ड स्तर पर कायिक घनत्व 1996

क0	विकासखण्ड	कुल जनसंख्या 1996 (प्रक्षेपित)	क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0 में	घनत्व प्रति हे0	घनत्व प्रति वर्ग कि0मी0
1.	कालाकांकर	39545	20506	1.93	193
2.	बाबागंज	44317	25829	1.72	172
3.	कुण्डा	47164	26063	1.81	181
4.	विहार	45728	26868	1.70	170
5.	सांगीपुर	46036	25629	1.80	180
6.	रामपुरखास	56142	30656	1.83	183
7.	लक्ष्मणपुर	34318	18470	1.86	186
8.	संडवा चन्द्रिका	32429	18700	1.73	173
9.	प्रतापगढ सदर	30727	16417	1.87	187
10.	मान्धाता	40663	22261	1.83	183
11.	मगरौरा	43403	28383	1.53	153
12.	पट्टी	28757	19958	1.44	144
13.	आसपुर देवसरा	35383	23233	1.52	152
14.	शिवगढ	38510	19599	1.96	196
15.	गौरा	39227	24545	1.60	160
समस्त विकासखण्ड		**601749**	**347117**	**1.73**	**173**
	नगरीय	**10025**	**1693**	**5.92**	**592**
	जनपद	**611774**	**348810**	**1.75**	**175**

सारिणी कमांक 5.7 विकासखण्ड स्तर पर कृषि घनत्व का चित्र प्रस्तुत करती है। जिसमें प्रति हे0 सर्वोच्च कृषि घनत्व शिवगढ विकासखण्ड का है जहां 1.96 प्रति जीवन यापन कर रहे हैं और न्यूनतम स्तर पर पट्टी विकासखण्ड स्थित है जहां पर कृषि घनत्व 1.44 व्यक्ति प्रति हे0 निवास कर रहे हैं। जनपदीय औसत 1.75 व्यक्ति से उच्च घनत्व को प्रदर्शित करने वाले विकासखण्र्डो में शिवगढ 1.96 व्यक्ति, कालाकांकर 1.93 व्यक्ति प्रतापगढ सदर 1.87 व्यक्ति, लक्ष्मणपुर 1.86 व्यक्ति, रामपुर खास 1.83 व्यक्ति, मान्धाता 1.83 व्यक्ति कुण्डा 1. 81 व्यक्ति, सांगीपुर 1.80 व्यक्ति है। जबकि जनपदीय औसत से कम कृषि जन भार वहन करने वाले विकासखण्डों में संडवा चन्द्रिका 1.73 व्यक्ति, बाबागंज 1.72 व्यक्ति, विहार 1.70 व्यक्ति गौरा 1.60 मगरौरा 1.53 व्यक्ति आसपुर देवसरा 1.52 व्यक्ति तथा पट्टी 1.44 व्यक्ति है। इस प्रकार जनपदीय औसत से उच्च कृषि घनत्व वाले आठ विकासखण्ड है और कम कृषि वाले सात विकासखण्ड है। जिसमें रामपुर खास तथा मान्धाता विकासखण्ड एक समान कृषि घनत्व वाले विकासखण्ड हैं।

4. **विभिन्न घनत्वों का तुलनात्मक विवेचन :-**

सामान्य घनत्व, कायिक घनत्व तथा कृषि थनत्व के क्षेत्रीय वितरण का तुलनात्मक अध्ययन सारिणी कमांक 5.8 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

जनसंख्या धनत्वों का तुलनात्मक अध्ययन

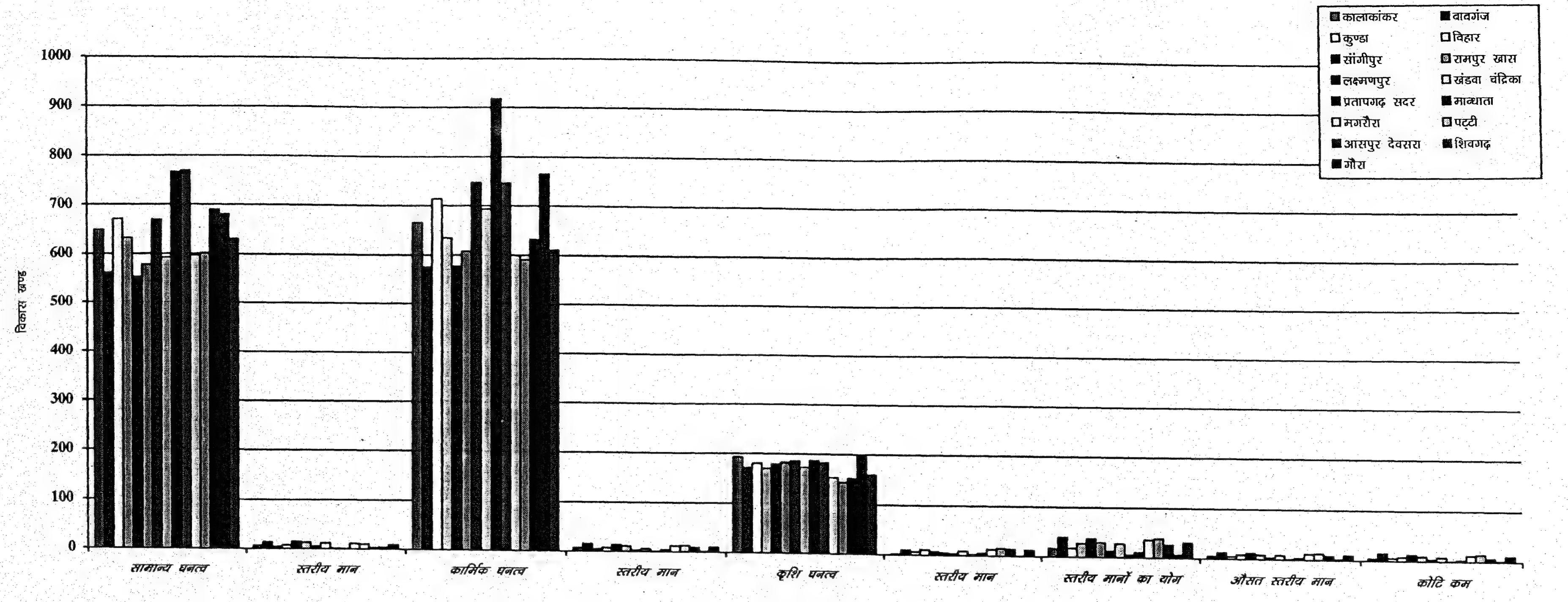

सारिणी कमांक 5.8

जनसंख्या घनत्वों का तुलनात्मक अध्ययन

क0	विकासखण्ड	घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर						स्तरीय मानों का योग	औसत स्तरीय मान	कोटि कम
		सामान्य घनत्व	स्तरीय मान	कायिक घनत्व	स्तरीय मान	कृषि घनत्व	स्तरीय मान			
1.	कालाकांकर	648	7	665	7	193	2	16	5.33	5
2.	बाबागंज	561	14	575	15	172	10	39	13.0	15
3.	कुण्डा	670	5	714	5	181	7	17	5.67	6
4.	विहार	631	8	634	8	170	11	27	9.0	8.5
5.	सांगीपुर	552	15	577	14	180	8	37	12.33	13
6.	रामपुरखास	557	13	607	11	183	5.5	29-5	9.83	10
7.	लक्ष्मणपुर	659	6	747	3	186	4	13	4.33	4
8.	संडवा चन्द्रिका	592	12	693	6	173	9	27	9.0	8.5
9.	प्रतापगढ सदर	766	2	918	1	187	3	6	2.0	1
10.	मान्धाता	769	1	746	4	183	5.5	10-5	3.5	3
11.	मगरौरा	596	11	600	12	153	13	36	12.0	12
12.	पट्टी	601	10	591	13	144	15	38	12.67	14
13.	आसपुर देवसरा	690	3	631	9	152	14	26	8.67	7
14.	शिवगढ	681	4	765	2	196	1	7	2.33	2
15.	गौरा	630	9	611	10	160	12	31	10.33	11

सारिणी कमांक 5.8 में कृषि भूमि पर जनसंख्या भार के वितरण को सामान्य घनत्व कायिक घनत्व तथा कृषि घनत्व की गणना करके तुलनात्मक विवरण दिया गया है। सारिणी देखने से स्पष्ट होता है कि इन घनत्वों के क्षेत्रीय वितरण में अर्न्तसम्बन्ध होता है। इनके समायोजन से अध्ययन क्षेत्र को तीन घनत्व कोटियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

सारिणी कमांक 5.9

जनसंख्या घनत्व का स्तर

स्तरीय मान	जनसंख्या घनत्व का स्तर	विकासखण्ड
5 से कम	उच्च घनत्व	1. प्रतापगढ सदर, 2. शिवगढ 3. मान्धाता 4. लक्ष्मणपुर
5 से 10	मध्यम घनत्व	1. कालाकांकर 2. कुण्डा 3. विहार 4. संडवा चन्दिका 5. रामपुर खास
10 से अधिक	निम्न घनत्व	1. गौरा, 2. मगरौरा 3. सांगीपुर 4. पट्टी 5. बाबागंज

अ. **उच्च घनत्व :-**

इसके अन्तर्गत चार विकासखण्ड प्रतापगढ सदर, शिवगढ, मान्धाता तथा लक्ष्मणपुर आते हैं, ये विकासखण्ड अधिकतम जनभार के पोषक बने हुए है क्योंकि इनमें उपजाऊ भूमि तथा सिंचाई के साधनों का विस्तार तथा नवीन पद्धतियों के प्रयोग के कारण अधिक जनसंख्या का पोषण हो रहा है।

ब. **मध्यम घनत्व :-**

इस श्रेणी के अन्तर्गत कालाकांकर, कुण्डा आसपुर देवसरा विहार, संडवा चन्द्रिका तथा रामपुर खास सहित 6 विकासखण्ड आते हैं, जहां पर जनसंख्या का घनत्व मध्यम श्रेणी का पाया जाता है।

स. **न्यून घनत्व :-**

इस श्रेणी में गौरा, मगरौरा, सांगीपुर, पट्टी तथा बाबागंज विकासखण्ड आते हैं जिनमें जनसंख्या का निम्न घनत्व पाया गया।

4. **खाद्यान्य उत्पादन एवं जनसंख्या संतुलन :-**

मानवीय संसाधन आर्थिक क्रियाओं के साधन एवं लक्ष्य दोनो होते हैं। साधन के रूप में मानवीय संसाधन श्रम शक्ति एवं उद्यमियों को सेवायें प्रदान करते है। जिनकी सहायता से उत्पत्ति के अन्य संसाधनों का उपभोग सम्भव हो पाता है। मानवीय संसाधनों की इस भूमिका पर देश में कुल उत्पादन का स्तर निर्भर करता हैक। इसके दूसरी ओर अर्थ व्यवस्था में जितना भी विकासात्मक क्रियायें सम्पन्न की जाती है इनका उद्देश्य मानव समुदाय को जीवन की अच्छी सुविधायें प्रदान करना होता है। उपभोग की इकाई के रूप में मानवीय संसाधन देश के कुल उत्पादन का उपभोग करते है, इस प्रकार मानवीय संसाधनों की दोहरी भूमिका होती है,

क. साधन सेवाओं के रूप में

ख. उपभोग की इकाईयों के रूप में।

क. साधन सेवाओं के रूप में मानवीय संसाधन :-

साधन सेवाओं के रूप में मानवीय संसाधन श्रम तथा उद्यमी को सेवायें प्रदान करते हैं किस सीमा तक मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन करता है इस पर आर्थिक विकास का स्तर निर्भर करता है, यदि मानवीय संसाधन उत्कृष्ट कोटि के हैं तो आर्थिक विकास की गति तेज हो जाती है। अतएव आर्थिक विकास की दर के निर्धारण में मानवीय संसाधन की गुणात्मक श्रेष्ठता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए वे सभी कियायें जो मानवीय संसाधनों के कौशल को बढाने में सहायक होती है, उत्पादक कियायें कहलाती हैं, इस बात की आवश्यकता है कि मानवीय पूंजी के निर्माण हेतु निवेश का विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की जानी चाहिए। भौतिक पूंजी निर्माण और मानवीय पूंजी निर्माण सम्मिलित रूप से आर्थिक विकास की गति को तीव्रता प्रदान करते हैं।

ख. उपभोग इकाइयों के रूप में मानवीय संसाधन :-

उपभोग इकाई के रूप में मानवीय संसाधन राष्ट्रीय उत्पाद के लिए मांग का स्रजन करते हैं। यदि मनुष्यों की संख्या राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में अधिक है तो जनसंख्या सम्बन्धी अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। इसको हम अति जनसंख्या के नाम से सम्बोधित करते है। अति जनसंख्या के कारण एक देश के सामने प्रमुख रूप से निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न होती है।

1. बढती हुई जनसंख्या के कारण देश में खाद्यान्यों की मांग बढ जाती है। और सामान्यतया खाद्यान्यों की पूर्ति इसकी मांग की तुलना में कम रह जाती है।

2. बढती हुई जनसंख्या के कारण राष्ट्रीय उत्पादन के एक बडे भाग का उपयोग उपभोग कार्यो के लिए कर लिया जाता है और निवेश कार्यों के लिए बहुत कम उत्पादन उपलब्ध हो पाता है, इससे पूंजी निर्माण की गति धीमी पड जाती है।

3. अति जनसंख्या के कारण बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

4. बढती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश को सामाजिक सेवाओं पर बहुत अधिक व्यय करना पडता है। इस प्रकार अर्थ व्यवस्था के संसाधनों को भौतिक पूंजी के स्थान पर मानवीय उपभोग की ओर हस्तांतरण करना होता है।

सर्वाधिक महत्व और चिन्ता की बात यह है कि भारत की जनसंख्या निरन्तर तीव्रगति से बढती रही है, ऊंची जन्मदर (1991 में 30.55 प्रति हजार) तथा तेज दर से गिरती हुई मृत्युदर (1991 में 10.2 प्रति हजार) में कमी के कारण जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। जनसंख्या में तीव्रबृद्धि के कारण योजनाओं में निर्धारित आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में अनेक कठिनाइयां उपस्थित हुई है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण जीवन को गुणात्मक श्रेष्ठता और उन्नत बनाने के सभी प्रयास असफल सिद्ध हुए हैं। भारत जैसे विकासशील देशो में जहां पूंजी का अभाव है और मानवीय संसाधनों की बहुलता है वहां जनसंख्या परिसम्पत्ति होने के बजाय दायित्व बन गयी है। बढती हुई जनसंख्या का देश की प्रगति पर निम्नलिखित प्रभाव परिलक्षित होता है।

1. बढती हुई जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति आय के स्तर एवं रहन सहन के स्तर में सुधार सम्भव नही होता है। इसके कारण कृषि उत्पादन तथा औद्योगिक उत्पादन में होने वाली वृद्धि का वास्तविक लाभ लोगों को नही मिल पाता है।

2. जनसंख्या की मात्रा में वृद्धि के कारण भूमि पर जनसंख्या का भार निरन्तर बढ रहा है। सन 1991 में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता 1.1 एकड थी, लेकिन अतिरिक्त भूमि के उपयोग के बावजूद भी 1990 में प्रतिव्यक्ति भूमि की उपलब्धता घटकर 0.25 एकड रह गयी है।

3. जनसंख्या वृद्धि का उपभोग के स्तर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा, क्योंकि कार्य करने वालों की तुलना में खाने वालों की संख्या बढ गई परिणामस्वरूप धन एवं आय की असमनाताओं में वृद्धि हुई।

4. जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्यों एवं अन्य भोज्य पदार्थों की मांग में वृद्धि की समस्या उत्पन्न हुई। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में प्रति व्यक्ति खाद्यान्यों की उपलब्धता में कोई विशेष वृद्धि नही हो सकी जिससे भारत में प्रतिवर्ष 10 लाख बच्चे कुपोषण के शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं। लगभग एक तिहाई लोगों को दो वक्त का भोजन उपलब्ध नही हो पाता।

5. जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी की समस्या गम्भीर रूप धारण कर लेती है क्योंकि रोजगार के अवसर इतनी तेजी से नही वढ पाते है जितनी तेजी से जनशक्ति बढती है।

6. अनियन्त्रित जनसंख्या के कारण अनेक सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध न होने के कारण बडी संख्या में लोग शहरों की ओर पलायन करते हैं जिसके कारण शहरीकरण की नई समस्याओं का सामना करना पडता है। बडे परिवारों के भार को वहन न कर सकने के कारण लोगों कके मस्तिष्क में उद्वेग व अशान्ति आदि उत्पन्न होने लगती है और वे अनेक कुंठाओं से घिरने लेगते है। जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धि पर भी पडता है। अधिक जनसंख्या के कारण देश में असमान वितरण के कारण राजनैतिक और सामाजिक उपद्रवों को बढावा मिलता है। जिन लोगों को रोजगार प्राप्त नही हो पाता है वे गैर सामाजिक गतिविधियों में उलझ जाते हैं इन लोगों की क्रियाओं से सभ्य समाज के लिए असुरक्षा और संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

7. बढती जनसंख्या का प्रभाव फसलों के प्रतिरूप पर भी पडता है। प्रत्येक कृषक ऐसी फसलों के प्राथमिकता देता है जिसमें लागत कम और जोखित की मात्रा भी कम हो। यह सर्व विदित है कि अधिक उपज वाली फसलों की लागत अधिक और जोखिम भी अधिक होता है। मोटे अनाज जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का आदि फसलों में जोखिम

कम होता है। कृषक कम जोखिम वाली फसलों का उत्पादन करने को बाध्य हो जाता है क्योंकि ऐसा करने से उसे कम से कम जीवन निर्वाह के साधन तो मिल जाते हैं।

8. खेती की एक जोत पर निर्भर परिवार के सदस्यों की संख्या का एक प्रभाव यह भी पडता है कि किसान अपनी कृषि उपज के एक बडे भाग को स्व उपयोग के लिए अपने पास रखने के लिए बाध्य हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार खाद्यान्य के कुल उत्पादन का 60 से 70 प्रतिशत भाग किसान द्वारा अपने पास स्व उपयोग बीज, पशुओं के चारे के वास्ते रख लिया जाता है। परिणामस्वरूप विकी योग्य कृषि उत्पादन के अतिरेक की मात्रा कम हो जाती है।

पर्याप्त खाद्य पदार्थ जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। खाद्य समस्या से आशय क्षेत्रीय आवश्यकता के सन्दर्भ में खाद्यान्य की कमी से है। यह कमी खाद्यान्य की मात्रात्मक न्यूनता के रूप में हो सकती है या सामान्य पोषण स्तर तक खाद्य पदार्थ उपलब्ध न हो सकने के रूप में हो सकती है। खाद्यान्यों की मात्रात्मक कमी का दबाव अर्थव्यवस्था पर लगातार वना हुआ है। पूति पर मांग का आधिक्य वने रहने के कारण लोगों को न्यूनतम आवश्यक कैलौरी के लिए भी खाद्यान्य नही उपलब्ध हो सके है। खाद्य और कृषि संगठन के अनुमान के अनुसार सामान्य रूप से प्रति व्यक्ति दैनिक खाद्यान्य उपलब्धित 440 ग्राम होना चाहिए। खाद्य समस्या के गुणात्मक पक्ष का सम्बन्ध भारतीयों के भोजन में पोषक तत्वों की कमी से है। प्रोटीन विटामिन, खनिज, वसा, आदि संतुलित भोजन के आवश्यक घटक है। परन्तु अधिकांश लोगों के भोजन में किसी न किसी तत्व की कमी बनी रहती है। इस कुपोशण और अल्प पोषण के कारण उनकी कार्यक्षमता घटती है। और वे कुसमय बीमारियों के शिकार होने लगते हैं। पोषण सलाहकार समिति 1958 में यह अनुमान लगाया गया था कि 20 से 30 वर्ष की आयु वर्ग के एक स्वस्थ्य पुरूष के लिए 2780 कैलौरी और इस आयुवर्ग की एक महिला के लिए 2080 कैलोरी प्रदान करने वाले भोजन की आवश्यकता है। औसत आधार पर समस्त जनसंख्या के लिए प्रतिदिन 2250 से 3000

कैलोरी और 62 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है।" खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.) ने भी पुरूष और स्त्री के लिए कमशः 2600 और 1900 कैलोरी का आहार आवश्यक माना है। प्रोटीन, विटामिन, खनिज आदि पोषक तत्व शारीरिक विकास, सम्यक कार्यक्षमता, और शारीरिक जन्तुओं को स्वस्थ्य बनाए रखने के लिए आवश्यक है। अब हम उक्त दृष्टिकोणों के आधार पर अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्य उत्पादन तथा जनसंख्या संतुलन का विश्लेक्षण करेगें।

1. **परिणात्मक पहलू :-**

किसी क्षेत्र में खाद्यान्यों की मांग को प्रभावित करने वाले तत्व उस क्षेत्र की जनसंख्या तथा क्षेत्र के लोगों द्वारा प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा, होते हैं। क्षेत्र में खाद्यान्यों की पूर्ति खाद्यान्यों का उत्पादन एवं उसके समुचित वितरण की मात्रापर निर्भरकरती है।

सारिणी कमांक 5.9

अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्य उत्पादन तथा प्रतिव्यक्ति उपभोग की मात्रा 1996

फसलें	क्षेत्रफल (हे0में)	कुल उत्पादन (कु0में)	औसत उत्पादन (कु0में)	प्रतिशत	प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष उपभोग की मात्रा (कि0ग्राम0में)
1. धान	111905	2313076	20.67	41.32	95.08
2. गेहूं	142838	2991028	20.94	53.42	122.94
3. जौ	3585	45673	12.74	0.82	1.88
4. ज्वार	6008	62363	10.38	1.11	2.56
5. बाजरा	13997	153407	10.96	2.74	6.31
6. मक्का	2082	33062	15.88	0.59	1.36
कुल धान्य	**280415**	**5598609**	**19.97**	**100.00**	**230.12**

सारिणी कमांक 5.9 अध्ययन क्षेत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष खाद्यान्य उपलब्धता का चित्र प्रस्तुत कर रही है। कुल उत्पादन की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में धान

और गेहूं की प्रधानता है और ये दोनों फसले कुल खाद्यान्य में 95 प्रतिशत से अधिक की भागेदारी कर रही हैं। जिसमें गेहूं 53.42 प्रतिशत भागेदारी करके प्रथम स्थान पर है, औसत उत्पादकता की दृष्टि से गेहूं धान लगभग एक समान स्तर प्रदर्शित कर रहे हैं परन्तु गेहूं की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता सर्वाधिक 122.94 किलोग्राम है। प्रतिव्यक्ति मात्रात्मक उपलब्धता के आधार पर धान दूसरे स्थान पर है। जिसकी प्रति व्यक्ति मात्रा 95.08 किलोग्राम है। सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता 230.12 किलोग्राम प्राप्त हुई। विभिन्न फसलों के क्षेत्रफल कुल उत्पादन तथा प्रतिव्यक्ति उपलब्धता की दृष्टि से देखें तो गेहूं तथा धान ही प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जबकि मोटे अनाज केवल अपनी उपस्थिति ही दर्शा पा रहे हैं जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि अध्ययन क्षेत्र में हरित क्रान्ति का प्रभाव केवल दो ही खाद्यान्यों फसलों पर दृष्टिगोचर हो रहा है।

खाद्यान्य उपलब्धता के अतिरिक्त कार्यशील जनसंख्या के लिए दालों की उपलब्धता भी अनिवार्य है क्योंकि दालों में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने के कारण भारतीय भोजन में इसकी प्रमुखता होती है। और अधिकांश कार्यशील जनसंख्या दालों से प्रोटीन की अधिकांश मात्रा प्राप्त करती है। अध्ययन क्षेत्र में पाई जाने वाली दालों में अरहर, उर्द, मूंग, चना तथा मटर प्रमुख रूप में पायी जाती है।

सारिणी 5.10

अध्ययन क्षेत्र में दालों का वितरण 1996

दलहनी फसलें	क्षेत्रफल (हे0में)	कुल उत्पादन (कु0में)	औसत उत्पादन (कु0में)	प्रतिशत	प्रतिव्यक्ति दलहन उपलब्धता (कि0ग्राम0में)
1. उर्द	9652	53472	5.54	12.97	2.20
2. मूंग	3465	27235	7.86	6.61	1.12
3. चना	8910	108167	12.14	26.23	4.45
4. मटर	5121	66983	13.08	16.24	2.75
5. अरहर	14679	156478	10.66	37.95	6.43
कुल दलहन	**41827**	**412335**	**9.86**	**100.00**	**16.95**

सारिणी क्रमांक 5.10 जनपद में दलहनी फसलों के वितरण को दर्शा रही है। दालों के रूप में अध्ययन क्षेत्र में उर्द, मूंग तथा अरहर का ही समान्यता प्रचलन है चने की दाल का प्रयोग यदा कदा ही किया जाता है इस दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष दालों की हिस्सेदारी 10किलोग्राम से भी कम है। उर्द 2.20 किलोग्राम मूंग केवल 1.12 किलोग्राम तथा अरहर 6.43 किलोग्राम है। चने को भी यदि दालों के अन्तर्गत समिर्मलित कर लें तो लगभग 14 किलोग्राम प्रतिव्यक्ति उपलब्ध हो पा रही है। प्रति व्यक्ति प्रतिदिन यदि दालों की उपलब्धता देखे तो यह औसत मात्र 26.69 ग्राम आता है जो मानक से बहुत कम है। जनपद में दलहनी फसलों की भागीदारी की दृष्टि से अरहर 37.95 प्रतिशत तथा चना 26.23 प्रतिशत है जबकि मूंग मात्र 6.61 प्रतिशत न्यूनतम भागीदारी कर रही है। औसत उत्पादन में मटर 13. 08 क्विन्टल प्रति हे0 सर्वाधिक है। जबकि उर्द का औसत उत्पादन 5.54 कु0 प्रति हेक्टेयर न्यूनतम है। इस प्रकार समस्त खाद्यान्य जिसमें अन्न तथा दलहन दोनों को सम्मिलित कर लिया जाये तो प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष केवल 239.87 किलोग्राम है जो मानक से अत्यन्त कम है।

विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्य उपलब्धता :-

विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्यों की उपलब्धता ज्ञात करने के लिए शोधकर्ता ने प्रत्येक विकासखण्ड से एक-एक गांव दैव निर्दशन के आधार पर चुना। चुने हुए गांव से पुनः दैव निर्दशन के आधार पर ही 20-20 कृषकों का चुनाव किया गया जिनका प्रश्नावली तथा अनूसची के माध्यम से गहन सर्वेक्षण किया गया है। सर्वेक्षण के माध्यम से प्रत्येक गांव के कृषकों की औसत उपज अलग-अलग ज्ञात की गयी जिसे विकासखण्ड की उपज का मानक मानते हुए विकासखण्ड स्तर पर प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता की गणना की गयी है इस गणना से प्राप्त परिणाम को सारिणी क्रमांक 5.11 में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी क्रमांक 5.11

विकासखण्ड स्तर पर प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्धता

सं0	विकासखण्ड	अन्न			दलहन			कुल खाद्यान्य		
		कुल उत्पादन (कु0में)	प्रतिव्यक्ति (किलोग्राम)	प्रतिदिन (ग्राम)	कुल उत्पादन (कु0में)	प्रतिव्यक्ति (कि.ग्राम)	प्रतिदिन (ग्रा.)	कुल उत्पादन (कु0में)	प्रतिव्यक्ति (कि0ग्राम)	प्रतिदिन (ग्राम)
1.	कालाकांकर	345278	253.03	693	15816	11.59	31	361094	264.62	724
2.	बाबागंज	477218	321.24	879	13390	9.01	25	490608	330.25	904
3.	कुण्डा	436342	235.00	642	28230	15.17	42	464572	250.17	684
4.	विहार	518753	304.31	833	17076	10.02	27	535829	314.33	860
5.	सांगीपुर	363504	245.88	673	45443	30.74	84	408947	276.62	757
6.	रामपुरखास	543085	292.07	799	27175	14.61	40	570260	306.63	839
7.	लक्ष्मणपुर	288448	209.12	573	21250	15.41	42	309698	224.53	615
8.	संडवा चन्द्रिका	229090	176.89	484	43892	33.89	93	272982	210.78	577
9.	प्रतापगढ सदर	178086	118.19	324	40682	27.00	74	218768	145.19	398
10.	मान्धाता	375588	226.18	619	22066	13.29	36	397654	239.47	655
11.	मगरौरा	447576	262.75	719	29515	17.33	47	477091	280.08	766
12.	पट्टी	363580	308.39	844	21396	18.15	50	384976	326.54	894
13.	आसपुर देवसरा	380813	259.74	711	18400	12.55	34	399213	272.29	745
14.	शिवगढ	274444	182.94	501	43942	29.29	80	318386	212.23	581
15.	गौरा	387910	258.64	708	20882	13.92	38	408792	272.56	746
	ग्रामीण औसत	**5609715**	**244.50**	**669**	**409155**	**17.83**	**49**	**6018870**	**262.33**	**718**

सारिणी क्रमांक 5.11 अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्य उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खाद्यान्य उपलब्धता का चित्र प्रस्तुत कर रही है। विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्यों में अन्न तथा दलहन दोनों को सम्मिलित किया गया है। अन्न में धान, गेहूं, जौ,

ज्वार, बाजरा, तथा मक्का का उत्पादन सम्मिलित है जबकि दलहनी फसलों में उर्द, मूंग, चना, मटर, तथा अरहर को स्थान दिया गया है। खाद्यान्य उत्पादन की गणना करते समय यह तथ्य भी प्रकाश में आया है कि जिन विकासखण्डों में अन्न के उत्पादन की प्रधानता है वहां पर दलहन का उत्पादन कम हो रहा है और जिन विकासखण्डों में अन्न का उत्पादन कम हो रहा है वहां दलहन का उत्पादन अधिक हो रहा है।

विकासखण्ड स्तर पर प्रति व्यक्ति अन्न उपलब्धता की दृष्टि से देखे तो बाबागंज विकासखण्ड 321.24 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष उत्पादन करके वरीयता कम में प्रथम स्थान पर है। इस विकासखण्ड में धान तथा गेहूं की दो फसलें लगभग 88 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाती है। प्रति व्यक्ति अन्न उत्पादन की दृष्टि से प्रतापगढ सदर केवल 118.19 किलोग्राम उत्पादन करके न्यूनतम स्तर को प्रदर्शित कर रहा है। यह विकासखण्ड अन्न उत्पादन में केवल गेहूं के उत्पादन में प्रमुख स्थान रखता है गेहूं के बाद इस विकासखण्ड में मोटे अनाजों को विशेष स्थान प्राप्त है परन्तु फिर भी यह विकासखण्ड अन्न उत्पादन में निम्नतम स्तर पर है। 300 किलोग्राम से अधिक प्रतिव्यक्ति अन्न उत्पादन करने वाले विकासखण्डों में बाबागंज के अतिरिक्त पट्टी 308.39 किलोग्राम तथा विहार विकासखण्ड 304.31 किलोग्राम है। 250 से 300 किलोग्राम के मध्य रामपुरखास 292.02 किलोग्राम, मगरौरा 262.75 किलोग्राम, आसपुर देवसरा 259.74 किलोग्राम, गौरा 258.64 किलोग्रम तथा कालाकांकर विकासखण्ड 253.03 किलोग्राम स्थित है। 200 से 250 कि0ग्राम के मध्य सांगीपुर 245.88 किलोग्राम, कुण्डा 235.00 किलोग्राम, मान्धाता 226.18 किलोग्राम तथा लक्ष्मणपुर 209.12 किलोग्राम स्थित है। अन्य विकासखण्ड शिवगढ 182.94 तथा संडवा चन्द्रिका 176.89 किलोग्राम लगभग एक समान स्तर को प्रदर्शित कर रहे है।

दलहन के उत्पादन में प्रति व्यक्ति उपलब्धता की दृष्टि से संडवा चन्द्रिका विकासखण्ड 33.89 किलोग्राम उत्पादन करके प्रथम स्थान पर है।, इसके विपरीत बाबागंज विकास खण्ड मात्र 9.01 किलोग्राम उत्पादन करके न्यूनतम स्तर पर है। अन्य विकासखण्ड इन दोनों विकासखण्डों के मध्य स्थित है। कुल खाद्यान्य उत्पादन की दृष्टि से बाबागंज विकासखण्ड प्रथम स्थान पर है। जबकि प्रतापगढ सदर न्यूनतम स्तर पर है। प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन खाद्यान्य

उपलब्धता पर दृष्टिपात करने पर प्रतापगढ सदर मात्र 398 ग्राम ही खाद्यान्य उपलब्ध करा पा रहा है जबकि बाबागंज विकासखण्ड इससे दुगने से भी अधिक 904 ग्राम प्रतिव्यक्ति उत्पन्न कर रहा है।

2. **गुणात्मक पहलू :-**

अध्ययन क्षेत्र में अधिकांश पोषक तत्व खाद्यान्यों से प्राप्त किये जाते है। यह अनुमान है कि कुल प्राप्त कैलौरी में से दो तिहाई से भी अधिक भाग खाद्यान्यों से मिलता है। खाद्य और कृषि संगठन के एक अध्ययन के अनुसार वे देश जहां के आहार में खाद्यान्य जडदार सब्जियां और चीनी की बहुलता हो वहां पोषण सम्बन्धी स्पष्ट असंतुलन पाया जाता है। भारतीय आहार में इन तत्वों का अंश दो तिहाई से अधिक है। भारत में मध्य वर्गीय परिवारों के अतिरिक्त शेष लोग संतुलित आहार नही पाते हैं। जिसके कारण वे कुपोषण के शिकार हैं। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट 1992 के अनुसार "प्रति व्यक्ति औसतन अपने भोजन से 1965 में प्रतिदिन 2021 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त करता था जो 25 वर्षो बाद 1989 में बढकर 2229 कैलोरी हो गई है। जो जीवित रहने के लिए आवश्यक ऊर्जा 2250 कैलोरी से 21 कैलोरी कम है। पौष्टिक और संतुलित आहार न मिलने से गर्भवती महिलायें जिन बच्चों को जन्म देती है उनमें से लगभग 30 प्रतिशत बच्चे सामान्य वजन से कम होते है, बच्चों में तरह तरह की कुपोषण जन्य बीमारियां होती है। तथा शिशु मृत्युदर बहुत अधिक है और जीवन प्रत्याशा अन्य देशों की तुलना में कम है।

पोषण स्तर के अध्ययन के लिए प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उत्पादन तथा उपभोग के लिए प्रति व्यक्ति शुद्ध खाद्यान्य उपलब्धता दोनो भिन्न पहलू हैं। जहां प्रति व्यक्ति उत्पादन कृषि क्षेत्र कृषि क्षेत्र के उत्पादन स्तर का सूचक है वहीं प्रति व्यक्ति शुद्ध खाद्यान्य उपलब्धता पोषण स्तर का प्रतीक है। यहां यह बात ध्यान रखने की है कि संतुलित आहार में केवल खाद्यान्यों की मात्रा का ही योगदान नही होता है बल्कि खाद्यान्यों से प्राप्त होने वाली कैलौरिक

ऊर्जा पर निर्भर करता है। विकासखण्ड स्तर पर विभिन्न खाद्यान्यों से प्राप्त होने वाली कैलोरिक ऊर्जा तथा प्रति व्यक्ति कैलोरिक उपलब्धता को दर्शाने के पूर्व हमें इस बात का उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि कुल उत्पादन में से खाने योग्य खाद्यान्य की गणना विभिन्न विद्धानों ने की है। सिंह जसबीर (1974) ने कुल उत्पादन में से 16.80 प्रतिशत, तिवारी पी0डी0[13] (1988) ने 15 प्रतिशत, सिंह एस0पी0[14] (1991) ने 24 प्रतिशत मात्रा घटाकर उपभोग के लिए शुद्ध उत्पादन प्राप्त किया है। यहां पर हम विभिन्न खाद्यान्यों से उपभोग के लिए शुद्ध उत्पादन प्राप्त करने के लिए सिंह एस0पी0 की गणना को आधार मानते हुए विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्यों से प्राप्त प्रति व्यक्ति कैलौरिक ऊर्जा की गणना कर रहे हैं। उनके अनुसार विभिन्न खाद्यान्यों में खाने योग्य मात्रा की गणना में सर्वप्रथम विभिन्न खाद्यान्यों में से 10 प्रतिशत बीज, पशु आहार तथा भण्डारण क्षय घटा दिया जाता है। इसके उपरान्त शेष बचे हुए शुद्ध उत्पादन में से छीजन (अखाद्य भाग) घटा दिया जाता है जो विभिन्न खाद्यान्यों के लिए अलग अलग होता है जैसे गेहूं के लिए 10 प्रतिशत, धान के लिए 40 प्रतिशत जौ के लिए 10 प्रतिशत, मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, तथा मक्का) के लिए 10 प्रतिशत, अरहर तथा चना के लिए 35 प्रतिशत, उर्द मूंग तथा मटर के लिए 30 प्रतिशत लाही के लिए 2 प्रतिशत तथा आलू के लिए 25 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। छीजन घटाने के बाद खाने योग्य भाग को कैलोरिक ऊर्जा में परिवर्तित करके भूमि भार वहन क्षमता की गणना की गई है।

सारिणी कमांक 5.12

विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्यों से उपभोग योग्य मात्रा

सं0	विकासखण्ड	अन्न			दलहन			कुल खाद्यान्य		
		उपयोग योग्य (कु0में)	प्रतिव्यक्ति (किलोग्राम)	प्रतिदिन (ग्राम)	कुल उपभोग्य योग्य (कु0में)	प्रतिव्यक्ति (कि.ग्राम)	प्रतिदिन (ग्रा.)	उपभोग्य योग्य (कु0में)	प्रतिव्यक्ति (कि0ग्राम)	प्रतिदिन (ग्राम)
1.	कालाकांकर	237357	173.94	476	9618	7.05	19	246975	180.99	495
2.	बाबागंज	355331	225.73	618	8264	5.56	15	343595	231.29	633
3.	कुण्डा	303784	163.32	447	16761	9.01	25	320545	172.33	472
4.	विहार	353159	207.17	567	10929	6.41	18	364088	213.58	585
5.	सांगीपुर	262511	177.57	486	27436	18.56	51	289947	196.13	537
6.	रामपुरखास	320482	172.33	472	16510	8.88	24	336992	181.21	496
7.	लक्ष्मणपुर	205202	148.77	407	12747	9.24	25	217949	158.01	432
8.	संडवा चन्द्रिका	172457	133.16	365	26166	20.20	55	198623	153.36	420
9.	प्रतापगढ सदर	128994	85.61	234	24098	15.99	44	153092	101.60	278
10.	मान्धाता	259881	156.44	428	13338	8.03	22	273119	164.47	450
11.	मगरौरा	309295	181.57	497	17671	10.37	29	326966	191.94	526
12.	पट्टी	247319	209.78	574	12867	10.91	30	260186	220.69	604
13.	आसपुर देवसरा	269662	183.93	504	11114	7.58	21	280776	191.51	525
14.	शिवगढ	199228	132.80	364	26047	17.36	47	225275	150.16	411
15.	गौरा	275731	183.84	503	12763	8.51	23	288494	192.35	526
	समग्र	**3880293**	**169.13**	**463**	**246329**	**10.74**	**29**	**4126662**	**179.86**	**492**

विकासखण्ड स्तर पर खाद्यान्य उपलब्धता सारिणी कमांक 5.12 में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें खाद्यान्य उपलब्धता के दृष्टिकोण से बाबागंज विकासखण्ड वरीयता कम में प्रथम स्थान पर है जहां प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति 231.29 किलोग्राम शुद्ध खाद्यान्य उपलब्ध हो रहा है जो

प्रतिदिन 633 ग्राम प्रति व्यक्ति आकलित किया गया। इस विकासखण्ड में धान तथा गेहूं फसलों की प्रधानता है और जो सकल कृषि क्षेत्र के 88 प्रतिशत क्षेत्र पर अधिकार किये है। पट्टी विकासखण्ड 220.69 कि0ग्राम खाद्यान्य उपलब्ध कराकर द्वितीय स्थान पर है जहां प्रतिदिन 604 ग्राम शुद्ध खाद्यान्य उपलब्ध हो रहा है, इस विकासखण्ड में भी धान और गेहूं की ही प्रधानता है ये फसले 82 प्रतिशत से भी अधिक क्षेत्र पर आच्छादित है। इस दृष्टि से प्रतापगढ सदर मात्र 101.60 किलोग्राम प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उपलब्ध कराकर न्यूनतम स्तर को प्रदर्शित कर रहा है। इस विकासखण्ड में विभिन्न फसलों में गेहूं का क्षेत्रफल तो 32 प्रतिशत से अधिक रखते हुए गेहूं की प्रधानता है। परन्तु सिंचन सुविधाओं के अभाव के कारण मोटे अनाज भी अपना स्थान बनाये हुए है।

जहां तक दलहन की उपलब्धता का प्रश्न है तो संडवा चन्द्रिका 55 ग्राम प्रतिदिन उपलब्ध कराकर सर्वोत्तम स्थिति में है जहां दलहनी फसलों में चना, अरहर, उर्द, तथा मूंग 15 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में उगाई जाती है जबकि सांगीपुर प्रतिदिन 51 ग्राम के स्तर को प्राप्त करके द्वितीय स्थान पर है। यहां पर भी उक्त दलहनी फसलों का वर्चस्व है। बाबागंज विकासखण्ड इस दृष्टि से मात्र 15 ग्राम प्रतिदिन दलहन उपलब्ध कराकर न्यूनतम स्तर पर स्थित है। जबकि कालाकांकर तथा विहार विकासखण्ड क्रमशः 17 ग्राम तथा 18 ग्राम दलहन की उपलब्धता रखकर न्यूनाधिक एक ही स्तर को प्रदर्शित कर रहे है। दलहन की उपलब्धता के दृष्टिकोण से लगभग सभी विकासखण्ड मानक स्तर से नीचे हैं। जो सम्पूर्ण जनपद के पोषण स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल रहे है।

(3) कैलोरिक उपलब्धता के आधार पर भूमि भार वहन क्षमता :-

किसी क्षेत्र में कृषि विकास तथा नियोजन में जनसंख्या तथा पोषण क्षमता के पारस्परिक सम्बन्ध का एक विशेष महत्व है। किसी क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या के पोषण स्तर को एक सामान्य स्तर पर बनाये रखने के लिए उस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति खाद्यान्य उत्पादन की आवश्यक मात्रा की तो आवश्यकता होती है साथ ही यह भी देखना होता है कि उस क्षेत्र की कृषि भूमि की वास्तविक भार वहन

क्षमता कितनी है? अर्थात जो भी कृषि उपज प्राप्त हो रही है वह कितने व्यक्तियों का पोषण करने में सक्षम है इसके लिए हमें यह यह देखना होता है कि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली कृषि उपज से कितनी कैलोरिक ऊर्जा प्राप्त होती है। यह कैलोरिक उपलब्धता ही उस क्षेत्र के कृषि क्षेत्र की पोषण क्षमता होती है। भूमि भार वहन की गणना के लिए डा0 जसबीर सिंह[15] (1974) में एक सरल माडल का प्रतिपादन किया जिसमें प्रति इकाई कृषि क्षेत्र के कुल उत्पादन को औसत उत्पादन के आधार पर कैलोरिक ऊर्जा में परिवर्तन किया और उसी कैलोरिक उपलब्धता को उस क्षेत्र की भूमि भार वहन क्षमता का नाम दिया है। यहां पर हम डा0 सिंह के माडल के आधार पर अध्ययन क्षेत्र की भूमि भारवहन क्षमता का विश्लेषण कर रहे हैं।

सारिणी कमांक 5.13

अध्ययन क्षेत्र की भूमि भार वहन क्षमता

सं0	खाद्य फसलें	प्रति हे0 उत्पादन कि0ग्राम	जोती गयी भूमि का प्रतिशत	सकल उत्पादन किलोग्राम	बीज भण्डारण आदि क्षय प्रतिशत	कुल शुद्ध उत्पादन किलोग्राम	खाने योग्य भाग प्रतिशत	खाने योग्य शुद्ध मात्रा किलोग्राम	प्रतिकिलोग्राम कैलोरी	कुल कैलोरिक उपलब्धता
1	धान	2667	32.8	66309.36	10	59678.42	60	35807.05	3450	123534324
2	गेहूं	2094	40.95	85749.30	10	77174.37	95	73315.65	3460	253672149
3	जौ	1274	1.03	1312.22	10	1181.00	90	1062.90	3360	3571344
4	ज्वार	1038	1.72	1785.36	10	1606.82	90	1446.14	3490	5047029
5	बाजरा	1096	4.01	4394.96	10	3955.46	90	3559.91	3610	12851275
6	मक्का	1588	0.60	952.80	10	857.52	90	771.77	3420	2639453
7	उर्द	554	2.77	1534.58	10	1381.12	70	966.78	3310	3200042
8	मूंग	786	0.99	778.14	10	700.33	70	490.23	3510	1720707
9	चना	1214	2.55	3095.70	10	2786.13	65	1810.98	3720	6736846
10	मटर	1308	1.47	1922.76	10	1730.48	65	1124.81	3150	3543152
11	अरहर	1066	4.21	4487.86	10	4039.07	70	2827.35	3350	9471623
12	लाही	856	0.62	530.72	2	520.11	35	182.04	9000	1638360
13	गन्ना	49674	0.87	43216.38	10	38894.74	12	4667.37	3830	17876027
14	आलू	18842	2.19	41351.58	25	31013.69	--	31013.69	970	30083279
	योग		96.06							**475585610**

$$\text{प्रतिवर्ग किलोमीटर कृषि क्षेत्र में कैलोरिक उपलब्धता} = \frac{\text{कुल कैलोरिक उपलब्धता}}{\text{सकल जोत का प्रतिशत}}$$

$$= \frac{4755859}{96.06} \times 100$$

$$= \mathbf{495092243.3}$$

सारिणी क्रमांक 5.13 जनपद प्रतापगढ में विभिन्न फसलों के उत्पादन से प्राप्त प्रतिवर्ग किलोमीटर कृषि क्षेत्र पर कैलोरिक उपलब्धता को दर्शा रही है। जनपद में प्रमुख रूप से चौदह फसले उगाई जाती हैं जिनमें गेहूं तथा धान फसलों की प्रधानता है। मोटे अनाजों में बाजरा प्रमुख है इसके अतिरिक्त ज्वार तथा मक्का भी प्रतिनिधित्व करती है। दलहनी फसलों में उर्द, चना तथा अरहर का प्रमुख स्थान है परन्तु मूंग तथा मटर को भी महत्वहीन नही समझा जा सकता है। लाही तथा गन्ना का क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण नही हे परन्तु फिर भी अपनी उपस्थिति बनाये हुए हैं, इन दोनों फसलों से अधिक महत्वपूर्ण फसल आलू की है जो 2.19 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाती हे। इस प्रकार 96.06 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाने वाली चौदह फसलोंक के कुल उत्पादन में खाद्य योग्य मात्रा की गणना करके कुल कैलोरिक उपलब्धता की गणना की गयी है। जनपद प्रतापगढ में विभिन्न आयु वर्ग की औसत वार्षिक कैलोरिक आवश्यकता की गणना भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद 1968 द्वारा संस्तुत मात्रा के आधार पर की गई है जिसे सारिणी क्रमांक 5.14 में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी कमांक 5.14

विभिन्न आयुवर्ग के लोगों की औसत वार्षिक कैलोरिक आवश्यकता

आयुवर्ग,	कुल जनसंख्या			प्रतिदिन संस्तुत मात्रा कैलोरी	कुल मात्रा कैलोरी
	बच्चे	पुरूष	स्त्री		
1 वर्ष से कम	4.98			700	3486
1 से तीन वर्ष,	4.42			1200	5904
3 से 6 वर्ष,	5.88			1500	8820
6 से 9 वर्ष,	5.24			1800	9432
9 से 12 वर्ष,	5.46			2100	11466
12 से 15 वर्ष,		4.96		2500	12400
12 से 15 वर्ष,			4.14	2200	9108
15 से 18 वर्ष,		5.94		3000	17820
15 से 18 वर्ष,			4.28	2200	9416
18 से अधिक		28.25		2800	79100
18 से अधिक			16.49	2500	41225
गर्भवती महिलायें,			4.98	3300	16434
स्तनपान कराती महिलायें,			4.98	3700	18426
योग		**39.15**	**34.87**		**243037**

सारिणी कमांक 5.14 में प्रस्तुत गणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में 100 व्यक्तियों को प्रतिदिन कुल 243037 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है इस प्रकार 1 वर्ष में (365.25 दिवस) प्रति व्यक्ति आवश्यक ऊर्जा की आवश्यकता 88769264 कैलोरी होगी। इस आधार पर अध्ययन क्षेत्र में

अनुकूलतम भूमिवहन क्षमता	=	प्रति किलोमीटर कृषि क्षेत्र में कैलोरिक उपलब्धता / प्रति व्यक्ति वार्षिक कैलोरिक आवश्यकता
अध्ययन क्षेत्र में प्रतिवर्ग किलोमीटर कृषि क्षेत्र में कैलोरिक उपलब्धता	=	495092243 कैलोरी
प्रति व्यक्ति वार्षिक आवश्यकता		887692.64 कैलोरी
अतः अनुकूलतम भूमि वहन क्षमता	=	495092243 / 887692.64
	=	**557.73 अथवा 558 व्यक्ति**

विकासखण्ड स्तर पर अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता

विकासखण्ड स्तर पर अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता की गणना करने पर ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र के विकासखण्डों में प्रतिवर्ग किलोमीटर 419 व्यक्तियों से लेकर 612 व्यक्तियों तक का अन्तर दिखायी पडा जिसे सारिणी 5.15 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विभिन्न वर्गों की तुलनात्मक उपलब्धता (ग्रामों में)

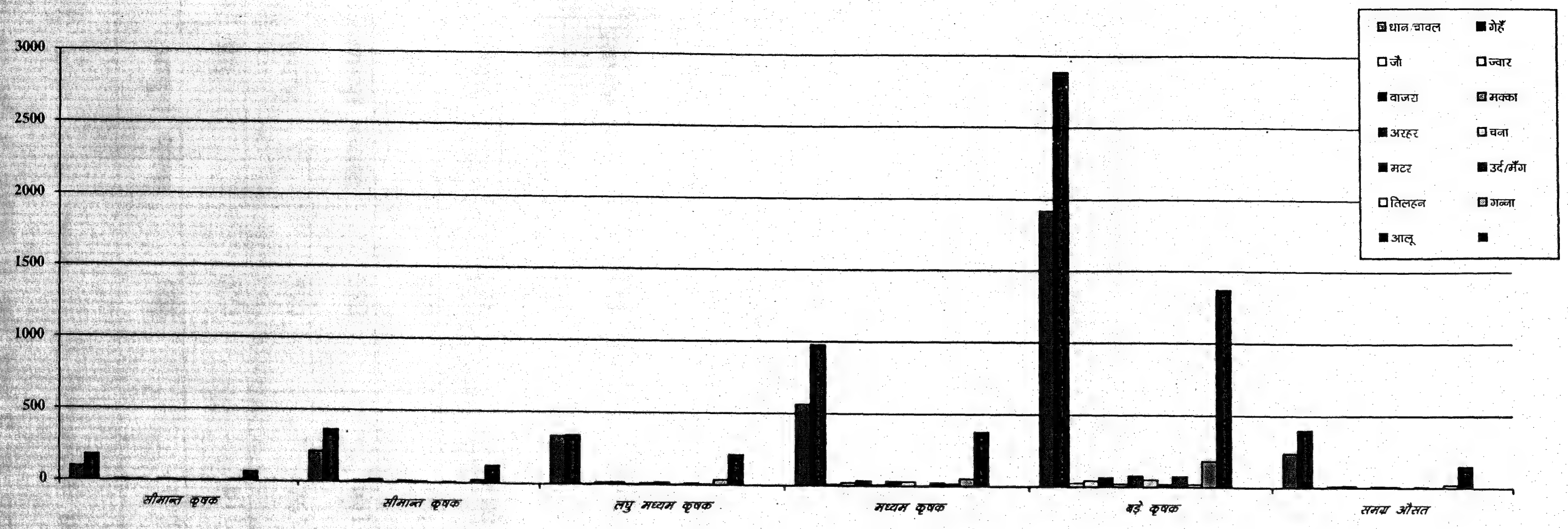

सारिणी कमांक 5.15

विकासखण्ड स्तर पर अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता

क0	विकासखण्ड	अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता	कायिक घनत्व	भूमि भार वहन क्षमता तथा कायिक घनत्व में अन्तर
1.	कालाकांकर	527	665	+ 138
2.	बाबागंज	550	572	+ 22
3.	कुण्डा	547	714	+ 167
4.	विहार	575	634	+ 59
5.	सांगीपुर	501	577	+ 76
6.	रामपुरखास	537	607	+ 70
7.	लक्ष्मणपुर	534	747	+ 213
8.	संडवा चन्द्रिका	515	693	+ 178
9.	प्रतापगढ सदर	419	918	+ 499
10.	मान्धाता	562	746	+ 184
11.	मगरौरा	528	600	+ 72
12.	पट्टी	612	591	- 21
13.	आसपुर देवसरा	592	631	+ 39
14.	शिवगढ	527	765	+ 238
15.	गौरा	573	611	+ 38
	सम्पूर्ण जनपद	**558**	**697**	**+ 139**

सारिणी कमांक 5.15 अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर भूमि भार वहन क्षमता का चित्र प्रस्तुत कर रही है, सारिणी से ज्ञात होता है कि पट्टी विकासखण्ड सर्वाधिक भूमि भार वहन क्षमता का प्रदर्शन कर रहा है यहां 612 व्यक्तियों के लिए आवश्यक कैलोरिक ऊर्जा खाद्यान्यों से प्राप्त हो रही है और यह विकासखण्ड अभी भी 21 अतिरिक्त व्यक्तियों के

पोषण के लिए सक्षम है इसके विपरीत प्रतापगढ सदर न्यूनतम 419 व्यक्तियों के लिए खाद्यान्य उत्पादित कर रहा है जबकि इस विकासखण्ड में सर्वाधिक 918 व्यक्ति अपना भरणपोषण प्राप्त कर रहें हैं स्पष्ट है कि इस विकासखण्ड में 499 व्यक्तियों के लिए कहीं अन्यत्र से खाद्यान्य की आपूर्ति की जा रही है दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि यह विकासखण्ड अपनी क्षमता के दुगने से भी अधिक लोगों का भरण पोषण कर रहा है। भूमि भार वहन क्षमता से अधिक लोगों का भरण पोषण करने वाले अन्य समस्त विकासखण्ड हैं। जिसमें बाबागंज केवल 22 अतिरिक्त व्यक्तियों के लिए आसपुर देवसरा तथा गौरा विकासखण्ड कमशः 39 और 38 अतिरिक्त व्यक्तियों का भरण पोषण कर रहे हैं, विहार विकासखण्ड 59 अतिरिक्त लोगों की भोजन व्यवस्था कर रहा है। सांगीपुर, रामपुर खास तथा मगरौरा विकासखण्ड 70 से 76 अतिरिक्त लोगों को खाद्यान्य जुटा रहे हैं, कुण्डा कालाकांकर, संडवा चन्द्रिका मान्धाता विकासखण्ड 138 से 184 के मध्य अतिरिक्त लोगों के लिए खाद्यान्यों की व्यवस्था करते हैं। शिवगढ ' तथा लक्ष्मणपुर विकासखण्ड 200 से अधिक अतिरिक्त व्यक्तियों के लिए भोजन व्यवस्था करते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के पट्टी विकासखण्ड को छोडकर अन्य सभी विकासखण्ड वहां के निवासियों के आवश्यक कैलोरिक ऊर्जा से कम खाद्यान्य उत्पादन कर रहे है जिससे उन्हे न्यूनाधिक अतिरिक्त व्यक्तियों का भार वहन करना पड रहा है। जिसका कारण भूमि का असमान वितरण भोजन में खाद्यान्यों की प्रमुखता, भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों की न्यूनता तथा निष्कृष्ट कोटि के पोषक तत्वों से युक्त भोजन, विभिन्न पोषक तत्वों का असंतुलित समायोजन कुपोषण की समस्या को जन्म देते हैं, अध्ययन क्षेत्र कुपोषण की समस्या से मुक्त नही है।

सारिणी कमांक 5.16

भूमि भार वहन क्षमता की श्रेणी

भूमिभार वहन क्षमता	श्रेणी	विकासखण्डों की संख्या	विकासखण्डों का नाम
450 से कम	निम्नतम	01	1. प्रतापगढ सदर
451 से 500 तक	निम्न	शून्य	–
501 से 550 तक	सामान्य	09	1. कालाकांकर 2. बाबागंज 3. कुण्डा 4. सांगीपुर 5. रामपुर खास 6. लक्ष्मणपुर 7. संडवा चन्द्रिका 8. मगरौरा 9. शिवगढ
551 से 600 तक	उच्च्व	04	1. विहार 2. मान्धाता 3. आसपुर देवसरा 4. गौरा
601 से अधिक	उच्चतम	01	1. पट्टी

सारिणी क्रमांक 5.16 से स्पष्ट होता है कि सर्वोच्च भूमिभार वहन क्षमता की श्रेणी में पट्टी विकासखण्ड स्थित है, जबकि निम्नतम भूमिभार वहन क्षमता की श्रेणी में प्रतापगढ सदर आता है। सामान्य भारवहन क्षमता में आधे से अधिक विकासखण्ड स्थित है जिनमें 09 विकासखण्ड कालाकांकर, बाबागंज, कुण्डा, सांगीपुर, रामपुर खास, लक्ष्मणपुर, संडवा चन्द्रिका, मगरौरा, तथा शिवगढ स्थित है। जबकि विहार मान्धाता आपुर देवसरा तथा गौरा विकासखण्ड भूमि भारवहन क्षमता की उच्च श्रेणी में स्थित है।

अध्याय-षष्टम

कृषकों का कृषि प्रारूप कृषि उत्पादकता
एवं
खाद्यान्य उपलब्धि की स्थिति

भौतिक
एवं
तकनीकी तत्व

आर्थिक तत्व

कीमत और आय का अधिकतम करना

खेत का आकार

जोखिमों के विरूद्ध बीमा

आदानों की उपलब्धता

कृषकों के कृषि उत्पादन का स्तर

अध्याय षष्टम

कृषकों का कृषि प्रारूप, कृषि उत्पादकता एवं खाद्यान्न उपलब्धता की स्थिति :-

किसी प्रदेश अथवा क्षेत्र के फसलों के प्रतिरूप में परिवर्तन की सम्भावना के विषय में दो मत हैं। कृछ विद्वानों का मत है कि फसलों के प्रतिरूप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है जबकि कुछ विद्वान मानते है कि सुविचारित नीति के सहारे इसे बदला जा सकता है। वसु के0डी0 ने यह मत व्यक्त किया है ''परम्पराबद्ध तथा ज्ञान के अत्यन्त निम्न स्तर वाले देश के कृषक प्रयोग करने की उद्यत नहीं होते है, वे प्रत्येक बात को विरक्ति और भाग्यवाद की भावना से स्वीकार करते है, उनके लिए कृषि वाणिज्य, व्यापार की वस्तु न होकर जीवन की एक प्रणाली है एक सेसे कृषि प्रधान समाज में जिसके सदस्य परम्पराबद्ध और अशिक्षित हैं, फसल में परिवर्तन की अधिक सम्भावना नहीं रहती है।''[1] अब इस मत को सही यनहीं समझा जाता है जैसा कि पंजाब में फसल परिवर्तन से स्पष्ट है। अब यह बात अधिकांश विद्वानों द्वारा स्वीकार कर ली गई है कि भारत जैसे देश में भी फसल प्रतिरूप बदला जा सकता है और इसे बदलना चाहिए। फसलों के प्रतिरूप को निर्धारित करने वाले बहुत से कारक होते हैं जैसे भौतिक एवं तकनीकी तत्व आर्थिक तत्व यहां तक कि राजनीतिक तत्व भी फसल प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व आर्थिक तत्व होते हैं।

(अ) **भौतिक एवं तकनीकी तत्व :**

किसी प्रदेश का फसल प्रतिरूप उसकी भौतिक विशिष्टताओं अर्थात मिट्टी, जलवायु, वर्षा तथा मौसम आदि पर निर्भर करता है। उदाहरण स्वरूप एक

ऐसे शुक क्षेत्र में जिसमें थोड़ी वर्षा होती है तथा मानसून अनिश्चित रहता है वहां पर ज्वार तथा बाजरा फसलों की प्रधानता होती है क्योंकि ये फसलें कम वर्षा में भी उगाई जा सकती हैं। फसल चक्र बहुत कुछ भौतिक कारणों से प्रभावित होता है किन्तु तकनीकी उपायों से फसल चक्र बदला जा सकता है, तो भी कुछ परिस्थितियों में भौतिक बाधां निर्णायक होती हैं। उदाहरण के लिए पंजाब के संगरूर और लुधियाना जिलों में जलरोध के कारण चावल के उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि हुई हैं क्योंकि चावल की फसल अधिक पानी को सहन कर सकती है।

मिट्टी तथा जलवायु के अतिरिक्त किसी क्षेत्र की फसलों के प्रतिरूप पर सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता का भी प्रभाव पड़ता है। जहां पर पानी की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है वहां पर दोहरी और तेहरी फसलें भी उगाई जा सकती हैं। जब भी किसी क्षेत्र को सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं उस क्षेत्र के कृषि का ढांचा ही बदल जाता है, पुराने फसल चक्र के स्थान पर नया फसल चक्र निर्धारित होता है। यह सम्भव है कि पूंजी का अभाव अच्छे एवं सुधरे हुए कृषि औजार, अधिक उपपज देने वाले उन्नत किस्म के बीज और रासायनिक उर्वरकों के लिए वित्त न मिल पाने के कारण उचित प्रकार की फसल न उगाई गई हो, परन्तु जैसे ही वे सुविधाएं कृषकों को प्राप्त होती हैं, फसलों के ढांचे में परिवर्तन हो जाता है।

(ब) आर्थिक तत्व :

किसी क्षेत्र अथवा प्रदेश की फसलों के प्रतिरूप को निर्धारित करने में आर्थिक कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं। आर्थिक कारणों में निम्न तत्व महत्वपूर्ण हैं-

(1) **कीमत और आय को अधिकतम करना :**

अनेक व्यवहारिक अध्ययनों से फसलों की कीमत तथा उनके ढांचे में परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है। डा0 बंसल पी0सी0 ने 'कीमत समता अनुपात' की गतियों और गन्ने की अखिल भारतीय क्षेत्रफल में परिवर्तन के बीच तथा पटसन एवं चावल के अधीन क्षेत्रफल और इन वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध को प्रमाणित किया है।2 खाद्य एवं कृषि मंत्रालय के अध्ययन से पता चलता है कि कीमतों में परिवर्तन का क्षेत्रफल के परिवर्तन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। वर्गीज3 का मत है कि अधिकतम आय की प्रेरणा भी फसलों का ढांचा बदलने पर भी अधिक प्रभाव डालती है क्योंकि कृषक उसी फसल को उगाना पसन्द करेगा जिससे उसे अधिकतम आय प्राप्त होगी।" किन्तु डा0 भाटिया का मत है कि "फसलों के प्रतिरूप को प्रभावित करने वाला मुख्य कारण प्रति एकड़ सापेक्ष लाभ होता है।" स्पष्ट है कि किसी भी परिस्थितियों में फसल का चुनाव करने में किसान पर कीमत समता, आय का अधिकतम होना और प्रतिएकड़ सापेक्ष लाभ का ही अधिक प्रभाव पड़ता है।

(2) **खेत का आकार :**

खेत के आकार तथा फसलों के ढांचे की बीच भी सम्बन्ध रहता है। छोटे किसान बड़े किसानों के सापेक्ष व्यापारिक फसलों के लिए कम क्षेत्रफल का उपयोग करते हैं। इसका कारण है कि छोटे कृषक सर्व प्रथम अपनी

आवश्यकता पूर्ति हेतु खाद्यान्न उत्पन्न करना चाहते हैं। परन्तु हाल ही में देवरिया जिले के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि लगभग सभी कृषक बड़े तथा छोटे कुछ नकद फसलें उगाने का प्रयास करते हैं। यह सत्य है कि निर्वाह की आवश्यकता के कारण छोटे कृषकों की फसलों का ढांचा परम्परा से प्रभावित होता है किन्तु उनकी मौद्रिक आय की सीमान्त आवश्यकता किसी भी प्रकार बड़े कृषकों से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थव्यवस्था की प्रगति के साथ छोटे कृषकों द्वारा अपनी आय अधिकतम करने में उद्देश्य से अपने सस्य प्रतिरूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण सीमान्त परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है।

(3) **जोखिम के विरूद्ध बीमा :**

फसल विफलता का जोखिम कम से कम करने की आवश्यकता का भी फसलों के ढांचे पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतः अनेक क्षेत्रों में ज्वार बाजरे आदि मोटे अनाज की खेती के लगातार होने के कारण मुख्यतः वर्षा की आनिश्चता से बचने का प्रयत्न है।

(4) **आदानों की उपलब्धता :**

सस्य प्रतिरूप, उन्नतशील बीज, रासायनिक उर्वरक, जल संग्रहण, विपणन और परिवर्तन आदि आदानों पर भी निर्भर रहता है। मूंगफली के बीच की उपलब्धता के कारण मध्य प्रदेश के अनेक कृषकों को मूंगफली की खेती अधिक विस्तृत क्षेत्रफल में करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। कृषकों द्वारा रूई की फसल के मुकाबले मूंगफली को श्रेष्ठ समझने का एक कारण यह भी है कि रूई की फसल विलम्ब से तैयार होती है जबकि मूंगफली की फसल शीघ्र पककर तैयार हो जाती है।

(5) **भू-धारण :**

फसल बटाई प्रणाली के अन्तर्गत भू-स्वामी को फसलों के चुनाव का प्रमुख अधिकार होता है, परिणाम स्वरूप आय को अधिक करने वाला फसलों का ढांचा अपनाया जाता है।

(स) **राजनैतिक तत्व-**

कार वैधानिक और प्रशासनिक उपायों से फसलों के ढांचे के निर्धारण पर प्रभाव डाल सकत हैं। कृषकों को कृषिगत आदान और ज्ञान उपलब्ध कराने में सहायक प्रदान कर सकती हैं। सरकार कुछ फसलों के लिए विशेष सुविधाएं उपलब्ध करा सकती है। यद्यपि खाद्य, सस्य अधिनियम, भू उपयोग अधिनियम, धान, कपास, तिलहन आदि की सघन खेती की भोजनाएं, उत्पादन शुल्क तथा निर्यातः शुल्क आदि के प्रयोग से कल्पित दिशा में फसलों के ढांचे को प्रभावित किया जा सकता है तथापि सम्भव है कि उक्त समस्त उपायों का सम्पूर्ण फसलों के ढांचे पर कुछ प्रभाव ऐसा न पड़े जो राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

1. **कृषकों का कृषि प्रारूप :**

जनपद प्रतापगढ़ में तीन फसलें खरीफ, रबी तथा जायद फसलें क्रमशः वर्षा, शरद एवं ग्रीष्म ऋतु में बोई जाती हैं। इनमें से खरीफ तथा रबी की फसलों की प्रधानता है जो कुछ कृषि क्षेत्र के लगभग 96 प्रतिशत भाग को अधिकृत किए हुए हैं। सर्वेक्षण के आधार पर 300 कृषक परिवारों के कृषि प्रारूप के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित की गई हैं। इन कृषकों को पांच श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। सीमान्त कृषक की श्रेणी में 0.5

हेक्टेयर से अधिक परन्तु 1 हेक्टेयर से कम कृषि योग्य भूमि है उन्हें लघु कृषकों की श्रेणी में, जबकि 2 से 4 हेक्टेयर के मध्य कृषि भू-स्वामियों को मध्यम श्रेणी में तथा 4 हेक्टेयर से अधिक जोत सीमा वाले कृषक परिवार बड़े कृषक की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। सर्वेक्षण में सूचनाओं की अवधि 1 जुलाई 1999 से 30 जून 2000 तक है।

सारिणी 6.1

कृषक परिवारों की श्रेणियों

जोत का आकार	कृषकों की श्रेणी	कृषकों की संख्या	प्रतिशत	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	प्रतिशत
0.5 हेक्टेयर से कम	सीमान्त	122	40-67	44-68	17-23
0.5 से 1 हेक्टेयर	लघु	107	35-67	82-68	31-88
1 से 2 हेक्टेयर	लघु मध्यम	52	17-33	63-96	24-66
2 से 4 हेक्टेयर	मध्यम	16	5-33	37-76	14-56
4 हेक्टेयर से अधिक	बड़े	3	1-00	30-24	11-66
योग-		**300**	**100-00**	**259-32**	**100-00**

सारिणी 6.1 अध्ययन क्षेत्र में सर्वेक्षित कृषकों की संख्या, श्रेणी तथा अधिकृत कृषिक्षेत्र पर प्रकाश डाल रही है। कुल 300 कृषक परिवारों में 122 सीमान्त कृषक, 107 लघु कृषक प्राप्त हुए है। इन दोनों वर्गो के पास क्रमशः 44.68 हेक्टेयर तथा 82.68 हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध है। इन परिवारों का कुल कृषक परिवारों में 76 प्रतिशत से अधिक प्रतिनिधित्व है जबकि कुल कृषियोग्य भूमि का केवल 49 प्रतिशत क्षेत्रफल ही इन दो वर्गो के पास उपलब्ध है। लघु मध्यम कृषकों की संख्या 52 प्राप्त हुई जिनके पास 63.96 हेक्टेयर कृषि भूमि पाई गई जो कुल कृषि क्षेत्र का 24.66 प्रतिशत है। 16 कृषक मध्यम आकार के 37.76 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर कृषि कार्य करते हुए पाये गये। न्यूनतम प्रतिनिधित्व बड़े कृषकों का पाया गया जिनकी संख्या केवल 03 है परन्तु इनके पास कुल कृषि भूमि का 11.66 प्रतिशत क्षेत्रफल पाया गया। कुल कृषक परिवारों में सर्वाधिक प्रतिनिधित्व सीमान्त कृषकों का पाया गया है जो इस तथ्य की ओर संकेत कर रहा है कि स्वतंत्रता के पश्चात अनेक भूमि सुधार योजनाओं और कानूनों के उपरान्त भी अध्ययन क्षेत्र में सीमान्त एवं लघु कृषक परिवारों की प्रधानता है, परन्तु जोत का आकार कम होने के कारण फसलों का प्रतिरूप तथा फसलोंत्पादन भी प्रभावित होता है। जोत का आकार छोटा होने के कारण नवीन कृषि तकनीक का प्रयोग अत्यन्त सीमित मात्रा में हो पाया है साथ ही पूंजी निर्माण की सम्भावनाएं भी अत्यन्त सीमित हो जाती है जिससे कृषकों को अपनी फसल का अपेक्षित उत्पादन प्राप्त नही हो पाता है।

सारिणी 6.2

फसल गहनता

कृषकों की श्रेणी	शुद्ध कृषि क्षेत्र (हे0)	सकल कृषि क्षेत्र (हे0)	फसल गहनता
सीमान्त कृषक	44.68	70.93	158.75
लघु कृषक	82.68	133.30	161.22
लघु मध्यम कृषक	63.96	102.88	160.86
मध्यम कृषक	37.76	61.35	162.48
बड़े कृषक	30.24	44.69	147.78
कुल-	259.32	413.15	159.32

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण :

सारिणी 6.2 कृषक परिवारों की फसलों गहनता का चित्र प्रस्तुत कर रही है। फसल गहनता सर्वाधिक 162.48 प्रतिशत मध्यम कृषक श्रेणी में पाई गई जबकि न्यूनतम फसल गहनता 147.78 प्रतिशत बड़े आकार के कृषक परिवारों में प्राप्त हुई जो सर्वोच्च्व फसल गहनता से लगभग 15 प्रतिशत कम है। किसी क्षेत्र की फसल गहनता उस क्षेत्र के कृषि स्वरूप की ओर संकेत करता है साथ ही कृषि के लिए आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धता का भी आभास कराता है। उच्च फसल गहनता का अर्थ है कि वह क्षेत्र बहु फसली है। न्यून फसल गहनता का अर्थ है उस क्षेत्र में एक से अधिक फसलों का क्षेत्र भी सीमित है। कृषि की गहनता पर ही फसल गहनता निर्भर करती है जिसके द्वारा ही उप क्षेत्र की

आर्थिक स्थिति का निर्धारण होता है। उच्च फसल गहनता उच्च आर्थिक स्तर, निम्न फसल गहनता निम्न आर्थिक स्तर। इस दृष्टि से देखा जाय तो अध्ययन क्षेत्र की फसल गहनता 159.32 प्रतिशत है जिसका अर्थ है कि कृषकों द्वारा केवल 59.32 प्रतिशत क्षेत्र पर ही एक से अधिक फसलें उगाई जा रही हैं।

सारिणी 6.3

जातिगत आधार पर कृषकों का वर्गीकरण

कृषकों का जाति वर्ग	सीमान्त कृषक	लघु कृषक	लघु मध्यम कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक	योग
1. उच्च जाति	24	25	11	04	01	65
2. पिछड़ी जाति	36	34	16	08	01	95
3. अनुसूचित जाति	53	39	20	01	-	113
4. मुस्लिम	09	09	05	03	03	27
योग	122	107	52	16	16	300

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 6.3 कृषकों के जातिगत वर्गीकरण को प्रस्तुत कर रही है जिसमें उच्च जाति के 65 कृषक प्राप्त हुए इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिए तथा वैश्य जातियां सम्मिलित है, 95 कृषक परिवार पिछड़ी जातियों से सम्बन्धित है जिनमें यादव, काछी, पाल, कुर्मी, लोधी, सविता, तथा कुम्हार जातियां प्रमुख हैं। अनुसूचित जाति के 113 कृषक परिवारों में चमार, कोइरी, धोबी, आरख तथा पटवा जातियों की प्रधानता पाई गई। मुस्लिम कृषक परिवारों की संख्या 27 प्राप्त हुई, परन्तु मुस्लिम

धर्मानुयाई कृषकों को एक ही वर्ग में रखा गया है। कृषकों की जाति भी कृषि प्रणाली को प्रभावित करती है। सामान्यतः अनुसूचित जाति तथा पिछड़ी जाति के कृषक परिवारों को पारिवारिक श्रम सरलता से उपलब्ध हो जाने के कारण फसल प्रतिरूप को प्रभावित करता है जबकि उच्च जाति के कृषकय परिवारों को श्रम दुर्लभ होने के कारण फसल चक्र श्रम प्रधान नही रहते हैं।

सारिणी 6.4
पारिवारिक आकार

परिवार का आकार	सीमान्त कृषक		लघु कृषके		लघु मध्यम कृषक		मध्यम कृषक		बड़े कृषक		योग	
	कृषक परिवार	सदस्य संख्या	कृषक परिवार	सदस्य संख्या	कृषक परिवार	सदस्य संख्या	कृषक परिवार	सदस्य संख्या	कृषक परिवार	सदस्य संख्या	कृषक परिवार	सदस्य संख्या
4 से कम	28	84	24	63	12	33	4	13	-	-	68	193
5 से 6 तक	41	226	29	158	15	83	2	12	01	06	88	485
7 से 8 तक	27	211	20	152	07	52	4	31	-	-	58	446
9 से 10 तक	22	209	28	268	08	76	3	28	10	10	62	591
10 से अधिक	04	48	06	75	10	132	3	35	10	13	24	303
योग	122	778	107	716	52	376	16	119	03	29	300	2018
औसत	-	6.38	-	6.69	-	7.23	-	7.43	-	9.67	-	6.73

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 6.4 कृषकों के औसत परिवार के आकार का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिसमें बड़े कृषक परिवारों का औसत आकार सर्वाधिक प्राप्त हुआ है, इस

भूमि उपयोग (हिक्टेयर में)

वर्ग के परिवारों का औसत आकार 9.67 सदस्य प्रति परिवार पाया गया जबकि न्यूनतम आकार 6.38 सदस्य प्रति परिवार सीमान्त कृषकों का पाया गया। समंको को विश्लेषण करने पर यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि जैसे जैसे जोत का आकर बढ़ता जाता है परिवार का आकार भी बढ़ता जाता है जैसे लघु कृषकों के परिवार का औसत आकार 6.69 सदस्य प्रति परिवार, लघु मध्यम कृषक परिवार 7.23 सदस्यय प्रति परिवार तथा मध्यम कृषक 7.43 सदस्य प्रति परिवार औसत आकार दर्शा रहे है जबकि सम्पूर्ण कृषक परिवारों का औसत आकार 6.73 सदस्य प्राप्त किया गया। परिवार का आकार भी कृषि प्रणाली को प्रभावित करता है क्योंकि परिवार का आकार जितना बड़ा होगा है कृषि पर भार भी उतना ही अधिक होगा, न्यून सदस्यय संख्या वाले कृषक परिवार अधिक कुशलता से कृषि कार्य सम्पन्न कर सकते है।

सारिणी 6.5

भूमि उपयोग (हिक्टेयर में)

		सीमान्त कृषक	लघु कृषक	लघु मध्यम कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक	योग
1	शुद्ध कृषि क्षेत्र	44.68	82.68	63.96	37.24	30.24	259.32
2	एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र	26.25	50.62	38.59	23.59	14.45	153.83
3	सकल बोयागया क्षेत्र	70.93	133.30	102.88	61.35	44.69	413.15
4	शुद्ध सिंचित क्षेत्र	35.07	62.32	47.65	29.15	23.01	197.22
5	सकल सिंचित क्षेत्र	66.25	120.77	91.77	56.69	40.98	376.46
6	खरीफ का क्षेत्र	36.60	68.00	51.34	29.75	22.66	208.35
7	रबी का क्षेत्र	33.03	62.49	49.42	29.93	20.74	195.61
8	जायद का क्षेत्र	1.30	2.81	2.12	1.67	1.29	9.19

सारिणी 6.5 सर्वेक्षण किए गये कृषकों के भूमि उपयोग को दर्शा रही है जिससे ज्ञात होता है कि सभी वर्गो के कृषकों के पास कुल 259.32 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र है जिसमें से 153.83 हेक्टेयर क्षेत्र पर एक से अधिक बार फसलोंत्पादन लिया जा रहा है, इस प्रकार सकल बोये गये क्षेत्र 413.15 हेक्टेयर पर एक या एक से अधिक बार फसलें उगाई जा रही है। सिंचन सुविधाओं की स्वल्पता के कारण केवल 59.32 प्रतिशत क्षेत्र की दोहरी फसल के अन्तर्गत प्रयोग में लाया जा रहा है। विभिन्न वर्गो के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि सिंचन सुविधाएं सर्वाधिक सीमान्त कृषकों को प्राप्त है जो अपनी शुद्ध कृषि भूमि के 78.49 प्रतिशत क्षेत्र को जलापूर्ति कर पाते हैं, दूसरा स्थान बड़े कृषकों का है जिनकी 76.09 प्रतिशत शुद्ध भूमि सिंचित है न्यूनतम 74.50 प्रतिशत लघु मध्यम कृषकों का है। सकल सिंचित क्षेत्र की दृष्टि से भी सीमानत कृषक 93.4 प्रतिशत सिंचन सुविधाएं जुटा कर प्रथम स्थान पर है परन्तु द्वितीय स्थान पर मध्यम कृषक यह लाभ प्राप्त कर रहे हैं। लघु मध्यम कृषकों की स्थिति इस दृष्टि से भी न्यूनतम स्थान पर है। सिंचन सुविधाओं के अभाव के कारण लगभग सभी वर्गो के कृषि व्यवसाय में खरीफ फसलों का क्षेत्र रबी फसल की अपेक्षा अधिक है, साथ ही जायद फसलों के अन्तर्गत अत्यन्त निम्न क्षेत्र प्रयोग में लाया जा रहा है। यदि सिंचन सुविधओं का विस्तार आवश्यकतानुसार हो सके तो कृषि भूमि का और अधिक अच्छा उपयोग करने की सम्भावना हो जायेगी।

तालिका 6.6

विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)

फसलें	सीमान्त कृषक		लघु कृषके		लघु मध्यम कृषक		मध्यम कृषक		बड़े कृषक		योग	
	क्षेत्र	प्रतिशत	क्षेत्रऋऋ	प्रतिशत	क्षेत्र	प्रतिशत	क्षेत्र	प्रतिशत	क्षेत्र	प्रतिशत	क्षेत्र	प्रतिशत
1. धान	24-84	35-0235-	48-05	36-05	39-78	36-67	21-79	35-52	18-21	40-74	152-67	36-95
2. गेहूँ	28-82	40-64	53-21	39-92	40-43	39-30	23-77	38-74	17-39	38-92	163-62	39-60
3. जौ	-24	-84	-75	-56	-42	-41	-40	-66	-27	-61	2-08	-50
4. ज्वार	2-73	3-85	3-91	2-93	2-39	2-32	1-15	1-87	-54	1-21	10-72	2-56
5. बाजरा	2-23	3-14	6-06	4-54	2-60	2-52	1-81	2-95	-75	1-68	13-45	3-26
6. मक्का	-08	-12	-47	0-35	-43	-42	-29	-48	-18	-40	1-45	-35
7. अरहर	3-39	4-78	5-09	3-82	2-51	2-44	2-35	3-83	1-31	2-94	14-65	3-55
8. चना	1-70	2-40	2-88	2-16	3-14	3-05	1-79	2-92	-77	1-72	10-28	2-49
9. मटर	-16	-22	-41	-31	-41	-40	-21	-35	-28	-62	1-47	-36
10. उर्द/मूंग	3-33	4-69	4-42	3-32	3-63	3-52	2-36	3-84	1-67	3-74	15-41	3-73
11. तिलहन	-34	-48	2-17	1-63	2-23	2-17	2-29	3-73	-74	1-66	7-77	1-88
12. आलू	1-37	1-93	2-20	1-65	1-93	1-88	1-09	1-77	-97	2-16	4-56	1-83
13. गन्ना	-40	-56	-87	-65	-86	-84	-38	-62	-32	-71	2-83	-68
14. अन्य	1-30	1-83	2-81	2-11	2-12	2-05	1-67	2-72	1-29	2-89	9-19	2-23
योग	70-93	100-00	133-30	100-00	102--88	100-00	61-35	100-00	44-69	100-00	413-15	100-00

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी क्रमांक 6.6 विभिन्न कृषक वर्ग द्वारा विभिन्न फसलों के लिए उपयोग की जाने वाली कृषि भूमि का चित्र प्रदर्शित कर रही है। सारिणी से ज्ञात होता है कि सभी वर्गो के कृषकों के भूमि उपयोग में धान व गेहूँ फसलों की ही प्रधानता है जो सकल कृषि क्षेत्र के 75 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल पर कोई जा रही हैं, अन्य फसलों का उक्त दो फसलों की अपेक्षा अत्यन्त निम्न क्षेत्रफल है। खरीफ की फसल में धान की भागेदारी सीमांत कृषकों में 67 प्रतिशत से अधिक लघु कृषकों में 70 प्रतिशत से अधिक, लघु मध्यम कृषकों में 77.48 प्रतिशत, मध्यम कृषक 73.24 प्रतिशत तथा बड़े कृषकों की 80 प्रतिशत से अधिक है। धान तथा गेहूँ फसलों की प्रधानता के कारण किसी अन्य नकदी फसल की सम्भावनाएं लगभग शून्य ही है, अन्य नकदी फसलों के अभाव में कृषक धान की ही फसल से नकदी आवश्यकता की पूर्ति करते है। खरीफ मौसम में धान के अतिरिक्त ज्वार बाजरा तथा मक्का फसलें केवल अपनी उपस्थिति ही दर्शाया रही है जिनका क्षेत्रफल अत्यन्त न्यून होने के कारण सकल कृषि क्षेत्र में 3 प्रतिशत से भी कम भागेदारी कर रही है, इस मौसम में केवल उर्द/मूंग तथा अरहन ही 3 प्रतिशत से अधिक हिस्सेदारी कर रही हैं। लघु कृषकों में बाजरा की भागेदारी 4 प्रतिशत से अधिक है। जबकि अरहर की फसल बाजरे की फसल का अनुकरण करने का प्रयास करती प्रतीत हो रही है।

रबी मौसम में गेहूँ फसल की प्रधानता है जो औसत रूप में इस मौसम के 83 प्रतिशत से भी अधिक क्षेत्र में उगाई जा रही है। विभिन्न वर्गो के कृषकों के अनुसार देखे तो सीमान्त कृषकों की हिस्सेदारी रबी मौसम के शुद्ध भू क्षेत्र में सीमान्त कृषक 87.25 प्रतिशत, लघु कृषक 85.15 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक 81.80 प्रतिशत, मध्यम कृषक 79.42 प्रतिशत तथा बड़े कृषक 76.47 प्रतिशत की भागेदारी कर रहे है, यह तथ्य भी उमर कर आया है कि जैसे-2 जोत का

आकर बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे गेहूँ फसल की भागेदारी घटती जा रही है जिसका अर्थ है कि जोत का आकार बढ़ने के साथ ही कृषक अन्य फसलों को बोना अच्छा समझते है, यद्यपि रबी मौसम की अन्य फसलों चना, मटर तथा तिलहन की स्थिति न्यूनाधिक उपस्थिति दर्ज कराने वाली ही हैं। दलहनी फसलों में चना का सर्वाधिक भागेदारी लघु मध्यम कृषकों की 3.05 प्रतिशत है, केवल रबी मौसम में यह प्रतिशत 6.35 है, अन्य सभी वर्ग इस फसल के लिए 3 प्रतिशत से कम हिस्सेदारी कर रहे हैं। तिलहन फसल के सन्दर्भ में 3.73 प्रतिशत भागेदारी मध्यम कृषकों की है, अन्य वर्गो के कृषकों की भागेदारी 3 प्रतिशत से कम है जबकि तिलहन की फसल न केवल भोजन में चिकनाई की आवश्यकता को पूरा करती है बल्कि यह फसल एक नकदी फसल के रूप में कम लागत पर तैयार हो जाती है, परन्तु गेहूँ की फसल की प्रधानता अन्य फसलों के महत्व को घटा रही है। आलू तथा गन्ने की फसल केवल घरेलू आवश्यकताओं को ही दृष्टिगत रखकर उगाई जाती है।

जायद फसलों में उर्द/मूंग के अतिरिक्त सब्जियों को ही प्रधानता है कुछ कृषक ककड़ी, खरबूजा तथा तरबूज भी उगाते है परन्तु इन फसलों के उगाने का उद्देश्य व्यावसायिक न होकर स्व उपभोग है, इसलिए अत्यन्त सीमित क्षेत्र पर ही ये फसलें उगाई जाती है। सब्जियां तीनों मौसमों में उगाई जाती है। खरीफ के मौसम में जहां लौकी, तरोई तथा भिण्डी की प्रधानता रहती है वहीं रबी के मौसम में टमाटर, बैगन तथा बन्द गोभी की प्रधानता रहती है। जायद के मौसम में कद्दू, लौकी तथा करेला प्रमुख रूप से उगाए जाते हैं।

तालिका 6.7
कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार

	प्रति व्यक्ति	सीमान्त कृषक	लघु कृषक	लघु मध्यम कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक	समग्र
1	शुद्ध कृषि क्षेत्र	0-05743	0-11547	0-17011	0-31731	1-04276	0-12850
2	एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र	0-03374	0-07070	0-10351	0-19824	0-49827	0-07623
3	सकल बोया गया क्षेत्र	0-09117	0-18617	0-27362	0-51555	1-54103	0-20473
4	शुद्ध सिंचित क्षेत्र	0-04508	0-08707	0-12673	0-24496	0-79345	0-09773
5	सकल सिंचित क्षेत्र	0-08515	0-16867	0-24407	0-47639	1-41310	0-18655
6	खरीफ	0-04704	0-09497	0-13654	0-25000	0-78138	1-10325
7	रबी क्षेत्र	0-04246	0-08728	0-13144	0-25151	0-71517	0-09693
8	जायद क्षेत्र	0-00167	0-00392	0-00564	0-01403	0-04448	0-00455

सारिणी क्रमांक 6.7 विभिन्न कृषक वर्गो का प्रतिव्यक्ति उपलब्ध कृषि क्षेत्र का विवरण प्रस्तुत कर रही है, जिसमें प्रति व्यक्ति औसत रूप से उपलब्ध शुद्ध कृषि भूमि 0.12850 हेक्टेयर है जबकि इस भूमि का केवल 0.10325 हेक्टेयर भाग ही खरीफ फसलों के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है जबकि रबी मौसम में इससे भी कम 0.09693 हेक्टेयर ही प्रमुख हो रहा है और जायद मौसम में तो केवल प्रति व्यक्ति 0.00455 हेक्टेयर में ही फसलें उगाई जा रही हैं। एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र 0.06723 हेक्टेयर ही है जो इस तथ्य का ज्ञान करा रहा है कि इस फसली क्षेत्र 50 प्रतिशत से कुछ अधिक है। स्पंष्ट है कि प्रतिव्यक्ति जीवन यापन के लिए 0.20473 हेक्टेयर क्षेत्रफल ही उपलब्ध है।

जोत के आकार के आधार पर देखे तो ज्ञात होता है कि बड़े कृषकों के पास शुद्ध कृषि क्षेत्र प्रतिव्यक्ति 1.04276 हेक्टेयर है जबकि सीमान्त कृषकों के पास केवल 0.05743 हेक्टेयर ही कृषि भूमि उपलब्ध है, सकल बोये गये क्षेत्र की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि बड़े कृषकों के पास 1.54103 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति कृषि क्षेत्र है जबकि सीमान्त कृषकों के पास मात्र 0.08515 हेक्टेयर क्षेत्र ही है। यह कृषि क्षेत्र में असमानता आर्थिक असमानता का कारण बनती है जो सीमान्त तथा लघु कृषक परिवारों में कुपोषण या अल्प पोषण के लिए उत्तरदायी है।

2. कृषकों के कृषि उत्पादन का स्तर-

योजनाकाल में आर्थिक पुनर्निमाण की प्रक्रिया से कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति के साथ-साथ विभिन्न फसलों के उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। फसल प्रणाली में संरचनात्मक परिवर्तन आया है जिससे रबी, खरीफ के अतिरिक्त अल्पावधिकारी अन्य फसलें भी उत्पन्न की जाने लगी हैं। फसल संरचना में भी गुणात्मक सुधार हुआ है। श्रेष्ठ अनाजों यथा गेहूँ और चावल की फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र बढ़े हैं। कृषि विकास प्रयासों से कृषि अर्थ व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचार होने लगे हैं। कृषि को अब मात्र जीवन निर्वाह का साधन न मानकर इसमें व्यावसायिक गतिविधि की प्रतिष्ठा की गई। अब कृषक कृषि से लाभ प्राप्त करने के लिए नवीन तकनीकों के प्रयोग के प्रति तत्पर होने लगे हैं, जहां कही नवीन तकनीक उपलब्ध है कृषक उसके महत्व को स्वीकार करने लगे हैं। श्रेयष्कर कृषि विधियों तथा श्रेयष्कर जीवन यापन की आकांक्षा न केवल उत्पादन की नवीन तकनीक का प्रयोग करने वाले एक छोटे से धनी वर्ग तक सीमित है, बल्कि उन लाखों कृषकों में फैल गई हैं जिन्होंनें इसे अभी तक

अपनाया नहीं है और जिनके लिए उच्च जीवन स्तर अभी तक सपना मात्र है। कृषकों का यह दृष्टिकोण निश्चय ही कृषि विकास में सहायक है। हरित क्रान्ति के कारण अब कृषक अच्छे अनाजों और व्यापारिक फसलों के उत्पादन के प्रति अग्रसर हुए हैं, छोटे कृषकों का झुकाव सब्जियों की फसलों के प्रति बढ़ा है।

इन उपलब्धियों के कुछ नकारात्मक आयाम भी हैं नियोजन काल में क्षेत्रीय और अन्तवर्गीय भिन्नताएं बढ़ी हैं। कृषि अर्थ व्यवस्था के कतिपय क्षेत्रों को ही भारी विनियोग और विकास प्रयासों का लाभ मिला है। खेतिहर समाज में लघु और अतिलघु तथा भूमिहीन श्रमिकों को कृषि क्षेत्र के लिए जाने वाले विनियोग और प्रौद्योगिकी का लाभ अत्यन्त कम लाभ मिला है जमीन वालों को और विशेषकर अधिक जमीन वालों को। यह भी शंका की जाने लगी है कि हम अधिक उत्पादन प्राप्त करने की धुन में भूमि की समस्त उर्वराशक्ति का विदोहन कर ले रहे हैं, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी के गुणधर्म में ह्रास हो रहा है। मिट्टी की ऊपरी परत कड़ी और उसकी जलधारण क्षमता घट रही है जिससे कई बार सिंचाई होने से भूमि पर क्षारीयता बढ़ रही है। भूमि और जल दोनों ही प्रदूषित हो रहे हैं ग्रामीण पर्यावरण भी दूषित हो रहा है जिससे मनुष्यों और पशुओं पर रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक दवाओं के हानिकारक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे हैं। सम्यक भूमि और जल प्रबन्ध की कमी के कारण भूमि की ऊपर सतह क्षतिग्रस्त हो रही है।

सारिणी 6.8

विभिन्न फसलों का उत्पादन (प्रति हेक्टेयर क्विंटल में)

फसलें	उत्पादन	जनपद का उत्पादन	जनपदीय स्तर से अधिक/कम
1. धान	21.06	20.67	+0.39
2. गेहूँ	20.99	20.94	+0.05
3. जौ	12.54	12.74	+0.20
4. ज्वार	10.49	10.38	+0.11
5. बाजरा	11.02	10.96	+0.06
6. मक्का	15.59	15.88	-0.29
7. अरहर	10.81	10.66	+0.15
8. चना	12.43	12.14	+0.29
9. मटर	13.17	13.08	+0.09
10. उर्द/मूंग	6.92	6.70	+0.22
11. तिलहन	8.64	8.56	+0.08
12. आलू	195.85	188.82	+7.03
13. गन्ना	517.12	496.74	+20.38

सारिणी क्रमांक 6.8 विभिन्न फसलों के औसत उत्पादन को दर्शा रही है। जनपदीय उत्पादन स्तर से तुलना करने पर केवल मक्का को छोड़कर अन्य सभी फसलों की उत्पादकता अधिक है जिसमें खाद्यान्न फसलों में धान 39 किलोग्राम, जौ 20 कि0ग्रा0 ज्वार 11 किग्रा0, बाजरा 6 किग्रा0 तथा गेहूँ 5 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से अधिक उत्पादन हो रहा है जबकि दलहनी फसलों में चना, 29 किग्रा0, उर्द/मूंग 22 किग्रा0, अरहर 15 किग्रा0 तथा मटर के 9 किग्रा0 की दर से अधिक उत्पादित हो रही है। तिलहनी फसल लाही का उत्पादन केवल 8 किग्रा0 अधिक है, आलू तथा गन्ना का औसत उत्पादन क्रमशः 7.03 क्वि0 20.38 क्वि0 अधिक है।

सारिणी 6.9

विभिन्न वर्गानुसार औसत उत्पादन (प्रति हेक्टेयर किलोग्राम में)

फसलें		जनपदों का उत्पादन	सीमान्त		लघु		लघु मध्यम		मध्यम		बड़े	
			उत्पादन	जनपद से कम/अधिक	उत्पादन	कम/अधिक	उत्पादन	कम/अधिक	उत्पादन	कम/अधिक	उत्पादन	कम/अधिक
1.	धान	2067	2098	+31	2122	+55	2126	+59	2074	+07	2070	+03
2.	गेहूँ	2094	2092	-02	2086	-08	2142	+48	2096	+02	2066	-28
3.	जौ	1274	1272	-02	1252	-22	1227	-47	1280	+06	1252	-22
4.	ज्वार	1038	1054	+16	1055	+17	1046	+08	1022	-16	1048	+10
5.	बाजरा	1096	1116	+20	1092	-04	1102	+06	1108	+12	1130	+34
6.	मक्का	1588	1566	-22	1528	-60	1552	-36	1604	+16	1582	-06
7.	अरहर	1066	1086	+20	1084	+22	1064	-02	1082	+16	1086	+20
8.	चना	1214	1236	+22	1230	+26	1256	+42	1240	+26	1256	+42
9.	मटर	1308	1344	+36	1326	+18	1328	+20	1299	-09	1286	-22
10.	उर्द/मूंग	670	698	+38	666	-04	680	+10	702	+32	758	+88
11.	तिलहन	856	872	+16	844	-12	864	+08	874	+18	886	+30
12.	आलू	18882	18572	+310	19585	+703	19836	+954	20033	+1151	20012	+1130
13.	गन्ना	49674	54438	-434	52246	+2572	49962	+288	52056	+2382	51148	+1474

सारिणी क्रमांक 6.9 विभिन्न वर्गो कृषकों की औसत उत्पादकता का प्रदर्शन कर रही है जिसमें ज्ञात होता है कि सीमान्त कृषकों की औसत उत्पादकता जनपदीय स्तर से गेहूँ में 2 किग्रा0, जौ में 2 किग्रा0, मक्का 22 किग्रा0 तथा आलू में 310 किग्रा0 कम है जबकि मटर में 36 किग्रा0 उर्द/मूंग. में 28 किग्रा0, अरहर में 20 किग्रा0 चना, 22 किग्रा0 तथा तिलहन में 16 किग्रा0 अधिक है, गन्ना केवल स्व उपभोग हेतु उत्पन्न किया जाता है, ये 434 किग्रा0 अधिक उत्पादन प्राप्त किया गया चूंकि इस वर्ग के पास भूमि अत्यन्त सीमित मात्रा में होने का लाभ भी प्राप्त होता है प्रथम तो पारिवारिक श्रम के कारण प्रति श्रमिक उत्पादकता अधिक हो जाती है साथ ही निरीक्षण व्यय भी कम हो जाता है, छोटे छोटे खेतों के कारण खेत की तैयारी भी भली प्रकार हो जाती है। लघु कृषक धान की औसत उत्पादकता में 56 किग्रा0, ज्वार में 17 किग्रा0, अरहर में 23 किग्रा0, चना में 26 किग्रा0, मटर में 18 किग्रा., आलू में 703 कि0ग्रा0 जबकि गन्ना में 2572 किग्रा0 अधिक उत्पादन करके जनपदीय स्तर से अग्रणी हैं जबकि मक्का में 60 किग्रा0 तथा तिलहन में 12 किग्रा0 से पिछड़ रहे हैं, मक्का चूंकि विभिन्न वर्गो द्वारा अत्यन्त सीमित क्षेत्र में केवल घरेलू उपयोग हेतु उत्पन्न की जाती है इसलिए मक्का का उत्पादन विभिन्न वर्गो में अधिक उतार चढ़ाव दर्शाता है। लघु मध्यम कृषकों के औसत उत्पादन पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि धान तथा गेहूँ के औसत उत्पादन में यह वर्ग क्रमशः 59 किग्रा0 तथा 48 किग्रा0 अधिक उत्पादन करके सभी वर्गो में अग्रणी प्रदर्शन कर रहा है, चने के भी औसत उत्पादन में 42 किमी0 अतिरेक उत्पादित करके ध्यानाकर्षित करा रहा है। मक्का तथा जौ के औसत उत्पादन मे यह वर्ग भी क्रमशः 36 तथा 47 कि0ग्रा0 से पिछड़ रहा है, आलू तथा गन्ना के उत्पादन में यह वर्ग अग्रणी प्रदर्शन कर रहा है। मध्यम कृषकों की औसत उत्पादकता पर दृष्टिपात करने पर

ज्ञात होता है कि यह वर्ग उर्द/मूंग में 32 किग्रा0, चना में 26 किग्रा0, मक्का व अरहर में 16-16 किग्रा0 तिलहन में 18 किग्रा0 जबकि आलू और गन्ना में क्रमशः 1151 किग्रा0 तथा 2382 किग्रा0 का अन्तर रखकर जनपदीय औसत उत्पादन से अधिकता बनाए हुए है, जबकि ज्वार में 16 किग्रा0 तथा मटर में केवल 09 किग्रा0 से पिछड़ रह है, अन्य फसलों में भी औसत उत्पादन की दृष्टि से इस वर्ग का प्रदर्शन अतिरेक वाला दिखाई पड़ रहा है। बड़े कृषकों का प्रदर्शन उनकी साधन सम्पन्नता से देखते हुए अच्छा नहीं कहा जा सकता है। यह वर्ग जहां उर्द/मूंग के उत्पादन में 88 किग्रा, चना 42 किग्रा0, बाजरा 34 किग्रा0 तिलहन 30 किग्रा0 तथा अरहर में 20 किग्रा0 अतिरेक उत्पादित कर रहा है वहीं गेहूँ 28 किग्रा0 जौ 22 किग्रा0 तथा मटर के उत्पादन में 22 किग्रा0 की हानि प्रदर्शित कर रही है। आलू तथा गन्ना के उत्पादन में क्रमशः 1130 किग्रा0 तथा 1474 किग्रा0 का अतिरेक उत्पादित करके इन फसलों के प्रति विशेष रूचि प्रदर्शित कर रहा है। यह वर्ग के आकार के आधार पर सम्पन्न वर्गो में है, परन्तु उत्पत्ति के साधनों जिसमें श्रम सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन, है का अधिकांश भाग किराए पर रखने के कारण प्रति इकाई लागत अधिक हो जाती है, इस दृष्टि से केवल गेहूँ की फसल को छोड़कर अन्य फसलों के उत्पादन में इस वर्ग का प्रदर्शन औसत दर्जे का रहा है।

3. प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता

किसी क्षेत्र में खाद्यान्नों की मांग को प्रभावित करने वाले तत्व उस क्षेत्र की जनंसख्या तथा क्षेत्रवासियों द्वारा प्रतिव्यक्ति उपयोग की मात्रा होते हैं। क्षेत्र में खाद्यान्नों की पूर्ति खाद्यान्नों का उत्पादन एवं उनके समुचित वितरण की मात्रा पर निर्भर करती है। अधिकांश जोत का आकार छोटा होने के कारण कृषक अपनी उपज का एक भाग स्व उपभोग के लिए अपने पास रखने

के लिए बाध्य हो जाता है, एक अनुमान के अनुसार खाद्यान्न के कुल उत्पादन का 60 से 70 प्रतिशत भाग कृषक द्वारा स्व उपभोग बीज पशुओं के चारे के लिए अपने पास रख लिया है परिणाम स्वरूप बिक्री योग्य कृषि उत्पादन के अतिरिक्त की मात्रा कम रह जाती है। सर्वेक्षण किए गये कृषकों में खाद्यान्नों के उत्पादन तथा प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता को सारिणी क्रमांक 6.10 में दर्शाया गया है।

सारिणी 6.10

सीमान्त कृषकों में खाद्यान्न उत्पादन तथा प्रतिव्यक्ति उपयोग की मात्रा

फसल	कुल उत्पादन (क्वि0)	क्षय प्रतिशत	शुद्ध उत्पादन (क्वि0)	खाने योग्य भाग प्रतिशत	उपभोग योग्य मात्रा (क्वि0)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन् मात्रा (ग्राम में)
1. धान	512014	10	469.03	60	281.42	99.03
2. गेहूँ	602.91	10	542.62	95	515.49	181.41
3. जौं	3.05	10	2.75	90	2.48	0.87
4. ज्वार	28.77	10	25.89	90	23.30	8.20
5. बाजरा	24.89	10	22.40	90	20.16	7.09
6. मक्का	1.25	10	1.15	90	1.04.	0.37
7. अरहर	36.81	10	33.13	65	21.53	7.58
8. चना	21.01	10	18.91	65	12.29	4.32
9. मटर	2.15	10	1.94	70	1.36	0.48
10. उर्द/मूंग	23.24	10	20.92	70	14.64	5.15
11. तिलहन	2.96	2	2.45	35	0.86	0.30
12. आलू	217.75	10	195.98	13	25.48	8.97
13. गन्ना	254.44	25	190.83	-	190.83	67.15

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी क्रमांक 6.10 सीमान्त कृषकों में खाद्य उपलब्धता की स्थिति का चित्रण कर रही है। जिससे ज्ञात होता है कि सीमान्त कृषकों में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता 323.51 ग्राम है जिसमें दालों का योगदान 17.53 ग्राम है। दोनों ही दृष्टियों से सीमान्त कृषक खाद्य सामग्री का अभाव अनुभव कर रहे है। जहां तक अन्न का सवाल है गेहूँ की उपलब्धता मात्र 181.41 ग्राम प्रतिदिन है जबकि चावल की उपलब्धता केवल 99.03 ग्राम है, ज्वार बाजरा क्रमशः 8.20 ग्राम तथा 7.09 ग्राम है जौ और मक्का तो केवल उपस्थिति ही दर्शा पा रही है न्यूनाधिक यही स्थिति दलहनों की है। सामान्य उपभोग में केवल उर्द/मूंग, अरहर तथा चना की दाल ही प्रयोग की जाती है जिसमें अरहर प्राथमिकता क्रम में सर्वोपरि रहती है, परन्तु प्रति व्यक्ति केवल 7.58 ग्राम इस तथ्य की ओर संकते करता है कि यह वर्ग दलहन के उपयोग के लिए आत्म निर्भर नहीं है, दलहन की आवश्यकता की पूर्ति यह वर्ग आयात करने पूर्ण करता है। चिकनाई के लिए इस वर्ग की लाही प्रमुख फसल है परन्तु तेल का प्रतिव्यक्ति औसत एक ग्राम भी न होकर मात्र 0.30 ग्राम ही जिसका अर्थ है कि चिकनाई की भी आपूर्ति अत्यन्न से क्रम करके की जा रही है। खाड़सारी तथा आलू के उपयोग के लिए यह वर्ग आत्म निर्भर प्रतीत होता है।

सारिणी 6.11

लघु कृषकों की खाद्यान्न उपलब्धता

फसल	कुल उत्पादन (क्वि0)	क्षय प्रतिशत	शुद्ध उत्पादन (क्वि0)	खाने योग्य भाग प्रतिशत	उपभोग योग्य मात्रा (क्वि0)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मात्रा (ग्राम में)
1. धान	1019.62	10	919.66	60	550.60	210.54
2. गेहूँ	1109.96	10	998.96	95	949.01	362.88
3. जौ	9.39	10	8.45	90	7.61	2.91
4. ज्वार	41.25	10	37.13	90	32.42	12.78
5. बाजरा	66.18	10	59.56	90	58.60	20.50
6. मक्का	7.18	10	6.46	90	5.81	2.22
7. अरहर	55.18	10	49.66	65	32.28	12.34
8. चना	35.43	10	31.88	65	20.72	7.92
9. मटर	5.44	10	4.90	70	3.48	1.31
10. उर्द/मूंग	29.44	10	26.50	70	18.55	7.09
11. तिलहन	18.31	2	17.94	35	6.28	2.40
12. आलू	454.54	10	409.09	13	53.18	20.33
13. गन्ना	430.87	25	323.15	-	323.15	123.57

सारिणी क्रमांक 6.11 लघु कृषकों में व्यक्ति प्रतिदिन खाद्य उपलब्धता का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिससे ज्ञात होता है कि लघु कृषकों को चावल की उपलब्धता 210.54 ग्राम तथा गेहूँ की उपलब्धता 362.88 ग्राम है। मोटे अनाजों की उपलब्धता मात्र 35.50 ग्राम प्रतिव्यक्ति है जिसमें बाजरा की भागेदारी 50 प्रतिशत से अधिक है। दलहन की प्रतिदिन केवल 28.66 ग्राम की मात्रा यह दर्शा रही है कि इस क्षेत्र में दलहन का उत्पादन अत्यन्त न्यून है, दैनिक उपभोग के लिए भी महत्वपूर्ण दालों की पूर्ति नहीं कर पा रहा है, अन्य फसलों में केवल आलू ही औसत उपयोग के लिए प्राप्त होता है जबकि खण्डसारी का प्रतिव्यक्ति केवल 20.33 ग्राम मात्रा ही उपलब्ध है। इसी प्रकार चिकनाई की मात्रा भी 2.40 ग्राम अत्यन्त न्यून है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्ग अपनी खाद्यान्न आवश्यकता को अपने उत्पादन से पूर्ण नहीं कर पा रहा है, अपनी खाद्यान्न आवश्यकता की आपूर्ति कृषि के अतिरिक्त आय द्वारा अन्यत्र से पूर्ण कर रहा है।

सारिणी 6.12

लघु मध्यम कृषकों में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता

फसल	कुल उत्पादन (क्वि0)	क्षय प्रतिशत	शुद्ध उत्पादन (क्वि0)	खाने योग्य भाग प्रतिशत	उपभोग योग्य मात्रा (क्वि0)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मात्रा (ग्राम में)
1. धान	845.72	10	761.16	60	456.70	332.55
2. गेहूँ	866.01	10	779.41	95	740.44	539.15
3. जौ	5.15	10	4.64	90	4.18	3.04
4. ज्वार	25.00	10	22.50	90	20.25	14.75
5. बाजरा	28.65	10	25.79	90	23.21	16.90
6. मक्का	6.67	10	6.00	90	5.40	3.93
7. अरहर	26.71	10	24.04	65	15.63	11.38
8. चना	39.44	10	35.50	65	23.08	16.81
9. मटर	5.44	10	4.90	70	3.43	2.50
10. उर्द/मूंग	24.68	10	22.21	70	15.55	11.32
11. तिलहन	19.27	2	18.88	35	6.61	4.84
12. आलू	429.67	10	386.70	13	50.27	36.60
13. गन्ना	382.83	25	287.12	-	287.12	209.07

सारिणी क्रमांक 6.12 लघु मध्यम कृषकों में प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता का विवरण प्रस्तुत कर रही है जिसमें चावल 332.55 ग्राम तथा गेहूँ 539.15 ग्राम की दर से उत्पादित कर रहे हैं। मोटे अनाजों में बाजरा 16.90 ग्राम उत्पन्न हो रहा है जबकि ज्वार 14.75 ग्राम तथा मक्का और जौ कमोवेश एक समान का स्तर व्यक्त कर रहे हैं। अनाज के उत्पादन में यह वर्ग आत्मनिर्भर प्रतीत हो रहा है, परन्तु दलहनी फसलों का उत्पादन प्रतिव्यक्ति के आधार पर कम है। दाले औसत रूप में 42.01 ग्राम उत्पन्न हो रहा है, इसमें अरहर तथा उर्द/मूंग लगभग एक जबकि चना 16.81 ग्राम उत्पन्न हो रहा है, मटर केवल 2. 50 ग्राम की दर से केवल उपस्थित पर है। चिकनाई के लिए यह वर्ग भी आत्मनिर्भर नहीं है क्योंकि यह वर्ग भी मात्र 4.81 ग्राम प्रतिव्यक्ति उत्पन्न कर रहा है जो औसत से अत्यन्त निम्न स्तर का है। खांडसारी तथा आलू के सन्दर्भ में यह वर्ग आत्मनिर्भर प्रतीत हो रहा है, आलू की मात्रा तो औसत से अधिक उत्पन्न करके नकदीकरण भी कर रहा है।

सारिणी क्रमांक 6.13

मध्यम कृषकों का प्रतिव्यक्ति उत्पादन

फसल	कुल उत्पादन (क्वि0)	क्षय प्रतिशत	शुद्ध उत्पादन (क्वि0)	खाने योग्य भाग प्रतिशत	उपभोग योग्य मात्रा (क्वि0)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मात्रा (ग्राम में)
1. धान	451.92	10	406.73	60	2440.4	561.47
2. गेहूँ	498.22	10	448.40	95	425.98	980.06
3. जौ	5.12	10	4.61	90	4.15	9.55
4. ज्वार	11.75	10	10.58	90	9.52	21.90
5. बाजरा	20.05	10	18.05	90	16.25	37.39
6. मक्का	4.65	10	4.19	90	3.77	8.76
7. अरहर	25.43	10	22.89	65	14.88	34.23
8. चना	22.20	10	19.98	65	12.99	29.89
9. मटर	2.73	10	2.46	70	1.72	3.96
10. उर्द/मूंग	16.57	10	14.91	70	10.44	24.02
11. तिलहन	20.01	2	19.61	35	6.86	15.78
12. आलू	197.81	10	178.03	13	23.14	53.24
13. गन्ना	218.36	25	163.77	-	163.77	376.79

सारिणी क्रमांक 6.13 मध्यम कृषकों के उत्पादन आकार का विवरण प्रदर्शित कर रही है जिसमें यह वर्ग चावल तथा गेहूँ का अतिरेक उत्पादन करके क्रमशः 561.47 ग्राम तथा 980.06 ग्राम की उपलब्धता दर्शाता है। मोटे अनाजों में यह वर्ग भी बाजरा 37.39 ग्राम, ज्वार 21.90 ग्राम जौ 9.55 ग्राम तथा मक्का 8.76 उत्पन्न कर रहा है। मोटे अनाजों का उत्पादन मौसमी उपभोग के लिए पर्याप्त

नहीं है। दलहनी फसलों में 92.10 ग्राम दालों का उत्पादन करके यह वर्ग आत्मनिर्भर प्रतीत हो रहा है, परन्तु सामान्य उपभोग में केवल अरहर की फसल ही आती है जिसका प्रति व्यक्ति उत्पादन मात्र 34.23 ग्राम है जो औसत से कम है। उर्द/मूंग का उपयोग यदाकदा ही किया जाता है। तिलहन उत्पादन में भी यह वर्ग आत्मनिर्भर है क्योंकि इस फसल से इस वर्ग को 15.78 ग्राम चिकनाई प्राप्त हो जाती है जो औसत से अधिक है। आलू 376.79 ग्राम प्रति व्यक्ति उत्पन्न करके इस फसल में अतिरेक उत्पादन प्राप्त कर रहा है। जबकि खांडसारी में भी 53.24 ग्राम उत्पादन औसत से अधिक हैं।

सारिणी 6.14

बड़े कृषकों का प्रति व्यक्ति उत्पादन

फसल	कुल उत्पादन (क्वि0)	क्षय प्रतिशत	शुद्ध उत्पादन (क्वि0)	खाने योग्य भाग प्रतिशत	उपभोग योग्य मात्रा (क्वि0)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मात्रा (ग्राम में)
1. धान	376.95	10	339.26	60	203.56	1921.78
2. गेहूँ	357.83	10	322.05	95	305.95	2888.43
3. जौ	3.38	10	3.04	90	2.74	25.87
4. ज्वार	5.66	10	5.09	90	4.58	43.05
5. बाजरा	8.48	10	7.63	90	6.87	64.86
6. मक्का	2.85	10	2.57	90	2.31	21.81
7. अरहर	14.2	10	12.81	65	8.33	78.64
8. चना	9.67	10	8.70	65	5.66	53.43
9. मटर	3.60	10	3.24	70	2.27	21.43
10. उर्द/मूंग	12.66	10	11.39	70	4.97	75.24
11. तिलहन	6.56	2	6.43	35	2.25	21.24
12. आलू	163.67	10	147.30	13	19.15	180.789
13. गन्ना	194.12	25	145.59	-	145.59	1374.50

सारिणी क्रमांक 6.14 बड़े कृषकों द्वारा प्रति व्यक्ति उत्पादन का विवरण प्रस्तुत कर रही है जिससे ज्ञात होता है कि यह वर्ग न केवल खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर है बल्कि दलहन तथ तिलहन, खांडसारी तथा आलू के उत्पादन में अतिरेक उत्पादन कर रहा है। यह वर्ग जहां अनाज के उत्पादन में चावल 1921.78 ग्राम, गेहूँ 2888.43 ग्राम उत्पादन करके उपज अतिरेक का प्रदर्शन कर रहा है मोटे अनाजों में बाजरा 64.86 ग्राम, ज्वार 43.05 ग्राम मक्का 21.81 ग्राम तथा जौ 25.87 ग्राम उत्पन्न करके अनाजों में बाजरा 64.86 ग्राम, ज्वार 43.05 ग्राम मक्का 21.81 ग्राम तथा जौ 25.87 ग्राम उत्पन्न करके पर्याप्तता का संकेत कर रहा है, वहीं दलहनी फसलों में अरहर 78.64 ग्राम, चना 53.43 ग्राम, उर्द/मूंग 75.24 ग्राम तथा मटर 21.43 ग्राम उत्पादन करके आत्मनिर्भरता की स्थिति दर्शा रहा है। सभी फसलों में उपज अतिरेक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक इस वर्ग के पास कृषि क्षेत्र की अधिकता है तथा परिवार की सदस्य संख्या के अनुपात के प्रतिव्यक्ति भूमि की उपलब्धता अधिक है जिनसे इस वर्ग का कृषक न केवल स्व उपभोग के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पादित कर रहा है बल्कि उपज अतिरेक का विपणन करके अन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति के नकदीकरण भी प्राप्त कर रहा है।

विभिन्न वर्गों की तुलनात्मक उपलब्धता (ग्रामों में)

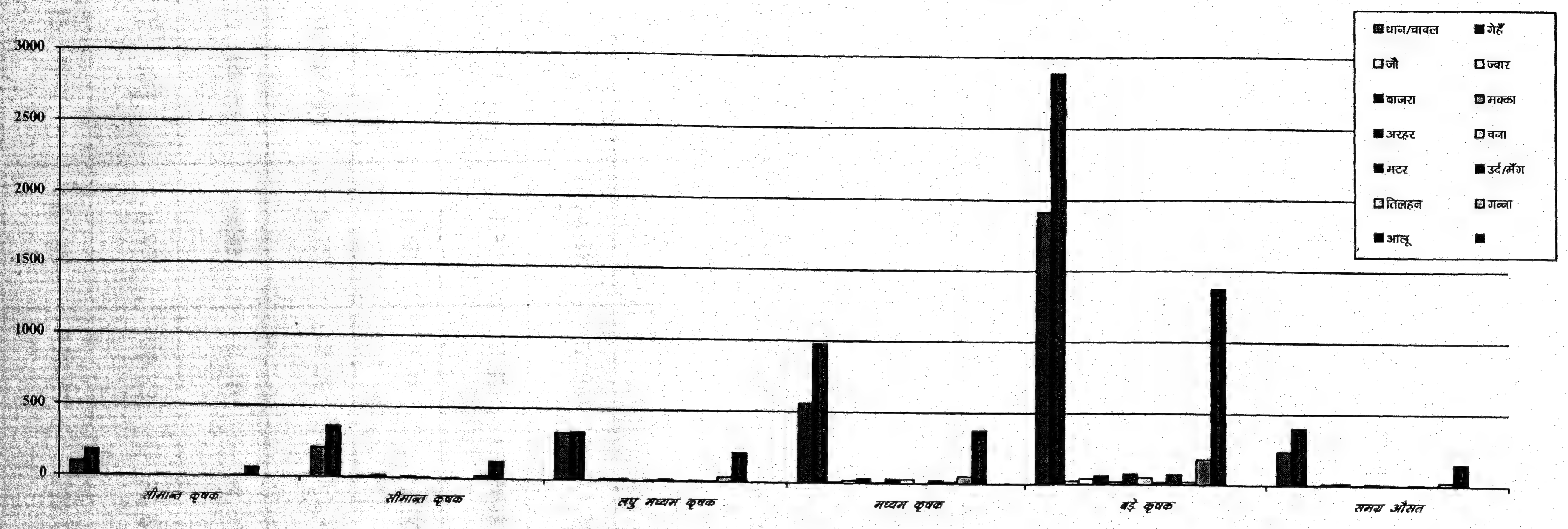

सारिणी 6.15

विभिन्न वर्गों की तुलनात्मक उपलब्धता (ग्रामों में)

फसल	सीमान्त कृषक	लघु कृषक	लघु मध्यम कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक	समग्र औसत
1. धान	99.03	210.54	352.55	561.47	1921.78	235.57
2. गेहूँ	181.41	3621.88	539.15	980.06	2888.43	398.45
3. जौ	0.87	2.91	3.04	9.55	25.87	2.87
4. ज्वार	8.21	12.78	14.75	21.90	43.05	12.36
5. बाजरा	74.09	20.50	16.90	37.39	64.86	16.29
6. मक्का	0.37	2.22	3.93	8.76	21.81	2.48
7. अरहर	74.58	12.34	11.38	34.23	78.64	12.57
8. चना	4.32	7.92	16.81	29.89	53.43	10.14
9. मटर	0.48	1.31	2.50	3.96	21.43	1.65
10. उर्द/मूंग	5.15	7.09	11.32	24.02	75.24	9.11
11. तिलहन	030	2.40	4.81	15.78	21.24	3.12
12. आलू	8.97	20.33	36.60	53.24	180.79	23.23
13. गन्ना	67.15	123.57	209.07	376.79	1374.50	150.66

सारिणी क्रमांक 6.15 विभिन्न कृषक वर्गो में तुलनात्मक खाद्यान्न उपलब्धता का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिससे यह तथ्य स्पष्ट हो रहा है कि जैसे-जैसे जोत का आकार बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे ही प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता में भी वृद्धि हो रही है और यह वृद्धि कमोवेश सभी फसलों में दृष्टिगोचर हो रही है, परनतु औसत रूप पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि जहां प्रतिव्यक्ति चावल की उपलब्धता 235.57 ग्राम है वही पर गेहूँ की उपलब्धि 398.45 ग्राम है ये दोनों खाद्यान्न विभिन्न वर्गो की औसत आवश्यकता को पूरा करते है। मोटे अनाजों की शुद्ध उपलब्धता अत्यन्त न्यून है जिसका अर्थ है कि सभी वर्गो में मोटे अनाजों के उत्पादन के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ रही है। यह तथ्य पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि सभी वर्गो में क्षेत्रफल की दृष्टि से भी धान और गेहूँ फसलों की प्रधानता है, मोटे अनाज तो नाम मात्र के क्षेत्रफल पर ही उत्पन्न किया जा रहा है। दालों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि दलहन की फसलों का क्षेत्रफल न केवल कम है बल्कि प्रति व्यक्ति उपलब्धता भी अत्यन्त कम है क्योंकि औसत मात्रा की दृष्टि से अरहर मात्र 12.57 ग्राम ही प्राप्त हो पा रही है जो औसत आवश्यकता से अत्यन्त न्यून कही जा सकती है क्योंकि दालों के उपयोग में अरहर ही प्रमुख स्थान रखती है अन्य दलहन तो यदाकदा ही उपभोग किए जाते है। चना तथा उर्द/मूंग क्रमशः 10.14 ग्राम और 9.11 ग्राम के स्तर पर स्थिर है जबकि मटर केवल नाम मात्र को ही उपस्थित है। तिलहन की मात्रा अत्यन्त कम अर्थात 31.12 ग्राम इस तथ्य का संकेत करती है कि क्षेत्र में चिकनाई की उपलब्धता की औसत से अत्यनत कम है, केवल गुड/खांडसारी तथा आलू की औसत मात्रा अवश्य सन्तोषजनक कही जा सकती है, परन्तु ये देनों खाद्य भी उपज अतिरेक की स्थिति में नही है, गुड़ तो औसत आवश्यकता से कुछ कम ही है। इस प्रकार खाद्य पदार्थो के सन्दर्भ में सर्वेक्षित कृषकों में केवल चावल तथा गेहूँ के विषय में आत्मनिर्भरता देखने् को प्राप्त हो रही है अन्य खाद्य पदार्थ के सम्बन्ध में स्वल्पता की स्थिति बनी हुई है।

1. वसु के0डी0 (1946) स्टडीज ऑफ प्रोटीन, फैट एण्ड मिनरल मेटावोलिज्म इन इण्डिया, नई दिल्ली

2. बसंल पी0सी0 (1958) "इण्डियन फूड रिसर्चेज एण्ड पापुलेशन" बोरा एण्ड कम्पनी बम्बई

3. बर्गीज एनी एण्ड डीन (1962) 'माल न्यूट्रीशन एण्ड फूड हैविट्स' तनी स्टाक पब्लिकेशन लन्दन

4. भाटिया बी0एम0 (1970) 'इण्डियन फूड प्रोब्लेम्क एण्ड पालिसी' प्रिंस इण्डिपेन्डेंस, बाम्बे

अध्याय सप्तम

भोजन के पोषक तत्व एवं पोषक स्तर

भोजन मनुष्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधारभूत आवश्यकता है जिसके बिना कोई भी प्राणी जीवन की कल्पना नहीं कर सकता है। जीवन के प्रारम्भ से जीवन के अन्त तक शान्त करने तथा शारीरिक विकास के लिए मनुष्य को भोजन की आवश्यकता होती है। डा0 रन्धावा के अनुसार "भोजन की आदत तथा पर्यावरण जिसमें मनुष्य जीवन यापन करता है, ये घनिष्ट सम्बन्ध होता है जिसके लिए मनुष्य सर्वप्रथम स्वयं पर्यावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है तत्पश्चात उस पर्यावरण के अनुसार वह अपनी आदतें तथा स्वभाव को समायोजित करता है। इन आदतों में मनुष्य सर्वप्रथम भोजन की आदतों का समायोजन तथा बाद में अन्य आवश्यकताओं में सन्तुलन स्थापित करता है।" अली मोहम्मद 2 का मत है कि "भोजन तथा खानपान की आदतों के निर्धारण में आय का आकार सार्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। खानपान की आदतों में लगभग समानता रहते हुए भी आय का आकार तथा भोज्य पदार्थो की भोजन की आदतों में न्यूननाधिक अन्तर उत्पन्न करते हैं। "चौहान आर0वी0 सिंह2 वे समय अन्तराल के साथ साथ स्थाई आदतों, स्थाई पसंद तथा स्थाई रूचियों में परिवर्तित हो जाती हैं। परिस्थितिकीय अन्तर आय का आकार परिवार का आकार खाद्य पदार्थो की उपलब्धता तथा लोगों के जीने का ढंग आदि लोगों की भोजन की आदतों में अन्तर के लिए उत्तरदायी होते है।" इस दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ़ में भोजन की आदतों में बहुत अधिक भिन्नता देखने को मिलती है। यद्यपि जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग एक ही प्रशासन तंत्र के अन्तर्गत नियंत्रित है परन्तु फिर भी विभिन्न क्षेत्रों में परिस्थितिकीय अन्तर, लोगों की भोजन सम्बन्धी आदतों में अन्तर उत्पन्न करती है।

1. भोजन की रासायनिक रचना

शारीरिक क्रियाएं करने के लिए भोजन ठीक उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार मोटर कार की गति के लिए पेट्रोल/सतत क्रियाशील रहने के कारण मोटर के विभिन्न पुर्जो की भांति हमारे शरीर के अवयव भी घिसते, छीजते व नष्ट होते रहते हैं, इस क्षति की पूर्ति अनिवार्य है, यह क्षतिपूर्ति भोजन द्वारा ही सम्भव होती है। संक्षेप में भोजन निम्नलिखित कार्य करता है :

भोजन का वर्गीकरण :

भोजन से प्राप्त पोषक तत्वों को कार्य के आधारपर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(अ) शारीरिक विकास, वृद्धि एवं जैविक कार्यो के लिए ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थ।

(ब) शरीर निर्माण करने वाले पोषक पदार्थ

(स) स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले पदार्थ

(अ) शरीर को ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थ :

(1) **कार्बोहाइड्रेट्स-** शक्तिबर्द्धक पदार्थो में कार्बोहाइड्रेट्स का प्रमुख स्थान है। कार्बोहाइड्रेट्स कार्बन, आक्सीजन एवं हाइड्रोजन के यौगिक होते हैं। इनकी रासायनिक रचना में हाइड्रोजन के परमाणु की संख्या आक्सीजन के परमाणुओं की अपेक्षा प्रायः दुगनी होती है। ये दो प्रकार के होते है-

(क) स्टार्च देने वाले- यह पोलीसेकेराइड्स होते है जो गेहूँ, चावल, चना, जौ तथा विभिन्न दालों में पाये जाते है।

(ख) शर्करा देने वाले- यह मोनो तथा डाईसेकेराइड्स हैं जो चीनी, गुड, मीठे फल, आदि से उपलब्ध होते हैं। गन्ने में सुक्रोज, अंगूर में

ग्लूकोज अन्य फलों में फ्रक्टोज, दूध में लेक्टोज तथा फलों और सब्जियों में सेलुकोज पाये जाते हैं।

(2) वसा-

वसा भी ऊर्जा का प्रमुख साधन है। वसा की प्राप्ति की दो प्रकार से होती है।

(क) वनस्पति वसा- तिल का तेल, सरसों का तेल, नारियल का तेल, मूंगफली का तेल आदि वनस्पति वसा हैं।

(ख) पशुओं से वसा- मछली का तेल, पशुओं की चर्बी, अण्डे की जर्दी, दूध, घी, मक्खन इसके अन्तर्गत आते हैं।

(ब) शरीर का निर्माण एवं पोषक करने वलो पदार्थ-

भोज्य पदार्थो से प्राप्त तत्वों को रचना अनेक प्रकार के रसायनिक यौगिकों से हुई है जिन्हें भोजन में पोषक तत्व कहते है, जिन्हें अंग्राकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. शरीर निर्माण करने वाले पदार्थ- प्रोटीन
2. शक्तिबर्द्धक पदार्थ- कार्बोहाइड्रेट्स, जल, वसा
3. स्वास्थ्यबर्द्धक- खनिज, लवण, विटामिन

(क) प्रोटीन्स- प्रोटीन का रसायनिक संगठन अत्यन्त जटिल है। यह कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन, गंधक, नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि अठारह तत्व है जिन्हें अर्मानोएसिड करते है का सम्मिश्रण है। कुछ को छोड़कर अधिकांश प्रोटीन घुलनशील है, प्रोटीन प्राप्ति के साधन दो प्रकार हो सकते है-

(1) जन्तु प्रोटीन- दूध, अण्डा, मांस, मछली, पनीर आदि में पाई जाने वाली प्रोटीन ए वर्ग की है।

(2) **वनस्पति प्रोटीन-** गेहूँ, जौ, चना, चावल, मटर, सेम, हरी पत्ती वाली सब्जियों से प्राप्त प्रोटीन देर से पचने के कारण 'बी' वर्ग में आती है।

(ख) खनिज लवण-

शारीरिक अंको का सुचारू रूप से संचालन तथा स्वास्थ्य के लिए खनिज लवणों का विशेष महत्व है, ये फास्फोरस, लोहा, कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम, आयोडीन, क्लोरीन व मैग्नीशियम आदि हैं। इन तत्वों में कैल्शियम फास्फोरस तथा लोहा सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

(1) फास्फोरस-

यह अस्थियों तथा दालों के निर्माण हेतु सहायक हैं। स्नायुसंस्थान को स्वस्थ रखने में इसका विशेष महत्व है, यह रक्त को भी शुद्ध करता है, शरीर में जितने भी खनिज पदार्थ होते है उसका 1/4 भाग फास्फोरस होता है। इसकी प्राप्ति मांस, कलेजी, अण्डे, मछली, दूध, दही, पनीर और सेब से होती है, इसके अतिरिक्त बादाम, मेवा, पालक, आलू, गोभी, मूली, गाजर से भी फास्फोरस मिलता है।

(2) लोहा-

लोहा रक्त की यलाल कणिकाओं के लिए आवश्यक है इससे लाल रक्त कणों (हीमोग्लोबिन) का निर्माण होता है, समस्त शरीर में 1/10 औंस लोहा होता है। लौहा यकृत, मांस, अण्डे की जर्दी में अधिकता से पाया जाता है इसके अतिरिक्त दाल, अंजीर, अंगूर, पालक, मेथी, सलाद, पोदीना, टमाटर में भी पाया जाता है।

(3) **कैल्शियम-**

यह अस्थियों तथा दालों के निर्माण में भाग लेता है और उनको स्वस्थ रखता है। कैल्शियम हृदय पेशियों में भी होता है और मांस पेशियों में भी। कैल्शियम तन्त्रिका तंत्र और शरीर की सभी कोशिकाओं के लिए परमावश्यक होता है। इसकी आवश्यकता वयस्कों की अपेक्षा बालकों को अधिक होती है।

(ग) विटामिन्स-

विटामिन्स एक प्रकार के रासायनिक कार्बनिक पदार्थ हैं जो भोजन तथा भोज्य पदार्थों से सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होते हैं फिर भी शरीर के समुचित विकास एवं वृद्धि के लिए परम आवश्यक हैं। विटामिन्स का जीवन तत्व या सुरक्षात्मक तत्व भी कहते हैं, प्रत्येक विटामिन्स का शरीर में अलग-अलग कार्य और महत्व होता है। एक प्रकार का विटामिन अकेला शरीर के लिए बहुत कम उपयोगी होती है यही कारण है कि हमें किसी प्रकार के विटामिन्स की आवश्यकता पड़ती है। जल में घुलनशीलता का विलेयता के आधार पर विटामिन्स को दो वर्गों में रखा जाता है-

(1) जल में घुलनशील विटामिन्स - बी और सी

(2) वसा में घुलनशील विटामिन्स - ए, डी, ई एवं के

(क) जल में घुलनशील विटामिन बी-

विटामिन बी में ग्यारह विटामिन (बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$....बी$_{12}$) आते हैं, अतः इस समूह के विटामिन्स को 'बी काम्पलेक्स' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। विटामिन बी समूह के सभी विटामिनों का नाइट्रोजन एक प्रमुख

घटक होता है। इन सभी विटामिनों का प्राणीय पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

विटामिन बी$_1$-

इसको थियासिन हाइड्रोक्लोराइड भी कहते है यह सफेद और क्रिस्टलीय होता है और जल में ·धुलनशील है। मटर, अण्डे की जर्दी, सुअर के मांस, दूध तथा अनाजों में पाया जाता है। वयस्क पुरुषों को 1.2 से 1.4 मिग्रा0 की आवश्यकता होती है।

विटामिन बी$_2$-

इसको राइबोफ्लोबिन भी कहते हैं। यह दूध, पत्तेदार सब्जियां तथा फलों में बहुतायत में मिलता है। फलों और विटामिन बी2 को निकोटनिक अम्ल या नियासिन भी कहते हैं।

विटामिन बी$_3$-

इसे पेन्टोथनिक अम्ल भी कहते है। यह विटामिन विशेष रूप से यकृत और वृक्कों में पाया जाता है।

विटामिन बी$_6$

यह सफेद क्रिस्टलीय पदार्थ है जो मटर, मांस, मछली, अण्डे की जर्दी तथा दूध में प्रचुर पाया जाता है।

विटामिन बी$_{10}$-

इसे फोलिक एसिड भी कहते है, यह अंकुरित गेहूँ, मटर, सेम, पालक, मसल्स आदि में मिलता है।

विटामिन बी$_{12}$:- यह लाल रंग का क्रिस्टलीय विटामिन है यह मुख्य रूप से दूध, दूध से बने पदार्थ, मांस तथा अण्डों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

विकास एवं संरक्षण के लिए जितनेक तत्वों की आवश्यक मात्रा उपयोगी होती है ग्रहण की जानी चाहिए। जो आहार हमारे शरीर की भोजन सम्बन्धी रक्षा एवं दीर्घायु प्राप्त करने हेतु हमारे लिए सन्तुलित आहार लेना परमावश्यक है। परन्तु खेद का विषय है कि अध्ययन क्षेत्र में लोगों का आहार उनकी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार नहीं है। अध्ययन क्षेत्र में एक बड़ी संख्या को दोनों समय भरपेट भोजन की उपलब्ध हो जाये यही बड़ी बात है फिर संतुलित आहार की बात करना उनका मजाक उड़ाना होगा। यह केवल अध्ययन क्षेत्र की ही समस्या नहीं है बल्कि यह समस्या सम्पूर्ण भारत देश में विद्यमान है। जिन लोगों के पास संतुलित आहार प्राप्त करने के अवसर भी उपलब्ध है वे भी अज्ञानता के कारण संतुलित आहार नहीं प्राप्त कर पाते हैं इसी कारण न केवल अध्ययन क्षेत्र में बल्कि समग्र भारत देश में जन साधारण का स्वास्थ्य निम्न कोटि का है।

सन्तुलित आहार की विभिन्नता-

विभिन्न व्यक्तियों को अनेक कार्य के अनुसार भोजन में विभिन्न पौष्टिक तत्वों की भिन्न-भिन्न मात्रा की आवश्यकता होती है जो निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है :

(1) आयु- वाल्यावस्था में जब शरीर के विकसित होता है तब बालक को वसा व प्रोटीन अधिक मात्रा में चाहिए। वृद्धावस्था में पाचनशक्ति दुर्बल हो जाती है तब इन तत्वों की आवश्यकता कम पड़ती है।

(2) जलवायु- शीतप्रधान देशों में ग्रीष्म प्रधान देशो की अपेक्षा ताप का अधिक उपयोग होता है अतः शीत प्रदान देशों को अपेक्षाकृत अधिक भोजन की आवश्यकता होती है।

(3) लिंग- पुरुष की अपेक्षा नारी को भोजन की मात्रा की आवश्यकता होती है।

(4) **परिश्रम-** शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के शरीर में अधिक ऊर्जा व उष्णता का ह्रास होता है, अतः उसकी पूर्ति हेतु अधिक भोजन चाहिए। इनके भोजन में श्वेतसार की मात्रा अधिक होनी चाहिए। मानसिक श्रम करने वाले लोगों को भोजन की कम मात्रा चाहिए परन्तु उसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

2. कृषकों का प्रचलित आहार प्रतिरूप :

प्रस्तुत शोध में इस शीर्षक के अन्तर्गत कृषकों के आहार प्रतिरूप का विश्लेषण किया गया है। इसके लिए सर्वेक्षण से प्राप्त खाद्य पदार्थो को तीन प्रमुख वर्गो में विभाजित किया गया हैं। प्रथम मुख्य खाद्य पदार्थ, द्वितीय- सहायक खाद्य पदार्थ, तृतीय- विशिष्ट खाद्य पदार्थ। मुख्य खाद्य पदार्थ तो सभी वर्गो द्वारा सामान्यतया पेट भरने के लिए ग्रहण किए जाते हैं। ये पदार्थ न केवल प्रचुर मात्रा में ग्रहण किए जाते है बल्कि लोगों के भोजन में इन पदार्थो की भागेदारी भी सर्वाधिक रहती है। "खाद्य पदार्थो में एक वर्ग से दूसरे वर्ग में भिन्नता कम देखेने को मिलती है, परन्तु तुलनात्मक रूप से छोटे कृषक परिवारों तथा बड़े कृषक परिवारों में यह भिन्नता अधिक दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए रोटी तथा दाल विभिन्न वर्गो में प्रमुख खाद्य पदार्थो के रूप में प्रचलित हैं परन्तु भात सामान्यतया सीमान्त कृषक, लघु कृषक तथा लघु मध्यम कृषकों में मुख्य खाद्य के रूप में प्रचलित हैं जबकि मध्यम तथा बड़े आकार वाले कृषक परिवारों में भारत मुख्यय खाद्य पदार्थ के रूप में सम्मिलित नही रहता है यह वर्ष के केवल कुछ दिनों ही चावल के रूप में मध्याह भोजन में प्रचलित हैं और रात्रिकालीन भोजन के साथ यदा क्दा ही सेवन किया जाता है।" 4 सब्जियां जिन्हें क्षेत्रीय भाषा में तरकारी कहते हैं बड़े तथा मध्यम आकार वाले कृषक परिवारों में मुख्य खाद्य पदार्थो के रूप में प्रचलित हैं जबकि सीमान्त और छोटे आकार वाले कृषक परिवारों

में सब्जियां पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से दाल की स्थानापन्त पायी जाती हैं और यदाकदा ही इनका उपयोग किया जाता है।

अन्य प्रमुख खाद्य पदार्थों में सीमान्त तथा छोटे कृषक परिवारों में मांसाहार अधिक प्रचलित है जबकि बड़े कृषक परिवारों में मांसाहार कम प्रचलित है, मुस्लिम परिवारों में मांसाहार प्रमुख खाद्य पदार्थ के रूप में प्रचलित है जिसमें बकरे का मांस, मछली तथा पक्षियों के मांस के प्रमुखता रहती हैं। कुछ लोगों में अण्डों के सेवन का भी प्रचलन देखा गया। विभिन्न वर्गो की भोजन सम्बन्धी आदतों में प्रचलित कुछ विशेष खाद्य पदार्थों को शामिल किया जा सकता है जिसमें पराठा, खिचरी, सत्तू, महेरी, गादा, कोहरी आदि छोटे कृषक परिवारों में प्रातः कालीन भोजन (नाश्ते) में सामान्य रूप से प्रचलित हैं जबकि बड़े आकार वाले कृषक परिवारों में हलुवा, पूड़ी, दही सत्तू तथा खिचरी अधिक पसन्द किए जाते हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कठिन परिस्रम के कारण सभी वर्गो में ठोस आहार लेने का प्रचलन है।

एक अन्य महत्वपूर्ण वर्गीकरण में सहायक खाद्य पदार्थ आते हैं जिनको सूची नं0 1 में दर्शाया गया हैं, ये खाद्य पदार्थ या तो स्वाद बदलने के लिए मुख्य पदार्थो के साथ सेवन किए जाते हैं या फिर भोजन की मात्रात्मक वृद्धि के लिए इन खाद्य पदार्थो का उपयोग किया जाता है जो अनजाने ही शरीर की अम्लीय आवश्यकताओं की आपूर्ति करने में सहायक बनते हैं। इन पदार्थो का सेवन सभी लोगों द्वारा समान रूप से नहीं किया जाता है इनका सेवन अत्यन्त सीमित लोगों तक ही रहता है। सर्वेक्षण में यह पाया गया कि अचार, चटनी तथा मट्टे का प्रचलन इनकी उपलब्धता के आधार पर लगभग सभी वर्गो में पाया गया जबकि दही, मुरब्बा, घी तथा मक्खन का प्रचलन कुछ बड़े लोगों तक ही सीमित रहता है। शराब का यदा कदा प्रचलन

लगभग सभी वर्गो में न्यूनाधिक पाया गया परन्तु कच्ची शराब, ठेकेवाली शराब तथा अंग्रेजी शराब के सेवन का आधार आय का आकार बताया गया।

अध्ययन क्षेत्र में खाद्य पदार्थ का एक तीसरा महत्वपूर्ण वर्ग गौण खाद्य पदार्थो के रूप में सूचीबद्ध किया गया है जिनमें से कुछ स्वादिष्ट तथा यदा कदा अथवा विशेष अवसरों पर ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थ हैं इनमें से कुछ तो सभी लोगों में प्रचलित महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है तथा कुछ सामान्य खाद्य पदार्थ हैं। गौण खाद्य पदार्थो में अनेक खाद्य पदार्थ मिश्रित व्यंजन के रूप में सेवन किए जाते हैं, परन्तु गुणात्मक भिन्नता वाले ये खाद्य पदार्थ लोगों द्वारा स्वल्प मात्रा में ग्रहण किए जाते हैं क्योंकि इनमें से कुछ तो अत्यन्त मंहगे होने के कारण आर्थिक रूप से सम्पन्न, शिक्षित तथा छोटे आकार वाले कृषक परिवारों की पहुंच में आते है, जबकि आर्थिक रूप से विपन्न परिवारों की पहुंच से बाहर होने के कारण ये व्यंजन यदाकदा त्यौहारों और विशेष अवसरों पर ही सुलभ हो पाते हैं। इन खाद्य पदार्थो का उपयोग परिवार का उपयोग स्तर, जातिगत परम्पराएं तथा व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति को चित्रित करता है। सूची नं0 1 विभिन्न वर्ग के परिवारों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले शाकाहारी तथा मांसाहारी खाद्य पदार्थो का चित्र प्रस्तुत कर रही है। इन खाद्य पदार्थो का महत्व और उनका उपयोग भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों के लिए भिन्न भिन्न है।

सूची नं0 1

विभिन्न प्रचलित खाद्य पदार्थ

सीमान्त कृषक	लघु कृषक	लघु मध्यम कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक
मुख्य खाद्य पदार्थ				
रोटी,	रोटी,	रोटी,	रोटी,	रोटी,
दाल	दाल,	दाल,	सब्जी,	सब्जी,
भात	भात,	भात,	दाल,	दाल,
साग,	साग,	तरकारी,	चावल,	चावल,
तरकारी,	चोखा,	साग,	परांठा,	पूड़ी,
भुर्ता,	खिचरी,	भुर्ता,	पूड़ी,	परांठा,
सत्तू,	सत्तू,	खिचरी,	खिचरी,	खीर,
खिचरी,	लप्सी,	सत्तू,	सत्तू	हलुवा,
कोहरी,	घुघरी,	परांठा		खिचरी,
लप्सी,	सालन			सत्तू
करायल				
सहायक खाद्य पदार्थ				
चटनी,	चटनी,	चटनी,	अचार,	अचार,
महेरी,	कढ़ी,	अचार,	मुरब्बा,	चटनी,
कढ़ी,	महेरी,	महेरी,	चटनी,	मुरब्बा,
मट्ठा	मट्ठा	कढ़ी,	दही	रायता,

		मट्ठा	रायता, घी	दही, घी, सलाद
गौण खाद्य पदार्थ				
परांठा, चिल्ला, भकोसा, दालपूरी, बेढ़ई, गुलगुला, फुलौरी, गादा, सेवई, पकौड़ी, पुआ, लाईचना, पंजीरी, पेढ़ा, खोया, जलेबी, पेड़ा, भूंजा,	पराठा, पुआ, सेवंई, दालपूरी, कचौरी, चौसेला, विढ़ई, चिल्ला, रसखीर, भकोसा, पकौड़ी, घटटा, गादा, गुलगुला, बरा, मुगौरा, मलीदा, जलेबी, लड्डू,	पूड़ी, पुआ, सेंवई, दही, रसखीर, सिघाड़ा, बरा, मुगौरा, गादा, पंजीरी, आलू बड़े, बेढ़ई, मिथौरी, निमोना, कचौरी,	पूड़ी, कचौड़ी, मालपुआ, हलुवा, पकौड़ी, रसखीर, सिघाड़ा, खीर, दही-बरा, मुगौरा, कुम्हड़ौरी, चावल बरी, चिप्स, मछरी, विस्कुट-चाय, नमकीन	पूड़ी, दही, कचौरी, तस्मई, मालपुआ, चीनी-की पूड़ी, शकरपारे, पकौड़ी, सेवई, विस्कुट, नमकीन, चाय, चिप्स आलू, बड़े, आलू पापड़, चावल बरी,

मौसम के अनुसार खाद्य पदार्थो की क्षेत्रीय उपलब्धता गौण खाद्य पदार्थो के उपयोग की महत्वपूर्ण निर्धारक होती है, ये खाद्य पदार्थ लगभग सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र में वर्ष के कुछ दिवसों में ही उपभोग किए जाते हैं। अतः विभिन्न वर्ग के लोगों द्वारा वर्ष में इनकी मात्रा तथा उपयोग अवधि की गणना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है परन्तु फिर भी अनेक तर्क वितर्को के बाद निष्कर्ष रूप समें यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि मुख्य खाद्य पदार्थ तथा सहायक खाद्य पदार्थ वर्ष के अधिकांश दिवसों में उपभोग किए जाते है और गौण खाद्य पदार्थ स्वाद बदलने के लिए या विशेष अवसरों पर या त्यौहारों पर अथवा स्वास्थ्य लाभ या व्यक्तिगत रूचि के लिए सेवन किए जाते हैं।

परम्परागत खाद्य पदार्थो की पहिचान के लिए पुनः खाद्य पदार्थो को तीन भागों में बांटा गया है, जिन्हें सूची नं0 2 में वर्गीकृत करके रखा गया है। इनमें से प्रथम वर्ग में परम्परागत सामान्य खाद्य पदार्थ, दूसरे वर्ग में विशिष्ट खाद्य पदार्थ तथा तीसरे वर्ग में आधुनिक खाद्य पदार्थ रखे गये हैं। खाद्य पदार्थो की इस पहिचान का उद्‌देश्य यह है कि वर्ष भर सेवन किए जाने विभिन्न क्षेत्रीय खाद्य पदार्थ को क्षेत्रीय परम्परागत खाद्य पदार्थ तथा ग्रहण किए गये (गैर परम्परागत) खाद्य पदार्थो को अलग-अलग विभाजित किया जा सके। परम्परागत खाद्य पदार्थ कृषकों द्वारा अपने खेतों पर अथवा क्षेत्र में उत्पन्न किए जाते हैं जबकि ग्रहण किए जाने वाले (तदर्थ) खाद्य पदार्थ यो तो बाजार से अपक्व अवस्था में क्रय करके खाने योग्य तैयार किए जाते हैं अथवा खाने योग्य परिपक्व अवस्था में बाजार से क्रय करके उपयोग किए जाते हैं।

सूंत्री नं0 2,

परम्परागत तथा गैर परम्परागत खाद्य पदार्थो का वर्गीकरण

परम्परागत खाद्य पदार्थ				
सीमान्त कृषक	लघु कृषक	लघु मध्यम कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक
रोटी,	रोटी,	रोटी दाल,	रोटी,	रोटी,
दाल,	दाल,	भात,	दाल,	सब्जी,
भात,	मात तरकारी,	तरकारी,	चावल,	दाल,
तरकारी,	साग,	सत्तू,	सब्जी,	चावल,
सब्जी,	सत्तू,	खिचरी,	खिचरी,	खिचरी,
साग,	खिचरी,	परांठा,	सत्तू,	सत्तू,
सत्तू,	दूध,	दूध,	मेहरी,	महेरी,
खिचरी,	घी,	घी,	मट्ठा,	मट्ठा,
दूध,	दही,	दही,	दूध,	दूध,
घी,	मटठ्ा-महेरी,	मट्ठा,,	घी,	घी,
दही,	कढ़ी,	कढ़ी,	परांठा	दही,
मटठा,	लप्सी,	सब्जी		परांठा
कढ़ी,	गादा,			
महेरी,	घुघरी,			
गादा, कोहरी	सब्जी			

विशिष्ट खाद्य पदार्थ				
दाल-पूड़ी,	पुआ,	पूड़ी,	पूड़ी,	पूड़ी,
परांठा,	परांठा,	पुआ,	मालपुआ,	कचौरी,
कचौड़ी,	सेवई,	कचौड़ी,	कचौड़ी,	खीर,
बेढ़ई,	दालपूड़ी,	सेवई,	खीर,	मालपुआ,
भकोसा,	कचौड़ी,	गादा,	सेवई,	शकरपारे,
सेवई,	मलीदा,	पंजीरी,	रसखीर,	सेवई,
गुलगुला,	चौसेला,	बेढ़ई,	निमोना,	रसखीर,,
चिल्ला,	बेढ़ई,	चौसेला,	गादा,	निमोना,
करायल,	गुलगुला,	रसखीर,	कोहरी,	आलू बंडे,
लप्सी	भकौसा,	परांठा,	फल,	हलुआ
	चिल्ला,	आलू-बड़े,	कढ़ी	कोहरी
	बरा,	सिघाड़ा,		
	मुगौरा,	चिल्ला		
	सालन,			
	चोख,			
	पंजीरी,			
	घट्टा			

आधुनिक खाद्य पदार्थ				
पकौड़ी, जलेवी, पेठा, मांस, मछली, विस्किट, नमकीन, मिठाई, बतासा, अण्डे	जलेबी, लड्डू, पकौड़ी, आलू चिप्स, विस्किट, मिठाई, अण्डे, मांस मछली	पकौड़ी, नमकीन, सिंघाड़ा, लड्डू, जलेबी, आलू, बड़े, आलू पापड़, चिप्स, चावल बरी, डबल रोटी, विस्किट, अण्डे, मांस, मछली	पकौड़ी, बिस्किट, नमकीन, सोन पापड़ी, जलेबी, बच्चों के खाद्य, मुगौड़ा, आलू पापड़, चाट, मुरब्बा, मिठाई, सोयाबीन बरी, मांस, मछली, अण्डे, डबल रोटी	पकौड़ी, बिस्किट, नमकीन सोन, पापड़ी, मिठाई, चाट, बच्चों के खाद्य चिप्स, आलू पापड़, चावल बरी, मुगौरा, तस्मई, मुरब्बा मेवा, डबल रोटी, सूत फेनी, सोयाबीन, बरी, मांस, मछली, अण्डे

सूची नं0 2 में वर्गीकृत सामान्य परम्परागत खाद्य पदार्थ सभी क्षेत्रों में सामान्य रूप में उपयोग किए जाते है ये खाद्य पदार्थ सम्पूर्ण रूप से क्षेत्रीय है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि रोट दाल भात/चावल तरकारी/सब्जी सत्तू खिचरी अध्ययन क्षेत्र में सभी लोगों के लिए प्रमुख खाद्य हैं। विशिष्ट पदार्थो को इस अर्थ में विशिष्ट कहा जाता है कि ये अधिकांश रूप से विशिष्ट अवसरों पर अथवा व्यक्तिगत इच्छानुसार ही उपयोग किए जाते हैं। अधिकांश आधुनिक पदार्थ या तो साप्ताहिक। दैनिक बाजारों से क्रय किए जाते हैं। इन खाद्य पदार्थो में वे पदार्थ भी सम्मिलित है जो भोजन की आंशिक पूर्ति करते हैं अथवा नाश्ते के रूप में ग्रहण किए जाते हैं, इनमें से कोई भी खाद्य पदार्थ सम्पूर्ण भोजन का स्थान नहीं ग्रहण कर पाता है। इस प्रकार यह वर्गीकरण परम्परागत तथा आधुनिक खाद्य पदार्थो के मध्य एक विभाजन रेखा खीचने में सहायक होता है।

खाद्य पदार्थो का एक महत्वपूर्ण वर्गीकरण उनके उपयोग की आवृत्ति के अनुसार किया गया है, जिसे विभिन्न जातियों के उपयोग के महत्व के आधार पर सूची नं0 3 में प्रस्तुत किया गया है। उपयोग की आवृत्ति के अनुसार खाद्य पदार्थो का वर्गीकरण सामाजिक ढांचे की भोजन व्यवस्था समझने में सहायक हो सकता है। सूची में प्रस्तुत अत उच्च आवृत्ति का अर्थ है कि वर्ष में खाद्य पदार्थ लोगों के भोजन में 70 प्रतिशत से अधिक की भागेदारी करते हैं। उच्च आवृत्ति के अन्तर्गत के खाद्य पदार्थ आते हैं जिनकी भागेदारी 40 से 70 प्रतिशत के मध्य रहती है। निम्न आवृत्ति 10 से 40 प्रतिशत के मध्य भागेदारी को प्रकट करती है जब कि अतिनिम्न आवृत्ति के अन्तर्गत 10 प्रतिशत से कम या यदाकदा ही उपयोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थ रखे गये हैं। इन खाद्य पदार्थों का सेवन आर्थिक प्रतिष्ठा, अनिवार्य सामाजिक परम्पराओं अथवा निजी रूचियों के निर्वहन के लिए किए जाते हैं। इस प्रकार वर्गीकरण करने पर यह देखा गया कि परम्परागत खाद्य आदतों के कारण विभिन्न वर्ग के लोग उन खाद्य पदार्थो के उपभोग में विशेष रूचि रखते हैं जिन्हे वे एक लम्बे समय से उपभोग करते आ रहे हैं।

सूची नं. 3

खाद्य पदार्थो के उपभोग की तीव्रता

उच्च जाति वर्ग			
अति उच्च आवृत्ति >70%	उच्च आवृत्ति 40-70%	निम्न आवृत्ति 10-40%	अति निम्न आवृत्ति <10%
रोटी (गेहूं)	सत्तू	रोटी (ज्वार-बाजरा-मक्का)	मालपारे,
दाल (अरहर)	(मक्क,चना-जौ)	चावल,	शकरपारे,
दूध	परांठा,	पूडी,	रसखीर,
	खिचरी,	हलुआ,	पकौडी,
	सब्जी	दही,	बिस्किट,
		अचार,	नमकीन,
		चटनी,	पुआ,
		मुरब्बा,	गादा,
		घी,	कोहरी,
		रायता,	भूंजा,
		सेवंई,	सिंघाडा,
		कचौडी,	आलूदम,
		दाल (उर्द/मूंग)	आलू
		मिठाई,	चिप्स,
		सूतफेनी,	चावलबरी,
		सलाद।	कम्हढ़ौरी,
			मिथौरी,
			साग निभौना,
			कढ़ी,
			महेरी,
			करायल,

			समोसा. मकोसा, माठा, बडवल रोटी; फल, सोयाबीन बरी, मिठाई, मांस, मछली, अण्डे
पिछड़ी जाति वर्ग			
रोटी (गेहूं, मक्का, ज्वार, बाजरा) दाल (अरहर, चना, मटर) सत्तू	तरकारी, (हरी सब्जियां) खिचरी, गादा, कोहरी, करायल, साग (पत्तेदार) माठा, भुर्ता	पूड़ी, पुआ, कचौड़ी, सेवई, गादा, पंजीरी, बेढ़ई, चौसेला, रसखीर, परांठा, आलू बड़े, सिघाड़ा, चिल्ला	पूड़ी, मालपुआ, कचौड़ी, खीर, सेवई, रसखीर, निमोना, गादा, कोहरी, फल, कढ़ी
अनुसूचित जाति वर्ग			
रोटी (मोटे अनाज) भात, गादा,	सत्तू, खिचरी, लप्सी,	दाल, (अरहर,चना,मटर) रोटी-गेहूँ,	पराठा, पूड़ी, कचौडी,

कोहरी, साग, सलाद, तरकारी, भुर्ता	करायल, महेरी	कढ़ी, चटनी, भकोसा, बहुरी, माठा, मछली, मांस, अण्डे	चौसेला, चिल्ला, गुलगुला, सेवई, पकौडी, निमौना, पुआ, अचार, सिंघाडा, दूध (केवल बच्चों को) मौसमीफल, दाल (उर्द/मूंग) अण्डे, मांस, मछली, मिठाई
मुस्लिम जाति वर्ग			
रोटी (गेहूँ तथा मोटे अनाज) दाल (अरहर/चना) चावल	दाल (उर्द/मूंग) तरकारी, सब्जी, पुलाव, मांस, मछली,	गादा, कोहरी, बिरयानी, चटनी, मौसमी फल,	बिस्किट, डबलरोटी, सलाद, तस्मई, खरीरख

	अण्डे, सेवई	माठा, घी, सूतफेनी, सोयाबीन बरी	रसखीर, चाट, रायता, बरा, मुंगौरा, चिप्स, पापड, चावलबरी, दूध, समोसा, अचार, सिंघाडा, नमकीन, फल, मिठाई, कवाब, मुरब्बा

सूची नं. 3 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति से सम्बन्धित परिवारों में तथा कुछ हद तक पिछडी जातियों में यह देखा गया है कि विभिन्न

खाद्य पदार्थों के उपभाग की आवृत्ति मौसम के अनुसार खाद्य पदार्थों की क्षेत्रीय उपलब्धता पर बहुत कुछ निर्भर करता है उदाहरण के लिए रोटी का उपभोग सभी जातियों में अति उच्च अवृत्ति का प्रदर्शन कर रहा है, परन्तु उच्च जातियों में सामान्तया गेहूँ की रोटी का प्रचलन है जबकि अनुसूचित जाति तथा पिछडी जातियों में मोटे अनाजों की रोटी का भी प्रचलन हैं। मोटे अनाजों में इन जातियों में दिसम्बर से फरवरी तक भात का प्रमुख स्थान रहता है। यह भी देखा गया कि एक ही खाद्य पदार्थ की विभिन्न जातियों में भिन्न भिन्न पद्धति से उपभोग प्रचलन है। सामान्यतया किसी पदार्थ के उपभोग की पद्धति लोगों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है, उदाहरण के लिए कच्चे पक्के ज्वार से तैयार होना गादा, गेहूँ चना से तैयार होने वाली कोहरी तथा बाजरा-मक्का से निर्मित घुघरी, अनुसूचित वर्ग तथा पिछडी जाति निम्न आय वर्ग में केवल उबालकर नमक सहित सेवन करने की प्रथा है जबकि उच्च आय वर्ग के लोगों में उक्त खाद्य सामग्री में मिर्च मसाला आदि मिलाकर अथवा तलकर खाने का प्रचलन है। कुछ खाद्य पदार्थों के संबंध में यह देखा गया कि कुछ लोगों द्वारा इन पदार्थों का सेवन सामाजिक संस्कृति का एक अंग है परन्तु कुछ लोगों की जीवन पद्धति में इनका सेवन पूर्णतया वर्जित है जैसे मांस मछली का सेवन मुस्लिम संस्कृति में पारम्परिक है जबकि कुछ हिन्दू परिवारों में इनका प्रयोग पूर्णतया वर्जित है। मध्यमार्गी परिवारों में भी मांसाहार पूर्णतया स्वतंत्र नहीं है। इसी प्रकार यह भी देखा गया कि कुछ खाद्य पदार्थों को पकाने की कुछ परिवारों में अत्यन्त सरल विधि है जबकि कुछ परिवारों में यह विधि अत्यन्त जटिल है। उच्च जाति की अधिकांश महिलाओं में यह प्रवृत्ति पाई गई कि उनके लिए स्वादिष्ट, उत्तम तथा जटिल पद्धति से खाना पकाना एक सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न होता है और एक ही खाद्य पदार्थ को विभिन्न विधियों से तैयार करना उनकी पाक विद्या की श्रेष्ठता तथा पाक कुशलता का प्रतीक माना जाता है जबकि अनुसूचित जाति तथा पिछडी जाति के परिवार की महिलाओं में पुरूषों के समान शारीरिक श्रम तथा कार्यकुशलता को ही महत्व प्रदान किया जाता है।

अध्ययन श्रेत्र में प्रचलित आहार प्रतिरूप को समग्र रूप से देखने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उपलब्ध समस्त क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों को या तो अपक्व या पकाकर या तलकर, एकल रूप में अथवा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ मिश्रित रूप में उपभोग करने का प्रचलन है। परन्तु भोजन पकाने की विधि एक वर्ग से दूसरे वर्ग में या एक परिवार से दूसरे परिवार में भिन्न भिन्न प्रचलित है। भोजन पकाने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उच्च्व जाति की महिलाओं में विभिन्न खाद्य पदार्थों को पकाने की विभिन्न विधियां सामाजिक श्रेष्ठता, प्रतिष्ठा अथवा उच्च्व सामाजिक गुणों तथा विभिन्न महिलाओं के मध्य सम्बन्ध स्थापन में एक पुल का कार्य करती हैं। इसके बावजूद भी पुरूषों तथा महिलाओं दोनों में संतुलित आहार, पोष्टिक भोजन तथा कुपोषण के ज्ञान का सर्वथा अभाव पाया गया।

3. कृषकों का आहार संतुलन पत्रक :

इस शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र के लोगों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थों की मात्रा की गणना करने का प्रयास किया गया है। प्रकाश विश्व[5] के अनुसार ''परिवर्तन के इस दौर में लोगों द्वारा कम पोषक तत्वों से युक्त क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों का परित्याग कर अधिक पेषक तत्वों से युक्त खाद्य पदार्थों को महत्व दिया जाने लगा है परन्तु यह परिवर्तन अभी तक बहुत सीमित स्तर तक ही देखने में आता है, जिन परिवारों का आर्थिक स्तर उंचा है या जो परिवार शिक्षित है केवल उन्ही परिवारों में भोजन की पौष्टिकता की ओर कुछ ध्यान आकर्षित किया जा रहा है परन्तु सन्तुलित और पौष्टिक भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थों का संयोजन किस प्रकार किया जाये, इस बारे में ग्रामीण क्षेत्र अभी तक अवजान है।'' अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न खाद्य पदार्थों की क्षेत्रीय उपलब्धता पर निर्भर करता है। दैनिक, साप्ताहिक तथा विशिष्ट अवसरों पर ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थों को इसी शीर्षक में रखा गया है, इसके अतिरिक्त गर्भवती महिलाओं, शिशु जन्म के बाद तथा शिशुओं को दूध पिलाती माताओं, 3 वर्ष से कम आयु के बच्चों को दिए जाने वाले खाद्य पदार्थ, विवाहोत्सव तथा अन्त्येष्टि संबंधी धार्मिक कृत्य सम्पन्न करने

के अवसर पर दिए जाने वाले भोज, लोगों द्वारा प्रातःकालीन, मध्यान्ह तथा सांध्यकालीन भोजन में ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थों के साथ साथ रिश्तेदारों, अन्य आगुन्तकों तथा धार्मिक क्रियाकलाप सम्पन्न करने वाले पुराहितों, मौलवियों आदि के लिए की जाने वाली भोजन व्यवस्था को भी इसी शीर्षक में रखा गया है।

ग्रामीण लोगों द्वारा प्रतिदिन तथा विशिष्ट अवसरों पर उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों की विस्तृत जानकारी के आधार पर ही उनकी खाद्य पदार्थों की मात्रा का निर्धारण किया गया है। स्वामीपन[6] के एक प्रतिवेदन के आधार पर क्षेत्र में प्रातः लिए जाने वाले खाद्य पदार्थों में, जिसे क्षेत्रीय भाषा में नाश्ता, चबेना तथा कलेवा आदि के नाम से जाना जाता है, सामान्य रूप से परांठा-अचार, सत्तू तथा महेरी का प्रचलन है कुछ परिवार पेय पदार्थ दूध, चाय मट्ठा आदि का सेवन करते पाये गये जबकि कुछ परिवार दूध से बने पदार्थ खीर, सेवई, दही तथा कुछ परिवार मौसमी उपलब्धता के आधार पर कोहरी, गादा, भूंजा, चिल्ला, चौसेला तथा यदा कदा नाश्ते में पूड़ी, कचौडी, पकौडी तथा आलू बण्डे आदि का सेवन करते देखे गये। मध्यान्ह के भोजन में रोटी दाल, भात, तरकारी, सालन की प्रमुखता पाई गई, कुछ परिवारों में मांसाहारी भोजन भी पाया गया। संध्याकालीन भोजन में भी मध्यान्ह के भोजन में सम्मिलित खाद्य पदार्थों का ही पुमुखता रहती है, हिन्दू परिवार मांसाहार सामान्यतया सांध्यकालीन भोजन में ही लेते हैं। निर्धन परिवारों के लिए उनकी निर्धनता सामान्य भोज्य पदार्थों की आवश्यक मात्रा में उपभोग एक बड़ी बाधा है जिसके कारण निम्न निर्धन तथा कठिन श्रम करने वाले लोगों में मादक पेय पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। निर्धनता के कारण ग्रामीण समाज का एक बडा वर्ग इस स्थिति में नहीं है कि वह अपने सामान्य भोजन में किसी विशिष्ट खाद्य पदार्थ का समायोजन कर सके। सर्वेक्षण में यह पाया गया कि मुस्लिम परिवारों को छोडकर विधवाओं में पूर्णतया शाकाहारी भोजन प्रचलित है जिसमें ब्याज तथा लहसुन का प्रयोग भी वर्जित है। इसी प्रकार जो लोग साप्ताहिक विशेष दिवसों में, एकादशी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, नव दुर्गा तथा रामनवमी आदि पर धार्मिक

उपवास अथवा वृत आदि रखते है उनमें भी शुद्ध शाकाहारी भोजन प्रचलित है जिसमें लहसुन, प्याज, नमक तथा कभी-कभी खाद्यान्न का प्रयोग पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से वर्जित है, इन लोगों में अधिकांश फलाहार तथा दूध अथवा दूध से बने पदार्थों के सेवन का प्रचलन है, कुछ अवसरों पर प्रसाद के रूप में भी खाद्य पदार्थों के वितरण का भी प्रचलन है, कुछ खाद्य पदार्थ दान दक्षिणा के रूप में पुरोहितों, मौलवियों को भी अर्पित किए जाते हैं। साधू सन्तों तथा भिक्षाटन में भी खाद्य पदार्थ ही प्रदान किए जाते हैं।

किसी क्षेत्र में एक परिवार के लिए उसकी भोजन पद्धति सामाजिक सम्बन्धों की महत्वपूर्ण निर्धारण होती है। यह देखा गया है कि लोग अपने वर्ग के आगन्तुकों, नाते रिस्तेदारों के लिए सामान्यतया किसी विशेष प्रकार की भोजन व्यवस्था नहीं करते हैं बल्कि सामान्य भोजन जिसमें रोटी, दाल, चावल, सब्जी अचार। चटनी आदि खाद्य प्रमुख होते है, प्रस्तुत करते हैं, परन्तु कुछ विशेष अवसरों पर लोग आगन्तुक अतिथियो के लिए पूड़ी, कचौड़ी, एक से अधिक सब्जियाँ, खीर, रायता, दही, हलुवा तथा मिष्ठान आदि की व्यवस्था करते है। यह विशिष्ट प्रकार का भोजन विभिन्न वर्गो में उनके आर्थिक स्तर के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। विशेष भोजन व्यवस्था में मांसाहारी खाद्य पदार्थों के अन्तर्गत मांस (बकरे अथवा पक्षियों) मछली, अण्डे की व्यवस्था के साथ साथ मादक तरल भोजन का ही प्रचलन है, अन्य पेय पदार्थो में चाय तथा शर्बत का आम प्रचलन है। लगभग सभी मुस्लिम परिवारों में मेहमानों को विशेष मांसाहारी भोजन की व्यवस्था की जाती है। जातिगत और आर्थिक स्तर के अनुसार अतिथि सत्कार में प्रचलित खाद्य पदार्थों का प्रचलन है।

मौसमी परिवर्तन तथा खाद्य आदतें :

किसी क्षेत्र की खाद्य पद्धति तथा खाद्य आदतें बहुत कुछ मौसम परिवर्तन द्वारा नियंत्रित रहती हैं, क्योंकि क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों के उत्पादन में विभिन्न मौसमों में भिन्नता पाई जाती है। सर्वेक्षण में यह पाया गय है कि अध्ययन क्षेत्र में सत्तू,

कोहरी गादा तथा परांठा, प्रातः कालीन नाश्ते में परम्परागत रूप से प्रचलित है परन्तु मौसम पविर्तन के साथ इन खाद्य पदार्थो की आवृत्ति बदलती रहती है जैसे मई जून तथा जुताई में चना अथवा चाना जौ से तैयार सत्तू का जबकि अक्टूबर, नवम्बर में मक्का का सत्तू, जुलाई-अगस्त में जब धान की रोपाई का समय होता है तो गेहूँ चना, मटर, ज्वार तथा बाजरा को उबालकर तैयार कोहरी, परन्तु नवम्बर दिसम्बर में गादा जो हरे ज्वार हरे बाजरा को उबालकर बनाया जाता है, का प्रचलन है, अन्य दिवसों मे परांठा, चटनी/अचार, खीर, महेरी, लप्सी, चिल्ला, भकोसा, चौसेला तथा सेवई का सेवन प्रचलित है। इसी प्रकार सायंकालीन तथा मध्यान्ह के भोजन में खाद्य पदार्थो का प्रचलन भिन्न-2 देखा गया है। जैसे उच्च वर्ग में तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्गों में लगभग वर्ष भर गेहूँ की रोटी के सेवन की प्रवृत्ति देखी गई, इन परिवारों मे मोटे अनाज ज्वार-बाजरा तथा मक्का की रोटी का सेवन केवल स्वाद बदलने तक ही सीमित है जबकि निम्न तथा आर्थिक रूप से विपन्न जातियों में मोटे अनाज की सेवन प्रवृत्ति अधिक है। इसी प्रकार दालों के सम्बन्ध में भिन्नता देखी गई, उच्च वर्ग में अरहर, उर्द/मूंग की दालों का अधिक प्रयोग होता है जबकि निम्न वर्ग में चना तथा मटर की दाल का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। यही अन्तर चावल के उपयोग में देखा गया। निम्न वर्ग में दिसम्बर जनवरी तथा फरवरी में चावल/भात की आवृत्ति अधिक रहती है, जबकि मार्च के बाद चावल का प्रयोग कम हो जाता है।

सब्जियों का उपयोग भी मौसम परिवर्तन द्वारा नियंत्रित रहता है, अप्रैल से सितम्बर तक लौकी, कद्दू, तरोई, चचेंड़ा, घुइया, भिण्डी, करेला तथा टिण्डा आदि का प्रयोग किया जाता है जबकि अक्टूबर के बाद आलू, टमाटर, फूलगोभी, बन्दगोभी तथा बैंगन, मूली का प्रयोग बढ़ जाता है, आलू का प्रयोग न्यूनाधिक वर्ष भर रहता है। पत्तेदार सब्जियों में उच्चवर्ग में पालक, चौलाई, मूली, बथुआ, मेंथी, हरे चने की पत्तियाँ, सरसों की पत्तियां, बाकड़ा की पत्तियां लहिया की पत्तियां, नुनिया, पोई तथा घुइया के पत्तों का प्रयोग प्रचलित है जबकि निम्न वर्ग में साग, चौलाई, मूली के पत्ते, बथुआ, नुनिया आदि प्रायः प्रचलित है ये पदार्थ कम कीमत

पर निःशुल्क प्राप्त हो जाते हैं। स्पष्ट है कि अधिकांश लोग क्षेत्रीय तथा मौसमी खाद्य पदार्थों से नियंत्रित तथा संचालित होते हैं।

जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि अध्ययन क्षेत्र में मुख्यतः हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के यलोग निवास करते हैं और इन दोनों वर्गो की खाद्य आदतों का बहुत अधिक भिन्नता पाई जाती है, जहां तक हिन्दू परिवारों का प्रश्न है तो आर्थिक रूप से सुदृढ़ परिवारों का भोजन मात्रात्मक और गुणात्मक दोनो ही दृष्टियों से निर्बल परिवारों का दृष्टि से बेहतर है। निर्धन परिवार के लोग भोजन के गुणात्मक पक्ष तथा उऩसे प्राप्त पोषक तत्वों पर ध्यान दिए बगैर केवल अपने उदर पूर्ति यपर ही ध्यान केन्द्रित रखते हैं, इन परिवारों का भोजन न तो गुणात्मक रूप से श्रेष्ठ होता है और न मात्रात्मक रूपे से पर्याप्त होता है।

विभिन्न वर्गो द्वारा खा़ पदार्थ का मात्रात्मक उपयोग :

अध्ययन क्षेत्र का एक व्यापक सर्वेक्षण करके विभिन्न वर्ग के परिवारों द्वारा वर्ष के उपयोग किए जाने वाले पदार्थो की वास्तविक मात्रा के आधार पर उनका आहार सन्तुलन पत्रक तैयार किया गया है जिनका विवरण अग्रांकित है।

सारणी 7.1

सीमान्त कृषक परिवारों का प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन औसत उपभोग (ग्राम) :

खाद्य पदार्थ	वर्षा ऋतु	शरदऋतु	ग्रीष्मऋतु	औसत	प्रतिशत
1. आटा	417.66	309.34	438.92	388.64	37.48
2. चावल	202.44	372.56	227.44	267.48	25.80
3. दाल	68.67	48.22	88.37	68.42	6.60
4. जडदार सब्जियां	90.40	192.76	114.82	132.66	12.79
5. पत्तेदार सब्जियां	71.28	144.81	38.22	84.77	8.18
6. चिकनाई	8.88	13.57	11.84	11.43	1.10
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	18.88	20.08	10.96	16.64	1.61
8. गुड़/ चीनी	15.99	19.25	21.61	18.95	1.83
9. मांसाहार	32.36	28.45	18.87	26.56	2.56
10. फलाहार	14.14	22.92	26.66	21.24	2.05
योग	**940.70**	**1171.96**	**997.71**	**1036.79**	**100.00**

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 7.1 में सीमान्त कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा प्रतिदिन उपयोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों का विवरण दर्शाया गया है। यह देखा गया है कि सामान्यतः सभी वर्गों में शरद ऋतु में उपयोग की जाने वाली खाद्य सामग्री की मात्रा बढ़ जाती है जिनमें खाद्यान्नों तथा सब्जियों का अधिकांश भाग रहता है चूकि इस मौसम में आलू तथा टमाटर सस्ता हो जाता है जिससे सब्जियों में जड़दार सब्जियें की मात्रा बढ़ जाती है, पत्तेदार सब्जियों में भी इस मौसम में चने का साग बथुवा,

मूली आदि कम कीमत पर सरलता से उपलब्ध हो जाते है, इस वर्ग में दूध से बने पदार्थ और मांसाहार का प्रयोग भी ग्रीष्म की अपेक्षा बढ़ जाता है जबकि फलों का उपयोग गर्मी के मौसम में बए़ जाता है क्योंकि इस मौसम में आम, जामुन, खरबूजा, तरबूजा, ककड़ी, खीरा आदि क्षेत्रीय स्तर पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। "संतरा, सेव अंगूर आदि फलों के मंहगे होने के कारण इस वर्ग द्वारा केवल पथ्य के रूप में ही उपयोग किए जा सकते हैं।"7

समग्र दृष्टि से यदि देखा जाये तो हर वर्ग द्वारा विभिन्न खाद्य पदार्थो का 1171.96 ग्राम उपयोग शीतऋतु में किया जाता है जो अन्य मौसमों की अपेक्षा सर्वाधिक स्तर है इसके उपरान्त, ग्रीष्म ऋतु का द्वितीय स्थान है जबकि वर्षा ऋतु 940.70 ग्राम अन्तिम स्थान पर है। सम्पूर्ण भोजन में यदि विभिन्न खाद्य पदाथोऋऋका आनुपातिक वितरण देखा जाये तो खाद्यान्नों तथा दालों की औसत भागेदारी लगभग 70 प्रतिशत पाई जबकि सब्जियों का भाग लगभग 21 प्रतिशत है, इस प्रकार भोजन में खाद्यान्नों, दालों तथा सब्जियों की भागेदारी इस वर्ग में लगभग 91 प्रतिशत हो जाती है जिससे यह अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है कि अन्य खाद्य पदार्थो का उपयोग अत्यल्य मात्रा में किया जाता है जबकि व्यक्ति के आहार से इस प्रकारका सन्तुलन होना चाहिए कि उसे पर्याप्त पोषक पदार्थ प्राप्त होते रहे, अतः इस वर्ग द्वारा ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थो में चिकनाई, दूध तथा दूध से बने पदार्थ, मांसाहार और फलों का उपयोग बढ़ाया जाना चाहिए। क्योंकि इन पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्व खाद्यानें से प्राप्त पोषक तत्वों से श्रेष्ठ कोटि में होते हैं, परन्तु इस वर्ग की आय का स्तर नीचा होने के कारण भोजन का प्रथम उद्देश्यों उदरपूर्ति होता है, इसके बाद स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाता है इसीलिए यह वर्ग खाद्यान्न, दालों तथा जड़दार और कम मूल्य वाली पत्तेदार सब्जियों पर ही निर्भर करता है।

सारणी 7.2

लघु कृषक परिवारों में विभिन्न खाद्य पदार्थों की मात्रा (ग्राम)

खाद्य पदार्थ	वर्षा ऋतु	शरद ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	औसत	प्रतिशत
1. आटा	373.31	352.57	396.66	374.18	36.55
2. चावल	207.39	332.81	234.79	258.33	25.23
3. दाल	71.27	56.26	90.15	72.56	7.09
4. जडदार सब्जियां	108.37	188.64	107.75	134.92	13.18
5. पत्तेदार सब्जियां	97.68	136.94	63.79	99.47	9.72
6. चिकनाई	13.43	13.93	11.28	12.88	1.26
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	16.72	16.08	10.58	14.46	1.41
8. गुड़/ चीनी	12.44	11.62	19.89	14.65	1.43
9. मांसाहार	26.84	20.76	14.35	20.65	2.01
10. फलाहार	15.28	18.95	31.05	21.76	2.12
योग	942.73	1148.56	980.29	1023.86	100.00

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 7.2 लघु कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा उपयोग किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो की औसत मात्रा का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग में भी वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु की तुलना में शीत ऋतु में खाद्यान्नों का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है जबकि दालों का सर्वाधिक 90.15 ग्राम ग्रीष्म ऋतु में किया जाता है, जड़दार तथा पत्तेदार सब्जियों का भी सर्वाधिक क्रमशः 188.64 ग्राम तथा 136.

94 ग्राम उपयोग शीत ऋतु में किया जाता है जिससे चिकनाई का भी औसत उपयोग बढ़ जाता है। दूध तथा दूध से बने पदार्थो का उपयोग इस वर्ग में वर्षा ऋतु में अधिक किया जाता है। चीनी/गुड़ 19.89 ग्राम ग्रीष्म ऋतु में सर्वाधिक उपयोग होता है, मांसाहार वर्षा ऋतु में बढ़ जाता है जबकि फलों का उपयोग ग्रीष्म में अधिक किया जाता है। समग्र दृष्टि से यदि देखा जाये तो वर्ष भर में विभिन्न खाद्य पदार्थो के उपयोग में खाद्यान्नों की भागेदारी सर्वाधिक लगभग 62 प्रतिशत रहती है, दालों का यदि और योग कर दिया जाये तो यह अनुपात 69 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। सब्जियों का योगदान लगभग 23 प्रतिशत है। मांसाहार तथा फल दोनों ही भागेदारी 4 प्रतिशत से अधिक है। भोजन में वसा प्रदान करने वाले खाद्य पदार्थो का उपयोग अत्यन्त न्यून 1.41 प्रतिशत है। जबकि चिकनाई की हिस्सेदारी 1.26 प्रतिशत तक सीमित है। सारिणी को देखकर ज्ञात होता है कि एक स्वस्थ मनुष्य के सन्तुलित भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थो की आवश्यक मात्रा खाद्यान्न को छोड़कर अत्यन्त न्यून है, जिसमें आवश्यक पौटिष्क पोषक तत्वों का प्राप्त होना सम्भव नही लगता है। पौष्टिक तत्वों के अभाव का प्रभाव इस वर्ग की कार्यशक्ति को भी प्रभावित करता है।

सारणी 7.3

लघु मध्यम कृषक परिवार का औसत उपभोग (ग्राम)

खाद्य पदार्थ	वर्षा ऋतु	शरद ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	औसत	प्रतिशत
1. आटा	386.24	318.28	400.92	368.48	35.90
2. चावल	177.70	326.66	232.86	245.74	23.94
3. दाल	69.89	65.32	86.55	73.92	7.20
4. जडदार सब्जियां	97.71	178.13	134.47	136.77	13.33
5. पत्तेदार सब्जियां	118.31	101.06	79.28	99.55	9.70
6. चिकनाई	11.78	14.88	13.15	13.27	1.29
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ,	23.17	20.63	12.09	18.63	1.82
8. गुड़/ चीनी	15.82	17.76	19.85	17.81	1.74
9. मांसाहार	31.66	18.50	22.41	24.19	2.36
10. फल	33.54	28.76	21.58	27.96	2.72
योग	965.82	1089.98	1023.16	1026.32	100.00

स्रोत व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 7.3 लघु मध्यम कृषक परिवारों के सदस्यों द्वारा उपयोग किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो का चित्र प्रस्तुत यकर रही है। इस वर्ग द्वारा सर्वाधिक खाद्य पदार्थो का उपयोग 1089त्र98 ग्राम शीतऋतु में किया जाता है। और वर्षा ऋतु में न्यूनतम मात्रा 395.82 ग्राम उपयोग की जाती है। इस वर्ग के उपयोग भी खाद्यान्नों का वर्चस्व बना हुआ है जिसमें आटा सर्वाधिक ग्रीष्म में, शीत ऋतु में सर्वाधिक 326.66 ग्राम चावल तथा दालों का सर्वाधिक उपयोग ग्रीष्मऋतु में किया

जाता है। सब्जियों का उपयोग शीतऋतु में तथ तेल/घी की भी सर्वाधिक मात्रा 14.88 ग्राम शीतऋतु में उपयोग की जाती है। चीनी/गुड गर्मियों में अधिक तथा वर्षाऋतु में न्यूनतम उपयोग किया जाता है। मांसाहार वर्षाऋतु में तथा इस वर्ग में फलों की मात्रा वर्षाऋतु में अधिक पाई गई। समग्र रूप से देखे तो लगभग 67 प्रतिशत खाद्यान्नों की सहभागिता पाई गई जबकि सब्जियों की भागेदारी 23 प्रतिशत से कुछ अधिक है। मांसाहार तथा फलाहार सम्मिलित रूप में 5 प्रतिशत की भागेदारी कर रहे हैं। चिकनाई का प्रयोग इस वर्ग में भी अत्यन्त निम्न 1.29 प्रतिशत, दूध तथा दूध से बने पदार्थ 1.82 प्रतिशत तथा चीनी/गुड़ केवल 1.74 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। समग्र भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थों के समा भोजन को देखकर लगता है कि यह वर्ग विभिन्न पोषक तत्वों की अधिकांश मात्रा खाद्यान्नों से प्राप्त कर रहे है जिसके कारण आवश्यक पोषक तत्वों का शरीर में असन्तुलन हो जाता है, कुछ पोषक तत्वों की अधिकता हो जाती है तथा कुछ पोषक तत्व आवश्यकता से कम प्राप्त हो पाते है।

सारणी 7.4

मध्यम कृषक परिवार के भोजन में खाद्य पदार्थों की मात्रा (ग्राम)

खाद्य पदार्थ,	वर्षा ऋतु	शरद ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	औसत	प्रतिशत
1. आटा	395.72	413.08	429.42	412.74	39.12
2. चावल	106.01	182.99	113.54	134.18	12.72
3. दाल	91.15	91.22	98.76	93.71	8.88
4. जडदार सब्जियां	153.24	168.91	134.87	152.34	14.44
5. पत्तेदार सब्जियां	101.34	109.86	118.35	109.85	10.41
6. चिकनाई	17.84	17.91	21.16	18.97	1.80
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	56.71	45.66	28.25	43.54	4.13
8. गुड़/ चीनी	21.18	31.87	29.93	27.66	2.62
9. मांसाहार	20.47	24.29	18.27	21.21	2.01
10. फलाहार	33.21	46.72	42.65	40.86	3.87
योग	996.87	1132.51	1035.20	1055.06	100.00

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 7.4 मध्यम कृषक परिवारों में विभिन्न खाद्यान्नों की मात्रा का चित्र प्रस्तुत कर रही जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस वर्ग द्वारा सर्वाधिक खाद्यान्न की मात्रा 1132.51 ग्राम शीतऋतु में उपयोग की जाती है, दूसरा स्थान 1035.80 ग्राम ग्रीष्मऋतु का तथा न्यूनतम 996.87 ग्राम वर्षाऋतु में उपयोग की जाती है। विभिन्नं खाद्य पदार्थो में आटा की सर्वाधिक मात्रा ग्रीष्मऋतु में, चावल सर्वाधिक 182.99

ग्राम शीतऋतु में, जड़दार सब्जियाँ 168.91 ग्राम शीतऋतु में पत्तेदार सब्जियाँ तथा दाले सर्वाधिक क्रमशः 118.35 व 98.76 ग्राम ग्रीष्मऋतु में उपयोग की जाती है। तेल/घी का सर्वाधिक उपयोग 21.16 ग्राम गर्मियों में किया जाता है। दूध तथा दूध से बने पदार्थ सर्वाधिक 56.71 ग्राम वर्षाऋतु में उपयोग हो रहे है। इस वर्ग में मांसाहार सर्वाधिक शीतऋतु में उपयोग किया जाता है जबकि सर्वाधिक शीतऋतु में उपयोग हो रहे हैं। औसत रूप में विभिन्न खाद्य पदार्थो की मात्रा 1055.06 ग्राम उपभोग की जा रही है। आनुपातिक रूप से देखे तो इस वर्ग के भोजन में सर्वाधिक भागेदारी 39.12 प्रतिशत आटा की पाई गई जबकि जड़दार सब्जियों की भागेदारी 14.44 प्रतिशत दूसरे स्थान पर पाई गई। चावल 12.72य प्रतिशत तीसरे स्थान पर देखा गया। पत्तेदार तथा जड़दार दोनों सब्जियों का सामूहिक उपयोग 24.85 प्रतिशत किया जा रहा है जबकि दालों की भागेदारी केवल 8.88 प्रतिशत हो रही है। दूध तथा दूध से बने पदार्थ इस वर्ग द्वारा 4.13 प्रतिशत उपयोग किए जा रहे है। मांसाहार और फल 5.88 प्रतिशत भागेदारी कर रहे है। समग्र दृष्टि से देखे तो इस वर्ग द्वारा अन्य वर्गो की तुलना में अधिक पौष्टिक खाद्य पदार्थो का उपयोग किया जा रहा हैं।

सारणी 7.5

बडे आकार वाले कृषक परिवारों द्वारा उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थ (ग्राम) :

खाद्य पदार्थ	वर्षा ऋतु	शरद ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	औसत	प्रतिशत
1. आटा	391.21	385.24	431.77	402.74	38.50
2. चावल	189.23	208.31	137.57	178.37	17.05
3. दाल	73.94	71.69	99.44	81.69	7.81
4. जडदार सब्जियां	119.25	177.57	124.83	140.55	13.44
5. पत्तेदार सब्जियां	106.19	98.36	107.09	103.88	9.93
6. चिकनाई	17.35	21.08	13.05	17.16	1.64
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	36.96	32.67	24.69	31.44	3.01
8. गुड़/ चीनी	21.88	26.41	26.56	24.95	2.38
9. मांसाहार	17.46	42.42	28.80	29.56	2.83
10. फलाहार	17.97	50.54	38.65	35.72	3.41
योग	991.44	1114.29	1032.45	1046.06	100.00

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

सारिणी 7.5 बड़े आकार कृषक परिवारों द्वारा उपयोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों का विवरण दिया गया है जिसमें इस वर्ग द्वारा शीतऋतु में 1114.29 ग्राम उपयोग करके प्रथम स्थान पर है जबकि दूसरा स्थान ग्रीष्मऋतु का है जिसमें 1032.45 ग्राम विभिन्न खाद्यान्नों का उपयोग किया जा रहा है। शीतऋतु में चावल 208.31 ग्राम, जड़दार सब्जियां 177.57 ग्राम, तेल/घी 21.08 ग्राम, मांसाहार 42.

42 ग्राम तथा फल 5.54 ग्राम का उपयोग करके प्रथम प्राथमिकता दी जा रही है। ग्रीष्मऋतु में आटा 431.77 ग्राम दाले 99.44 ग्राम, पत्तेदार सब्जियां 107.09 ग्राम उपयोग करके प्रथम प्रायिकता पर रखा जा रहा है, वर्षाऋतु में केवल दूध तथा दूध से बने पदार्थो को ही प्रथम प्रायिकता प्रदान की जा रही है। समग्र रूप से देखे तो समस्त खाद्य पदार्थो में 63 प्रतिशत से अधिक आटा, चावल तथा दालों की भागेदारी हो रही हैं जबकि सब्जियों का प्रतिनिधित्व 23.37 प्रतिशत है। ये चारो खाद्य पदार्थ लगभग 87 प्रतिशत का भोजन में योगदान कर रहे है। दूध तथा दूध से बने पदार्थो का योगदान मात्र 3.01 प्रतिशत है जबकि फलों का योगदान केवल 3.41 प्रतिशत रखा जा रहा है। आर्थिक रूप से सम्पन्न माने जाने वाले इस वर्ग का उपयोग यद्यपि खाद्यान्नों की दृष्टि से अन्य वर्गो की तुलना में कम मात्रा में उपयोग कम किया जा रहा है परन्तु अन्य पौष्टिक पदार्थो का भी उपयोग मानक स्तर से निम्न स्तरीय प्रदर्शन कर रहा है जिसके कारण सन्तुलित भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थो का समुचित समन्वय नहीं हो पा रहा है इसलिए खाद्य पदार्थ से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों का असन्तुलन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जिससे अनजाने ही कुपोषण जनित बीमारियों के लोग शिकार हो जाते हैं।

विभिन्न वर्गों में प्रतिव्यक्ति खाद्य पदार्थों के उपभोग में विचलन (ग्राम)

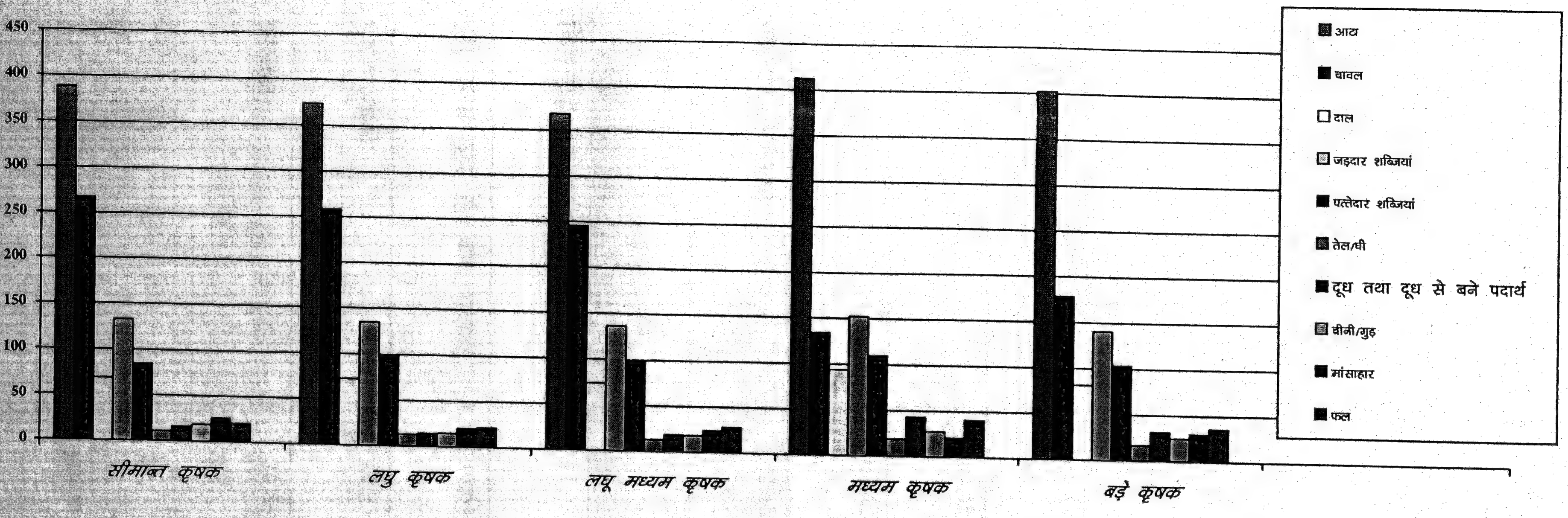

सारणी 7.6

विभिन्न वर्गो में प्रति व्यक्ति खाद्य पदार्थों के उपभोग में विचलन (ग्राम)

खाद्य पदार्थ,	वर्षा ऋतु	शरद ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	औसत	प्रतिशतं
1. आटा	388.64	374.18	368.48	412.74	402.74
2. चावल	267.48	258.33	245.74	134.18	178.37
3. दाल	68.42	72.56	73.92	93.71	81.69
4. जडदार सब्जियां	132.66	134.92	136.77	152.34	140.55
5. पत्तेदार सब्जियां	84.77	99.47	99.55	109.85	103.88
6. चिकनाई	11.43	12.88	13.27	18.97	17.16
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ,	16.64	14.46	18.63	43.54	31.44
8. गुड़/ चीनी	18.95	14.65	17.81	27.66	24.95
9. मांसाहार	26.56	20.65	24.19	21.21	29.56
10. फलाहार	21.24	21.76	27.96	40.86	35.72
योग	1036.79	1023.86	1026.32	1055.06	1046.06

स्रोत-पिछली सारिणी

सारिणी 7.6 विभिन्न खाद्य पदार्थो के औसत उपयोग का चित्र प्रस्तुत कर रही है जिसमें विभिन्न वर्गो में आटा का प्रयोग 368.48 से लेकर 412.72 तक किया जा रहा है जिसमें न्यूनतम मात्रा सीमान्त कृषक परिवारों की है और अधिकतम मात्रा मध्यम कृषक परिवारों की गणना की गई। चावल के उपयोग में विचलन 134.18 ग्राम से लेकर 267.48 ग्राम तक देखी जा रही है, इस खाद्य पदार्थ की अधिकतम मात्रा सीमान्त कृषकों में तथा न्यूनतम मात्रा मध्यम कृषकों में पाई जा रही है। दालों का सर्वाधिक उपयोग 93.71 ग्राम मध्यम कृषक परिवारों का है जबकि न्यूनतम 68.42 ग्राम सीमान्त कृषक परिवार के सदस्यों का पाया जा रहा है। सब्जियों के औसत उपयोग में मध्यम कृषक परिवार के सदस्यों का पया जा रहा है। सब्जियों के औसत उपयोग के मध्यम कृषक परिवार सर्वोच्च स्थान रखते है जबकि न्यूनतम मात्रा सीमान्त कृषकों में देखी जा रही है, जड़दार सब्जियों में आलू, घुइयां, मूली, प्याज तथा लहसून ही समान्यतया प्रचलन में है जबकि पत्तेदार सब्जियों में पालक, बथुआ, मूली, चने का साग, नारी, नुनिया, कद्दू, लौकी, तरोई, टिण्डा आदि का समान्य प्रयोग किया जाता है। तेल/घी के उपयोग में 11.43 ग्राम से लेकर 18.77 तक देखा जा रहा है, जैसे-जैसे जोत का आकार बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे इस पदार्थ में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई है। दूध का न्यूनतम उपयोग लघु कृषक परिवारों में देखी गई है जबकि इस पदार्थ के उपयोग के दृष्टिकोण से सीमान्त कृषक कुछ अच्छी स्थिति में हैं। इसी प्रकार चीनी गुड़ का भी उपयोग किया जा रहा है। मांसाहार में बड़े कृषक सर्वोच्च स्थिति में है जबकि लघु कृषक न्यूनतम स्तर को प्रस्तुत कर रहे हैं, फलाहार सर्वाधिक मध्यम कृषकों द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है न्यूनतम उपयोग स्तर सीमान्त कृषकों का देखा जा सकता है। समग्र रूप में विभिन्न खाद्य पदार्थो के उपयोग में भी मध्यम कृषक परिवार प्रथम पायदान पर हे जबकि लघु कृषक सबसे निचली पायदान यपर स्थित हैं। इस प्रकार विभिनन वर्गो में खाद्यान्नों का उपयोग को मानक स्तर से ऊपर है जबकि अन्य पोषक खाद्य पदार्थ मानक स्तर से कम उपयोग किए जा रहे है जिससे एक स्वस्थ्य

मनुष्य का शारीरिक आवश्यकताओं के लिए पोषक तत्वों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

कृषकों के आहार में पोषक तत्व :

शरीर को स्वथ्य, निरोग और क्रियाशील रखने के लिए भोजन की उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार मोटर के लिए पेट्रोल की। सतत क्रियाशील रहने के कारण मोटर के पुर्जो की भांति ही शरीर के अवयव भी घिसते, छीजते व नष्ट होते रहते हैं, इस क्षति की पूर्ति करना अनिवार्य है, यह क्षुतिपूर्ति भोजन के माध्यम से ही सम्पन्न होती है अतः संक्षेप में भोजन के कार्यो को इस प्रकार देख सकते हैं-

1. भोजन पर प्रमुख कार्य है शरीर के लिए शक्ति व उष्णता प्रदान करना। भोजन द्वारा ही शरीर क्रियाशील रहता है तथा इसी से शरीर को शक्ति व उष्णता प्राप्त होती है।

2. शारीरिक वृद्धि एवं विकास भोजन द्वारा ही सम्भव हैं। बाल्यावस्था से युवावस्था तक शरीर को पहुंचाने का श्रेय भोजन को ही है, क्योंकि भोजन कई कोशिकाओं के निर्माण में अपना सहयोग देता है, निरंतर कार्यरत रहने से कोशिकाओं को जो क्षति होती है उनकी क्षतिपूर्ति भी भोजन द्वारा ही होती है।

3. स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पदार्थ प्रस्तुत करना भी भोजन का ही कर्तव्य है। भोजन द्वारा शरीर की विभिन्न क्रियाएं नियंत्रित होकर शरीर को स्वस्थ एवं नीरोग बनाए रखती हैं।

अतः अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न वर्गो के लोगों द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त होने वाले विभिन्न पोषक तत्वों का विवरण वर्गानुसार आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. सीमान्त कृषक परिवार द्वारा ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थो से प्राप्त विभिन्न पोषक तत्वः-

सीमान्त कृषक परिवार के अन्तर्गत ये परिवार आते है जिनके पास 1 हेक्टेयर तक कृषि भूमि उपलब्ध है, जोत का आकार छोटा होने के कारण इन परिवारों की प्रति व्यक्ति आय भी निम्न है। बदलते हुए परिवेश में लोगों का ध्यान अपने भौतिक विकास पर अधिक, भोजन पर कम रहता है जिसके परिणाम स्वरूप लोगों की उदर पूर्ति तो हो जाती है, परन्तु भोजन में खाद्यान्नों की मात्रा अधिक होने के कारण पोषक तत्वों का असन्तुलन बना रहता है, कुछ पोषक तत्व आवश्यकता से अधिक तथा कुछ पोषक तत्व न्यून रह जाते है। जो पोषक तत्व मात्रा से अधिक ग्रहण कर लिए जाते है वे भी गुणात्मकता की दृष्टि से निम्न कोटि के ही होते है। परिणाम स्वरूप शरीर की आवश्यकता की आपूर्ति उचित मात्रा में नहीं हो पाती है।

सारिणी 7.7 : सीमान्त कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व

खाद्य पदार्थ	मात्रा (ग्राम)	ऊर्जा (कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	कार्बो-हाइड्रेट्स (ग्राम)	कैल्शियम (मिग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लौह (मिग्रा)	कैरोटीन (मिग्रा)	थियामिन (मिग्रा)	राइबो-फ्लेविन (मिग्रा)	नियासिन (मिग्रा)
1. आटा	388.64	1360.24	44.30	13.99	6.99	7.77	367.38	132.14	1235.88	15.93	277.61	1.40	0.70	17.22
2. चावल	267.48	925.48	20.06	2.68	2.41	1.60	205.16	26.75	508.21	8.56	5.35	5.62	0.43	10.43
3. दाल	68.42	234.00	14.78	2.19	2.05	1.23	41.67	94.42	216.21	4.86	73.89	0.29	0.14	1.51
4. जड़दार सब्जियां	132.66	130.94	1.96	0.13	0.77	0.53	29.98	13.27	53.07	0.93	31.84	0.13	0.01	1.59
5. पत्तेदार सब्जियां	84.77	31.02	1.81	0.17	1.07	0.51	2.46	57.64	15.26	8.65	1669.97	0.03	0.17	0.34
6. चिकनाई	11.43	102.87	-	11.43	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	16.64	11.32	0.49	0.90	0.13	-	0.80	27.46	2.83	0.04	29.62	0.01	0.03	0.03
8. गुड़/ चीनी	18.95	72.58	0.04	0.02	0.10	-	18.00	15.16	7.58	2.16	31.84	-	0.01	0.09
9. मांसाहार	26.56	168.02	6.88	1.81	0.29	-	0.47	8.50	52.59	0.29	55.24	0.03	0.07	0.01
10. फलाहार	21.24	10.72	0.15	0.02	0.06	-	3.46	2.34	3.82	0.04	399.74	0.02	0.02	0.19
योग	**1036.79**	**3047.19**	**90.47**	**33.34**	**13.87**	**11.64**	**669.38**	**377.68**	**2095.45**	**41.46**	**2575.10**	**7.53**	**1.58**	**31.41**

सारिणी क्रमांक 7.7 में सीमान्त कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्वों का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग द्वारा ग्रहण किए जाने वाले पदार्थो में पोषक तत्वों का असन्तुलन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, कुछ पोषक तत्व आवश्यक मानक स्तर से अधिक मात्रा में ग्रहण किए जा रहे हैं जिनके से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, फास्फोरस, लौह, थियासिन, राइबोफ्लोबिन तथा निमासिन प्रमुख है जबकि कुछ पोषक तत्व मानक स्तर से कम मात्रा में ग्रहण किए जा रहेक हैं जिनमें ऊर्जा, कैल्शियम, तथा कैरीरीन प्रमुख हैं। ग्रामीण भोजन में जो तथ्य सर्वाधिक चिन्तनीय देखा गया कि अधिकांश पोषक तत्व खाद्यान्नों से ही प्राप्त किए जा रहे हैं, क्योंकि इनके भोजन में खाद्यान्नों की भागेदारी 70 प्रतिशत से अधिक होती है जिससे विभिन्न पोषक तत्वों की अधिक मात्रा भी खाद्यान्नों से ही प्राप्त होती है। जैसे ऊर्जा का 75 प्रतिशत से अधिक भाग, प्रोटीन का 90 प्रतिशत भाग, वसा का 50 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट्स का 80 प्रतिशत भाग, कैल्शियम का 75 प्रतिशत भाग, फास्फोरस का 80 प्रतिशत भाग, कैल्शियम का 75 प्रतिशत भाग, फास्फोरस का 80 प्रतिशत, लौह का 70 प्रतिशत भाग खाद्यान्नों और दालों से ग्रहण किया जाता है। जिसका अर्थ कि ग्रामीण जनंसख्या पोषक तत्वों के सन्दर्भ में मुख्यतया खाद्यान्नों पर ही निर्भर है। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस वर्ग द्वारा कृषि के सहायक उद्योग डेयरी तथा सब्जी उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है परन्तु भोजन में इनके उपभोग की मात्रा अत्यन्त कम है, चिकनाई केवल 11.43 ग्राम तथा दुग्ध की मात्रा केवल 16.64 ग्राम प्रति व्यक्ति उपभोग की जा रही है, स्वाभाविक है कि इस वर्ग द्वारा कठिन परिश्रम के लिए जिन पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है वे खाद्यान्नों से ही ग्रहण किए जा रहे है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य प्रकाशित होता है कि लोगों द्वारा भोजन पर किए जाने वाले धन को बचाकर कुपोषण जनित बीमारियों पर भारी धन व्यय किया जा रहा है।

2. लघु कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व :

इस वर्ग में उन परिवारों को सम्मिलित किया गया है जिनके पास .4 हेक्टेयर से 1 हेक्टेयर तक अपनी कृषि भूमि उपलब्ध है। इस वर्ग में पिछड़ी तथा अनुसूचित जाति की प्रमुखता है। इस वर्ग द्वारा उपयोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों का अधिकांश भाग अपनी ही भूमि पर उत्पन्न किया जाता है जिससे यह वर्ग अपनी कृषि भूमि के अतिरिक्त मजदूरी तथा कृषि के सहायक कार्यों को सम्पन्न करके कुछ अतिरिक्त आय प्राप्त कर लेते हैं। पिछड़ी जातियों में यादव, काछी तथा पाल प्रमुख है जिनमें पशुपालन तथा सब्जियों के उत्पादन को भी महत्व दिया जाता है परन्तु दुग्ध उत्पादन तथा सब्जियों के उत्पादन के बावजूद भी इस वर्ग के भोजन में दुग्ध तथा सब्जियों का उपयोग अत्यन्त निम्न स्तरीय रह जाता है। दूध तथा दूध से बने पदार्थों का उपयोग मात्र 14.46 ग्राम तथा पत्तेदार सब्जियों का उपयोग मात्र 99.47 ग्राम इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि इस वर्ग द्वारा इन खाद्य पदार्थों का उत्पादन तो अतिरिक्त मात्रा में किया जाता है, परन्तु अतिरिक्त उत्पादन को अतिरिक्त आय का ही साधन यह वर्ग बनाए हुए है क्योंकि आज के इस भौतिक युग में प्रत्येक परिवार अधिक से अधिक आय वर्जित करके भौतिक साधनों के एकत्रण को ही प्राथमिकता प्रदान कर रहा है जबकि खान पान में आवश्यक आय का भाग व्यय नही करने के कारण भोजन में पोषक तत्वों का असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। इस वर्ग द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों से प्राप्त पोषक तत्वों को सारिणी क्रमांक 7, 8 में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी 7.8 : लघु कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व

खाद्य पदार्थ	मात्रा (ग्राम)	ऊर्जा (कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	कार्बो-हाइड्रेट्स (ग्राम)	कैल्शियम (मिग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लौह (मिग्रा)	कैरोटीन (मिग्रा)	थियामिन (मिग्रा)	राइबो-फ्लेविन (मिग्रा)	नियासिन (मिग्रा)
1. आटा	374.18	1317.11	42.66	14.22	7.11	7.48	257.44	127.22	1189.89	15.34	256.69	1.35	0.67	16.58
2. चावल	258.33	891.24	19.37	2.58	2.32	1.55	198.14	25.83	490.83	8.27	5.16	0.54	0.41	10.07
3. दाल	72.56	261.94	15.67	1.74	2.18	1.31	50.28	113.93	260.89	5.86	89.16	0.36	0.16	1.82
4. जड़दार सब्जियां	134.92	130.87	2.16	0.13	0.81	0.54	30.49	13.49	53.97	0.94	32.28	0.13	0.01	1.62
5. पत्तेदार सब्जियां	99.47	36.80	2.09	0.20	1.19	0.60	2.88	67.64	17.90	10.15	1959.56	0.03	0.20	0.40
6. चिकनाई	12.88	115.92	-	12.88	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	14.46	14.17	0.48	0.78	0.12	-	0.69	23.86	2.46	0.04	25.74	0.01	0.03	0.03
8. गुड़/ चीनी	14.65	56.11	0.06	0.01	0.09	-	13.92	11.72	5.86	1.67	24.61	-	0.01	0.01
9. मांसाहार	20.55	34.52	5.84	1.40	0.25	-	0.37	6.58	40.69	0.23	42.74	0.02	0.05	0.01
10. फलाहार	21.76	11.10	0.15	0.02	0.06	-	3.54	2.39	3.92	0.04	409.52	0.02	0.02	0.20
योग	**1023.76**	**2869.78**	**88.48**	**33.96**	**14.13**	**11.48**	**557.75**	**392.66**	**2066.41**	**42.54**	**2845.46**	**2.46**	**1.56**	**30.74**

सारिणी क्रमांक 7.8 लघु कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्वों का विवरण प्रस्तुत कर रही है। जिसमें इस वर्ग का प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन उपभोग 1023.86 ग्राम दिया जाता है। विभिन्न खाद्य पदार्थो में खाद्यान्नों का 61.78 प्रतिशत दालों का 7.09प्रतिशत सब्जियों का 22.90 प्रतिशत, चिकनाई केवल 1.26 प्रतिशत दूध तथा दूध से बने पदार्थ 1.41 प्रतिशत, गुड़/चीनी 1.43 प्रतिशत, मांसाहार 2.01 प्रतिशत तथा फलाहार का योगदान 2.12 प्रतिशत रहता है। खाद्यान्न तथा दालों का योगदान लगभग 69 प्रतिश है, खाद्यान्नों पर अत्यधिक निर्भरता के कारण विभिन्न पोषक तत्वों के सन्तुलन के लिए अन्य खाद्य पदार्थो का उपयोग अत्यन्त सीमित है जिसके कारण कुछ पोषक तत्व मानक स्तर से अधिक तथा कुछ पोषक तत्व मानक स्तर से कम प्राप्त हो पाते हैं। मानक स्तर से अधिक ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्वों में प्रोटीन 33.48 ग्राम, वसा 3.96 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 57.75 ग्राम, फास्फोरस 1266.41 मि0ग्रा0, लौहा 17. 54 मि0ग्रा0, थियासिन .93 मि0ग्रा0 प्रमुख है जबकि मानक स्तर से कम पाषक तत्वों में खनिज 13.87 ग्राम, कैल्शियम 107.35 मि0ग्रा0, कैरोटीन 154.46 म्यूग्रा0, राइवोफ्लेविन .10 मि0ग्रा0 आदि प्रमुख हैं। विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता में विभिन्न खाद्य पदार्थो का योगदान देखे तो खाद्यान्नों की अकेले भागेदारी ऊर्जा में 70 प्रतिशत प्रोटीन में 90 प्रतिशत, वसा में 50 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट्स में 80 प्रतिशत लौह में 80 प्रतिशत है जिसके कारण अन्यय पदार्थ से प्राप्त पोषक तत्व लगभग नगण्य रह जाते है।

3. लघु मध्यम आकार वाले कृषक परिवारों द्वारा उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्व :

इस श्रेणी के अन्तर्गत वे कृषक परिवार आते हैं जिनके पास 1 हेक्टेयर से अधिक परन्तु 2 हेक्टेयर से कम कृषि भूमि उपलब्ध है। इस वर्ग के कृषक अपनी कृषि भूमि पर विभिन्न फसलों की उगाने के साथ-साथ मौसमी सब्जियों को भी उगाते हैं और साथ ही साथ पशुपालन भी करके अतिरिक्त आम प्रदान करने का

प्रयास भी करते है परन्तु भोजन में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन मात्र 18.63 ग्राम दूध तथा दूध से बने पदार्थो का समायोजन इस बात का स्पष्ट संकेत करता है कि भोज्य पदार्थो में दूध की अत्यन्त मात्रा का उपभोग करना भोजन के प्रति उदासीनता एक आम धारणा है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि आधुनिक जीवन शैली का प्रवेश गांवों में भी हो चुका है जिसके परिणाम स्वरूप भौतिक सुख साधनों के लिए अधिकाधिक आय अर्जन के प्रयास में लगे हुए लोग खान-पान पर विशेष ध्यान नहीं दे पा रहे है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों से दूध एकत्रित करके शहर में बेचने वाले दूधिया लोगों का गांवों में आना जाना एक आम बात हो गई है। कुछ वर्ष पूर्व गावों में जहां घड़ी, रेडियो तथा साइकिल जैसी उपभोक्ता वस्तुएं दुर्लभ मानी जाती थी अब ये वस्तुएं ग्रामीण क्षेत्रों के लिए भी आम हो गई है यहां तक कि अब गांवों में दूरदर्शन भी दुर्लभ नहीं रह गया है जिससे शहरी उपभोग वस्तुओं का घर-घर में तेजी से प्रसार होता जा रहा है। निसंदेह कृषि उत्पादन इस बीच तेजी से बढ़ा है परन्तु उतनी ही तेजी से खाने वालों की संख्या भी बढ़ी है, शायद इसीलिए ग्रामीण जीवन के भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थो के समायोजन में खाद्यान्नों का योगदान बढ़ता जा रहा है, परिणाम स्वरूप दैनिक कार्यो में आवश्यक पोषक तत्वों की अधिकांश मात्रा से ही ग्रहण की जा रही है। इस वर्ग द्वारा ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्वों का विवरण सारिणी 7.9 में दिया जा रहा है।

सारिणी 7.9 : लघु मध्यम कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व

खाद्य पदार्थ	मात्रा (ग्राम)	ऊर्जा (कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	कार्बो-हाइड्रेट्स (ग्राम)	कैल्शियम (मिग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लौह (मिग्रा)	कैरोटीन (मिग्रा)	थियामिन (मिग्रा)	राइबो-फ्लेविन (मिग्रा)	नियासिन (मिग्रा)
1. आटा	368.48	1278.62	42.01	11.79	7.00	7.37	253.51	125.28	1171.77	15.11	252.78	1.33	0.66	16.32
2. चावल	245.74	842.89	18.43	2.46	2.29	1.53	195.39	24.57	484.01	8.15	5.09	0.53	0.41	9.93
3. दाल	73.92	266.85	15.97	1.77	2.22	1.33	45.02	102.01	233.59	5.25	79.83	0.32	0.15	1.63
4. जड़दार सब्जियां	136.77	132.67	2.19	0.14	0.82	0.55	30.91	13.68	54.71	0.96	32.82	0.14	0.01	1.64
5. पत्तेदार सब्जियां	99.55	36.83	2.09	0.20	1.19	0.59	2.89	67.69	17.92	10.15	1961.14	0.03	0.20	0.40
6. चिकनाई	13.27	119.43	-	13.27	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	18.63	18.26	0.62	1.01	0.15	-	0.89	30.74	3.16	0.05	33.16	0.01	0.03	0.03
8. गुड़/ चीनी	17.81	68.21	0.01	0.02	0.11	-	16.92	14.25	7.12	2.03	29.92	-	0.01	0.01
9. मांसाहार	24.19	40.64	6.87	1.64	0.29	-	0.43	7.74	47.90	0.27	50.32	0.02	0.06	0.01
10. फलाहार	27.96	14.26	0.02	0.03	0.08	-	4.55	3.07	5.03	0.05	526.21	0.02	0.02	0.25
योग	**1026.32**	**2818.66**	**88.21**	**32.33**	**14.15**	**11.37**	**550.51**	**389.03**	**2025.21**	**42.02**	**2971.27**	**2.40**	**1.55**	**30.22**

सारिणी 7.9 लघु मध्यम कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों पर प्रकाश डाल रही है जिसमें इस वर्ग द्वारा विभिन्न खाद्य पदार्थों का मात्रात्मक उपभोग 1026.32 ग्राम किया जाता है जिसमें खाद्यान्नों का योगदान 59.75 प्रतिशत, दालों का 7.20 प्रतिशत है जबकि दूध तथा दूध से बने पदार्थों का उपयोग मांत्र 1.82 प्रतिशत किया जा रहा है जो मानक स्तर से अत्यन्त न्यून कहा जायेगा। सारिणी यह तथ्य भी स्पष्ट कर है कि केवल खाद्यान्नों को छोड़कर अन्य विभिन्न खाद्य पदार्थों का उपयोग मानक स्तर से अत्यधिक कम किया जा रहा है, इसी प्रकार खाद्य पदार्थो से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों में खाद्यान्नों का योगदान भी अत्यधिक है जबकि शरीर की आवश्यकताओं के अन्तर्गत खाद्यान्नों के अतिरिक्त अन्य पोषक खाद्य पदार्थों का भी समायोजन किया जाना चाहिए। पोषक तत्वों की मात्रात्मक उपलब्धता पर यदि दृष्टि डाली जाय तो लगता है कि भोजन में पोषक तत्वों में अत्यन्त न्यूनता नहीं है परन्तु पोषक तत्वों के गुणात्मक स्तर की दृष्टि से इस वर्ग के भोजन में उत्तम गुणवाले पोषक तत्वों का नितान्त अभाव देखने में आ रहा है। मानक स्तर से अधिक मात्रा में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्वों में प्रोटीन 33.41 ग्राम, वसा 2.33 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 50.51 ग्राम, फास्फोरस 1225.21 मि0ग्रा0, लौह 17.02 मि0ग्रा0, थियामिल 0.87 मि0ग्रा0 तथा नियासिन 9.89 मि0ग्रा0 प्रमुख है जबकि मानक स्तर से कम ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्वों में ऊर्जा 212 कैलोरी, खनिज 10.85 ग्राम, कैल्शियम 110.97 मि0ग्रा0 तथा कैरोटीन 28.73 म्यू ग्रा0 प्रमुख हैं। इस वर्ग द्वारा ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्वों में खाद्यान्नों का योगदान प्रमुख है, इस खाद्य पदार्थ का ऊर्जा में 75 प्रतिशत, प्रोटीन में 68 प्रतिशत, वसा में 44 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट्स में 81 प्रतिशत, कैल्शियम में, 38 प्रतिशत, फास्फोरस में 81 प्रतिशत लौह में 55 प्रतिशत भागेदारी है। उक्त, लौह में 55 प्रतिशत भागेदारी है। उक्त विवरण में ऐसा लगता है कि अन्य वर्गो की भांति इस वर्ग का भी भोजन का उद्‌देश्य मूलतः पेट भरना है, पोषक तत्वों की

गुणात्मकता के आधार पर इस वर्ग द्वारा भी विभिन्न खाद्य पदार्थो का भोजन में समायोजन नहीं किया जा रहा है।

4. मध्यम कृषक परिवार द्वारा ग्रहण किए जाने वाले भोजन में पोषक तत्व :

इस वर्ग में वे कृषक परिवार सम्मिलित है जिनके पास 2 हेक्टेयर से 4 हेक्टेयर तक कृषि भूमि विभिन्न फसलों के उगाने के लिए उपलब्ध है। इस वर्ग के कृषक विभिन्न फसलों को उगाने के साथ-साथ कृषि भूमि पर मौसमी सब्जियें को भी उत्पन्न करते है। कृषि के सहायक व्यवसायों में पशुपाल को भी महत्वपूर्ण माना जाता है, परन्तु इस वर्ग द्वारा बड़े पैमाने के डेयरी उद्योग को न चलाकर घरेलू पैमाने पर ही पशुपालन का कार्य किया जाता है, यद्यपि परम्परागत रूप से घरेलू पशुपालन न केवल परिवार की दुग्ध आवश्यकता की आपूर्ति करता रहा है अपितु कृषि कार्यो के लिए आवश्यक पशुश्रम की आपूर्ति का एक प्रमुख स्रोत रहा है। गत कुछ वर्षो से कृषि कार्यो के लिए ट्रैक्टर ने जिस तरह पशु श्रम का प्रतिस्थापन किया है, तब पशुपालन का प्रमुख उद्देश्य परिवार के लिए दुग्ध आपूर्ति तक माना जाने लगा है, परन्तु विगत वर्षो में यह देखा गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी शहरी जीवन शैली ने जिस प्रकार घुसपैठ की है उससे अब पारिवारिक पशुपालन अब आय में वृद्धि का एक सहायक साधन बनता जा रहा है। इस वर्ग की जीवन शैली में भी यह प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित दिखाई पड़ता है क्योंकि मध्यम आकार के कृषक परिवारों में पशुपालन एक सामान्य बात है और वर्ष में प्रति कृषक दुग्ध की कुछ न कुछ मात्रा उत्पादित की जाती है परन्तु प्रति कृषक दुग्ध का उपयोग मात्र 43.54 ग्राम किया जाता है जो कि आवश्यक मानक स्तर से कम है। अन्य भोज्य पदार्थो का भी उपभोग शरीर की आवश्यकतानुसार नहीं किया जाता है परिणाम स्वरूप पोषक तत्वों में खाद्यान्न की भागेदारी सर्वाधिक रहती है। इस वर्ग द्वारा उपभोग किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्वों को सारिणी 7.10 में दर्शाया गया है।

सारिणी 7.10 : मध्यम कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व

खाद्य पदार्थ	मात्रा (ग्राम)	ऊर्जा (कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	कार्बो-हाइड्रेट्स (ग्राम)	कैल्शियम (मिग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लौह (मिग्रा)	कैरोटीन (मिग्रा)	थियामिन (मिग्रा)	राइबो-फ्लेविन (मिग्रा)	नियासिन (मिग्रा)
1. आटा	412.74	1423.95	47.05	15.68	7.84	8.25	283.97	140.33	1312.51	16.92	283.14	1.49	0.74	18.28
2. चावल	134.18	462.92	10.06	1.34	1.21	0.80	102.92	13.42	254.94	4.29	2.68	0.28	0.21	5.23
3. दाल	93.71	338.29	20.24	2.25	2.81	1.69	57.07	129.32	296.12	6.65	101.21	0.40	0.19	2.06
4. जड़दार सब्जियां	152.34	147.77	2.44	0.15	0.91	0.61	34.43	15.23	60.94	1.07	36.56	0.15	0.01	1.83
5. पत्तेदार सब्जियां	109.85	40.64	2.31	0.22	1.32	0.66	3.18	74.70	19.77	11.20	2164.05	0.03	0.22	0.44
6. चिकनाई	18.97	170.73	-	18.97	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	43.54	42.67	1.44	2.35	0.35	-	2.09	71.84	7.40	0.11	77.50	0.02	0.08	0.08
8. गुड़/ चीनी	27.66	108.94	0.11	0.03	0.17	-	26.28	22.13	11.06	3.15	46.47	-	0.01	0.14
9. मांसाहार	21.21	35.63	6.02	1.44	0.25	-	0.38	6.79	41.99	0.23	44.12	0.02	0.05	0.01
10. फलाहार	40.86	20.84	0.29	0.04	0.12	-	6.65	4.49	7.35	0.08	768.99	0.03	0.04	0.37
योग	**1055.06**	**2792.38**	**89.96**	**42.47**	**14.98**	**12.01**	**516.97**	**478.25**	**2012.08**	**43.70**	**3524.72**	**2.42**	**1.55**	**28.44**

सारिणी 7.10 मध्यम कृषक परिवार द्वारा ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों का विवरण प्रस्तुत कर रही है। खाद्यान्नों का योगदान लगभग 52 प्रतिशत है। जबकि दूध तथा दूध से बने पदार्थो का योगदान मात्र 4.13 प्रतिशत है और सब्जियों का योगदान लगभग 25 प्रतिशत है। जबकि दूध तथा दूध से बने पदार्थो का योगदान मात्र 4.13 प्रतिशत है और सब्जियों का योगदान लगभग 25 प्रतिशत है। इस वर्ग द्वारा विभिन्न खाद्य पदाथों में यद्यपि खाद्यान्नों का योगदान सर्वाधिक है, परन्तु अन्य पदार्थो का उपयोग अन्य वर्गो से श्रेष्ठ होने के बाद भी मानक स्तर से कम है और इसी कारण पोषक तत्वों में भी खाद्यान्नों की भागेदारी सर्वाधिक देखी जा रही है विभिन्न पोषक तत्वों में मानक स्तर से अधिक ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व प्रोटीन 34.98 ग्राम, वसा 12.47 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 16.97 ग्राम, फास्फोरस 1212.08 मि0ग्रा0, लौह 18.70 मि0ग्रा0, कैरोटीन 524.72 म्यू ग्रा0, थियासिन 0,87 मि0ग्रा0 तथा नियासिन 8.11 मि0ग्रा0 प्रमुख हैं। मानक स्तर से कम प्राप्त होने वाले पोषक तत्वां में ऊर्जा 240.61 कैलोरी, खनिज 10.02 ग्रा0, कैल्शियम 20.75 मि0ग्रा0 तथा राइजोफ्लेविन .11 मि0ग्रा0 प्रमुख हैं। इस वर्ग में भी खाद्यान्नों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों को ही प्रधानता है जो गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ न होने के कारण शारीरिक क्रियाओं को भलीभांति संचालित करने में भी उतने उपयुक्त नही माने जाते है जितने कि भोजन में खाद्यान्नों के अतिरिक्त अन्यं पदार्थो के उपयोग से प्राप्त होते है। खाद्यान्नों की भागीदारी ऊर्जा में 67 प्रतिशत से अधिक, प्रोटीन 63 प्रतिशत से अधिक, वसा 40 प्रतिशत से अधिक, खनिज 60 प्रतिशत से अधिक, कार्बोहाइड्रेट्स 76 प्रतिशत से अधिक, कैल्शियम 32 प्रतिशत से अधिक, फास्फोरस 78 प्रतिशत, तथा लौह 48 प्रतिशत से अधिक कर रहे है। उक्त विवरण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र का यह वर्ग तुलनात्मक रूप से आय की दृष्टि से सामान्य से उच्च होते हुए भी भोजन के प्रति विशेष सावधान नही है, इस वर्ग की भोजन के प्रति उदासीनता के कारण ही भोजन की गुणात्मक श्रेष्ठता को बनाए रखने का यह वर्ग प्रयास करता प्रतीत नहीं होता है।

5. बड़े आकार वाले कृषकों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्व :

इस वर्ग में वे कृषक परिवार आते है जिनकी जोत का आकार 4 हेक्टेयर से अधिक है। कृषि जोत के बड़े आकार के कारण यह वर्ग तुलनात्मक रूप से अन्य वर्गो की अपेक्षा सम्पन्न वर्ग में आता है, यह वर्ग अपनी खाद्यान्न आवश्श्यकताओं के अतिरिक्त इतना उपज अतिरेक उत्पादित कर लेता जिससे इस वर्ग की आय का स्तर भी तुलनात्मक रूप से अन्य वर्गो की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस वर्ग की आर्थिक स्थिति अन्य वर्गो की तुलना में श्रेष्ठ होने का प्रभाव इस वर्ग की खाद्य आदतों को भी प्रभावित करता है, परन्तु खाद्य आदतों में इस वर्ग का भी भोजन अन्य वर्गो के समान ही प्रतीत होता है जिसमें खाद्यान्नों का स्थान प्रमुख बना हुआ है। भोजन में खाद्यान्नों के अतिरिक्त अन्य पदार्थो का उपयोग अत्यन्त न्यून अथवा सीमित मात्रा में किया जा रहा जिससे इस वर्ग को प्राप्त पोषक तत्वों में खाद्यान्नों से प्राप्त पोषक तत्वों की प्रधानता देखी जा रही है। दूध तथा दूध से बने पदार्थो का प्रति व्यक्ति 31.44 ग्राम उपयोग भोजन के गुणात्मक स्तर की दयनीयता की ओर संकेत कर रहा है। हरी सब्जियों की मात्रा 103.88 ग्राम, फलों की 35.72 ग्राम तथा चिकनाई की मात्रा केवल 17.16 ग्राम उपभोग करके यह वर्ग अन्य वर्गो की तुलना में परिमाणात्मक रूप से श्रेष्ठ है परन्तु इन मात्राओं के उपयोग से प्राप्त पोषक तत्वों का स्तर न तो मात्रात्मक और न ही गुणात्क रूप से इतना श्रेष्ठ है कि जिससे इस वर्ग के सदस्यों को कुपोषण जनित बीमारियों से पूर्णतया सुरक्षित बनाए रख सकें। परन्तु भोजन में खाद्यान्नों की प्रधानता अन्य वर्गो की तुलना में कम है। इस वर्ग द्वारा उपभोग किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों को सारिणी क्रमांक 7.11 में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी 7.11 : बडे आकार वाले कृषक परिवार द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्व

खाद्य पदार्थ	मात्रा (ग्राम)	ऊर्जा (कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	कार्बो-हाइड्रेट्स (ग्राम)	कैल्शियम (मिग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लौह (मिग्रा)	कैरोटीन (मिग्रा)	थियामिन (मिग्रा)	राइबो-फ्लेविन (मिग्रा)	नियासिन (मिग्रा)
1. आटा	402.74	1373.34	45.11	15.30	7.65	8.05	277.09	136.93	1280.71	16.51	276.28	1.45	0.72	17.84
2. चावल	178.37	615.38	13.38	1.78	1.61	1.07	136.81	17.84	338.90	5.71	3.57	0.37	0.28	6.96
3. दाल	81.69	294.90	17.65	1.96	2.45	1.47	62.66	112.73	258.14	5.80	88.22	0.35	0.16	1.80
4. जडदार सब्जियां	140.55	136.33	2.25	0.14	0.84	0.56	31.76	14.06	56.22	0.98	33.73	0.14	0.01	1.69
5. पत्तेदार सब्जियां	103.88	38.44	2.18	0.21	1.25	0.62	3.01	70.64	18.70	10.60	2046.44	0.03	0.21	0.42
6. चिकनाई	17.16	154.44	-	17.16	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
7. दूध तथा दूध से बने पदार्थ	31.44	30.81	1.04	1.70	0.25	-	1.51	51.88	5.34	0.08	55.96	0.01	0.06	0.06
8. गुड़/ चीनी	24.95	95.56	0.10	0.02	0.15	-	23.70	19.96	9.98	2.84	41.92	-	0.01	0.12
9. मांसाहार	29.56	49.66	8.39	2.01	0.35	-	0.53	9.46	58.53	0.32	61.48	0.03	0.07	0.01
10. फलाहार	35.72	18.22	0.25	0.04	0.11	-	5.81	3.93	6.43	0.07	672.25	0.03	0.03	0.32
योग	**1046.06**	**2807.08**	**90.35**	**40.32**	**14.66**	**11.77**	**542.88**	**437.43**	**2032.95**	**42.91**	**3279.85**	**2.41**	**1.55**	**29.22**

सारिणी 7.11 बडे आकार वाले कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा भोजन में ग्रहण किए जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्वों का विवरण प्रस्तुत कर रही है, जिसमें कुछ पोषक तत्व मानक स्तर से कम तथा कछ पोषक तत्व मानक स्तर से अधिक ग्रहण किए जा रहे है। इस वर्ग द्वारा मात्रात्मक रूप से प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 1046.06 ग्राम विभिनन खाद्य पदार्थो का उपयोग किया जा रहा है जिसमें खाद्यान्नों का योगदान 55 प्रतिशत से अधिक बना हुआ है, सब्जियों की सहभागिता 23.37 प्रतिशत तथा दूध और दूध से बने पदार्थो का योगदान मात्र 3 प्रतिशत पाया जा रहा है। भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थो के संयोजन से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों में जो मानक स्तर कम ग्रहण किए जा रहे है उनमें से ऊर्जा 222.92 कैलोरी, खनिज 10.34 ग्राम, कैल्शियम 62.57 मि0ग्रा0 तथा राइवोफ्लेविन 0.11 मि0ग्रा0 हैं। मानक स्तर से अधिक ग्रहण किए जाने वाले पोषक तत्वों में प्रोटीन 45.35 ग्राम, वसा 10.32 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 42.88 ग्राम, फास्फोरस 1232.95 मि0ग्रा0, लौह 17.91 मि0ग्रा0 कैरोटीन 279.85 म्यू ग्रा0, थियासिन 0. 88 मि0ग्रा0 तथा नियासिन 9.22 मि0ग्रा0 है। इस वर्ग में भी पोषक तत्वों में अधिकता भोजन में खाद्यान्नों की प्रधानता के कारण है क्योंकि विभिन्न पोषक तत्वों में खाद्यान्नों के योगदान की दृष्टि से देखे तो ऊर्जा 70.85 प्रतिशत, प्रोटीन 64.74 प्रतिशत, वसा 42.36 प्रतिशत, खनिज 63.17 प्रतिशत, फाइवर 77.49 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट्स 76.24 प्रतिशत, कैल्शियम 35.38 प्रतिशत, फास्फोरस 79.67 प्रतिशत, लौह 51.78 प्रतिशत, थियामिन 75.52 प्रतिशत, तथा नियासिन 84.87 प्रतिशत केवल खाद्यान्नों से प्राप्त हो रहे हैं। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि वसा का अधिकांश भाग चिकनाई से तथा दूध से प्राप्त होना चाहिए। दालों के उपभोग को बढ़ाकर प्रोटीन की आपूर्ति बढ़ाई जा सकती है क्योंकि गुणात्मक दृष्टि से दालों से प्राप्त प्रोटीन खाद्यान्नों से प्राप्त प्रोटीन से श्रेष्ठ होती है। दूध तथा घी का उत्पादन इस वर्ग में इतना कम नहीं है जितना कम प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा है जिसका अर्थ यह है कि इस वर्ग में भी दूध/घी का उत्पादन भोजन की पौष्टिकता के लिए नही किया जा रहा है बल्कि इस पौष्टिक पदार्थ को आय का

प्रमुख स्रोत बनाया जा रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय के अतिरिक्त साधन उपलब्ध कराये जाये जिससे पशुपालन पर व्यावसायिक निर्भरता कम की जा सके।

. . . .

. . . .

. . . .

अध्याय-अष्टम

कृषक परिवारों के स्वास्थ्य का स्तर

संतुलित आहार की विभिन्नता

आयु

जलवायु

लिंग

परिश्रम

संतुलित आहार की मात्रायें

अध्ययन क्षेत्र में कृषकों का पोषण स्तर

श्रोत के आधार पर पोषक स्तर में विचलन

कुपोषण जनित बीमारियों का वर्गीकरण

पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या

अध्याय अष्ठम

कृषक परिवारों के स्वास्थ्य का स्तर

स्वस्थ्य जीवन के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को ऐसा भोजन मिले जिसमें सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में उपस्थित हों, ऐसा तभी सम्भव है जब उसको सन्तुलित भोजन प्रापत हो परन्तु हर व्यक्ति का संतुलित भोजन समान्य नही हो सकता है। व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य सम्पादित करता है। अत: कार्य की विभिन्नता के आधार पर उसे भोजन की भी आवश्यकता होती है। समझदार व्यक्ति को अपना भोजन इस आयु, जलवायु, ऋतु तथा लिंग के अनुसार भी भोजन में पोषक तत्वों की आवश्यकताओं में अन्तर आता है। जैसे गर्भवती स्त्री या स्तनपान कराने वाली स्त्री की भोजन आवश्यकता साधारण स्त्री की तुलना में अधिक कैलोरीयुक्त भोजन चाहिए। संतुलित आहार समस्त प्राणियों की एक प्रमुख आवश्यंकता है। अत: सतुलित भोजन में समस्त तत्वों की उचित मात्रा का होना आवश्यक है।

संतुलित आहार की विभिन्नता :-

विभिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न प्रकार के भोजन तथा विभिन्न प्रकार की मात्रात्मक आवश्यकता होती है जो निम्न बातों पर निर्भर करती है।

1. **आयु**- बाल्यावस्था में जब शरीर विकसित होता है तब बालक को वसा और प्रोटीन अधिक मात्रा में चाहिए वृद्धावस्था में पाचन शक्ति दुर्बल हो जाती है तब भोजन की कम मात्रा की आवश्यकता होती है।

2. **जलवायु** :- शीत प्रधान देशों में ग्रीष्म प्रधान देशों की अपेक्षा ताप का अधिक उपयोग होता है। अत: शीत प्रधान देशों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है।

3. **<u>लिंग</u>** :- पुरूष की अपेक्षा स्त्रियों में कम भोजन की आवश्यकता होती है।

4. **<u>परिश्रम</u>** :- शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के शरीर से अधिक ऊर्जा का ह्रास होता है अतः उसकी पूर्ति के लिए अधिक भोजन चाहिए। इनके भोजने में श्वेतसार की मात्रा अधिक होनी चाहिए। मानसिक श्रम करने वालों को भोजन की कम मात्रा चाहिए परन्तु उसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

विभिन्न खाद्य पदार्थो में ऐसा कोई भी पदार्थ नही है जिसमें भोजन के सभी पोषक तत्व उपस्थित हों अतः विभिन्न खाद्य पदार्थो के पोषक तत्वों का ज्ञान करके आवश्यक पोषक तत्वों से युक्त भोजन ग्रहण करना चाहिए जिससे शरीर की अधिकतम आवश्यकता पूर्ण हो सके। यदि प्रत्येक व्यक्ति को वांछित शक्ति की प्राप्ति नही होगी तो उसकी कार्यक्षमता का ह्रास होता है। और वह निरन्तर दुर्बल होता जायेगा।

<u>संतुलित आहार की मात्रायें</u> :-

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (I.C.M.R) खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.) तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) ने इस समस्या पर काफी कार्य किया है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने भारत वासियों के लिए दैनिक संतुलित आहार प्रस्तावित किया है जिसे अग्र तालिका में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका कमांक 8.1

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा प्रस्तावित दैनिक संतुलित आहार

सं0	खाद्य पदार्थ	मात्रा जो ग्रहण की जानी चाहिए	आहार की पौष्टिकता			
			1.	ऊर्जा	3000.0	कैलोरी
1.	अनाज	400 ग्राम	2.	प्रोटीन	90.0	ग्राम
2.	दाले	85 ग्राम	3.	कार्बोहाइड्रेटस	450.0	ग्राम
3.	हरी पत्तेदार सब्जियां	114 ग्राम	4.	वसा	90.0	ग्राम
4.	अन्य सब्जियां	85 ग्राम	5.	कैल्सियम	1.4	ग्राम
5.	तेल/वनस्पति घी	57 ग्राम	6.	फास्फोरस	2.0	ग्राम
6.	दूध तथा दूध से बने पदार्थ	284 ग्राम	7.	लोहा	47.0	ग्राम
7.	चीनी/गुण	57 ग्राम	8.	विटामिन ए	8400.0	आ.रा.ई.
8.	मांस,मछली,अंडे	125 ग्राम	9.	बी$_1$	2.1	मि0ग्राम
9.	फल	85 ग्राम	10.	बी$_2$	1.8	मि0ग्राम
			11.	निकोटीन अम्ल	22.0	ग्राम
			12.	विटामिन सी	280.0	ग्राम

श्रोत दि न्यूट्रीशन बेल्यू आफ इण्डियन फूड एण्ड दि प्लानिंग आफ सेटिस्फेक्टरी डाइट्स स्पेशन रिपोर्ट संख्या 42 (1966) की तालिका-2 पृष्ठ 28 तथा तालिका 3 में पृष्ठ 32. सारिणी कमांक 8.1 में भारतीय चिकित्सा अनुंसधान परिषद द्वारा भारतीयों के लिए संतुलित आहार की मात्रा दर्शायी गयी है जिसमें भारतीयों को औसत रूप में

3000 कैलोरी ऊर्जा का मानक निर्धारित किया गया जिसमें प्रोटीन 90 ग्राम वसा 90 ग्राम, कार्वोहाइड्रेड, 450 ग्राम कैल्शियम 1.4 ग्राम फास्फोरस 2.0 ग्राम लोहा 47 मि0ग्रा0 तथा विटामिनों की संतुलित मात्रा प्रदर्शित की गयी है जिसके लिए प्रतिव्यक्ति 400 ग्राम खाद्यान्य दालें 85 ग्राम सब्जियां लगभग 200 ग्राम और चिकनाई 57 ग्राम दूध या दूध से बने पदार्थ चीनी/गुण 57 ग्राम के साथ मात्र 125 ग्राम तथा फल 85 ग्राम की संस्तुति की गयी है खाद्य सामाग्री में यद्यपि खाद्यान्यों की मात्रा कम है और अन्य खाद्य पदार्थो के पोषक तत्वों के संतुलन को संस्तुत किया गया है परन्तु भारतीय खाद्य पदार्थो में खाद्यान्यों की अधिकता ही अधिक पाई जाती है।

तालिका 8.2

परिश्रम के आधार पर संस्तुत भोजन तालिका (ग्रामों में)

सं0	खाद्यपदार्थ	पुरूष		बालक							महिलायें		
		हल्का श्रम	भारी श्रम	3 से 4 वर्ष	5 से 6 वर्ष	7 से 8 वर्ष	9 से 10 वर्ष	11 से 12 वर्ष	13 से 16 वर्ष	17 से 21 वर्ष	हल्का श्रम	मध्यम श्रम	कठिन श्रम
1.	खाद्यान्य	414	567	142	198.8	255.6	312.4	340.8	450	312	312	397	454
2.	दाले	85	85	28	42.00	56.00	56.00	56	85	85	85	85	85
3.	भुने हुए चने	-	28		28.00	28.00	56.00	56	56				
4.	दूध व दही	284	284	560	450.00	450.00	450.00	450	300	283	283	283	283
5.	मांस व मछली	85	125										
6.	अण्डे	01	1										
7.	हरी सब्जियां	85	114	45	60.00	90.00	90.00	90	120	120	85	85	85
8.	अन्य सब्जियां	56	85	28	28.00	55.00	110.00	140	120	120	57	57	57
9.	फल	57	85	90	90.00	90.00	90.00	90	120	120	57	57	57
10.	वसा	57	57	14	14.00	14.00	28.00	28	60	60	28	28	28
11.	चीनी	57	57	50	50.00	50.00	50.00	50	60	60	66	66	66

तालिका क्रमांक 8.2 से ज्ञात होता है कि प्रस्तावित संतुलित आहार में यद्यपि खाद्यान्यों की मात्रा कम है परन्तु ऊर्जा प्रदान करने वाले पोषक तत्व कैलोरी की मात्रा अधिक है तालिका से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि खाद्य पदार्थो में हरे पत्तेदार सब्जियों की मात्रा और दूध की मात्रा अधिक होनी चाहिए। क्योंकि इन खाद्य पदार्थो से प्राप्त होने वाले पोषक तत्व उच्च कोटि के शीघ्र ही पचने वाले होते हैं। अतः संतुलित आहार में इन पदार्थो की मात्रा अधिक होनी चाहिए परन्तु जनसंख्या वृद्धि के साथ परम्परागत पत्तेदार सब्जियों का उपभोग तथा दूध की मात्रा भी कम होती जा रही है पोषण विज्ञान के विशेषज्ञ श्री सी0 गोपालन तथा एम0सी0बाल सुब्रमण्यम के मत से प्रस्तावित संतुलित आहार समान्य भारतीय के लिए अधिक व्यय प्रद और उसकी सामर्थ से अधिक है। अतः सामान्य भारतीय प्रस्तावित संतुलित आहार में संस्तुत खाद्य पदार्थो को सेवन करने में असमर्थ है। इसी कारण कुपोषण जनित बीमारियों का शिकार सरलता से होता जा रहा है।

1. **अध्ययन क्षेत्र में कृषकों का पोषण स्तर** :-

हमारा भोजन हमारे शरीर को ऊर्जा देता है साथ ही हमारे शरीर की टूट-फूट की मरम्मत में भी सहायता करता है। ऊर्जा शरीर के ताप को स्थिर रखने में सहायक होती है। इसलिए भोजन से पेट भर लेना ही पर्याप्त नही है बल्कि भोजन ऐसा होना चाहिए जिसमें भाजन के विभिन्न पोषक तत्व यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध हो इन विभिन्न प्रकार के पौष्टिक पदार्थो का ज्ञान जन साधारण को नही होता विशेषकर भारत व अध्ययन क्षेत्र में भारतवासियों में स्वास्थ्य का स्तर अत्यधिक निम्न होने का यही प्रमुख कारण है अज्ञानता के कारण अधिकांश लोग दाल रोटी में ही स्वयं को संतुष्ट कर लेते है और अज्ञानतावस पोषक आहार पाने में असमर्थ होने के कारण रोग के शिकार हो जाते है।

साधारणतय ग्रहस्वामिनियां अपने कुटुम्ब की आवश्यकतानुसार पोषक तत्व से मिश्रित आहार व्यवस्था करने का महत्व ही नही समझती और न ही विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थो का ज्ञान ही उन्हे होता है। ऐसी स्थिति में वह केवल स्वाद के लिए तथा साधारण शारीरिक वृद्धि के लिए भोजन तैयार करती है।

2. **श्रोत के आकार के आधार पर पोषक स्तर में विचलन** :-

अध्ययन क्षेत्र की सामाजिक आर्थिक स्थितियों के अर्न्तगत कृषकों के पोषण स्तर को उनके कार्य तथा व्यवसाय से प्रभावित होता है क्योंकि कृषकों का खान-पान उनकी जाति उनका व्यवसाय उनकी आर्थिक स्थिति एवं उनकी सामाजिक परम्पराओं द्वारा निर्धारित तथा नियंत्रित होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में यद्यपि कृषको की श्रोत के आकार के आधार पर 5 वर्ग बनाये गये हैं, परन्तु इन पांचों वर्गो में लगभग सभी जातियों के कृषक समिलित हुए हे। जैसा कि पूर्व अध्याय सप्तम में कृषकों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थो का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जिसमें विभिन्न वर्गो द्वारा ग्रहण किये जाने वाले खाद्य पदार्थों में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है जो न केवल मात्रात्मक अन्तर को प्रदर्शित करता है बल्कि भोजन के गुणात्मक अन्तर के रूप में भी देखने को मिलता है। एक सामान्य व्यक्ति की न्यूनतम ऊर्जा आवश्यकता को सारिणी 8.3 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारिणी 8.3
एक सामान्य व्यक्ति (55 किग्रा0) की विभिन्न जाति वर्ग के लिए आवश्यक न्यूनतम ऊर्जा

सं0	जातिवर्ग	निद्रा आदि आधारभूत कार्यो में ऊर्जा का क्षय (8x1x55)	हल्के कार्यो में ऊर्जा का क्षय (8x प्र0इ0x55)	भारी कार्यो में ऊर्जा का क्षय (8x प्र0इ0 x55)	कुल कैलोरी
1	अनुसूचित जाति	440	1100	1936	3476
2	पिछडी जाति	440	1100	1936	3476
3	अन्य पि0जाति	440	1056	1804	3300
4	सवर्ण जाति	440	924	1604	2968
5	मुस्लिम जाति	440	1056	1804	3300
	औसत	440	1047.2	1816.8	3304

श्रोत- आर0एस0 थापर, " **हमारा भोजन** " पृष्ठ 8 अवर फूड

सारिणी क्रमांक 8.3 प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन आवश्यक ऊर्जा का विवरण प्रस्तुत कर रही है, उक्त सारिणी डा0आर0एस0थापर की पुस्तक "अवर फूड" के आधार पर तैयार की गयी है। सारिणी में दैनिक कार्यो को तीन वर्गो में विभाजित किया गया है। यह संकल्पना की गई है कि प्रत्येक सामान्य व्यक्ति अपनी दिनचर्या में 8 घण्टें निद्रा, आराम तथा सामान्य विचार विमर्श में व्यय करता है। 8 घण्टे का समय सामान्य हल्के घरेलू कार्य में व्यतीत करता है जिसमें विभिन्न आय स्तर जातिगत आधार सामाजिक परम्पराओं के कारण अन्तर दिखाई पडता है। जिसके कारण विभिन्न जातिवर्गो में हल्के कार्य के लिए भिन्न-भिन्न ऊर्जा व्यय करनी पडती है। दिन चर्या के शेष 8 घण्टे का समय भारी कार्यो में खर्च होता है। इन भारी कार्यो में भी अन्तर होने के कारण आवश्यक ऊर्जा में अन्तर दिखायी पडता है। समग्र रूप में देखें

तो एक सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन 3304 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता पडती है अतः इस ऊर्जा की आपूर्ति भोजन से होनी चाहिए।

सारिणी कमांक 8.4

एक सामान्य महिला की न्यूनतम ऊर्जा आवश्यकता

सं0	जातिवर्ग	सामान्य दिनचर्या में ऊर्जा क्षय (8x.9x45)	हल्के कार्य में ऊर्जा क्षय (8x.प्र0इ0x45)	भारी कार्य में ऊर्जा क्षय (8x.प्र0इ0x45)	कुल कैलोरी
1.	अनुसूचित जाति	396	1144	1784	3324
2.	पिछडी जाति	396	1044	1588	3028
3.	अन्य पिछडी जाति	396	972	1516	2884
4.	सवर्ण जाति	396	972	1444	2812
5.	मुस्लिम वर्ग	396	1044	1554	2994
6.	दूध पिलाती महिला	–	–	–	3700
7.	गर्भवती महिला	–	–	–	3000
	औसत	**396**	**1035.2**	**1577.2**	**3106**

श्रोत– आर0एस0 थापर, " हमारा भोजन " पृष्ठ 8 (अवर फूड)

सारिणी कमांक 8.4 से ज्ञात होता है कि सामान्य महिला को औसत रूप में 3106 कैलोरी ऊर्जा चाहिए जिसको वह भोजन से प्राप्त करती है स्वाभाविक है महिलायें जो उक्त तीनों प्रकार के कार्य सम्पन्न करती है उन्हे अपने भोजन में कम से कम इतने पोषक तत्व ग्रहण करने चाहिए जो उनकी दैनिक आवश्यकता 3106 कैलोरी ऊर्जा की आपूर्ति कर सके, यदि पोषक तत्वों में कमी रह जाती है तो महिलाओं में कुपोषण जनित बीमारियों की सम्भावना पुरूषों की तुलना में अधिक रहती है।

सारिणी 8.5

समान्य बालकों को ऊर्जा की आवश्यकता

1 से तीन वर्ष,	1200
3 से 6 वर्ष,	1500
6 से 9 वर्ष,	1800
9 से 12 वर्ष,	2100
12 से 15 वर्ष,	2500
15 से 18 वर्ष,	3000
औसत	**2017**

सारिणी क्रमांक 8.5 बालकों के लिए प्रतिदिन आवश्यक ऊर्जा को प्रस्तुत कर रही है जिससे ज्ञात होता है कि सर्वाधिक ऊर्जा 15 से 18 वर्ष के बच्चों को आवश्यक होती है इस अवस्था में शारीरिक विकासपूर्णतया की स्थिति को प्राप्त करने वाली अवस्था में होता है। अत: प्रति बालक 3000 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है और इसके उपरान्त कार्य के स्वभाव के अनुसार ऊर्जा की आवश्यकता होती है। 18 वर्ष की आयु से पूर्व भी ऊर्जा की कम आवश्यकता होती है जैसे 1 से 3 वर्ष के बालक को केवल 1200 कैलोरी ऊर्जा आवश्यक होती है।

अध्ययन क्षेत्र में एक व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर 25.98 प्रतिशत बच्चे 39.15 प्रतिशत बयस्क पुरूष तथा 34.87 प्रतिशत महिलायें प्राप्त हुई इस प्रकार गणना करने पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन ऊर्जा आवश्यकता 2900.19 कैलोरी प्राप्त हुई प्रस्तुत शोध में 2900 कैलोरी ऊर्जा का मानक मानकर विभिन्न वर्गो में पोषण तत्वों का विचलन निकाला गया गया जिसे सारिणी क्रमांक 8.6 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारिणी 8.6

जोत के आकार के आधार पर पोषक तत्वों में विचलन

पोषक तत्व		मानक स्तर	सीमान्त कृषक		लघु कृषक		लघु मध्यम कृषक		मध्यक कृषक		बडे कृषक	
			मात्रा	+-	मात्रा	+-	मात्रा	+-	मात्रा	+-	मात्रा	+-
1.	ऊर्जा	2900 कैलोरी	3047.19	+147.19	2869.78	-10.22	2818.18	-81.82	2789.39	-110.61	2807.08	-92.92
2	प्रोटीन	90 ग्राम	90.47	+0.47	88.48	-1.52	88.41	-1.59	89.98	-.02	90.35	+.35
3	वसा	90 ग्राम	33.34	-56.66	33.96	-56.04	32.33	-57.67	42.47	-47.53	40.32	-49.68
4	खनिज	15 ग्राम	13.38	-1.53	14.13	+.87	14.15	+.85	14.98	+.02	14.66	-.34
5	फाइबर	7 ग्राम	11.64	+4.64	11.48	+4.48	11.37	+4.37	12.01	+5.018	11.77	+4.77
6	कार्बोहाइडेटस	450 ग्राम	669.38	+119.38	557.75	+117.75	550.51	+100.51	516.97	+66.97	542.88	+92.88
7	कैल्शियम	1.4 ग्राम	.38	-1.02	.39	-1.01	.39	-1.01	.48	-.92	.44	-.96
8	फास्फोरस	2.0 ग्राम	2.10	+0.10	2.07	+.07	2.03	+.03	2.01	+.01	2.03	+.03
9	लोहा	47 मि0ग्राम	41.46	-5.54	42.54	-4.46	42.02	-4.98	43.70	-3.30	42.91	-4.09
10	कैरोटीन	3000म्यू.ग्राम	2564	-436	2845.56	-151.44	2971.27	-28.73	3524.72	-524.72	3279.85	+279.85
11	थियामीन	1.53मि0ग्रा0	2.74	+1.21	2.46	+.93	2.4	+0.87	2.42	+.89	2.41	+.88
12	राइबोफ्लेविन	1.66मि0ग्रा0	1.58	-0.08	1.56	-.10	1.55	-.11	1.55	-.11	1.55	-.11
13	नियासिन	20.33मि0ग्रा0	31.41	+11.08	30.74	+10.41	30.22	+10.08	28.44	+8.11	29.22	+8.89

श्रोत अध्याय 7 की तालिकाओं से +/- अधिकता/स्वल्पता

सारिणी 8.6 श्रोत के आकार के आधार पर विभिन्न वर्गों में ग्रहण किये जा रहे पोषक तत्वों का चित्र प्रस्तुत कर रही है। सारिणी से ज्ञात होता है ऊर्जा ग्रहण करने के सन्दर्भ में केवल सीमान्त कृषक लाभ की स्थिति में है जो मानक स्तर से 147.19 कैलोरी ऊर्जा अधिक ग्रहण कर रहे हैं जबकि अन्य वर्गों में न्यूनाधिक ऊर्जा की कमी दिखायी पड रही है स्वल्पता मध्यम वर्ग के कृषकों में सर्वाधिक 110.61 कैलोरी प्राप्त हुई है। ऊर्जा शरीर को कार्य शक्ति प्रदान करती है। जो दिन प्रतिदिन के विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने में व्यय होती है। ऊर्जा के उपरान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में प्रोटीन तत्व होता है जिसकी सभी वर्गों में संतुलन की स्थिति दिखायी देती है, लघु कृषक, लघु मध्यम कृषक तथा मध्यम कृषक न्यूनाधिक स्वल्पता की स्थिति में है जबकि सीमान्त कृषक तथा बडे कृषक अधिकता की स्थिति में है/सर्वाधिक खराब स्थिति पोषक तत्व बसा ग्रहण करने की है। वसा ग्रहण करने का मानक स्तर 90 ग्राम है। सभी वर्गों में वसा की मात्रा 50 प्रतिशत से कम ग्रहण की जा रही है, सभी वर्गों में सर्वाधिक लघु मध्यम कृषकों की है जिनमें 57.66 ग्राम की स्वल्पता पायी गयी है जबकि मध्यम कृषकों में यह स्वल्पता 47.53 ग्राम की देखी जा रही है यह पोषक तत्व सर्दी व गर्मी से शरीर को सुरक्षित रखने का कार्य करता है, जब शरीर में कार्वोहाइडेट की कमी हो जाती है और शरीर को पर्याप्त ऊष्मा प्राप्त नही हो पाती है तब वसा इस कमी को पूर्ण करता है इसके साथ ही शरीर को सौन्दर्य प्रदान करना मांशपेशियों को शक्ति प्रदान करना वसा का प्रमुख कार्य होता है। इसके अतिरिक्त विटामिट ए0डी0ई0 और के0 का महत्वपूर्ण श्रोत वसा ही है। शारीरिक अंगों को सुचारू रूप से संचालित करने का कार्य खनिज तथा खनिज लवण करते है जिसमें फास्फोरस,

लोहा, कैल्शियम, शोडियम पौटेशियम आयोडीन तथा मैग्नीशियम प्रमुख है। इनमें से कैल्शियम अस्थियों और दांतों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए परमावश्यक तत्व है। इसके अतिरिक्त हृदय गति को नियंत्रित करके समान्य गति बनाये रखने में कैल्शियम सहायता करता है और रूधिर को थक्का बनाने में सहायक होता है परन्तु इस तत्व की सभी वर्गो में स्वल्पता देखी जा रही है। इस तत्व को किसी भी वर्ग में 50 प्रतिशत से अधिक ग्रहण नही किया जा रहा है विभिन्न वर्गो में इस तत्व की कमी 0.92 ग्राम से लेकर 1.02 ग्राम तक दिखायी पड रही है इस तत्व के सन्दर्भ में सीमान्त कृषकों की स्थिति सर्वाधिक खराब देखी जा रही है। जो मानक स्तर 1.4 ग्राम में केवल 0.38 ग्राम मात्रा ग्रहण की जा रही है। फास्फोरस का कार्य कार्य स्नायुतंत्र को स्वस्थ्य रखना होता है रक्त को शुद्ध करना भी फास्फोरस का ही कार्य है। विभिन्न वर्गो में फास्फोरस तत्व संतुलित किया जा रहा है, मानक स्तर से 0. 01 ग्राम से लेकर 0.10 ग्राम तक अधिक मात्रा में ग्रहण किया जा रहा है। लोहा रूधिर कणिकाओं के लिए परमावश्यक तत्व है इससे ही लाल रक्त कणों (हीमोग्लोविन) का निर्माण होता है, महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा लोहा की अधिक आवश्यकता होती है, परन्तु इस पोषक तत्व की सभी वर्गो में कमी देखी जा रही है। यह कभी 3.30 मि0ग्राम से लेकर 5.54 मि0ग्राम तक की अल्पता विभिन्न वर्गो में पाई गई। सीमान्त कृषकों में इस तत्व की सर्वाधिक कमी देखी जा रही है जो 5.54 मि0ग्राम0 पाई गई जबकि मध्यम कृषकों में लोहे की 3.30 मि0ग्राम की कमी देखी गई। अन्य खनिजों में सोडियम, पोटेशियम, आयोडीन तथा मैग्नीशियम की भी कमी स्पष्ट रूप से दिखायी पड रही है।

शक्तिवर्धक पोषक तत्वों में कार्बोहाइड्रेट का स्थान प्रमख होता है, शरीर को आवश्यक ऊर्जा प्रदान करने, तंत्रिका तंत्र को पोषित करने शरीर के ताप को स्थिर रखने बसा को पचाने तथा विटामिट 'बी' के निर्माण में कार्बोहाइडेड सहायक होता हे। इस तत्व के सन्दर्भ में ''विभिन्न वर्गो पर दृष्टिपात करने पर यह पाया गया कि सभी वर्ग कार्बोहाइडेड मानक स्तर से अधिक ग्रहण कर रहे हैं। प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 450 ग्राम कार्बोहाइडेड आवश्यक होता है। परन्तु सभी वर्ग 550.51 ग्राम से लेकर 669.38 ग्राम तक कार्बोहाइडेड ग्रहण कर रहे है जिससे यह कहा जा सकता है कि सभी वर्ग इस वर्ग की अधिकता के शिकार हो रहे है। शरीर के समुचित विकास और वृद्धि के लिए विटामिन्स परमावश्यक तत्व है। क्योंकि ग्रहण किये जाने वाला भोजन उस समय तक अन्य पोषण तत्वों का पूर्ण उपयोग नही कर सकता है जब तक कि भोजन में विटामिंस उचित मात्रा में न हो, विटामिन स्वयं में कोई आहार नही है। फिर भी इनकी उपस्थिति शारीरिक क्रियाओं में तीव्रता ला देती है। प्रत्येक विटामिन का शरीर में अलग-अलग कार्य और महत्व होता है। एक प्रकार का विटामिन अकेला शरीर में बहुत कम उपयोगी होती है, विटामिंस को जीवन तत्व या सुरक्षात्मक तत्व भी कहते है। विटामिन को विटामिन बी भी कहते है यह हृदय रोगों से रक्षा पाचन शक्ति बढाना नेत्र रोगों से सुरक्षा तथा मांस पेशियों और स्नायुयों को स्वास्थ्य रखने में सहायता करता है, यह विटामिन सभी वर्गो में मानक स्तर से अधिक ग्रहण किया जा रहा है राइबोफलेविंग को विटामिन बी2 भी कहा जाता है यह तत्व नेत्र की पलकों को स्वस्थ्य रखता है। शरीरिक विकास में भागेदारी, चर्मरोगों से रक्षा, बालों को झडने से रोकना स्वसन तंत्र तथा स्नायु तंत्र की क्रियाओं को प्रभावित करता है। परन्तु सभी वर्गो में इस तथ्य की कमी देखी जा रही है यह कभी सीमान्त कृषकों में 0.8 मिलीग्राम से

लेकर बडे कृषकों में 0.11 मि0ग्राम तक पाई गयी। नियासिन को निकोटनिक अम्ल भी कहते हैं जिसका कार्य आहार नाल को स्वास्थ्य रखना, चर्म रोगों से सुरक्षा आदि होते हैं, इस तत्व की एक सामान्य शारीर को 20.33 मि0ग्राम तक आवश्यकता पडती है। सभी वर्गों में यह तत्व अधिक रूप में ग्रहण किया जा रहा है और यह अधिकता 8.11 मिलीग्राम से लेकर 11.8 मिलीग्राम तक देखी जा रही है। कैरोटीन हरे पत्तेदार सब्जियों में अधिक पाया जाता है जैसे-जैसे जोत का आकार बढ रहा है इसकी सेवन की जाने वाली मात्रा भी बढ रही है इसी कारण सीमान्त कृषकों में इस तत्व की स्वल्पता पायी गयी वहीं बडे कृषकों में अधिकता देखी जा रही है।

2. **कुपोषण जनित बीमारियों का वर्गीकरण** :-

पोषण और स्वास्थ्य का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है अच्छा स्वास्थ्य रखने के लिए उचित पोषण आवश्यक होता है। उचित पोषण का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा भोजन उचित मात्रा में मिलना जिससे उस व्यक्ति को स्वस्थ्य रहने तथा अपने दैनिक कार्यो को पूर्ण करने के लिए उपयुक्त मात्रा में पोषक पदार्थ और ऊर्जा प्राप्त हो सके। यदि व्यक्ति को उचित मात्रा में तथा उपयुक्त आहार न मिलने के कारण ऊर्जा और पोषक पदार्थ प्राप्त नही हो पाते है तब उसे कुपोषण कहा जाता हे। यदि व्यक्ति को शरीर की आवश्यकतानुसार उसके आहार से पोषक तत्व नही मिल पाते है तो शरीर का उचित विकास और क्रियाशीलता में बाधा उत्पन्न होती है और शरीर धीरे-धीरे दुर्बल और क्षीण होता जाता है। यदि शरीर को पोषण पदार्थ आवश्यकता से अधिक मात्रा में मिलते हैं तब भी शरीर मोटा और बेडौल हो जाता है। अतः केवल दुर्बल होना ही कुपोषण नही है बल्कि स्थूल और बेडौल होना भी कुपोषण की निशानी है। वास्तव में कुपोषण का असली कारण असन्तुलित आहार है परन्तु

त्रुटिपूर्ण भोजन ग्रहण करना भी कुपोषण को जन्म देता है, अतः कुपोषण के दो कारण हो सकते है– प्रथम परिस्थितियां की प्रतिकूलता के कारण असंतुलित भोजन तथा द्वितीय दोषपूर्ण या त्रुटिपूर्ण भोजन प्रतिकूल परिस्थितियो में अत्यधिक श्रम अस्वस्थ्य वातावरण, प्रतिकूल परिस्थितियो में विश्वसतापूर्ण कार्य करना, तथा नींद की कमी प्रमुख कारण हो सकते है इन कारणों से मानसिक तनाव उत्पन्न होते है जो भोजन के प्रति अरूचि पैदा करता है, तनाव का कारण घर की दयनीय आर्थिक स्थिति भी हो सकती है। अस्वस्थ्य शरीर भी पाचन तंत्र को प्रभावित करके कुपोषण को जन्म देता है। दोषपूर्ण भोजन में असतुलित आहार अनपयुक्त भोजन, गरिष्ठ और सरलता से न पचने वाला भोजन, अपर्याप्त भोजन, भोज्य पदार्थो में मिलावट तथा आस्वाभाविक भोजन तथा कुसमय भोजन आदि को रखा जा सकता है। मदिरा पान भी दोषपूर्ण भोजन के अन्तर्गत रखा जा सकता है। क्योंकि यह भी पांचन तंत्र को सीधा प्रभावित करता है।

कुपोषण से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय संतुलित आहार है तथा यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को नियमित समय पर भोजन करना चाहिए अनियमित भोजन का भी पाचन प्रणाली पर बुरा प्रभाव पडता है और अन्यतः व्यक्ति कुपोषण का शिकार हो जाता है। कुपोषण की अवस्था में कुपोषण के कारणों का पता लगाना आवश्यक होता है और कुपोषण वाले व्यक्ति का सही उपचार यही होता है।

1. यदि कुपोषण का कारण भोज्य पदार्थ की कमी है तो भोज्य पदार्थ की मात्रा बढा देनी चाहिए।
2. यदि भोज्य पदार्थो में पोषक तत्वों की कमी से कुपोषण होता है तो पूरक आहार देना उचित होगा। इसके लिए संतुलित भोजन का ज्ञान परमावश्यक हो जाता है। अध्ययन क्षेत्र में जनसाधारण का स्वास्थ्य अत्यन्त निम्न कोटि का है

जिससे संतुलित भोजन का पूर्व ज्ञान होना चाहिए जिसमें भोजन के विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलन हो साथ इस बात का भी ज्ञान आवश्यक है कि विभिन्न तत्वों के अभाव में कौन सा रोग उत्पन्न हो सकता है जिससे रोग का उपचार सरलता से सम्भव हो सके।

1. अ. **प्रोटीन की कमी से हानि :-**

शारीरिक विकास हेतु प्रोटीन का विशेष महत्व है। निर्धनता तथा अज्ञानता के कारण शिशुओं और बालकों को पर्याप्त प्रोटीन की उपलब्धि नही हो पाती है जिससे वे निरन्तर रोग ग्रस्त बने रहते हैं उन्हे बृक्क तथा यकृत सम्बन्धी अनेकों रोग हो जाते हैं प्रोटीन की कमी से बच्चों का स्वाभाविक एवं उचित विकास नही हो पाता।

1. शारीरिक विकास और वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है।
2. यकृत बढने और उस पर सूजन आने का खतरा उत्पन्न हो जाता है।
3. सिर के बाल भूरे रंग तथा गंजेपन का रोग हो जाता है।
4. त्वचा पर चकत्ते पडने लगते हैं।
5. शरीर की पेशी तंत्र में पानी भरने से शरीर पर सूजन आने का खतरा बढ जाता है।
6. प्रौढावस्था में एनीमिया (शरीर में रक्त की कमी) का रोग हो जाता है ऐसा शरीर में हीमोग्लोबिन की कमी से हो जाता है।
7. रक्ताल्पता की रोगी महिलायें दुर्बल संतान को जन्म देती है जो अल्प विकसित होते है।
8. रक्ताल्पता की रोगी गर्भवती महिलाओं में जच्चा-बच्चा के जीवन को खतरा पैदा हो जाता है।
9. शरीर के भार में कमी आ जाती है।

ब. **प्रोटीन की अधिकता से हानि :-**

प्रोटीन का अधिक मात्रा में सेवन पाचन शक्ति पर बुरा प्रभाव डालता है जिससे अनेक पाचन सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते है तथा अधिक ऊर्जा उत्पन्न होने से यकृत तथा गुर्दे असमय में ही कमजोर हो जाते है तथा अपच रोग हो जाता है। जब अपच रोग हो जाता है तो धीरे-धीरे भोजन के प्रति अरूचि होने लगती है और शरीर दुर्बल होने लगता है साथ ही अपच का रोग गैस्टिक एसिडिटी जैसे रोगों का कारण बनती है।

2. **वसा की कमी से हानियाँ :-**

वसा भी ऊर्जा का प्रमुख साधन है तथा शरीर की संचित शक्ति मानी जाती है जिसका प्रयोग कार्वोहाइड्रेटस की कमी के समय होता है। वसा से हमें ऊष्मा तो उपलब्ध होती ही है साथ में विटामिन 'ए' तथा डी भी प्राप्त होता है। जन्तु बसा की अपेक्षा वनस्पति वसा शीघ्र पच जाता है। वसा की कमी से निम्नलिखित हानियों की सम्भावना रहती है।

1. शारीरिक विकास में कमी आने लगती है।
2. प्रजनन शक्ति क्षीण पड जाती है।
3. त्वचा पर स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे उभार आते है इस रोग को फाइनोइमा कहते है।

2. **वसा की अधिकता से हानियाँ :-**

1. शरीर स्थूल और बेडौल हो जाता है।
2. गुर्दे अपना कार्य ठीक प्रकार से नही कर पाते है जिससे शरीर में यूरिया और यूरिक अम्ल जैसे हानिकारक पदार्थ बढने से शरीर रोगों के आक्रमण के अनुकूल हो जाता है।

3. शरीर में कोलेस्टेराल की मात्रा बढ जाने से रक्त वाहनियां संकुचित हो जाती है और रूधिर दाब (ब्लेड प्रेशर) का रोग होने की सम्भावना बढ जाती हे।

3. **कार्बोहाइडेट्स की कमी से हानियाँ** :-

शक्ति वर्धक तत्वों में से कार्बोहाइडेट्स का प्रमुख स्थान होता है ये कार्वन, आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के यौगिक होते हैं। इनकी रसायनिक रचना की विशेषता यह होती है कि इनमें स्टार्च देने वाले पोलीसेकेराइडस तथा शकर्रा देने वाले डाईसेकेराइडस कहे जाते है। वसा की कमी से शरीर में निम्नलिखित हानियां होती है।

1. शरीर को पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा प्राप्त नही होती है।
2. शरीर थकावट और कमजोरी अनुभव करने लगता है।
3. शरीर के विकास पर बुरा प्रभाव पउता है।
4. शरीर में स्फूर्ति के स्थान पर आलस्य छाने लगता है।

3. **कार्बोहाइडेट्स की अधिकता से हानियाँ** :-

अधिक मात्रा में कार्बोहाइडेट्स इकट्ठा हो जाने से ग्लाइकोजन अधिक मात्रा में बनने लगता है तत्पश्चात यह त्वचा के नीचे पर्तो के रूप में इकट्ठा होने लगता है। यकृत तथा मांसपेशियों में भी एकत्र होने लगता है जिससे शरीर में मोटापा बढने लगता है और शरीर बेडौल होने लगता है।

4. **खनिज लवणों की कमी से हानियां** :-

शारीरिक अंगों का सुचारू रूप से संचालन करने में खनिज लवणों का विशेष महत्व होता है। विभिन्न नवण किसी न किसी अंग का निर्माण करने में सहायक होते है। संक्षेप में इनकी कमियों से शारीरिक हानियों का विवरण इस प्रकार है :-

अ. फास्फोरस-

1. अस्थियों एवं दातों के निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है।
2. तन्त्रिकाओं का कार्य सुचारू रूप से नही होता है।
3. शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।
4. वयस्क स्त्रियों में कूल्हों में सूजन आ जाती है।

ब. लोहा :-

1. शरीर में हीमोग्लोविन की कमी हो जाती है।
2. स्वसन क्रिया को प्रभावित करता है।
3. शरीर पीला पडने लगता है और एनीमिया हो जाता है।

स. **कैल्सियम :-**

1. अस्थियां कमजोर और छांत कमजोर होने लगते हैं।
2. बच्चों को सूखा रोग हो जाता है।
3. बच्चों की अस्थियां कमजोर होकर टेढी-मेढी हो जाती है।
4. दूध पिलाती महिलाओं का दूध कम हो जाता है।
5. चर्मरोग की सम्भावना बढ जाती है।
6. रक्त का थक्का शीघ्र नही बन पाता।
7. दांत आडे-तिरछे तथा उन पर धब्बे पड जाते है।

द. **आयोडीन :-**

1. थाइराइड ग्रन्थि पर बुरा प्रभाव पउता है।
2. घेंघा रोग हो जाता है जिसमें गर्दन की ग्रन्थि फूल जाने से गांठ या

   टयूमर का रूप ले लेती है।
3. शिशु का विकास प्रभावित होता है।

4. चेहरे पर सूजन आ जाती है।

5. बाल शुष्क और झडने लगते है।

6. शिशु प्रायः मन्दबुद्धि होता है।

य. **सोडियम :-**

1. शरीर की क्रियाशीलता मन्द पडने लगती है।

2. पेट में कब्ज रहने लगता है। भूख कम हो जाती है।

3. अधिक मात्रा में सेवन से रक्तचाप की शिकायत बढने लगती है।

4. सोडियम की अधिकता से ऊतकों में सूजन आ जाती है तदोपरान्त सारे शरीर में फैल जाती है।

6. सोडियम की कमी से मोतियाविन्द और बहरेपन का रोग बढने की सम्भावना बढ जाती है।

7. तीव्र अतिसार, उल्टी तथा अधिक पसीना निकलने लगता है।

8. शरीर में अम्लता बढ जाती है।

र- **तांबा :-**

1. कमी से शरीर में शिथिलता आ जाती है।

2. पाचन क्रिया मंद पड जाती है।

3. स्वांश लेने में कष्ट होने लगता है।

4. हीमोग्लोविन बनने में रूकावट आती है।

5. **<u>विटामिन्स की कमी से हानियाँ</u> :-**

प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह स्वस्थ्य रहे। संतुलित भोजन करके ही वह स्वस्थ्य रह सकता है। वैज्ञानिकों ने खोज की है कि विभिन्न पोषण तत्वों का

तब तक कोई उपयोग नही हे जब तक भोजन में विटामिंस न हों। प्रत्येक विटामिन का शरीर में अलग-अलग कार्य होता है। एक प्रकार का विटामिन अकेला शरीर के लिए बहुत कम उपयोगी होता है। यदि भोजन में उचित मात्रा में विटामिन उपस्थित नही होते तो विटामिन हीनता जनित रोग उत्पन्न हो जाते है।

अ. **विटामिन 'बी'** विटाामिन बी में (बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$ ....बी$_{12}$) बारह विटामिन आते है अतः इस समूह को विटामिन बी काम्पलेक्स कहते हैं। कुछ प्रमुख व महत्वपूर्ण विटामिनों का विवरण दिया जा रहा है।

1. <u>**विटामिन बी$_1$ की कमी से हानियां**</u> :-

    1. बेरी-बेरा रोग हो जाता है।
    2. भूख कम लगने लगती है।
    3. घुटने तथा मांसपेशिया शिथिल पडने लगती है।
    4. स्नायुतंत्र कमजोर होने लगता है।
    5. हृदय दुर्वल पडने लगता है।
    6. हृदय आस्वाभाविक रूप से फैलकर बडा हो जाता है।
    7. चक्कर आने से आंखों में अंधोरा छाने लगता है।

2. <u>**विटामिन बी$_2$ की कमी से हानियाँ**</u> :-

    1. होंठ सूख जाते हैं तथा उनमें पपडी बनने लगती है।
    2. त्वचा शुष्क और उसमें दरारे पडने लगती है।
    3. जीभ में सूजन आ जाती है।
    4. नेत्र लाल तथा दृष्टि धुधली पडने लगती है।
    5. कानों, मुंह व ओठो की श्लेष्मा का रंग स्वेत पडने लगता है।

3. **विटामिन बी$_3$ की कमी से हानियाँ** :-

   1. पैरों में जलन होने लगता है।
   2. हाथपैर सुन्न और उनमें झनझनाहट होने लगती है।
   3. जठरान्त्र (गेंस्ट्रो इन्टेस्टिनल) रोग हो जाते हैं।
   4. हृदय में रूधिर परिवहन सुचारू रूप से नही होता है।

4. **विटामिन बी$_6$ की कमी से हानियाँ** :-

   1. पेलेग्रा के रोग के लक्षण प्रकट होने लगते है।
   2. अत्यन्त घबराहट अनुभव होती है।
   3. अनिन्दा का रोग हो जाता है।
   4. स्वभाव में चिडचिडापन आ जाता है।

5. **विटामिन बी$_{10}$ की कमी से हानियाँ** :-

   1. लाल रक्त कोशिकाओं का औसत आकार बढ जाता है।
   2. रक्ताल्पता का रोग हो जाता है।

6. **विटामिन बी$_{12}$ की कमी से हानियाँ** :-

   1. घाटक एनीमिया रोग हो जाता है।
   2. रक्त निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है।
   3. जीभ में सूजन आ जाती है।
   4. मेरूरज्जु से सम्बन्धित स्नायु रोग हो जाता है।

ब. **विटामिन सी की कमी से हानियाँ** :-

1. स्कर्बी रोग हो जाता है।
2. अधोत्वचीय और अर्न्तपेशीय रक्तश्राव होने लगता है।
3. मासंपेशियों तथा जोडों में दर्द रहने लगता है।
4. टांगे कमजोर होने लगती है।

5. विटामिन सी की अधिकता से गठिया रोग की सम्भावना बढ जाती है।

6. सी की अतिधकता से अतिसार पेट में दर्द तथा पांचन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते है।

स. **विटामिन ए की कमी से हानियाँ :-**

1. रतौधी रोग हो जाता है।
2. आहारनाल तथा स्वांस नली और कार्निया प्रभावित होती है।
3. शारीरिक विकास और वृद्धि में बाधा उत्पन्न होती है।
4. त्वचा सूखी और खुरदुरी हो जाती है।
5. नेत्र को कार्निया में सफेद धब्बे पड जाते है।
6. पथरी और अमाशय में फोडा होने की सम्भावना हो जाती है।
7. इसकी अधिकता से लम्बी अस्थियों में दर्द और सूजन रहने लगती है।
8. मचली आने लगती है।
9. चर्म रोग हो जाता है।
10. इसकी अधिक मात्रा पाचन क्रिया को प्रभावित करती है।

द. **विटामिन डी की कमी से हानियाँ :-**

1. फास्फोरस तथा कैल्शियम का सही उपापचय नही हो पाता है।
2. अस्थियां दुर्बल होकर मुड जाती है।
3. रिकेट्स या रेकाइटिस रोग हो जाता है।
4. इस विटामिन की अधिकता से ही जी मिचलाना उल्टी आना, सिर में दर्द और आदि रोग हो जाते हैं।

य. **विटामिन 'ई' की कमी से हानियाँ :-**

1. नारियों में में बन्ध्यता तथा पुरूषों में नंपुसकता का कारण इस विटामिन की कमी होती है। क्योंकि इससे सुक्राणु कम व दुर्बल हो जाते है।

2. मांश पेशियों में एक विशेष प्रकार का रोग हो जाता है।

3. इसकी अधिकता से जनन ग्रन्थिया तथा तंत्रिका पेशी तंत्र प्रभावित होता है।

4. इसकी अधिकता से पिटयूटरी ग्रन्थि तथा थाइराइड ग्रन्थि को भी प्रभावित करता है।

र. **<u>विटामिन के की कमी से हानियाँ</u>** :-

इस विटामिन की कमी से रक्त का थक्का नही बन पाता है क्योंकि प्रोथ्राम्बीन नामक प्रोटीन की रूधिर में कमी हो जाती है जिसके कारण चोट लगने पर रक्त श्राव जल्दी होता है।

सारिणी कमांक 8.7 विभिन्न विटामिनों के प्राप्ति श्रोत उपयोगिता एवं अभाव से हानियाँ

विटामिन का नाम	प्राप्ति श्रोत	उपयोगिता	अभाव से हानियाँ
ए	दूध, दही, मक्खन, हरी सब्जी, लाल गाजर, शकरकन्द, मछली का तेल, अण्डे का पीतक आदि	शरीर की समुचित वृद्धि नेत्र, दांत, और त्वचा आदि के स्वास्थ्य की रक्षा	नेत्र में रतौंती का रोग, दन्त विकास अवरूद्ध त्वचा का सूखकर कठोर पड जाना आदि।
बी$_1$ (थियामिन)	अनाज के दानों के छिलके में सेम और मटर के बीजों में दूध पनीर और मांस तथा खमीर आदि में।	शरीर की समुचित वृद्धि तंत्रिका और पेशियों की कियाशीलता के लिए आवश्य	बेरी-बेरी नामक रोग हो जाना भूंख कम हो जाना आदि।
बी$_2$ (राइवोफ्लेविन)	दूध अण्डे सब्जियां कलेजी (मांस) आदि	शरीर की वृद्धि त्वचा आदि को स्वस्थ्य रखना में।	दृष्टि कमजोर हो जाती है त्वचा फटने लगती है।
बी$_3$	विभिन्न भोज्य पदार्थों में	चयापचयी किया में,	त्वचा सूख जाती है तथा दाने पड जाते है।
बी$_5$ (निकोटानिक अम्ल)	दूध, मट्ठा, सब्जियां ताजा मांस अण्डे आदि में	पाचन तंत्र और तन्त्रिका तंत्र को स्वस्थ्य रखना	पाचन तंत्र का कमजोर पड जाना त्वचा रोग हो जाना।
बी$_6$	दूध व अण्डे की जर्दी में	त्वचा को मुलायम रखना	त्वचा के रोग हो जाना
बी$_{12}$	मांस दूध तथा अण्डे आदि में	रक्त कणिकाओं के निर्माण में,	रक्त में क्षीणता आ जाती है।
सी (एस्काविन अम्ल)	आंवला, आम, नीबू, संतरा, टमाटर, जामुन आदि	मसूढ़ों और दांतों को स्वस्थ्य रखना घावो में भरने तथा पाचन किया में सहायक	स्कर्वी रोग तथा एनीमिया (रक्ताल्पता) रोग हो जाना।
डी	दूध मक्खन, मांस, अण्डे की जर्दी मछली का तेल आदि में	अस्थियों के स्वास्थ्य एवं विकास में सहायक	सूखा रोग हो जाना, हडिड्यों का कमजोर पड जाना।
ई	दूध मक्खन, हरी पत्तेदार सब्जियां गेहूं और अण्डे की जर्दी मूंगफली आदि में	जनन कियाओं (सन्तानोत्पति में सहायक)	जननांगों का कमजोर पड जाना कंकाल पेशियों का कमजोर पड जाना
के	दूध हरे पत्तेदार सब्जियां टमाटर कलेजी अण्डे की जर्दी पनीर आदि में।	रूधिर का थक्का बनाने में सहायक	रक्त का थक्का न बन पाने के कारण रक्त स्राव न रूक पाना।

प्राय: कुपोषण से होने वाले अधिकांश रोग पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं। जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1. **क्वार्शियाकर :-**
यह रोग मुख्यतया बच्चों में प्रोटीन की कमी के कारण अथवा उचित मात्रा में कैलोरी न मिल पाने के कारण होता है इससे बच्चों का मानसिक विकास रूक जाता है बाल झडने लगते हैं गाल फूलकर कडे पड जाते हैं। गालों के नीचे त्वचा में पानी भर जाने से चमकने लगते है।

2. **मैरास्मस :-**
प्रायः बच्चों में यह रोग कैलोरी की अत्यधिक कमी के कारण होता है। इस रोग में त्वचा में चर्बी की कमी के कारण झुर्री पडने लगती है और त्वचा लटक जाती है। हांथ पैर बहुत अधिक पतले पड जाते हैं और सिर बन्दरनुमा हो जाता है।

3. **अस्टियो मलेसिया :-**
यह रोग अस्थियों में कैल्सियम फास्फोरस तथा विटामिन डी की कमी के कारण होता है। इसे अस्थि विकृत भी कहते हैं।

4. प्रोटीन लौह, लवण, विटामिन सी तथा विटामिन बी की संयुक्त कमी होने पर एनीमिया या रक्तल्पता रोग हो जाता है।
5. विटामिन सी की कमी से स्कर्बी रोग हो जाता है।
6. विटामिन ए की कमी से नेत्र रोग हो जाते हैं।
7. विटामिन बी$_1$ की कमी से बेरी-बेरी रोग हो जाता है।
8. विटामिन बी$_2$ की कमी से जीभ में छाले पड जाते हैं तथा होंठो और कानों की त्वचा पर दरारें पड जाती है।
9. आयोडीन की कमी से घेघा रोग हो जाता है।

10. जल में क्लोरीन की मात्रा अधिक हो जाने से फ्ल्यूरोसिस रोग हो जाता है।

3. **<u>पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या</u> :-**

इस प्रकार के अध्ययनों से यह तथ्य ज्ञात होता है कि जीवन शैली में परिवर्तन के साथ लोग केवल भौतिक सुविधाओं को भी बढाने में लगे हुए है। या जिनके लिए भौतिक साधनों का संग्रह किया जा रहा है वे अपने स्वास्थ्य के प्रति भी उतने ही सावधान हैं। सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि विभिन्न रोगों का प्रारम्भिक कारण उनके खान-पान में ही दूढा जा सकता है। यह तथ्य तो सर्वविदित है कि लोगों के स्वरूप का स्तर पूर्णतया भोजन तथा भोजन से प्राप्त किये जाने वाले पोषक तत्वों पर निर्भर करता है। यरि भोजन पोषक तत्वों से युक्त होगा स्वास्थ्य का स्तर भी उतना अच्छा होगा। इस दृष्टि से देखा जाये तो अध्ययन क्षेत्र में अधिकांश रोगों का प्राथमिक कारण पोषण सम्बन्धी असन्तुलन है और इस असन्तुलन के कारण क्षेत्र की एक बडी जनसंख्या प्रभावित है स्पष्ट है कि स्वास्थ्य के स्तर को ऊंचा करने के लिए इसके पोषण सम्बन्धी स्तर में सुधार की आवश्यकता है।

पिछले अध्याय में हम विभिन्न वर्गो द्वारा ग्रहण किये जाने वाले खाद्य पदार्थो तथा उनके प्राप्त पोषक तत्वों का विश्लेषण कर चुके है। जिसमें विभिन्न पोषक तत्वों का आवश्यक मानक स्तर से कम/अधिक ग्रहण किया जाना जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न कुपोषण जनित रोगों की शिकार जनसंख्या का तुलनात्मक विश्लेषण इस शीर्षक में किया जा रहा है। यह तथ्य पिछले अध्याय में स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न वर्गो द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भोजन को न तो मात्रात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ कहा जा सकता है और न उसमें गुणात्म्क श्रेष्ठता दिखाई पडती है। क्योंकि भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थो का

समायोजन लोगों द्वारा केवल उदरपूर्ति की दृष्टि से ही ठीक प्रतीत होता है। किन्तु भोजन में विभिन्न पदार्थो से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों में भारी असन्तुलन स्पष्ट होता है। विभिन्न खाद्य पदार्थो से प्राप्त पोषक तत्व मात्रात्मक दृष्टि से प्राप्त पोषक तत्व मात्रात्मक दृष्टि से तो कुछ ठीक लगते है परन्तु गुणात्मक दृष्टि से अत्यन्त निम्न स्तरीय प्रतीत हो रहा है क्योंकि अधिकांश पोषक तत्व खाद्यान्यों से ग्रहण किये जा रहे है जो गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ नही होते है। उदाहरण के लिए सभी वर्गो में प्रोटीन आवश्यक मानक स्तर से अधिक ग्रहण की जा रही परन्तु इसका अधिकांश हिस्सा खाद्यान्यों से प्राप्त होने के कारण उतना श्रेष्ठ नही है जितना श्रेष्ठ प्रोटीन अण्डा दूध मांस मछली तथा पनीर आदि खाद्य पदार्थो से प्राप्त होता है, यही तथ्य न्यूनाधिक अन्य पोषक तत्वों के सम्बन्ध में दिखाई पडता है। पोषक तत्वों की मात्रात्मक एवं गुणात्मक उपलब्धता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र में लोगों की खाद्य आदतें अत्यन्त निम्न स्तरीय है जो ग्रामीण निर्धनता की ओर संकेत करती है। सर्वेक्षण के समय विभिन्न वर्गो में पोषक सम्बन्धी रोगों का विवरण सारणी 8.8 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या (प्रतिशत में)

पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या (प्रतिशत में)

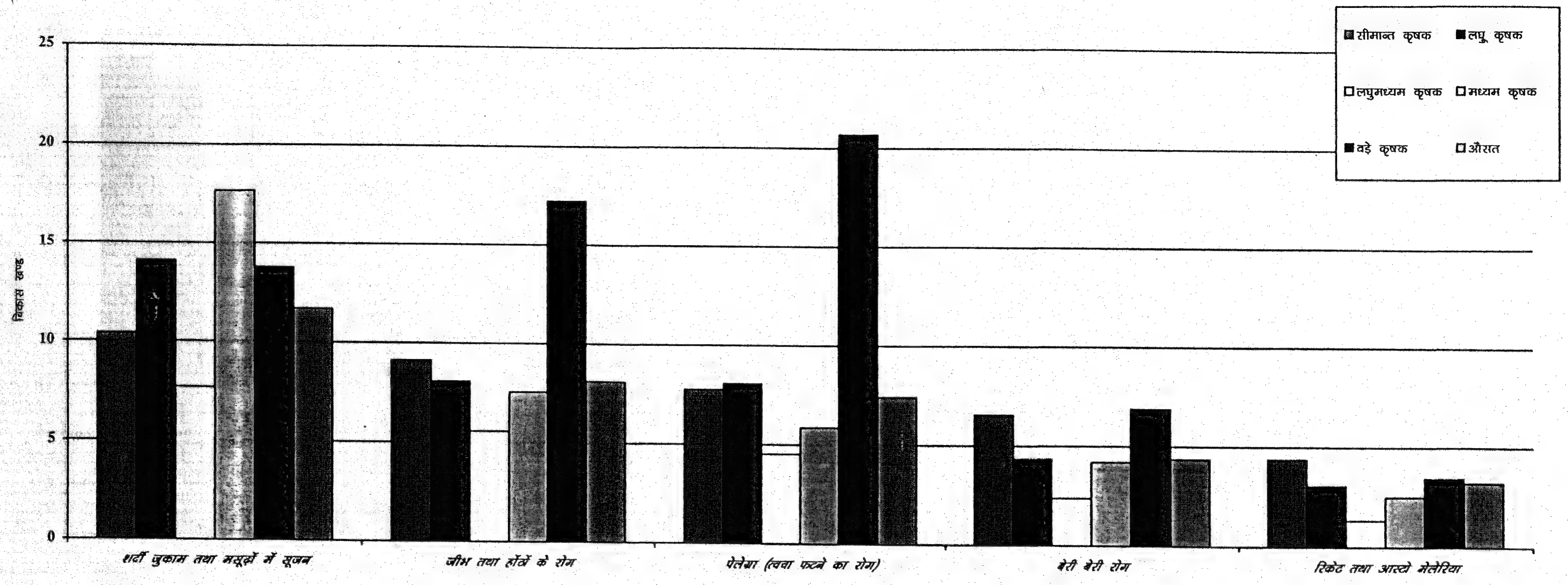

क्रमशः

पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या (प्रतिशत में)

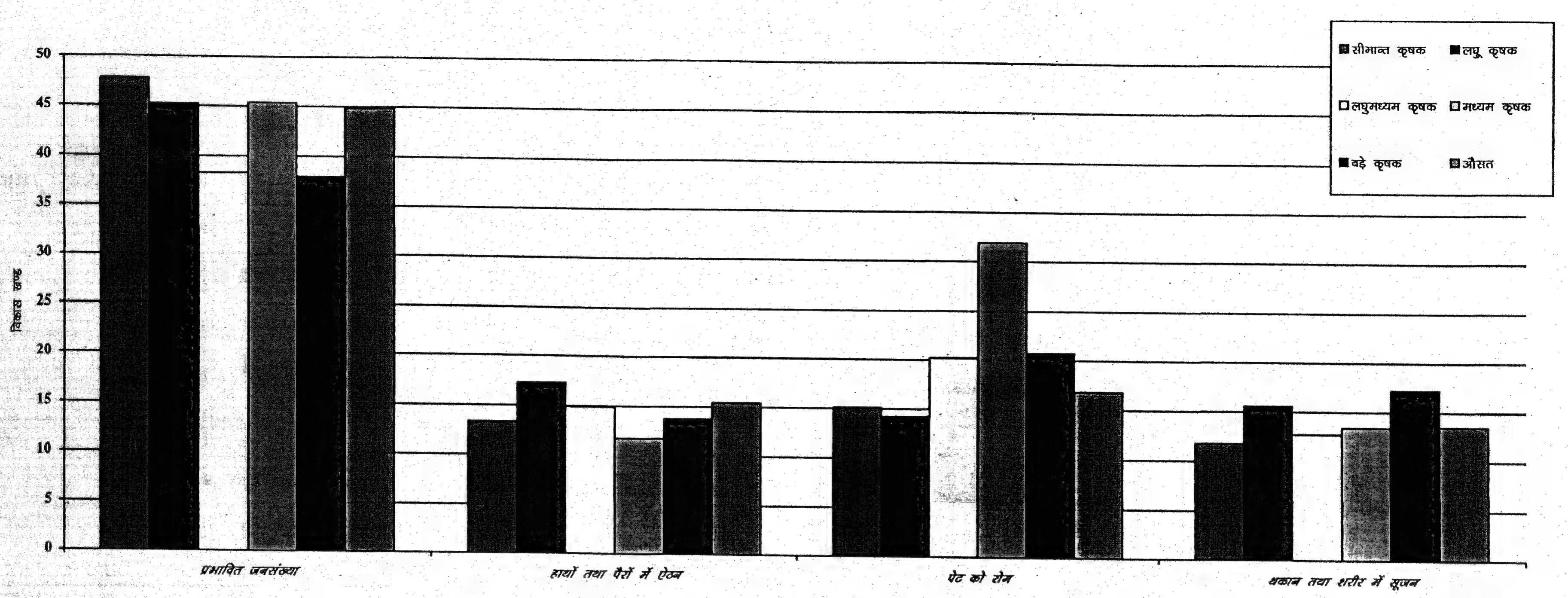

क्रमशः

सारिणी कमांक 8.8

पोषण सम्बन्धी रोगों से प्रभावित जनसंख्या (प्रतिशत में)

कृषकों का वर्ग	प्रभावित जनसंख्या	हाथों तथा पैरों में ऐठन	पेट को रोग	थकान तथा शरीर में सूजन	सर्दी जुकाम तथा मसूढ़ों में सूजन	जीथ तथा होंथों के रोग	पेलेग्रा (त्वचा फटने का रोग)	बेरी-बेरी रोग	रिकेट तथा आस्टोमेलेशिया	रतौंधी रोग	स्कर्वी रोग	जोडो तथा गांठो में दर्द	डाईविटीज (मधुमेह)
सीमान्त कृषक	47.82	13.36	15.16	11.83	10.41	9.13	7.97	6.56	4.37	5.40	5.01	10.80	2.31
लघु कृषक	45.25	17.32	14.24	15.64	14.11	8.10	8.10	4.33	3.07	3.91	4.47	8.66	1.82
लघु मध्यम कृषक	38.30	14.89	20.21	12.77	7.71	5.58	4.52	2.39	1.33	3.19	3.86	7.45	1.86
मध्यम कृषक	45.38	11.76	31.93	13.44	17.65	7.56	5.88	4.20	2.52	1.68	3.36	13.44	3.36
बडे कृषक	37.93	13.79	20.70	17.24	13.79	17.24	20.70	6.90	3.45	3.45	3.45	17.24	6.90
औसत	44.84	15.46	16.85	13.53	11.69	8.13	7.43	4.86	3.22	4.16	4.31	9.66	2.18

सारिणी 8.8 इस तथ्य पर प्रकाश डाल रही है कि कुल जनसंख्या का 44.84 प्रतिशत भाग 1 या 1 से अधिक पोषण सम्बन्धी रोगों से ग्रसित है। सर्वाधिक प्रभावित जनसंख्या सीमान्त कृषक परिवारों की है। जिनकी कुल जनसंख्या का 47.82 प्रतिशत कुपोषण का शिकार है। मध्यम कृषक परिवारों की प्रभावित जनसंख्या 45.38 प्रतिशत है तथा लघु कृषक परिवारों का 45.25 प्रतिशल लगभग एक समान स्थिति में है। जबकि न्यूनतम कुपोषण जनित रोगों का शिकार बढे कृषक परिवारों के सदस्य 37.93 प्रतिशत है। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया है कि लगभग सभी परिवारों में महिलाओं की तुलना में पुरूषों पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि बच्चों के भोजन पर विशेष ध्यान आकर्षित किया जाता है यह भी तथ्य स्पष्ट हुआ कि लगभग सभी परिवारों में संतुलित भोजन तथा संतुलित पोषक तत्व से अनभिज्ञ है जिससे निष्कर्ष यह निकलता है कि शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ भौतिक प्रगति तो स्पष्ट रूप से दिखायी पडती है तथा खान-पान में भी तेजी से परिर्वतन हुआ है परन्तु खान-पान में किन खाद्य पदार्थो से श्रेष्ठ कोटि के पोषक तत्व प्राप्त होते है। इस तथ्य से लगभग सभी सदस्य अनजान प्राप्त हुये। महिलाओं में भोजन पकाने की आधुनिक विधियों का प्रचलन तो बढा परन्तु भोजन में आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों से युक्त भोज्य पदार्थो के समायोजन से पूर्णतया अज्ञान है। स्वाभाविक है कि परिवार के सदस्यों को कुपोषण या अल्प पोषण से उत्पन्न होने वाले रोगों का भी प्रारम्भिक ज्ञान नही है तब उपचार भी सम्भव नही है। परिणाम स्वरूप चिकित्सा व्यय बढता जा रहा है। समय पर भोजन करना चाहिए इस तथ्य का ज्ञान सामान्य रूप से सभी को है परन्तु भोजन समय पर करें ऐसा प्रयास करने के बाद भी समय नही हो पाता है जिससे कारण पोषण समस्यायें जन्म लेती है जिन परिवारों की आय का स्तर ऊंचा है और परिवार के कुछ सदस्य

सरकारी अथवा गैर सरकारी सेवाओं में कार्य करके अतिरिक्त आय अर्जित करते हैं उनके परिवारों में भी कुपोषण की समस्या देखी गयी है। जो केवल पोषण सम्बन्धी जानकारी के अभाव के कारण प्रतीत हुई। सर्वेक्षण के समय अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित रोग प्रकाश में आये-

1. <u>हाथों तथा पैरों में ऐठन</u> :-

इस रोग से प्रभावित सर्वाधित संख्या 17.32 प्रतिशत लघु कृषक परिवारों में पाई गई, इसके बाद लघु मध्यम कृषक परिवारों में 14.89 प्रतिशत सदस्य इस रोग से ग्रसित देखे गये जबकि मध्यम कृषक परिवारों में न्यूनतम संख्या 11.76 प्रतिशत प्राप्त हुई। बडे कृषक तथा सीमान्त कृषक परिवारों में क्रमशः 13.79 प्रतिशत तथा 13.36 प्रतिशत जनसंख्या इस रोग से प्रभावित है। यद्यपि किसी रोग के लिए अनेक कारण संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते है परन्तु शरीर में विटामिन 'सी' (एस्कोविक एसिड) की कमी हाथों तथा पैरों में ऐठन के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी होता हे। अध्ययन क्षेत्र में विटामिन 'सी' सभी वर्गो में मानक स्तर से कम ग्रहण किया जा रहा है क्योंकि फलाहार में यह अम्ल नीबूं, संतरा, आम, जामुन, तथा आवंला और टमाटर का भोजन में कम मात्रा में सेवा किया जा रहा है इस कारण शरीर को आवश्यक विटामिन सी उलब्ध नही हो पाता है।

2. **पेट के रोग** :-

पेट के रोग का मूल कारण अपच होती है और कब्ज अनेक बीमारियों का मुख्य कारण बनती है। यद्यपि गैस तथा उच्च अम्लता की शिकायत न्यूनाधिक सभी वर्गो में प्राप्त हुई है, परन्तु रोग के रूप में सर्वाधिक जनसंख्या मध्यम कृषक परिवारों में 31.93 प्रतिशत प्रभावित देखी गयी। दूसरे स्थान पर बडे कृषक परिवार के सदस्य 20.70 प्रतिशत प्राप्त हुए जबकि लघु मध्यम कृषक

परिवार के 20.21 प्रतिशत सदस्य इस रोग से ग्रसित देखे गये चतुर्थ और पंचम स्थान पर क्रमशः सीमान्त कृषक 15.16 प्रतिशत तथा लघु कृषक 14.24 प्रतिशत इस रोग से पीडित दिखायी पडे। इस रोग का मूल कारण विटामिन बी$_1$ (थियामिन) की कमी होती है। यद्यपि अध्ययन क्षेत्र में थियामिन की मात्रा लगभग सभी वर्गो में मानक स्तर से अधिक ग्रहण की जा रही है परन्तु यह पोषक तत्व का अधिकांश भाग खाद्यान्यों से प्राप्त किया जा रहा है जो निम्न कोटि का होता है इस कारण शरीर के लिए उतना ही लाभप्रद नही होता जितना कि हरी सब्जियों, दूध फल, तथा अण्डे से प्राप्त होने वाला थियामिन श्रेष्ठ कोटि का होता है शायद यही कारण है कि पर्याप्त मात्रा में थियामिन ग्रहण करने के बाद भी लोग पेट के रोगों से ग्रसित हो रहे है। पेट के रोग अपच से बचने के लिए रेशेदार खाद्य पदार्थो के अधिक सेवन की सलाह दी जा सकती है जिससे लोग पेट के रोगों से मुक्त रह सके। समय पर नियमित भोजन न करने के कारण भी पेट में कब्ज रहने लगती है जो धीरे-धीरे स्थायी हो जाती है।

3. **थकान तथा शरीर में सूजन :-**

अध्ययन क्षेत्र का 13.53 प्रतिशत भाग इस रोग से प्रभावित देखा गया है जिसमें बडे कृषक परिवार के कुल सदस्यों में 17.24 प्रतिशत सदस्य थकान तथा शरीर में सूजन के रोग से ग्रसित पाये गये जबकि 15.64 प्रतिशत लोग लघु कृषक परिवारों में प्रभावित देखे गये हैं। मध्यम कृषक परिवार 13.44 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक परिवार 12.77 प्रतिशत और सीमान्त कृषक परिवारों के सदस्यों का 11.83 प्रतिशत हिस्सा इस बीमारी से पीडित देखा गया है। इस रोग का कारण भोजन में बसा, ऊष्मा, थियामिन तथा नियासिन का कम मात्रा

में ग्रहण करना रहता है। अतः उक्त पोषक तत्वों का संतुलित मात्रा में उपयोग इस रोग से सुरक्षा प्रदान करता है।

4. **सर्दी जुकाम तथा मसूढ़ों में सूजन :-**

ऋतु परिवर्तन के समय वातावरण में तापमान परिवर्तन का प्रभाव शरीर पर पडता है और इस तापमान परिवर्तन के कारण लोगों का सर्दी जुकाम से पीडित हो जाना एक सामान्य सी बात है, परन्तु जब रोग के फैलाव का समय बढ जाता है तो यह सर्दी जुकाम का रोग किसी घातक बीमारी के प्रारम्भ का संकेत देने लगता है। और जब खासी के साथ रक्त मिश्रित कफ आने लगता है तब यह रोग स्कर्वी रोग के प्रकट होने लगते है जिसका मूल कारण भोजन में विटानमिन 'सी' तत्व की कमी होता है। इस रोग से सर्बाधिक 17.65 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवार के सदस्य पीडित पाये गये, द्वितीय स्थान पर लघु कृषक परिवार के सदस्य 14.11 प्रतिशत देखे गये, बडे कृषक परिवार के 13.79 प्रतिशत सदस्यों में 7.71 प्रतिशत लघु मध्यम कृषक परिवार के सदस्यों में जबकि सीमान्त कृषक परिवारों के 10.41 प्रतिशत सदस्यों में इस रोग के स्पष्ट लक्षण देखे गये।

5. **<u>जीभ तथा होठों के रोग</u> :-**

जब लोगों के भोजन में राइबोफ्लेविन (विटामिन बी2) की कमी हो जाती है तब इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते है और मुख के किनारे की त्वचा में चटकन प्रारम्भ हो जाती है। फोडा फुन्सियों का भी प्रकोप बढने लगता है और होठ तथा जीभ का रंग लालसुर्ख रहने लगता है जिससे मुख में कष्ट बढने लगता है और यहां तक कि भोजन करने में भी कठिनाई होने लगती है। इस रोग का सर्वाधिक प्रभाव 17.24 प्रतिशत सदस्य इस रोग से पीडित प्राप्त हुये

मध्यम कृषक 7.56 लघु कृषक 8.10 प्रतिशत और न्यूनतम लघु मध्यम कृषक परिवार के सदस्य 5.58 प्रतिशत इस रोग के मरीज देखे गये।

6. **पेलेग्रा :-**

निकोटिन एसिड या नियासिन की भोजन में कमी पेलेग्रा रोग के जन्म का एक प्रमुख कारण है। त्वचा के उन भागों में सूजन जो सूर्य के प्रकाश में खुले रहते है के द्वारा सरलता से पहचाना हा सकता है, इसका दूसरा प्रमुख लक्षण अतिसार, जीभ में सूजन तथा अनिद्रा द्वारा प्रकट होता है। यह रोग उन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है जहां पर मक्का तथा ज्वार प्रमुख खाद्य के रूप में ग्रहण किया जाता है क्योंकि इन दोनों खाद्य पदार्थो में नियासिन की मात्रा अधिक पायी जाती है और नियासिन की मात्रा जब शरीर में आवश्यकता से अधिक पहुंचने लगती है तभी इस रोग के लक्षण दिखाई देने लगते है। इस रोग से ग्रसित रोगी सर्वाधिक 20.70 प्रतिशत बडे कृषक परिवारों में प्राप्त किये गये जबकि 8.10 प्रतिशत सदस्य लघु कृषक परिवारों में प्राप्त हुए। न्यूनतम 4.52 प्रतिशत सदस्य लघु मध्यम कृषक परिवारों में देखे गये। 5.88 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवारों में तथा 7.97 प्रतिशत सदस्य सीमान्त कृषक परिवारों के सदस्यों में प्राप्त हुये।

7. **बेरी-बेरी :-**

इस रोग का प्रमुख कारण भोजन में नियासिन (विटामिन बी) पोषक तत्वों की कमी होती है। जिसके कारण विभिन्न कृषक वर्गो में 2.39 से 6.90 तक का विचलन इस रोग से प्रसार में देखा गया है। इस रोग का सर्वाधिक प्रकोप 6.90 प्रतिशत बडे कृषक परिवार के सदस्यों में देखा गया है। जबकि न्यूनतम स्तर 2.39 प्रतिशत लघु मध्यम कृषक परिवार के सदस्यों में प्राप्त हुआ है। सीमान्त कृषक परिवार के सदस्यों में 6.56 प्रतिशत इस रोग से प्रभावित देखे

गये है लघु कृषक परिवार के सदस्य 4.33 प्रतिशत तथा मध्यम कृषक 4.20 प्रतिशत इस रोग से पीडित पाये गये। अध्ययन क्षेत्र में बेरी-बेरी रोग के दो प्रमुख रूप देखे गये। प्रथम तो गीला रोग द्वितीय सूखा बेरी-बेरी रोग तथा एक तीसरा रोग शिशु सम्बन्धी बेरी-बेरी रोग देखने को मिला। बेरी-बेरी रोग के लक्षण में भूंख कम लगना हाथों पैरो में सनसनाहट और चेतनाशून्य हो जाना प्रमुख है इस बेरी-बेरी रोग में मांस पेशियां नष्ट हो जाती है जिससे घूमने फिरने में कष्ट होता है। शुष्क बेरी-बेरी रोग में पैरों मे सूजन हृदय गति का तेज हो जाना, हृदय का बढ जाना तथा सांस तेज चलना आदि प्रमुख हैं।

8. **रिकेट्स (सूखा रोग):-**

शरीर में विटामिन डी की कमी से बच्चों में सूखा रोग येको तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं के मृदृलास्थिी (आस्टोमैलेशिया) रोग हो जाता है इस रोग के लक्षणा में कमर तथा रीड की हडिडयों में विकृति आ जाना प्रमुाख है जिससे कमर जांघ तथा रीड की हड्डी में पीडा होने लगती है। बच्चों के सूखा रोग के प्रारम्भिक लक्षणों मे कपाल के मुलायम स्थान पर गोल घेरा सा बनने लगता है बाद में यह हड्डियों में आक्रमण करके उनमें विक्रत उत्पन्न कर देता है। अध्ययन क्षेत्र में 3.22 प्रतिशत लोग इस रोग से पीडित पाये गये जिसमें सर्वाधिक 4.37 प्रतिशत सीमान्त कृषक परिवारों के सदस्यों में 3.45 प्रतिशत बडे कृषक परिवारों में 3.4 प्रतिशत लघु कृषक परिवारों में तथा न्यूनतम 1.33 प्रतिशत लघु मध्यम कृषक परिवारों के सदस्यों में प्राप्त हुआ।

9. **रतौंधी (नाइट ब्लाइण्डनेस) :-**

शरीर में कैरोटीन या विटामिन ए की कमी से इस रोग को पनपने का अवसर प्राप्त होता है। अंधेरे अथवा कम प्रकाश में आंखों को सामने का दृश्य साफ देखने के लिए विटामिन ए की अत्यन्त आवश्यकता होती है। साथ ही बच्चों

के शारीरिक विकास के लिए विटामिन ए आवश्यक होता है। इस विटामिन की कमी को कभी प्रारम्भ में आंख की काली पुतली के आसपास स्वेत भाग को बदरंग करती है तत्पश्चात काली पुतली को प्रभावित करती है। यदि रतौंधी का समय रहते इलाज नही होता है तो फिर यह अंधेपन में परिवर्तित हो जाती है। रतौंधी के साथ-साथ विटामिन ए की कमी से आंख का लाल होना माडा कैराटोमैलेशिया तथा फालीपुलर कैरोटोटिस आदि रोग भी हो जाते हैं। अध्ययन क्षेत्र में कुल 4.16 प्रतिशत लोग इस रोग से प्रभावित देखे गये हैं। जिससे सर्वाधिक 5.40 प्रतिशत रोगीं सीमान्त कृषक परिवारों में प्राप्त हुए। 3.91 प्रतिशत रोगी लघु कृषक परिवारों में देखे गये जबकि बडे कृषक तथा लघु मध्यम कृषक परिवारों में क्रमशः 3.45 प्रतिशत तथा 3.19 प्रतिशत सदस्य इस रोग से पीडित पाये गये है। रोगियों का न्यूनतम प्रतिशत 1.68 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवारों में प्राप्त किया गया।

10. <u>**स्कबी रोग**</u> :-

शरीर में विटामिन सी की कमी से अस्थियों तथा दांतों में स्कर्वी अर्थात मांसखोरा रोग हो जाता है। यह रोग प्रायः उन व्यक्तियों को अधिक होता है जो सूखा मांस, सूखे फल तथा सूखी सब्जियों का सेवन अधिक मात्रा में करते हैं। स्कर्वी रोग से रक्त वाहिनी नलिकायें कमजोर हो जाती है मसूठे फूल जाते हैं मस्तिष्क कमजोर पड जाता हे शरीर में आलस्य और थकान का अनुभव होने लगता है। शरीर पर सूखे-सूखे चकते पड जाते है सिर के बालों में रूखापन आ जाता है सवेक्षण में कुल 4.31 प्रतिशत रोगी प्राप्त हुए जिसमें सीमान्त कृषक परिवारों के सदस्य 5.1 प्रतिशत इस रोग से ग्रसित पाये गये 4.47 प्रतिशत लघु कृषक परिवारों में तथा 3.48 प्रतिशत लघु मध्यम कृषक

परिवारों में 3.45 प्रतिशत बडे कृषक परिवारों में तथा 3.36 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवारों में इस रोग के रोगी देखे गये।

11. <u>हड्डियों के जोडों में दर्द</u> :-

चिकित्सा क्षेत्र में इसे गठिया रोग कहा जाता है। ग्रन्थिशोथ या वात रोग (हड्डियों के जोडो में सूजन) के नाम से भी इस जाना जाता है यह रोग सभी वर्गो में 50 वर्ष की आयु से अधिक व्यक्तियों में देखा गया। सर्वेक्षण में कुल 9.66 प्रतिशत लोग इस रोग से पीडित देखे गये जिसमें सर्वाधिक 17.24 प्रतिशत बडे कृषक परिवारों के सदस्य रोगी पाये गये जबकि न्यूनतम 7.45 प्रतिशत रोगी लघु मध्यम कृषक परिवारों के सदस्यों में प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त 10.80 प्रतिशत सीमान्त कृषकों के मध्य, 13.44 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवारों में तथा 8.66 प्रतिशत लघु कृषक परिवारों में सदस्य इस रोग से प्रभावित देखे गये। जब रक्त में पोषक तत्वों के असन्तुलित सेवन से यूरिक ऐसिड का उच्च स्तर हो जाता है तो सोडियम यूरेट शरीर के कुछ विशेष तंन्तुओं में एकत्रित होने लेगता है जिससे हड्डियों के जोडों में निरन्तर सूजन बनी रहती है। कभी-कभी यह रोग शरीर में यूरिक ऐसिड के अधिक बनने से भी किडनी पर अत्यधिक दबाव पडने लगता है जिससे यह रोग हो जाता है मुलायम तथा अस्थि तंन्तुओं में सोडियम यूरेट का प्रवाह बढ जाता है यह सामान्यत: कोयलास्थि तथा हड्डियों के जोडों के पास एकत्रित होने लगता है जिससे वृद्धावस्था के समय हड्डियों के जोड अत्यन्त कडे पड जाते हैं। जिससे वृद्ध लोगों को चलने फिरने में अत्यधिक कठिनाई अनुभव होने लगती है।

12. **डाइविटीज** (मधुमेह) यह रोग शरीर में इन्सुलिन की कमी से उत्पन्न होता है। इस बीमारी का मूल कारण जब प्रोटीन और वसा का अत्यधिक उपभोग होने के कारण कार्वोहाइड्रेट सामान्य ढंग से उपयोग होकर ऊर्जा में परिवर्तित नही हो पाते है तोसपद में ग्लूकोज की मात्रा बढने लगती है और छोटे-छोटे कणों के रूप में मूत्र के साथ बाहर निकलने लगता है यदि इसका समुचित इलाज नही करवाया जाता है तो यह रोग जानलेवा भी हो सकता है। मधुमेह रोग से पीडित रोगी का खून जमने में कठिनाई होती हे और शरीर में चोट अथवा घाव हो जाने पर उसके भरने में अधिक समय लगता है। सर्वेक्षण में इस रोग से पीडित लोगों में सर्वाधिक 6.90 प्रतिशत बडे कृषक परिवार के सदस्यों में पाये गये, जबकि 3.36 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवारों में और 2.31 प्रतिशत सीमान्त कृषक परिवारों के सदस्यों में प्राप्त हुए। अन्य दोनो व्रर्गो में क्रमशः 1. 82 प्रतिशत तथा 1.86 प्रतिशत रोगी देखे गये।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विभिन्न व्यक्तियों को उनकी आयु, लिंग तथा कार्यानुसार भोजन में विभिन्न पोषक तत्वों तथा विटामिंश की कितनी मात्रा आवश्यक है यह ज्ञात करना एक कठिन कार्य है। जिससे पृकृति द्वारा निर्मित इस मानव कारखानें को सामान्य गति से लम्बे समय तक संचालित किया जा सके। इस सम्बन्ध में केवल इतना कहा जा सकता है। कि प्रत्येक परिवार को अपनी आर्थिक स्थिति तथा आय उपार्जन के आधार पर विभिन्न पोषक तत्वों से युक्त खाद्य पदार्थो का चयन करना चाहिए। अनेक खाद्य पदार्थ जो शरीर के लिए कम कीमत पर आवश्यक पोषक तत्वों को उपलब्ध करा सकते है क्षेत्रीय उत्पादन द्वारा ही समायोजित किये जा सकते है परन्तु अज्ञानतावस अथवा उच्च जीवन स्तर के खोखले प्रदर्शन के कारण हम उनका सेवन करने से वंचित रह जाते है प्रयास यह किया जाना कि कम कीमत पर

उत्तम पोषक तत्तवों से युक्त खाद्य पदार्थो का चयन करके शारीरिक विकारों से मुक्त रह सकें।

अध्याय-नवम्

कृषि उत्पादकता में बृद्धि के उपाय

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि उत्पादकता बृद्धि के सरकारी

प्रयास

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर व्यय

भारत में कृषि विकास की प्रवृत्ति

खाद्यान्य उत्पादन में बृद्धि की दिशा में उपाय

खाद्यान्यों के वितरण सम्बन्धी उपाय

खाद्यान्यों की उपभोग सम्बन्धी नीति

अल्प पोषण दूर करने के सरकारी प्रयास

अध्याय नवम्

कृषि उत्पादकता में वृद्धि के उपाय

स्वतत्रता के लगभग 53 वर्षों बाद गत 28 जुलाई 2002 को केन्द्रीय कृषि मंत्री श्रीमती नितीश कुमार ने नई राष्ट्रीय कृषि नीति संसद के पटल पर रखी, इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सरकार ने अगले दो दसकों के लिए कृषि क्षेत्र में प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत की विकासदर निर्धारित की है। 17 पृष्ठों की कृषि नीति में भूमि सुधार के माध्यम से गरीब किसानों को भूमि प्रदान करना, कृषि जोतों का समेकन, कृषि क्षेत्र में निवेश को बढाना, किसानों को फसल के लिए कबर प्रदान करना, किसानों के बीजों के लेन-देन के अधिकार को बनाये रखना जैसे लक्ष्यों को निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त मुख्य फसलों की न्यूनतम मूल्य नीति को जारी रखने का आश्वासन दिया गया है। इस नीति के तहत कृषि का सतत विकास रोजगार सृजन, ग्रामीण क्षेत्रों को स्वालम्बी बनाना किसानों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने और पर्यावरण संरक्षित कृषि तकनीकि अपना अन्य मुख्य उद्देश्य है। नीति में कहा गया है कि अप्रयुक्त बंजर भूमि का कृषि और वनोरोपण के लिए प्रयोग बहु फसल और अन्त: फसल के माध्यम से फसल गहनता बढाने पर जोर दिया जायेगा। सरकार कृषि में जैव प्रौद्योगिकी को बढावा देने के लिए भी जोर देगी, इसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध विशाल जैव विविधता की सूची बनाने तथा उसे वर्गीकृत करने के लिए सम्बद्ध कार्यक्रम बनाया जायेगा।

बौद्धिक सम्पदा समझौते के अन्तर्गत भारत की जिम्मेदारियों के अनुसार विशेषकर निजी क्षेत्र में नई किस्मों के विकास और अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के

लिए पौध किस्मों को संरक्षण दिया जायेगा। इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि किसानों के वाणिज्य उद्देश्यों के संरक्षित किस्मों के ब्राण्डयुक्त बीजों को छोडकर अपनी कृषि के द्वारा बनाये हुए बीजों के बचत, उपयोग, विनियम, लेन-देन एवं बिक्री के पारस्परिक अधिकार बने रहेगें किन्तु नई किस्मों के विकास के लिए मालिकाना किस्मों पर अनुसंधान करने सम्बन्धी शोद्धार्थियों के हितों की सुरक्षा का ध्यान रखा जायेगा। सरकार का मानना है कि कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश की महती आवश्यकता है। इसलिए सार्वजनिक निवेश के अतिरिक्त कृषि अनुसंधान/मानव संसाधन विकास फसल प्रबन्धन व विपणन जैसे क्षेत्रों में निजी निवेश को प्रोत्साहित किया जायेगा कृषि सुधार के अन्तर्गत उत्तर पश्चिम राज्यों की तरह पूरे देश में कृषि जोतों का समेकन फिर किया जायेगा। निर्धारित सीमा से अधिक और परती भूमि को भूमिहीन किसानों बेरोजगार युवकों में प्रारम्भिक पूंजी के साथ फिर से बांटा जायेगा, साथ ही पट्टेदारों तथा फसल हिस्सेदारों के अधिकारों को मान्यता देने के लिए पट्टेदार सुधार किया जायेगा। कृषिनीति में इस बात की भी घोषणा की गयी है कि खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय पशु प्रजनन नीति भी बनायी जायेगी जिससे अण्डा, मांस, दूध एवं पशु उत्पादों की आपूर्ति बढायी जा सके। इसके अतिरिक्त सरकार का प्रयास उच्च गुणवत्ता वाली तकनीकि बीज उर्बरक पौध संरक्षण रसायन जैव कृमिनाशी, कृषि मशीनरी एवं ऋण की उचित दरों पर समय से तथा पर्याप्त मात्रा में किसानों तक पहुंचाने की व्यवस्था की जायेगी। कृषि नीति में किसानों की जोखिम प्रबन्ध का भी ध्यान रखा गया है इसमें कहा गया है कि कृषि उत्पादकों के मूल्यों में बाजारी उतार-चढाव सहित बुआयी से फसल कटाई तक किसानों को बीमा पालिसी पैकेज उपलब्ध कराने का प्रयास कराया जायेगा।

1. **<u>पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि उत्पादकता बृद्धि के सरकारी प्रयास</u> :-**

भारत में आर्थिक नियोजन 1 अप्रैल 1951 से प्रारम्भ किया गया अब तक 8 पंचवर्षीय योजनाएं 3 एक-एक वर्षीय योजनाऐं व तीन वर्ष का अन्तराल तथा 9वी योजना के भी चार वर्ष पूरे हो चुके है। इस प्रकार नियोजन के पचास वर्ष पूरे हो चुके है। नवी योजना का कार्यकाल 1997 से 2002 तक रहेगा। यद्यपि सभी योजनाओं के सामान्य उद्देश्य अधिकतम उत्पादन, अधिकतम रोजगार, आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय की प्राप्ति रहे हैं। लेकिन विभिन्न योजनाओं में परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार उद्देश्यों को परिभाषित और निर्धारित किया जाता रहा है। जिनका योजनानुसार कृषि से सम्बन्धित विवरण निम्न प्रकार है।

सर्व प्रथम 1947-48 में "अधिक अन्य उपजाऊ" अभियान को पुर्नजीवित किया गया और अगले 5 वर्षो के लिए 40 लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्य उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। 1951 में प्रारम्भ होने वाली प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास को योजना की वरीयता में सर्वोपरि स्थान दिया गया है तथा अगली पंच वर्षीय योजनाओं में कृषि क्षेत्र के विकासार्थ किया जाने वाला कुल विनियोग उत्तरोत्तर बढता गया। कृषि क्षेत्र में उत्पादन और उत्पादित बढाने के लिए किया जाने वाला उत्तरोत्तर बढता हुआ यह निवेश आत्म निर्भरता प्राप्त करने और पिछडेपन के निर्वारणार्थ एक सराहनीय प्रयास माना जा सकता है। 20वी सताब्दी के पूर्वाद्ध 50 वर्षो में भारतीय कृषि की सम्बृद्धि दर 0.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है जिससे इन वर्षो में कृषि उत्पादन में कुल 12.6 प्रतिशत की ही बृद्धि हो सकी जबकि 1950-51 1999-2000 की अवधि में कृषि उपज में औसतन 2.65 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से हुई है। अतीत की तुलना में

यह वृद्धि दर काफी ऊंची है। क्योंकि योजनाकाल में जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत रही है। अतः कृषि उपज की वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक रही है यह कृषि मोर्चे पर सफलता का सूचक है।

<u>प्रथम पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1956)</u> :-

भारत की यह प्रथम पंचवर्षीय यद्यपि 1 अप्रैल 1951 से मानी गयी परन्तु इस योजना का अन्तिम स्वरूप दिसम्बर 1952 में ही प्रकाशित किया गया इस योजना में कृषि सम्बन्धित निम्न प्राथमिकतायें निर्धारित की गयी थी।

1. ग्रामीण श्रम शक्ति का पूर्ण उपयोग करने के लिए सामुदायिक विकास योजनाओं को लागू करना।
2. आधुनिक उपकरण उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक सिंचाई आदि का प्रयोग करके कृषि का स्थायी विकास करना।
3. खाद्यान्य संकट का सामना करना।

यह योजना कृषि प्रधान योजना थी जिसमें कृषि क्षेत्र के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी।

<u>द्वितीय पंचवर्षीय योजना</u> (1 अप्रैल 1956से 31 मार्च 1961:-

इस योजना की रूप रेखा प्रा0 पी0सी0 महालनोविस ने आपरेशन अनुसंधान पद्धति पर तैयारी की जो उनके एक विकास माडल पर आधारित थी। इस योजना का मौलिक उद्देश्य देश में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को तेज करना था जिससे देश में समाजवादी समाज की स्थापना करके आर्थिक विकास की गति को बढाया जा सके। पं0 नेहरू के शब्दों में हमारी द्वितीय पंचवर्षीय योजना का

मुख्य उद्देश्य ग्रामीण भारत का पुर्ननिर्माण करना। भारत में औद्योगिक प्रगति की नींव रखना, कमजोर और अपेक्षाकृत अधिकारहीन वर्ग को उन्नत के समान अवसर प्रदान करना और देश के सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास करना है इस योजना में कृषि एवं सिंचाई पर कुल व्यय का 20.9 प्रतिशत व्यय आवंटित किया गया।

<u>**तृतीय पंचवर्षीय योजना**</u> (1 अप्रैल 1961 से 31 मार्च 1966):-

जानसैण्डी एवं प्रो0 एस0चक्रवर्ती द्वारा निर्मित विकास माडल पर आधारित इस योजना का मुख्य उद्देश्य अर्थ व्यवस्था को स्वावलम्बी एवं स्वयं स्फूर्ति अर्थ व्यवस्था बनाना था इस योजना के मुख्य विन्दु इस प्रकार थे :-

1. खाद्यान्यों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना :-
2. घरेलू उद्योगों तथा निर्यात की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन को बढाना।
3. रोजगार अवसरों का विस्तार करके देश की श्रम शक्ति का अधिकतम उपयोग करना।
4. आय की असमानताओं को कम करना।

<u>**तीन वार्षिक योजनाऐं**</u> (1966-67, 1967-68,1968-69) :-

1962 एवं 1965 में युद्ध के कारण पूर्णत: असफल हुई तीसरी पंचवर्षीय योजना के बाद तीन वर्षो का योजनावकास रहा, इस अवधि में चौथी योजना की उपयुक्त पृष्ठभूमि बनाने के प्रयास किये गये। इन वार्षिक योजनाओं के कुछ प्रमुख विन्दु इस प्रकार है :-

1. युद्ध जनित आर्थिक समस्याओ का निराकरण करना।

2. खाद्यान्यों और औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से देश को आत्म निर्भर बनाना।

3. धन की विषमताओं को कम करना।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 1969से 31 मार्च 1974) :-

इस योजना के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्न रहे-

1. कृषि के औद्योगिक उत्पादन में आत्म निर्भरता प्राप्त करना।

2. कृषि उत्पादन में 5 प्रतिशत तथा औद्योगिक उत्पादन में 10 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना।

3. मूल्यों को नियंत्रित करके आर्थिक स्थिरता बनाये रखना।

4. रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का सृजन करना।

5. कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ में बफर स्टाक का निर्माण करना।

6. समाज में आर्थिक समानता एवं न्याय की स्थापना करना।

7. योजना में कृषि को प्रधानता दी गयी तथा कृषि सिंचाई एवं बाढ नियंत्रण पर कुल व्यय का 23.3 प्रतिशत व्यय निर्धारित किया गया।

8. हरितक्रान्ति का सूत्रपात इसी योजना से हुआ।

पंचम पंचवर्षीय योजना

(1 अप्रैल 1974 से 31मार्च 1979 तक परन्तु योजना
31 मार्च 1978 को समाप्त घोषित) :-

पांचवी पंचवर्षीय योजना के दो मौलिक लक्ष्य थे 'गरीबी उन्मूलन' तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता/इसके अतिरिक्त योजना के मुख्य विन्दु निम्न थे।

1. न्यूनतम आवश्यकता से राष्ट्रीय कार्यक्रम को लागू करना।
2. रोजगार अवसरों में वृद्धि करना।
3. कृषि एवं जनोपयोगी वस्तुओं को उत्पादित करने वाले उद्योगों को प्रोत्साहित करना।
4. अनावश्यक उपभोग पर कडा प्रतिबंध लगाना।
5. सामाजिक, आर्थिक, एवं क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना।
6. एक न्यायपूर्ण कीमत मजदूरी आय नीति को बनाए रखना।
7. गरीब वर्ग को उचित मूल्य पर वस्तुए उपलब्ध कराना और वितरण व्यवस्था को प्रभावी बनाना।
8. कृषि उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर 4.2 प्रतिशत।

<u>छठी पंचवर्षीय योजना</u> (1 अप्रैल 1980 से 31 मार्च 1985)

जनता पार्टी की सरकार ने पांचवी पंचवर्षीय योजना एक वर्ष पूर्व ही समाप्त घोषित करके 1 अप्रैल 1978 से 31 मार्च 1983 तक की छठी पंचवर्षीय योजना लागू की जो एक अनवरत योजना थी इस अनवरत योजना में प्रत्येक वर्ष अगले 5 वर्ष के लिए योजना बनाने का प्रावधान रखा गया। 1980 में फिर राजनैतिक परिवर्तन और श्रीमती इन्दिरा गांधी की वापसी के बाद अनवरत योजना समाप्त कर दी गयी और नवीन छठी पंचवर्षीय योजना 1980 में लागू की गयी जिसकी अवधि 1980 से एक अप्रैल 1985 रखी गयी इस योजना के प्रमुख विन्दु निम्न प्रकार रहे :-

1. विकासदर में बृद्धि, संसाधनों का कुशलतम उपयोग एवं उत्पादिता में वृद्धि करना।

2. गरीबी एवं बेरोजगारी में कमी करना।

3. आर्थिक एवं तकनीकी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए आधुनिकीकरण को बढावा।

4. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कमजोर लोगों के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार करना।

5. सार्वजनिक और वितरण प्रणाली को गरीबों के अनुकूल बनाना।

6. निर्धनता और बेरोजगारी निवारण पर विशेष बल देते हुए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को एक महत्वपूर्ण अंग माना गया।

7. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम लागू किये गये।

8. कृषि क्षेत्र का निष्पादन सन्तोषजनक रहा। कुछ फसलों का उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ।

<u>सातवीं पंचवर्षीय योजना</u> :-(1 अप्रैल 1985 से 31 मार्च 1990)

इस योजना का प्रारूप राष्टीय विकास परिषद द्वारा 8 नवम्बर 1985 को स्वीकृत किया गया। इस योजना के प्रमुख रूप से 4 लक्ष्य रखे गये। तीव्र विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय। इस योजना के प्रमुख विन्दु निम्न रहे।

1. उत्पादन व रोजगार सृजन को वरीयता दी गयी।

2. खाद्यान्य में आत्म निर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया।

3. पारिस्थिकीय एवं पर्यावरर्णीय संरक्षण पर बल दिया गया।

4. सामाजिक न्याय सहित विकास की रणनीति पर बल दिया गया।

<u>आठवीं पंचवर्षीय योजना</u> (1अप्रैल 1992 से 31 मार्च 1997) :-

राजनैतिक अस्थिरता के कारण 8 वी योजना 1 अप्रैल 1990 से प्रारम्भ न हो सकी इस योजना को राष्ट्रीय विकास परिषद ने 23 मई 1992 को स्वीकृति दी और इसे 1992-97 की अवधि के लिए लागू किया गया इस योजना के प्रमुख विन्दु इस प्रकार है :-

1. शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए रोजगार सृजन को प्राथमिकता।

2. सम्पूर्ण जनसंख्या को स्वच्छ पीने का पानी तथा स्वास्थ्य सेवायं उपलब्ध कराना।

3. खाद्यान्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता के साथ-साथ उत्पादन अतिरेक के लिए कृषि का तीव्र विकास और कृषि विविधीकरण करना।

4. सिंचाई सुविधाओं को विकसित करके कृषि के आधार को मजबूत बनाना।

5. मानव विकास को सर्वोच्च्व प्राथमिकता।

6. कृषि विकास की औसत दर 3.9 प्रतिशत रही जो लक्ष्य से 0.4 प्रतिशत अधिक रही।

<u>नौवी पंचवर्षीय योजना</u> (1 अप्रैल 1997 से 31 मार्च 2002):-

नौवी पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भिक प्रारूप तत्कालीन योजना आयोग के उपाध्यक्ष मधु दण्डवते ने 1 मार्च 1998 को जारी किया जिसे भाजपा सरकार ने संशोधित किया। संशोधित प्रारूप के प्रमुख विन्दु निम्नवत है।

1. पर्याप्त उत्पादक रोजगार पैदा करना और गरीबी उन्मूलन की दृष्टि से कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना।
2. सभी के लिए भोजन, पोषण व सुरक्षा सुनिश्चत करना लेकिन समाज के कमजोर वर्ग पर विशेष ध्यान देना।
3. न्यायपूर्ण वितरण के साथ-साथ समानता के साथ विकास करना।
4. समाज को मूलभूत न्यूनतम सेवायें प्रदान करना।
5. आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के प्रयासों को मजबूत करना।
6. खाद्यान्यों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।
7. कार्य की दशाएं सुधारना तथा श्रमिकों को कुल उत्पादन में न्यायोचित हिस्सा दिलाना।
8. सभी लोगों की भागीदारी से विकास प्रक्रिया की पर्यावरणीय क्षमता सुनिश्चत करना।

प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर नौवी पंचवर्षीय योजना के महत्वपूर्ण विन्दुओं पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कृषि और ग्रामीण विकास के लिए योजनाकाल में लगातार प्रयास किये गये, इसके लिए विज्ञान पोषित प्रविधियों और नवीन कार्यक्रमों का लगातार समावेश किया जा रहा है।

कृषि और ग्रामीण विकास पर अभी हाल के वर्षो में अधिक ध्यान दिये जाने के कारण ग्रामीण परिवारों की आय बढी है। स्वतंत्रता के पश्चात विशेषकर नियोजन काल में कृषि क्षेत्र में पूंजी निर्माण में वृद्धि हुई है। कृषिगत उत्पादक परिसम्पत्ति जैसे मशीनरी, भवन, भूमि, सुधार आदि की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये गये है। अब पम्पसेट, थ्रेसर, ट्रैक्टर तथा हार्वेस्टर का प्रयोग लगातार बढता जा रहा है, इनके आंकडे स्पष्ट करते है कि कृषि क्षेत्र में पूंजी निमार्ण बढा है। नियोजित विकास प्रयासों के परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन आवश्यकता की दृष्टि से अति कमी की दशाओं को पार करता हुआ अब पर्याप्तता की स्थिति में पहुंच चुका है। विभिन्न फसलों का उत्पादन बढा है, फसल प्रणाली में संरचनात्मक परिवर्तन आया है। अब तक की विकास प्रक्रिया में हम अपनी 100 करोड से अधिक जनसंख्या के लिए खाद्यान्य पूर्ति करने के साथ-साथ निर्यात करने की स्थिति में हो गये है।

<u>पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास पर व्यय</u> :-

कृषि क्षेत्र के विकास के लिए बहु विधि प्रयास किये गये है, प्रथम योजना तो कृषि प्रधान योजना ही थी। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र के विकास हेतु लगातार बढती धनराशि व्यय की गयी है। सारिणी क्रमांक 9.1 में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास के लिए होने वाले व्यय का विवरण दिया जा रहा है।

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर व्यय (करोड़ रूपये)

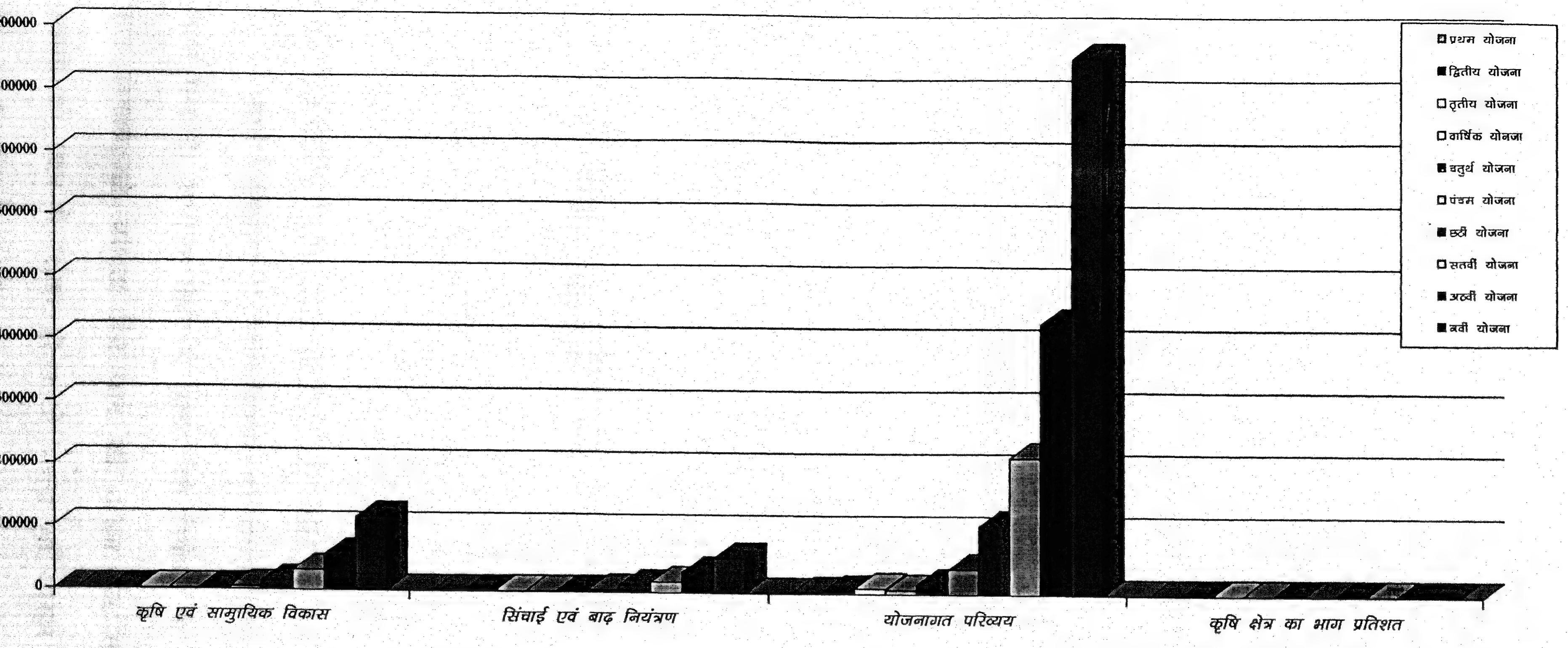

तालिका 9.1

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर व्यय (करोड रूपये)

क0	योजनाकाल	कृषि एवं सामुदायिक विकास	सिंचाई एवं बाढ नियंत्रण	योग	योजनागत परिव्यय	कृषि क्षेत्र का भाग प्रतिशत
1.	प्रथम योजना	291	310	601	1960	30.66
2.	द्वितीय योजना	549	430	979	4672	20.95
3.	तृतीय योजना	1089	664	1753	8577	20.44
4.	वार्षिक योजना	1107	471	1578	6626	23.82
5.	चतुर्थ योजना	2320	1354	3674	15779	23.28
6.	पांचवी योजना	4865	3877	8742	39426	22.17
7.	छठी योजना	13620	10930	24550	109292	22.46
8.	सातवी योजना	31509	16590	48099	218730	21.99
9.	आठवी योजना	56892	32525	89417	434100	20.60
10.	नौवी योजना (निर्धारित)	117148	55420	172568	859200	20.08

भारत में कृषि विकास-दो महत्वपूर्ण अवस्थायें :-

भारतीय नियोजन में कृषि विकास को आधारभूत दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार किया गया है। खाद्यान्य संकट से जूझता देश नियोजन के आरम्भिक चरण में निस्सन्देह कृषि विकास को वरीयता दिये जाने की अपेक्षा कर रहा था। देश की तत्कालीन समस्या को ध्यान में रखकर ही पहली योजना जो आकार में बहुत छोटी थी में कृषि क्षेत्र के विकास को सर्वोच्च वरीयता दी गई। यह योजना वांछित उद्देश्यों को पूरा करने में सफल रही, खाद्यान्य उत्पादन लक्ष्य से अधिक रहा। लेकिन दूसरी और तीसरी

योजना में प्राथमिकतायें भारी उद्योगों के विकास तथा आयात प्रतिस्थापन की ओर मोड दी गई। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय कृषि इस सीमा तक पिछड गई कि तीसरी योजना के अन्तिम वर्ष 1965-66 में देश में गम्भीर खाद्यान्य संकट उत्पन्न हो गया जिसके समाधान के लिए भारत को अमेरिका के पी0एल0-480 गेहूं का आयात करना पडा। भारत में बढते खाद्यान्य के इस आयात ने देश को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक रूप से कमजोर बनाया और अमरीका में गेहूं के इसी आयात को लेकर देश की नीतियो में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया जिससे तीन वार्षिक योजनाओं में कृषि को सर्वाधिक महत्व पूदान करते हुए कृषि उत्पादकता वृद्धि की नवीन रणनीति का सूत्रपात किया गया जिसे हरित क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। इस हरितक्रान्ति आन्दोलन के उदगम से भारतीय कृषि अपनी परम्परागत परिवर्तनों की दिशा में मुड गई तथा भारतीय कृषि में एक नये युग की शुरूआत हुई। नियोजन काल में भारतीय कृषि को दो भागों में बांटा जा सकता है।

अ. **<u>1950-51 से 1965-66 तक की अवधि</u>**-

इस अवधि में भारतीय कृषि मुख्यतः परम्परागत पद्धतिपर आधारित रही जिसके प्रमुख प्रयासों में सम्मिलित है-

1. संस्थागत सुधारों को वरीयता
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम (2 अक्टूबर 1952) द्वारा उपलब्ध स्थानीय संसाधनों एवं जनसहयोग से कृषि उत्पादकता बढाने के प्रयास।
3. जिला सघन कृषि कार्यक्रम द्वारा विशेष फसलों में उत्पादन में वृद्धि का प्रयास।
4. कम उत्पादन क्षमता वाले परम्परागत बीजों का प्रयोग।
5. सिंचाई सुविधाओं के विकास का प्रयास।
6. सिंचाई की लघु एवं मध्यम परियोजनाओं का विस्तार।
7. भूमि संरक्षण।

8. कृषि उत्पादन के समर्थन मूल्यों द्वारा उत्पादन बढाने हेतु प्रोत्साहन।

9. कृषि शोध एवं भूमि परीक्षण बढाना।

10. कृषि विपणन सुविधाओं का विस्तार।

11. कृषि वित्त एवं ऋण सुविधाओं का विस्तार।

12. प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं द्वारा किसानों को कृषि के लिए प्रेरणा।

भारत में कृषि विकास की प्रवृत्ति :-

वर्ष 1951 के बाद से भारतीय कृषि विकास की प्रवृत्तियों को निम्न शीर्षकों में रखा जा सकता है।

1. <u>कृषि विकास दर</u> :- भारतीय कृषि विकास की दरों में काफी उतार चढाव आते रहे है। वर्ष 1990-2000 में भारतीय कृषि की विकास दर 5.3 रहने का अनुमान है।

कृषि विकास दर को सारिणी कमांक 9.2 में प्रस्तुत किया गया है।

वर्ष	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000
विकासदर	+ 5.4%	+0.2%	+9.4%	-1.0%	+7.7%	+5.3% अनुमानित

सारिणी 9.2 भारतीय कृषि विकास दर पर प्रकाश डाल रही है जिससे ज्ञात होता है कि कृषि की दृष्टि से 1996-97 वर्ष सर्वाधिक उपयुक्त रहा जिसमें कृषि विकासदर + 9.4 प्रतिशत प्राप्त की जा सकी है जबकि न्यूनतम -1.00 प्रतिशत वर्ष 1997-98 में रही। वर्ष 1994-95 तथा वर्ष 1999-2000 में विकासदर लगभग एक सामान रही है, वर्ष 1998-99 में भी विकासदर +7.7 प्रतिशत संतोषजनक कही जा सकती है। विभिन्न वर्षों में कृषि विकास दर में प्रर्याप्त विचलन दिखाई पडता है।

2. <u>कृषि विकास का विकास</u> :- भारत में कृषि क्षेत्र के विकास तथा क्षेत्रीय बृद्धिदर को दो समयावधियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. हरित क्रान्ति से पूर्व की अवधि 1951-1965 तथा
2. हरित क्रान्ति से बाद की स्थिति 1965-1999 इन दोनो समयावधियों में कृषि के अन्तर्गत क्षेत्रफल तथा उसकी बृद्धि दर में होने वाले परिवर्तन सारिणी 9.3 में प्रस्तुत है।

सारिणी 9.3

वर्ष 1951 से प्रमुख फसलों के क्षेत्रफल में बृद्धि (लाख हेक्टेयर में)

सं0	फसलें	1950-51	1964-65	1998-99
1.	खाद्यान्य फसलें	973	1180	1254
	चावल	308	360	446
	गेहूं	98	130	274
	मोटा अनाज	390	440	257
	दालें	200	240	238
2.	गैर खाद्यान्य फसले	230	330	576
	तिलहन	107	150	267
	गन्ना	17	26	41
	कपास	59	84	93
	सभी फसले	1203	1510	1830

सभी फसलों में अन्य खाद्यान्य और गैर खाद्यान्य फसलें सम्मिलित हैं।

सारिणी 9.3से ज्ञात होता है कि हरितक्रान्ति से पूर्व की अवधि अर्थात 1951 से 1965 तक कृषि क्षेत्र में 25.52 प्रतिशत की बृद्धि हुई। इस अवधि में सभी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल की बृद्धि दर 2.5 प्रतिशत थी। हरित क्रान्ति के बाद के वर्षो में अर्थात 1965 से 1999 तक की अवधि में विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में बृद्धि हुई। खाद्यान्य फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में 0.18 प्रतिशत तक तथा गैर खाद्य फसलों के क्षेत्रफल के अन्तर्गत 2.19 प्रतिशत की बृद्धि देखी जा रही है, इस अवधि में चावल के क्षेत्रफल में 0.70 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि हुई जब कि गेहू के क्षेत्रफल में 3.26 प्रतिशत बृद्धि दर हुई है। इस प्रमुख कारण गेहूं की फसल के लिए अधिक

उपज देने वाले बीजों के प्रयोग के कारण गेहूं की उत्पादकता आशातीत बढी जिससे कृषक गेहूं को अधिक क्षेत्रफल में बोने के लिए प्रेरित हुए।

3. **उत्पादकता में बृद्धि :-**

वर्ष 1951 के बाद की अवधि में कृषि उपज की उत्पादकता में आशातीत बृद्धि हुई है, कृषि उपज की उत्पादकता से आशय प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बृद्धि से है जिसे सारिणी 9.4 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारिणी 9.4

प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादकता में बृद्धि (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)

सं0	फसल	1951	1999
1	चावल	668	1928
2	गेहूं	663	2583
3	मक्का	704	1755
4	आलू	7000	18000
5	गन्ना	33420	73000
6	कपास	88	223
7	पटसन	1043	1720

सारिणी क्रमांक 9.4 से स्पष्ट होता है कि गेहूं का प्रति हेक्टेयर उत्पादन जहां 1951 में केवल 663 किलो ग्राम था वह 1999 में बढकर 2583 किलोग्राम तक हो गया है। इसी प्रकार चावल का उत्पादन जहां 668 किलोग्राम था वह बढकर 1928 किलोग्राम तक हो गया है। इसी प्रकार मक्का का 704 से 1755 किलोग्राम, आलू का 7000 किलोग्राम से बढकर 18000 किलोग्राम तक पहुंच गया है। गन्ना का उत्पादन 33420

किलोग्राम से बढकर 73000 किलोग्राम तक पहूंच गया है। यद्यपि विभिन्न फसलों की उत्पादकता में आशातीत बृद्धि हुई है। परन्तु यह अभी भी अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। इसलिए अपने देश में विभिन्न फसलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढाने की बहुत अधिक सम्भावनाएं है।

4. **कृषि उत्पादन में बृद्धि :-**

वर्ष 1951 के पश्चात योजना अवधि में भारतीय कृषि उत्पादन में आशातीत बृद्धि हुई जिसे सारिणी 9.5 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारिणी 9.5

खाद्य तथा अखाद्य फसलों के उत्पादन की मात्रा

पंचवर्षीय योजना		अनाज	दाले	तिलहन	गन्ना	कपास (लाख गाठें)	जूट (लाख गाठें)
1949-50		408	81	50	570	33	30
1951-56	प्रथम योजना	538	110	61	980	37	42
1956-61	द्वितीय योजना	693	127	68	1165	41	56
1961-66	तृतीय योजना	624	99	74	1218	43	48
1966-69	वार्षिक योजना	830	104	93	1300	44	59
1969-74	चतुर्थ योजना	947	100	91	1400	48	64
1974-79	पंचम योजना	1120	112	101	1520	65	79
1980-85	षष्टम योजना	1340	122	131	1705	80	85
1985-90	सप्तम योजना	1580	126	184	2403	91	98
1992-97	अष्टम योजना	1844	146	250	2773	143	111
1997-98		1794	131	220	2763	111	111
1998-99		1882	148	252	2957	122	97
1999-2000 (अनुमानित)		1856	135	216	3151	121	106

सारिणी क्रमांक 9.5 पिभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में खाद्य तथा अखाद्य फसलों के उत्पादन को दर्शा रही है। जिससे ज्ञात होता है कि पहले पचास वर्षो में अनाज का

कृषिगत फसलों के अधीन क्षेत्र का सूचक अंक

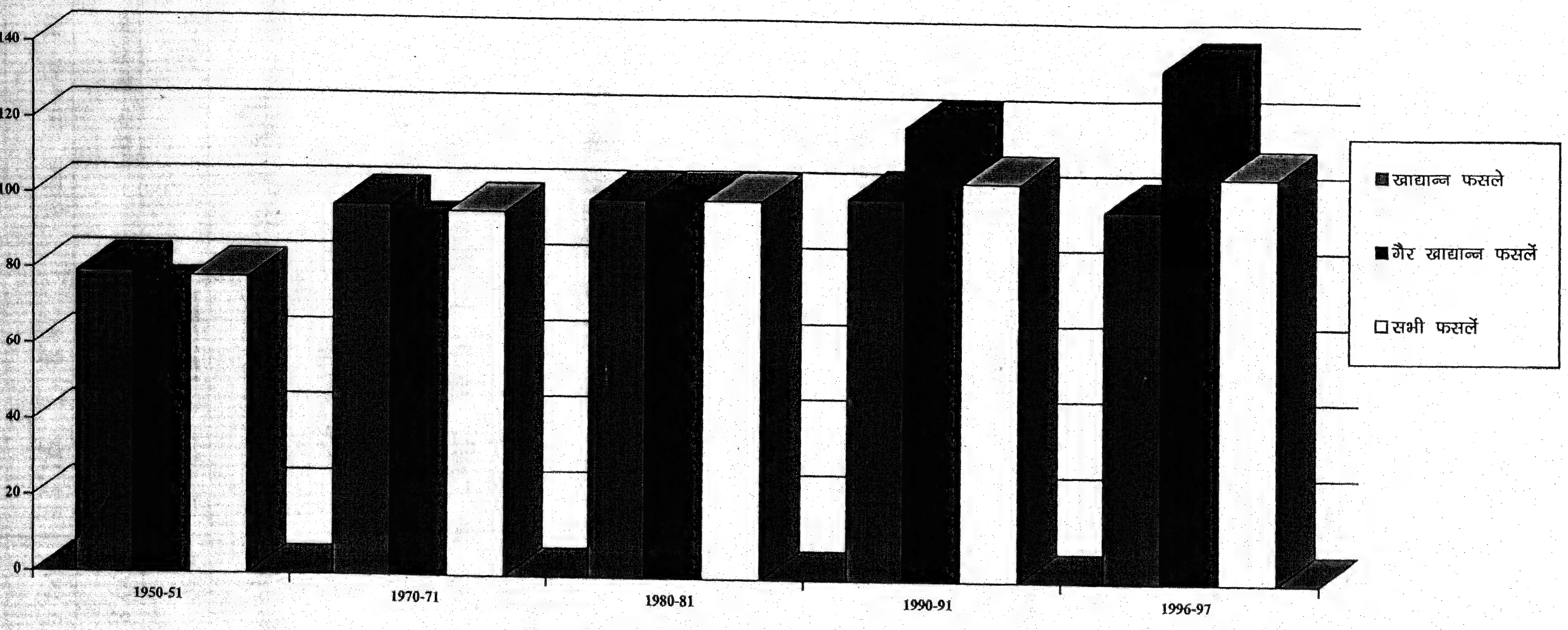

उत्पादन लगभग चार गुना बढा है। जबकि दालों का उत्पादन जबकि दालों का उत्पादन दुगने से भी कम बढ पाया है। अनाज में भी चावल का उत्पादन लगभग चार गुना और गेहूं का उत्पादन 11 गुना से भी अधिक बढा है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि अनाज का उत्पादन तृतीय योजना को छोडकर सभी योजनाओं में बढा है। जबकि तृतीय योजना में अनाज का उत्पादन घटा है। व्यापारिक फसलों में कपास, गन्ना, तिहलन तथा पटसन आदि फसलें आती हैं। इन फसलों का भी भारतीय कृषि में महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु इन फसलों के उत्पादन में भी उतार चढाव देख जा सकते हैं। फिर भी कपास के उत्पादन में चार गुनी तथा पटसन के उत्पादन में लेगभग तीन गुनी बृद्धि हुई है। गन्ने तथा तिलहन के उत्पादन में भी क्रमशः लगभग 6 गुनी बृद्धि देखी जा सकती है।

5. **<u>फसल प्रतिरूप में परिवर्तन</u>** :-

फसल से प्रतिरूप से आशय किसी समय विशेष पर विभिन्न फसलों के बीच कृषि भूमि के विभाजन से है। यदि किसी निश्चित समय में फसलों के क्षेत्र के अनुपात में सापेक्षित परिवर्तन होता है तो उसे फसल प्रतिरूप में परिवर्तन कहते हैं, भारतीय कृषि के फसल प्रतिरूप के सर्वाधिक महत्वपूप्र विशेषता खाद्य फसलों की प्रधानता है।

सारिणी 9.6

कृषिगत फसलों के अधीन क्षेत्र का सूचक अंक

क्र0सं0	फसल	1950-51	1970-71	1980-81	1990-91	1996-97
1.	खाद्यान्य फसले	79.3	97.9	99.8	100.7	98.1
2.	गैर खाद्यान्य फसलें	73.8	91.1	99.4	120.0	135.7
3.	सभी फसले	78.2	96.3	99.7	105.2	106.8

सारिणी 9.5 से स्पष्ट होता है कि योजनाकाल में खाद्य फसलों के अन्तगर्त भूमि की तुलना में गैर खाद्य फसलों के अन्तर्गत भूमि में अधिक तेजी से बृद्धि हुई है। जबकि भारतीय कृषि भूमि का लगभग 74 प्रतिशत भाग खाद्य फसलों के अन्तर्गत तथा लगभग 26 प्रतिशत भाग गैर खाद्य फसलों के अन्तर्गत लगा हुआ है। जबकि सारिणी से ज्ञात होता है कि खाद्य फसलों का सूचक अंक जहां 1950-51 में 79.3 था वह वर्ष 96-97 में बढकर 98.1 हो गया जबकि इसके पूर्व दशक 1990-91 में यह 100. 7 था इसके विपरीत गैर खाद्य फसलों का सूचक अंक 1950-51 में जहां 73.8 था वह 1996-97 में बढकर 135.7 हो गया जो लगभग दुगनी वृद्धि को दर्शा रहा है जिसका अर्थ है कि भारतीय कृषि में गैर खाद्य फसलों का महत्व तेजी से बढ रहा है।

6. <u>कृषि उत्पाद निर्यात</u> :-

यह एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारत कृषि पदार्थो का एक निर्यातक देश बन गया है जैसा कि सारिणी 9.7 से स्पष्ट हो रहा है।

सारिणी 9.7

भारतीय निर्यात में कृषि उत्पादों का स्थान (हजार करोड रूपये)

वर्ष	देश का कुल निर्यात	कृषि उत्पादों का निर्यात	कुल निर्यातों में कृषि उत्पाद की भागेदारी
1993-94	69.75	13.02	18.7
1994-95	82.67	13.71	16.6
1995-96	106.35	21.14	19.8
1996-97	118.81	24.24	20.4
1997-98	130.1	25.40	19.5
1998-99	141.6	26.20	18.5
1999-2000 (अप्रैल-नवम्बर)	104.6	15.11	-

यद्यपि निर्यात किये गये उत्पादों में कुछ विविधता और गन्तब्यों में विस्तार आया है फिर भी अधिकतर भारतीय कृषि उत्पाद निर्यात अभी भी परम्परागत मदों के रूप में ही है। वर्ष 1997-98 में कृषि निर्यातों का मूल्य 6.4 विनियन डालर था वर्ष 1993-94 से 1997-98 के मध्य देश के कुल निर्यात में कृषि निर्यातों का मूल्य 6.4 विनियन डालर था। वर्ष 1993-94 से 1997-98 के मध्य देश के कुल निर्यात में कृषि निर्यात 17.20 प्रतिशत था। वर्ष 1998-99 में 1703 करोड रूपये की काफी 2302 करोड रूपये की चाय 1912 करोड रूपये की खली, 779 करोड रूपये की तम्बाकू, 224 करोड रूपये की कपास और 595 करोड रूपये के जूट का सामान विदेशों को निर्यात किया गया था।

2. **<u>पोषक स्तर में बृद्धि के उपाय</u> :-**

संयुक्त राष्ट विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट 1997 में पहली बार मानव गरीबी सूचकांक प्रस्तुत किया गया। संयुक्त राष्ट विकास कार्यक्रम की वर्ष 1999 की माव विकास रिपोर्ट के प्रमुख विन्दु है-

1. मानव गरीबी सूचंकाक के आधार पर भारत का विश्व में 59 वां स्थान है।
2. मानव विकास सूचकांक के आधार पर 174 राष्ट्रों की सूची में भारत का स्थान 132 वां है।
3. लिंग आधारित विकास सूंचकांक के आधार पर तैयार सूची में भारत 112 वें स्थान पर स्थित है।
4. विश्व में 20 प्रतिशत सबसे धनी लोग कुल निजी उपभोग का 86 प्रतिशत भाग उपभोग करते है जबकि निर्धनतम 20 प्रतिशत लोगों को कुल उपभोग का केवल 1 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है।

मानव विकास रिपोर्ट की उक्त सूचनांओं के आधार पर भारत कके आम नागरिकों के जीवन स्तर के बार में सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है जबकि स्वतंत्रता के बाद नियोजन काल में ग्रामीण क्षेत्रो में लोगों की आवश्यकताए पूरी करने के लिए सरकार ने अनेक परियोजनाओं का शुभारम्भ किया है। चौथी और पांचवी पंचवर्षीय योजनाओं में गरीब एवं पिछडे वर्ग के उत्थान के लिए अनेक रोजगार परक कार्यक्रम लागू किये गये। यद्यपि पिछले 50 वर्षो में भारत की जनसंख्या में सभी वर्गो के पोषण में सुधार हुआ है परन्तु अभी भी अल्प पोषण की समस्या जिन वर्गो में बनी हुई है उनमें से प्रमुख रूप से एक तिहाई नवजात बच्चे जिनका भार 2.5 कि0ग्राम से कम है तथा गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं सम्मिलित है। राष्ट्रीय पोषण निरीक्षण बोर्ड के अनुसार 1975-80 में 31 प्रतिशत परिवारों में परिवार के सभी

सदस्यों में ऊर्जा उपभोग पर्याप्त था। 19 प्रतिशत परिवारों में ऊर्जा उपभोग परिवार के सभी सदस्यों में अपर्याप्त था। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि 25 प्रतिशत परिवारों में केवल बालिगों के लिए ऊर्जा उपभोग पर्याप्त था परन्तु स्कूल पूर्व बच्चों में ऐसा नही था। पर्याप्त खाद्य पदार्थ जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है, भारतीय औसत आहार इस दृष्टि से अंतुलित है कि भारत में अधिकांश पोषक तत्व खाद्यान्यों से प्राप्त किये जाते हैं कुल प्राप्त कैलोरी में दो तिहाई भाग खाद्यान्यों से प्रापत किया जाता है। गुणात्मक दृष्टि से अपेक्षित स्तर का नही होता। खाद्य और कृषि संगठन के एक अनुमान वे देश जहां के आहार में खाद्यान्य जडदार सब्जियों और चीनी की बहुतायत हो वहां पोषण सम्बन्धी असन्तुलन पाया जाता है।

भारत की पोषण समस्या के चार प्रमुख पहलू हैः-

1. **<u>पोषण समस्या का परिमाणात्मक पहलू</u> :-**

   इस समस्या का सम्बन्ध खाद्यान्यों की कुल मांग और कुल पूर्ति से है यद्यपि भारत में खाद्यान्यों के उत्पादन में स्वतंत्रता के बाद से लगभग चार गुना बृद्धि हुई है। परन्तु जनसंख्या की तीव्र बृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति खाद्यान्यों की उपलब्धता में कोई उल्लेखनीय बृद्धि नही हुई है। 1951 में खाद्यान्यों तथा दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 395 ग्राम थी जो 1999 में बढकर 467.4 ग्राम हो गई है।

2. **<u>पोषण समस्या का गुणात्मक पहलू</u> :-**

   औसत भारतीय का आहार न केवल अपर्याप्त है बल्कि असन्तुलित और पोष्टिक तत्वों से हीन है। डा. अमर्त्यसेन का कहना है कि भारत में ग्रामीण जनता का लगभग एक तिहाई भाग सदैव भूंख व कुपोषण का शिकार रहता है, लोग भूख से मरते तो नही लेकिन वे भूखों अवश्य

मरते है। भारत में खाद्यान्यों के पोषक तत्वों की कमी के लिए उत्तरदायी कारणें में से

1. रक्षात्मक खाद्यान्यों का कम उत्पादन।
2. धार्मिक भावना से मांसाहार का अभाव।
3. निरक्षरता व अज्ञानता के कारण पोषक तत्वों की उपयोगिता पर ध्यान न देना।
4. निर्धनता के कारण पोषक तत्वों को क्रय न कर पाना।

स. पोषण समस्या का प्रशासनिक पहलू :-

खाद्यान्यों के प्रशासनिक पहलू का आशय है कि देश में जितना खाद्यान्य उपलब्ध है उसे उचित मूल्य व उपयुक्त समय पर जनता में वितरित कर दिया जाये। प्रशासनिक पहलू में निम्न कार्य समिलित किये जाते है-

1. खाद्यान्यों की मांग और पूर्ति का सही अनुमान।
2. कमी वाले स्थानों पर उपयुक्त समय पर यथेष्ट खाद्यान्य भेजने का प्रबन्ध।
3. खाद्यान्यों का उचित मूल्य निर्धारित करना व उपयुक्त समय पर जनता में वितरित करना।
4. खाद्यान्यों का उचित भण्डारड करना।

द. पोषण समस्या का आर्थिक पहलू :-

भारत में खाद्यान्यों के स्थान पर अब मुद्रा या क्रय शक्ति का अकाल पाया जाता है, प्रो0 अमर्त्यसेन का कहना है कि भारत में प्रायः खाद्यान्यों में आत्म निर्भरता प्राप्त कर लेने की बात सुनने में आती है। खाद्यान्यों के सम्बन्ध में बाजार मांग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित होने से देश आत्म निर्भर तो हो

सकता है फिर भी क्रय शक्ति की कमी से तथा कथित आत्म निर्भरता की स्थिति में काफी लोग भूंख व कुपोषण के शिकार बने रहते है। अतः लोगों की क्रय शक्ति बढाकर पोषण समस्या के इस रूप का उचित हल निकाला जा सकता हे।

योजनावधि में पोषण समस्या के समाधान के लिए सरकार ने जो प्रयन्त किये है उन्हे हम तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते है।

अ. **खाद्यान्य उत्पादन में बृद्धि की दिशा में उपाय** :-

योजनाकाल में कृषि उत्पादन में बृद्धि के जो भी प्रयास किये गये उनमें से अधिकांश खाद्यान्य उत्पादन बृद्धि के प्रति केन्द्रित रहे है। खाद्यान्य उत्पादन वृद्धि के लिए निम्न उपाय किये-

1. **तकनीकी उपाय** :- तकनीकी उपायों का महत्व 1966 के बाद से काफी बढ गया है। तकनीकी उपायों के अन्तर्गत सिंचाई के सुविधाओं में विस्तार, सघन कृषि कार्यक्रम, बहुफसली कार्यक्रम अधिक उपज देने वाली किस्मों का उगाना रासायनिक उर्वरकों का अधिकाधिक प्रयोग तथा कृषि के यंत्रीकरण पर जोर दिया जा रहा है।

2. **भूमि सुधार** :- नियोजन के प्रारम्भ से ही देश में भूमि सुधार कार्यक्रमों को महत्व दिया गया है। इसके अन्तर्गत मध्यस्थों को समाप्त करने के लिए सभी राज्यों में कानून बनाये गये। लगान का नियमन हुआ। जोतो की उच्चतम सीमाबंदी की गई। उपविभाजित एवं अपखण्डित जोतों के लिए चकबन्दी की गई। सहकारी कृषि को प्रोत्साहित किया गया।

3. **प्रेरक मूल्य नीति** :-

1 जनवरी 1965 को भारत सरकार ने खाद्यान्यों की कीमतों पर विचार करने के लिए झा समिति की सिफारिस पर कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की कृषि

मूल्य आयोग कृषकों को खाद्यान्नों के प्रेरक मूल्य देने के सुझाव देता है परन्तु आयोग द्वारा निर्धारित खाद्यान्य वसूली की कीमतें प्रायः बहुत आकर्षक नही रही।

4. **विशिष्ट संस्थानों की स्थापना** :-

खाद्यान्यों का उत्पादन बढाने तथा कृषि का विकास करने के लिए सरकार ने अनेक संस्थानों की स्थापना की है जिनमें राष्ट्रीय बीज निगम, कृषि उद्योग निगम, कृषि मूल्य आयोग, तथा भारतीय खाद्य निगम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

5. **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा** :-

सरकार अब एक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली निर्माण की ओर अग्रसर है, इसके चार मुख्य आधार होगें सिंचित तथा असिंचित क्षेत्रों में भी मुख्य फसलों के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार प्राकृतिक आपदाओं तथा कीडे मकोडे से फसल का संरक्षण, एक स्थायी अनाज भण्डार का निर्माण तथा एक प्रभावी वितरण व्यवस्था का निर्माण।

ब. **खाद्यान्यों के वितरण सम्बन्धी उपाय** :-

खाद्यान्यों का उचित वितरण सुनिश्चत करने के लिए मार्च 1964 में भारत को खाद्य क्षेत्रों में विभक्त किया गया। प्रत्येक खाद्य क्षेत्र में अतिरेक और कमी वाले राज्य थे। खाद्यान्य व्यापार की अनुमति खाद्य क्षेत्रों के भीतर ही रखी गयी। अर्न्तक्षेत्रीय खाद्यान्य व्यापार के लिए निजी व्यापारियों पर रोंक लगा दी गई थी परन्तु प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण इसे कुछ समय बाद ही निरस्त करना पडा। खाद्यान्य नीति के सन्दर्भ में गेहूं और चावल के व्यापार का राष्ट्रीयकरण एक महत्वपूर्ण घटना थी। 1972-73 में गम्भीर खाद्य संकट के

कारण गेहूं और चावल के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण किया गया, ताकि खाद्यान्य आपूर्ति विशेषकर अभाव ग्रस्त क्षेत्रों में सुनिश्चित की जा सके, परन्तु निजी थोक व्यापारियों के विरोध तथा क्रियान्वयन की असुविधा के कारण यह कार्यक्रम असफल रहा। फलतः सरकार ने 28 मार्च 1974 को इस कार्यक्रम को स्थगित कर दिया।

खाद्यान्य वितरण प्रणाली में सुधार के प्रयास का एक प्रमुख पक्ष सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक कारगर बनाने से सम्बद्ध है। सरकार विभिन्न आधिक्य वाले क्षेत्रों से अथवा आयतित खाद्यान्य से बनाये गये वफर स्टाक द्वारा उचित मूल्य की दुकानों से खाद्यान्य वितरण करती है। खाद्यान्यों के वितरण सम्बन्धी उपायों को निम्न शीर्षकों में रखा जा सकता है।

1. **सरकारी खरीद :-**

सरकारी खरीद का अर्थ केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा खाद्यान्यों की खरीद से है। यह खरीद स्वेच्छा तथा वसूली दोनों प्रकार से होती है स्वेच्छा से खरीद उस समय की जाती है जबकि मूल्य या तो गिर रहे होते है या सामान्य होते है। ऐसा किसानों को निरूत्साहित न होने देने के लिए किया जाता है। लेकिन जब खाद्यान्यों की कीमत बढती है तो सरकार को कृषक अपनी उपज निर्धारित मूल्य पर नही बेचना चाहता है ऐसी स्थिति में किसानों पर वसूली या लेवी लगा दी जाती है। फलतः कृषक को विवश होकर अपनी उपज की निर्धारित मात्रा सरकार को बेचनी पडती है।

2. **खरीद मूल्यों का निर्धारण :-**

समय-समय पर सरकार उन न्यूनतम मूल्यों की घोषणा करती है जिस पर वह कृषि पदार्थ खरीदने के लिए तैयार है यह मूल्य कृषि लागत एवं मूल्य आयोग

की सिफारिशों के आधार पर सरकार तय करती है। गत वर्षो से यह मूल्य बढते रहे है।

3. **सार्वजनिक वितरण प्रणाली :-**

अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्गो को खाद्यान्यों की बढती कीमतों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए ही विशेष रूप से सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विकास किया गया है।

4. **खाद्यान्यों की जमाखोरी तथा मुनाफाखोरी के विरूद्ध किये गये प्रयास :-**

सरकार ने उन व्यापारियों और उत्पादकों को जो लाभ कमाने की दृष्टि से खाद्यान्यों का बडे पैमाने पर संग्रह करते है, सजा देने के लिए आवश्यक पदार्थ अधिनियम तथा भारतीय प्रतिरक्षा नियम के अन्तर्गत सजा की व्यवस्था की है।

5. **भारतीय खाद्य निगम की स्थापना :-**

अशोक मेहता समिनि ने 1957 में यह सुझाव दिया था कि भारत सरकार द्वारा एक खाद्यान्य स्थिरीकरण संगठन स्थापित किया जाय। अशोक मेहता समिति की दी गई रूपरेखा के आधार पर जनवरी 1965 में एक भारतीय खाद्य निगम की स्थापना 100 करोड रूपये की पूंजी लगाकर की गई। निगम का उद्देश्य 'सबके लिए भोजन' रखा गया जिसके कार्य निम्न लिखित है –

1. अन्न भण्डार
2. खाद्यान्य बृद्धि में उत्पादन के लिए उचित प्रोत्साहन
3. भण्डारण व्यवस्था
4. किसानों की कुशलता में बृद्धि के लिए तकनीकी प्रशिक्षण।
5. वैज्ञानिक रीतियों के प्रयोग को प्रोत्साहन
6. सहायक खाद्य पदार्थो (मांस,मछली,फल,साग,सब्जी आदि) का विकास।
7. थोक व फुटकर मण्डियों की व्यवस्था।

8. आवश्यकता पडने पर परिवहन सुविधा।

9. खाद्यान्यों की खरीद संग्रह वितरण व विक्रय का कार्य।

10. बिस्कुट मिठाई आदि से सम्बन्धित उद्योगों को प्रोत्साहन।

6. **सार्वजनिक वितरण प्रणाली** :-

भारत सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण की वर्तमान प्रणाली को 1 जुलाई 1979 से लागू किया गया जिसकी प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है :-

1. **प्रणाली का क्षेत्र और जनसंख्या** :-

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था पूरे देश में लागू है। प्रत्येक ऐसे गांव या गांव समूह में जिसकी जनसंख्या 2000 से अधिक है, एक उचित मूल्य की दुकान खोलने का प्रावधान है परन्तु आदिवासी या पहाडी क्षेत्रों में 1000 की जनसंख्या पर ही यह दुकान खोली जा सकती है।

2. **सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वस्तुएं** :-

इस प्रणाली में प्रमुख रूप से 7 वस्तुओं को शामिल किया गया है, चावल, गेहूं, आयातित खाद्य तेल, मिट्टी का तेल, साफ्ट कोक, खाद्य नियंत्रित कपडा, परन्तु राज्य सरकारे आवश्यकता पडने पर और वस्तुओं को सामिल कर सकती है।

3. **नवीन सार्वजनिक वितरण प्रणाली योजना** :-

1 जनवरी 1992 को प्रधानमंत्री ने 1752 पिछडे तथा दूरस्थ क्षेत्रों में नवीकृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली योजना प्रारम्भ की। इन क्षेत्रों में राज्य सरकारे कुछ अतिरिक्त वस्तुयें जैसे चाय, साबुन, दाल, आयोडीन नमक का वितरण करेगी। इन क्षेत्रों में खाद्यान्यों की कीमत 50 रू0 प्रति कुण्टल कम रखी गई है।

4. <u>राशन या उचित मूल्य की दुकानें</u> :-

31 मार्च 1999 को देश में 460 लाख राशन की दुकाने थी। इनमें से 28 प्रतिशत सहकारी समितियों द्वारा संचालित थी।

5. <u>सहकारी उपभोक्ता बाजार</u> :-

30 जून 1994 को शीर्षस्तर पर एक राष्ट्रीय उपभोक्ता, संघ राज्य स्तर पर 29 राज्य विपणन एवं उपभोक्ता संघ, जिला स्तर पर 756 केन्द्रीय उपभोक्ता समितियां तथा आधार स्तर पर 26505 प्राथमिक उपभोक्ता सहकारी स्टोर कार्य कर रहे थे।

6. **नियंत्रित कपडों की विक्री की दुकाने** :-

30 जून 1994 तक इन दुकानों की संख्या 66300 है।

7. **साफ्ट कोक डिपो** :-

सरकार ने उचित मूल्यों पर सोफ्ट कोक उपलब्ध कराने के लिए सोफ्ट कोक डिपो खोले हैं।

8. **सुपर बाजार** :-

सुपर बाजारों की स्थापना बडे-बडे नगरों में की गयी है। इन भण्डारों में साधारण उपभोक्ता की सभी वस्तुऐं मिलती है। इस समय इनकी संख्या 150 के लगभग है। राशन की वस्तुओं का भी विक्रय होता है।

9. **मिट्टी तेल की विक्री** :-

इस समय इन दुकानों की संख्या 2.5 लाख है।

10. **लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना** :-

यह योजना 1 जून 1957 से पूरे देश में लागू की गयी है। इस योजना का उद्देश्य गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को सस्ती दर पर गेहूं व चावल उपलब्ध कराना है। इस योजना के अन्तर्गत

गेहूं 2.50रू0 तथा चावल 3.50 प्रति किलो की दर से दिया जा रहा है एक गरीब परिवार को प्रति माह 10 किलो अनाज दिया जाता है इस योजना से प्रतिवर्ष 32 करोड लोगों के लाभान्वित होने का अनुमान है।

स. **खाद्यान्यों के उपभोग सम्बन्धी नीति :-**

भारत में खाद्यान्यों के उपभोग के दो पहलू हैं प्रथम खाने वाले व्यक्तियों की संख्या में बृद्धि और द्वितीय अधिंकाश लोगों के उपभोग का स्वरूप अनाजों व चावल के पक्ष में है।

1. **जनसंख्या नीति :-**

जनसंख्या नीति का उद्देश्य लोगों को उनके परिवारों के आकार को नियंत्रित करने के लिए सुविधायें प्रदान करना है। परिवार कल्याण कार्यक्रम जन्म दर को नियंत्रित करने का एक कारगर उपाय है।

2. **पोषण नीति :-**

पोषण नीति का उद्देश्य लोगों के अनाज के उपभोग को गैर अनाज खुराक में प्रतिस्थापित करना है। लेकिन इसके साथ यह भी आवश्यक है कि भोजन में पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा हो।

खाद्य एवं पोषण बोर्ड ने पोषक आहारों के क्रमिक विकास, संरक्षण और प्रभावकारी प्रयोग के लिए अनेक कार्यक्रम हाथ में लिये हैं इन कार्यक्रमों का उद्देश्य पोषक आहारों की आपूर्ति बढाना, आहारों की पौष्टिकतायें बढाना, कर्मचारियों और उपभोक्ताओं का शिक्षण प्रशिक्षण और समेकित खाद्य एवं पोषण प्रणाली का विकास का आयोजन करना है ताकि लोगों के पोषण में सुधार लाया जा सके। बोर्ड में चावल, दाल और मक्के की पिसाई के आधुनिकीकरण तथा अन्य खाद्यान्यों के परिस्करण, फल एवं साग सब्जी संरक्षण

उद्योग, प्रोटीन आहार उद्योग, बेकरी उद्योग के सम्बर्द्धन की दिशा में भी कदम उठाये गये है।

द. **अल्प पोषण दूर करने के सरकारी प्रयास :-**

भारत सरकार ने अल्प पोषण की रोंकथाम के लिए कई कार्यक्रम चलाये हैं। जिनमें से निम्न प्रमुख है।

1. **प्रयोगिक पोषण प्रोजेक्ट :-**

यह कार्यक्रम 1963 में चालू किया गया और इसका उद्देश्य गर्भवती व दूध पिलाती माताओं को सुरक्षित खाद्य के रूप में सब्जियां और फल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से इसको उत्पादन एवं उपभोग को बढावा देना था।

2. **विशेष पोषण प्रोग्राम :-**

यह कार्यक्रम 1970 से प्रारम्भ किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य गर्भवती व शिशुपालक माताओं को 500 कैलोरी और 25 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध कराना और बच्चों को 300 कैलोरी और 10 ग्राम प्रोटीन सप्ताह में 6 दिन उपलब्ध कराना था।

3. **समन्वित बाल विकास योजनायें :-**

यह कार्यक्रम 1975 में प्रारम्भ किया गया और इसका उद्देश्य बच्चो गर्भवती अथवा शिशुपालक माताओं को खाद्य अनुपूरण उपलब्ध कराना था।

4. **बालवाडी पोषाहार कार्यक्रम :-**

बालवाडी पोषाहार कार्यक्रम 3-5 वर्ष की आयु के बच्चों को पूरक पोषाहार मनोंरजन सुविधायें और अनौपचारिक स्कूल पूर्व शिक्षा देने के लिए वर्ष 1970-71 में प्रारम्भ किया गया था। देश के ग्रामीण और

जनजातीय तथा शहरी वस्तियों में 5053 बालवाडियां है जिनमें 2.25 लाख बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं, जिनमें 2.25 लाख बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर के पांच संगठनों द्वारा लागू किया जा रहा है जिन्हे सरकार वित्तीय सहायता देती है।

5. **<u>स्कूली बच्चों के मध्य भोजन कार्यक्रम</u>** :-

यह योजना 15 अगस्त 1995 से लागू की गई है। इस कार्यक्रम के अन्तगर्त सरकार व स्थानीय निकायों द्वारा संचालित तथा सरकारी सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों में पढने वालों को बच्चों को दोपहर का भोजन निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता है। जब तक इन स्कूलों में भोजन पकाने की व्यवस्था नही हो जाती है तब तक प्रत्येक पात्र विद्यार्थी को तीन किलोग्राम प्रतिमाह अनाज दिया जाता रहेगा। इस कार्यक्रम के लाभार्थी विद्यार्थियों को कम से कम 80 प्रतिशत उपस्थिति दर्ज कराना अनिवार्य है।

य. **<u>खाद्य सुरक्षा हेतु किये गये प्रयास</u>** :-

खाद्य सुरक्षा प्रणाली को मजबूत करने हेतु सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में कई उपाय किये हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख है।

1. देश में खाद्यान्य उत्पादन को बढाना।
2. न्यूनतम समर्थन कीमत व खाद्य पदार्थो की वसूली करना।
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू करना।

र. रोजगार सृजन तथा गरीबी निवारण के प्रयास-

इन प्रयासों को सारिणी 9.8 में प्रस्तुत किया जा रहा है

	कार्यक्रम/योजना संस्थान		प्रारम्भ वर्ष	उद्देश्य/विवरण
	प्रथम पंचवर्षीय योजना	1951-56		
1.	सामुदायित विकास कार्यक्रम	(CDP)	1952	समाज का सर्वांगीण विकास करना
	द्वितीय पंचवर्षीय योजना	1956-61		
1.	सघन कृषि विकास कार्यक्रम	(IADP)	1960-61	किसानों को ऋण,बीज,खाद और कृषि यंत्र आदि उपलब्ध कराना।
	तृतीय पंचवर्षीय योजना	1961-66		
1.	गहन कृषि क्षेत्रीय कार्यक्रम	(IAAP)	1964-65	विशिष्ट फसलों का विकास करना।
2.	अधिक उपज देने वाली किस्मों का कार्यक्रम		1966-67	विभिन्न फसलों की नवीन प्रजाति को अपनाकर खाद्यान्यों का उत्पादन बढाना
3.	हरित क्रान्ति		1966-67	कृषि उत्पादन में बृद्धि।
4.	बहुफसली कार्यक्रम	(MCP)	1966-67	कृषि उत्पादन में बृद्धि।
	चतुर्थ पंचवर्षीय योजना	1969-74		
1.	ग्रामीण विद्युतीकरण निगम		जुलाई 1969	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकाश, कृषि एवं उद्योग हेतु विद्युतीकरण।
2.	महाराष्ट्र की रोजगार गारन्टी योजना		1966-67 1972-73	ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक दृष्टि से निर्बल वर्गो की सहायता करना।
3.	त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम	ARWSP	1972-73	गांवों में पीने का पानी उपलब्ध कराने हेतु।

4.	सूखाग्रस्थ क्षेत्र विकास कार्यक्रम	DPAP	1973	सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पर्यावरण संतुलन, भूमि जल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों को विकसित करके सूखें से बचाव के उपाय करना।
5.	ग्रामीण रोजगार के लिए कैशस्कीम	CRSE	1972-73	ग्रामीण विकास हेतु।
6.	सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिक एजेन्सी	MFAL	1974-75	तकनीकी एवं वित्तीय सहायत हेतु।
7.	लघु कृषक विकास एजेन्सी	SFDA	1974-75	तकनीकी एवं वित्तीय सहायत हेतु।
	पंचम पंचवर्षीय योजना	1974-79		
1.	कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम	CADP	1974-75	बडी और मध्यम परियोजनाओं का सिंचाई क्षमता का तेजी से बेहतर उपयोग सुनिश्चत करना।
2.	बीस सूत्रीय कार्यक्रम		1975	गरीबी निवारण और रहन-सहन के स्तर को उच्च करना।
3.	मरू भूमि विकास कार्यक्रम	DDP	1977-78	मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण सन्तुलन बनाये रखने हेतु।
4.	काम के बदले अनाज कार्यक्रम		1977-78	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्य देना।
5.	अन्त्योदय योजना		1977-78	(राजस्थान में) गांव के सबसे गरीब परिवारों को आर्थिक स्वावलम्बी बनाना।
	षष्ट पंचवर्षीय योजना	1980-85		
1	ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार प्रशिक्षण	TRYSEM	15अगस्त 1979	ग्रामीण युवको को रोजगार प्रशिक्षण देना।

2	समन्वित ग्रामीण विकास योजना		2 अक्टू. 1980	ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेतु ऋण की व्यवस्था करना।
3	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना	NREP	1980	ग्रामीण गरीबों को लाभकारी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
4	ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम	DWCRA	सित0 1982	गरीबी रेखा के नीचे ग्रामीण महिलाओं को स्वराजेगार के अवसर प्रदान करना।
5	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम	RLEGP	15सित0 1983	भूमि कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
6	शिक्षित बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार प्रदान करने की योजना	SEEUY	1983-84	स्वरोजगार हेतु वित्तीय व तकनीकी सहायता प्रदान करना।
7	राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कोष	NFRD	फर0 1984	दानकर्ता को कर में 100प्रतिशत की छूट व ग्रामीण विकास के लिए दान प्रापत करना।
	सप्तम पंचवर्षीय योजना	1985-90		
1	इन्दिरा आवास योजना	IAY	1985-86	अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के ग्रामीणों को आवास उपलब्ध कराना।
2	ब्यापक फसल बीमा योजना	CCIS	1अप्रैल 1985	विभिन्न कृषि फसलों का बीमा कराने हेतु।
3	लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद	CAPART	1सित0 1986	ग्रामीण समृद्धि के लिए सहायता प्रदान करना।
4	ग्रामीण जलापूर्ति तथा शहरी निर्धर्नो हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम		सित0 1986	गांवों में पेयजल व्यवस्था हेतु व स्वरोजगार हेतु वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग।

5	सेवा क्षेत्र पद्धति	S.A.A.	फरवरी 1988	ग्रामीण उधार की एक नई रणनीति।
6	जवाहर रोजगार योजना	JRY	अप्रैल 1989	ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
7	दस लाख कुआं योजना	MWS	1988-89	अनुसूचित जातियों, जन जातियों व सीमान्त कृषकों के लिए निःशुल्क खुले सिंचाई कुओं का निर्माण।
8	नेहरू रोजगार योजना	NRY	अक्टू0 1989	नगरीय क्षेत्रों में बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
9	कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना	ARDRS	1990	ग्रामीण कारीगरों, बुनकरों आदि को 10000 रू0 तक के ऋण देना।
10	शहरी सूक्ष्य उद्यम स्कीम	SUME	1990	शहरी निर्धन व्यक्तियों को लघु उद्यम के लिए सहायता करना।
11	शहरी सवेतन रोजगार योजना	SUWE	1990	1 लाख से 20 लाख की जनसंख्या वाली शहरी वस्तियों में आश्रम उन्नयन के माध्यम से रोजगार प्रदान करना।
	अष्टम पंचवर्षीय योजना	1992-97		
1.	ग्रामीण कारीगरों को सुधरे यत्रों की आपूर्ति योजना	SITRA	जुलाई 1992	निर्धनता रेखा से नीचे वाले बुनकरों, दर्जियों कशीदकारों तथा बीडी बनाने वालों को अतिरिक्त ग्रामीण कारीगरों को आधुनिक औजारों की आपूर्ति।
2.	रोजगार आश्वासन योजना		2 अक्टू0 1993	गांवों में वर्ष में कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।

3.	सांसदों की स्थानीय विकास योजना		23 दिस0 1993	निर्वाचन स्थानीय क्षेत्रों में सांसद प्रतिवर्ष 1 करोड रूपये तक के विभिन्न कार्य सम्पन्न करायेगें।
4.	जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी	DRDA	1993	ग्राम्य विकास हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।
5.	महिला समृद्धि योजना	MSY	2 अक्टू0 1993	ग्रामीण महिलाओं को डाकघर बचत बैंक खातें में जमा को प्रोत्साहित करना।
6.	बालश्रम उन्मूलन योजना		15 अगस्त 1994	खतरनांक उद्योगों में लगे बाल श्रमिकों को इन कामों से हटाकर स्कूल भेजने एवं वही रोजगार सम्बन्धी प्रशिक्षण देना।
7.	प्रधानमंत्री का समन्वित शहरी निर्धनता निवारण कार्यक्रम		18 नवम्बर 1995	50 हजार से 1 लाख तक जनसंख्या वाले 345 नगरों में निर्धनता निवारण हेतु तथा मूल नागरिक सुविधायें उपलब्ध कराने हेतु
8.	ग्रामीण क्षेत्रों में सामूहिक जीवन बीमा योजना		1995-96	ग्रामीण क्षेत्रों के व्यक्तियों को कम लागत पर जीवन बीमा की सुविधा उपलब्ध कराना।
9.	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम		1995	निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की सहायता
10	गंगा कल्याण योजना		1997-98	भूमिगत रेखा से नीचे जीवन यापन की निकासी करने वालों को सहायता।

11	कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना	15 अगस्त 1997	नीची महिला साक्षरता दर वाले जिलो में वालिका विद्यालयों की स्थाना
	नवम पंचवर्षीय योजना	1997-02	
1	स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना	1 दिस0 1997	शहरी क्षेत्रों में निर्धनता निवारण की योजना
2	अन्नपूर्णा योजना	15मार्च 1999	बृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज
3	भाग्य श्री बाल कल्याण पालिसी	19 अक्टू0 1998	बालिकाओं के उद्धार के लिए
4	राजराजेश्वरी महिला कल्याण योजना	19 अक्टू0 1998	महिलाओं को बीमा सुरक्षा प्रदान करना।
5	जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	1 अप्रैल 1999	ग्रामीण गरीबों का जीवन सुधारना और उन्हे लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
6	प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	2000	ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता रेखा से नीचे रहने वालों के लिए आवास उपलब्ध कराना।

इस विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि पंचवर्षीय योजनाओं में न केवल उत्पादन बढाने के प्रयास किये बल्कि लोगों के पोषण स्तर को बढाने के चतुर्दिक प्रयास किये है परन्तु जनसंख्या बृद्धि की दर देखते हुए खाद्यान्यों को और अधिक बढाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्वावलम्बन की दृष्टि से भी खाद्यान्यों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना महत्वपूर्ण है। क्योंकि खाद्यान्यों के उत्पादन में पर्याप्त बृद्धि के बावजूद भी अभी तक हमारे देश में खाद्यान्यों में स्थायी किस्म की आत्म निर्भरता प्राप्त नही हुई है। आज भी 30 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही

है जिन्हे भरपेट भोजन नही मिलता है। संतुलित भोजन का लक्ष्य अभी भी दूरगामी स्वप्न है। इस दिशा में 50 वर्षो की प्रयास की समीक्षा करते हुए नवी योजना में उल्लेख किया गया है 'खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त हो चुकी है परन्तु अभी भी जनसंख्या संतुलित भोजन का अभाव अनुभव करती है। यह चिन्ता का विषय है कि चाहे अनाज का उत्पादन बढती हुई आवश्यकताओं के साथ-साथ बढता गया है। और अनाज का प्रति व्यक्ति औसत उपभोग सन्तोषजनक रहा है परन्तु दालों के उपयोग में प्रतिव्यक्ति गिरावट दर्ज की गयी है, इसलिए दालों का उत्पादन बढती हुई आवश्यकता के अनुरूप बढाना ही महत्वपूर्ण नही है बल्कि यह भी जरूरी है कि दाले सस्ते दामों पर उपलब्ध करायी जाये। सब्जियों और फलों का उत्पादन एवं उपभोग नीचा ही रहा है। सब्जियों के उत्पादन को बढाने और उन्हे विशेषकर हरी पत्तेदार सब्जियों को उचितदामों पर उपलब्ध कराने की ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सक्त जरूरत है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि खाद्यान्यों तथा दालों और सब्जियों का न केवल उत्पादन ही बढाया जाये बल्कि उनका उचित विरिण भी सुनिश्चत किया जाये जिससे सामान्य जन भी अपना उचित भरण पोषण कर सके।

3. <u>भावी ब्यूह रचना</u> :- तेजी से बदलती हुई जीवन शैली, तीब्रगति से बढती हुई जनसंख्या के एक बडे भाग की कृषि पर निर्भरता, बदलता हुआ ग्रामीण परिवेश आदि तथ्य इस ओर संकेत करते है. कि यदि कृषि क्षेत्र पर पर्याप्त ध्यान न दिया गया तो आगामी वर्षो में बढती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति कठिन हो जायेगी। कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में बृद्धि हेतु कृषि व्यवसाय के लिए भावी रणनीति और अधिक सुद्रढ बनायी जानी चाहिए। अध्ययन क्षेत्र के लिए नई ब्यूह रचना के लिए निम्नांकित तथ्यों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

क. **विस्तृत खेती की सम्भावनांये :-**

अध्यक्ष क्षेत्र में अभी भी कृषि क्षेत्र को विस्तृत करने की पर्याप्त सम्भावनायें है क्योकि प्रतिवर्ष लगभग 46218 हेक्टेयर भूमि वर्तमान परती के शीर्षक में अप्रयुक्त रहती है। अन्य परती भूमि के अन्तर्गत लगभग 16482 हे0 भूमि तथा कृषि योग्य बंजर भूमि का क्षेत्रफल लगभग 8436 हे0 है। इन मदों में कृषि के लिए अप्रयुक्त भूमि 71136 हे0 है जिसे कृषि क्षेत्र में पर्याप्त सुविधाओं के अभाव में प्रयोग नही किया जा रहा है। कृषि के लिए अप्रयुक्त भूमि शुद्ध बोये गये क्षेत्र की 32.03 प्रतिशत है। यदि कृषि क्षेत्र की सुविधाओं में बृद्धि की जाये तो इस परती भूमि पर विभिन्न फसले उगाई जा सकती है और कृषि उत्पादन में बृद्धि की जा सकती है।

ख. **बडी मात्रा में कृषि आदान उपलब्ध कराना :-**

हरित क्रान्ति या कृषि उपज की नई तकनीक कृषि भूमि पर पर्याप्त आदानों की मांग करती है जिसके लिए कृषि क्षेत्र में भारी पूंजी निवेश किया जाना चाहिए। सरकार कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश करने में पूर्णतया असफल रही है। जोतों का छोटा आकार कृषकों के लिए पर्याप्त उपज अतिरेक उत्पन्न करने में सफल नही रहा है जिससे उनकी आय का स्तर भी इतना ऊंचा नही उठा सका है कि वे कृषि क्षेत्र में पर्याप्त पूंजी निवेश कर सकें। इस सम्बन्ध में सरकार की ग्रामीण साख नीति की असफल रही है। जिसके कारण कृषि क्षेत्र पूंजी निवेश के अभाव से आज भी पीडित है। न तो कृषकों को पर्याप्त मात्रा में उत्तम बीज, रासायनिक उर्वरक, पौध संरक्षण रसायन तथा सिंचाई की सुविधाए प्राप्त हो सकी है और न ये सुविधायें समय पर उपलब्ध कराई जा सकी है। जिसके कारण आज भी कृषि क्षेत्र उपक्षित है और कृषि उत्पादन निम्न बना हुआ है। यदि उपयुक्त मात्रा में तथा उपयुक्त समय पर कृषि आदानों की आपूर्ति सुनिश्चत

की जा सके तो आज भी कृषि उत्पादन को और उच्च स्तर पर ले जाया जा सकता है।

ग. **सामुदायिक विकास कार्यक्रम और प्रसार सेवाओं में बृद्धि :-**

ग्रामीण विकास की समस्त जिम्मेदारी सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सौंप दी गई। सामुदायिक विकास का अभिप्राय है सामूहिक प्रयासों के जरिये सामूहिक उत्थान/सामुदायिक विकास के राष्ट्रीय कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए सारे देश को 5026 विकासखण्डों में बांट दिया गया था और प्रत्येक विकास खण्ड के लिए उपयुक्त उपरिढार्चे की व्यवस्था समुचित करने का प्रस्ताव था किन्तु ऐसा सम्भव नही हो सका। कार्यक्रम की सफलता के लिए जिस मात्रा में संसाधनों की उपलब्धता की अपेक्षा थी वह सम्भव न हो सकी। इस कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया गया और यह '' विकास के साथ सामाजिक न्याय के उद्घोषित उद्देश्यों के अनुरूप था लेकिन इसके परिणाम बहुत उत्साहबर्द्धक नही रहे। आवश्यकता इस बात की है कि जो भी कार्यक्रम निर्धारित किये जाये तथा उन कार्यक्रमों में जिस लक्ष्य को प्राप्त करने का संकल्प लिया जाये उसे प्राप्त करने में गम्भीर प्रयास किये जाने चाहिए। सभी ग्रामीण क्षेत्र के जीवन स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है।

घ. **फसलो की अधिक तीव्रता :-**

अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि पर फसलों की तीव्रता तथा उनकी आवृत्ति पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। परम्परागत फसल चक्र में मोटे अनाजों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए जिन्हे भिन्न जलवायु की दशाओं में उगाई जा सकती है। फसल प्रतिरूप में परिवर्तन करके अल्पकालिक फसलों को वरीयता दी जानी चाहिए जिससे कृषक वर्ष में दो या दो से अधिक फसले प्राप्त कर सकें और कृषि उत्पादकता में बृद्धि कर सकें।

य. **<u>न्यूनतम फसल कीमतों का निर्धारण</u>** :- कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए न्यूनतम कीमतों की गारन्टी को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस सम्बन्ध में कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की जा चुकी है। जिसने समय समय पर सरकार को कृषि उपज मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण सलाह दी है, परन्तु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि सरकार यह जानते हुए भी कि कृषि क्षेत्र उद्योग क्षेत्र से भिन्न स्वभाव का है और कृषि क्षेत्र में कृषि उपज की लगभग सम्पूर्ण आपूर्ति थोडे समय में ही हो जाती है, जिससे व्यापारियों द्वारा जानबूझकर बाजार मूल्य को नीचा रखा जाता है जिससे व्यापारी विचौलिए की भूमिका में मोटा लाभ स्वयं हडप कर जाता है, सरकार की घोषित मूल्य नीति का लाभ कृषकों तक सामान्यतया पहूंच ही नही पाता और यदि यह लाभ कृषक तक पहुंचता भी है तो अत्यल्प मात्रा में। सरकार को बाजार की इस प्रबृति पर अंकुश लगाना ही होगा, अन्यथा सरकार की कृषि मूल्य नीति कृषकों के हित में कम व्यापारियों का अधिक हित करती रहेगी।

....

....

....

....

अध्याय-दशम्

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्राकृतिक समस्याओं के निवारण हेतु सुझाव

जल निकास की समुचित व्यवस्था

भूमिगत जल का सदुपयोग

भूसंरक्षण की रोकथाम

ऊसर भूमि सुधार

फसल प्रतिरूप तथा भूमि उपयोग में सुधार

गहन कृषि का विस्तार

मुद्रा दायिनी फसलों में विस्तार

कृषि से सम्बन्धित क्रियाओं को प्रोत्साहन

पशुपालन को प्रोत्साहन

डेरी फार्मिंग

मुर्गी पालन

सुअर पालन

मछली पालन

रेशम उत्पादन को प्रोत्साहन

खाद्य संम्बर्धन उद्योग को प्रोत्साहन

कृषि आधारित ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन

संतुलित भोजन का ज्ञान

अध्याय दसम्

निष्कर्ष एवं सुझाव

भारत की बुनियादी समस्या आर्थिक विकास की आवश्यकता है । आर्थिक विकास से आशय है संर्वजन को उनकी न्यूनतम आवश्यकता को पूरा करने के साधन उपलब्ध कराना । इस स्वप्न को मूर्तरूप देने के लिए भारत में स्वतंत्रता के बाद अनेक कदम उठाए गये । 1 अप्रैल 1951 से पहली पंचवर्षीय योजना जो योनावद्ध विकास की पहली कड़ी थी, भरतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को इसी दिशा में ले जाने का एक प्रयास थी । पिछले पांच दशकों के योजनावद्ध विकास के दौरान भारतीय अर्थ व्यवस्था मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिनमें उल्लेखनीय है कि भारत का कृषि उत्पादन लगभग चार गुना बढ़ा है और राष्ट्रीय आय में भी प्रति वर्ष लगीग 3.8 प्रतिशत की दर से बढ़ी हैं सरकार ने कृषि के विकास के लिए जो नीतियां अपनाई हैं वे बहुत उत्साह बर्द्धक रहीं हैं । सरकार द्वारा निर्धारित सहायतार्थ कीमतों से फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल विस्तार पर प्रभाव पड़ता है । सहायतार्थ कीमतों पर प्रदान किए गये आगतों की मांग में वृद्धि हो रही है अब साधारण उपस्करों और कृषि यंत्रों पर किसानों को अधिक धन व्यय नहीं करना पड़ता है । जिससे कृषि यंत्रों और कार्य मशीनरी की मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है । भारत में सामाजिक उपरिसेवाओं का भी पर्याप्त विस्तार हुआ है, वित्तीय साधनों की उपलब्धि से कृषि निर्यात, उद्योग, लघु एवं कुटीर उद्योग, फुटकर एवं छोटे व्यापार, एवं रोजगार, शिक्षा आदि के क्षेत्र में पर्याप्त एवं महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, साक्षरता का अनुपात बढ़ा है जीवन की प्रत्याशा बढ़ी हैं वित्तीय साधनों की उपलब्धि से कृषि निर्यात, उद्योग, लघु एवं कुटीर उद्योग, फुटकर एवं छोटे व्यापार एवं रोजगार शिक्षा आदि के क्षेत्र में पर्याप्त एवं महत्वपूर्ण प्रगति हुई, साक्षरता का अनुपात बढ़ा है जीवन की प्रत्याशा बढ़ी हैं, और मानव पूंजी में गुणात्मक सुधार हुए हैं । अब देश में प्रशिक्षित श्रमिकों तकनीकी विशेषज्ञों वैज्ञानिकों, अनुसंधान कर्ताओं, प्रशासको, प्रबन्धकों उद्यमियों आदि की कमी नहीं है । अब साद्यान्नों तथा आवश्यकता निर्मित वस्तुओं के लिए विदेशों पर नहीं निर्भर रहना पड़ता है । सबसे बड़े गौरव की बात तो यह है हम अपनी घरेलू तकनीक

का विकास करके देश के तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के योग्य हो गये हैं ।

पृथ्वी की सतह कृषि एवं खाद्यान्न उत्पादन का प्रमुख स्थल है जिस पर मानव का भरण पोषण निर्भर रहता है, वास्तव में यह मनुष्य के आर्थिक विकास के लिये पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करती है । यह मनुष्य के सामाजिक, एवं सर्वांगीण विकास की जननी है । पृथ्वी का संपूर्ण धरातल कृषि योग्य नहीं हैं और नही इसे कृषि योग्य बनाया जा सकता है । कृषि के लिये तो धरातल का वही भाग्य उपयोगी है जो किसी न किसी रूप में उपजाऊ है । मानवीय प्रयासों के फलस्वरूप कृषि के अयोग्य भूमि का एक बड़ा भाग भी कृषि योग्य बनाया जा सका है । इसलिए मनुष्य को सीमित कृषि योग्य भूमि से ही अपने भरण पोषण का पर्याप्त साधन प्राप्त करना है, यही उसके अनेक उद्यमों का श्रोत भी है इस उद्देश्यों की सफलता भूमि के समुचित उपयोग, उसकी उत्पादन क्षमता, उससे प्राप्त उपलब्धियां तथा अन्य लाभों पर निर्भर है । दूसरे शब्दों में भूमि संसाधन के यथा सम्भव अधिकतम उपयोग तथा उसके नियोजन द्वारा ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव हे । तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या, जीवन स्तर का क्रमिक उत्थान, पौधों और जैविक पदार्थो के औद्योगिक उपयोग में अप्रत्याशित वृद्धि खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उपजों के बीच भूमि उपयोग में उत्पन्न होने वाली प्रतिस्पर्धा, यातायात साधनों एवं यातायात मार्गो का विस्तार आदि क्रियाएं कृषि भूमि का अभाव उत्पन्न करते जा रहे हैं, किन्तु तकनीकी में परिवर्तन से कृषि उत्पादन की सघनता में वृद्धि भी की जा रही है जिससे कृषि भूमि का अधिक नियोजित उपयोग भी होने लगा है जिससे जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर भी खाद्यान्न के अभाव को कुछ हद तक रोका जा सका है । जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को देखते हुए कृषि साधन के विकास से मानवीय समस्याओं का आंशिक समाधान ही सम्भव है, परन्तु इसके लिए भी हमें प्रयत्नशील रहना होगा । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भूमि की क्षमता, उर्वरता तथा उसके समुचित एवं समन्वित उपयोग का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है, इन्हीं दृष्टिकोणों से कृषि उत्पादन, पोषण स्तर एवं कुपोषण जनित बीमारियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य उददेश्य कृषि प्रधान जनपद प्रतापगढ़ की कृषि उत्पादकता, पोषण स्तर एवं स्वास्थ्य की समुचित व्याख्या करना है जिससे जनपद वासियों के आर्थिक उन्नयन

हेतु समन्वित वैज्ञानिक नियोजन हेतु कुछ कार्यक्रम प्रस्तावित किए जा सकें । इस शोध निबन्ध में शोध कर्त्ता को निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हुए हैं -

1. अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ़ 25° 52' से 26° 22' उत्तरी अक्षांश तथा 81°.22' से 82° 49 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जिसका कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 36 के मध्य स्थित है जिसका कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 362426 हेक्टेयर है जिसमें कृषि फसलों हेतु 222106 हेक्टेयर भूमिका उपयोग किया जाता है शेष 140300 हेक्टेयर भूमि अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयोग में लाई जाती हैं अथवा अकृष्ठ और परती भूमि के रूप में हैं ।

2. गंगा के उत्तर में स्थित यह क्षेत्र गंगा की जलोढ़ मिट्टी से युक्त संयुक्त समतल मैदानी क्षेत्र है जिसका ढ़ाल उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर है उत्तर पश्चिम में समुद्रतल से ऊँचाई 148.67 मीटर तथा दक्षिण पूर्व में यह 131.36 मीटर है । गंगा नदी के उत्तर में तथा सई नदी के दोनों ओर कुछ भूमि ऊबड-खाबड़ तथा असमतल है जो कृषि कार्य की दृष्टि से अधिक उपजाऊ नहीं है ।

3. अध्ययन क्षेत्र की कृषि अब परम्परागत सिंचाई का साधन मानसून पर निर्भर न रहकर कृत्रिम सिंचाई के साधनों से सुसज्जित हो गई है परन्तु फिर भी औसत वार्षिक वर्षा 824 मिलीमीटर से 977 मिलीमीटर के मध्य रहती है ।यहाँ का तापमान उच्चतम 47.7 सेन्टीग्रेट तथा न्यूनतम 4.5 सेन्टीग्रेट के मध्य रहता है । उच्चतम तापमान सामान्य तथा जून के प्रारम्भ में तथा न्यूनतम तापमान जनवरी के प्रारम्भ में पाया जाता है ।

4. अध्ययन क्षेत्र में कृषि के लिए उपलब्ध 222106 हेक्टेयर भूमि कुल 2529041 लोंगों के उदर आपूर्ति का दायित्व वहन करती है । जनसंख्या बृद्धि देखे तो वर्ष 1981 तथा 1991 के मध्य 22.13 की दर से बढ़ी जिससे अब प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर सामान्य घनत्व 671 प्रतिवर्ग किलोमीटर, क्रमिक घनत्व 697 प्रतिवर्ग किलोमीटर तथा कृषि घनत्व 175 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। प्रति हेक्टेयर कृषि क्षेत्र पर 1.75 व्यक्ति निवास कर रहे हैं । जब कि फसल गहनता 157.05 प्रतिशत है ।

5. अध्ययन क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की भाँति जोत के आकार में अत्यधिक असमानता दिखाई पड़ती है जहाँ एवं एक ओर तो 87.43 प्रतिशत कृषक ऐसे है जिनके पास 1 हेक्टेयर से कम कृषि भूमि है, जब कि दूसरी ओर 12.57

प्रतिशत कृषकों के पास 1 हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि है, जिनमें से 1 से 2 हेक्टेयर के मध्य 9.46 प्रतिशत कृषक 2 से 3 हेक्टेयर के मध्य, 1.95 प्रतिशत कृषक, 3 से 5 हेक्टेयर, के मध्य 0.94 प्रतिशत और 5 हेक्टेयर से अधिक भूमि वाले 0.22 प्रतिशत कृषक हैं । क्षेत्रफल की दृष्टि से देखें तो 87.43 प्रतिशत कृषकों के पास कुल भूमि का 56.83 प्रतिशत कृषि क्षेत्र है जबकि 12.57 कृषकों के पास 43.17 प्रतिशत कृषि क्षेत्र है ।

6. अध्ययन क्षेत्र में 222106 हेक्टेयर कुल कृषि क्षेत्र में 57.05 प्रतिशत क्षेत्रफल पर प्रतिवर्ष एक से अधिक बार विभिन्न फसलों उगाई जाती हैं इस प्रकार वर्ष में बोया जाने वाला कृषि क्षेत्र 348810 हेक्टेयर है । सिंचाई के साधनों में प्राकृतिक वर्षा के अतिरिक्त कृत्रिम साधनों का भी उपयोग बड़े पैमाने पर किया जा रहा है जिनमें राजकीय नलकूप, राजकीय नहरें, विद्युत/डीजल चलित नलकूप/पम्पिंग सेट्स महत्वपूर्ण है इन साधनों द्वारा सिंचन सुविधाएं प्राप्त हो जाने के कारण शुद्ध सिंचित क्षेत्र 163425 हेक्टेयर (शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल का 65.91 प्रतिशत है) है । कृषि मौसमों में खरीफ तथा रवी कृषि मौसम में खाद्यान, तलहनी तथा तिलहनी फसलों की प्रधानता है जब कि जायाद मौसम में ककड़ी, खरबूजा, तथा तरबूज और मौसमी सब्जियों महत्वपूर्ण फसले हैं । खाद्यान फसलों में धन,ज्वार, मक्का, गेंहू तथा जौ की प्रमुखता है जबकि अरहर, चना, मटर, दलहनी फसल हैं तिलहनी फसलों में लाही, सरसों ही प्रमुख फसले हैं नकदी फसलों में गन्ना, आलू प्रमुख रूप से उगाए जाते हैं इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में प्रचलित कृषि प्रारूप में 79.42 प्रतिशत क्षेत्र पर खाद्यान्न फसलें, 12.09 प्रतिशत क्षेत्रफल पर दलहनी फसलें, 0.80 प्रतिशत क्षेत्र पर तिलहनी फसलें, आलू 2.2 प्रतिशत क्षेत्र पर गन्ना 0.70 प्रतिशत अन्य फसलों के अन्तर्गत 4.79 प्रतिशत क्षेत्र प्रयोग में लाया जाता है ।

7. अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न फसलों के उत्पादन की दुष्टि से देखे तो कुल खाद्यान 5598609 क्विंटल, दलहन का उत्पादन 412335 क्विंटल तिलहन का उत्पादन 24013 क्विंटल, गन्ना 1500652 क्विंटल तथा आलू 1441641 क्विंटल उत्पन्न किया जाता है । खाद्यानों में गेंहू, चावल, ज्वार, बाजरा तथा मक्का प्रमुख हैं ।

8. अध्ययन क्षेत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष खाद्यान की उपलब्ध मात्रा 244.50 किलोग्राम ,दालों की उपलब्ध मात्रा 17.83 किलोग्राम है । इस प्रकार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उपलब्ध खाद्यान तथा दलहन की मात्रा क्रमशः 669 ग्राम तथा 49 ग्राम

है । विभिन्न फसलों में शुद्ध खाने योग्य पदार्थ खाद्यानों की उपलब्ध मात्रा केवल 476 ग्राम तथ दलहन की यह मात्रा केवल 29 ग्राम प्रति व्यक्तियों के प्रतिदिन उपयोग योग्य है ।

9. अध्ययन क्षेत्र में अनुकूलतम भूमि भार वहन क्षमता प्रतिवर्ग किलोमीटर 558 व्यक्ति है जब कि कायिक घनत्व 697 व्यक्ति हैं । इस प्रकार खाद्यान उत्पादन की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र 139 व्यक्तियों के लिए अतिरिक्त भरण-पोषण की व्यवस्था करता है क्यों कि अध्ययन क्षेत्र में 558 व्यक्तियों के लिए कुल खाद्यान्न उपलब्ध है जब कि 697 व्यक्तियों का भरण-पोषण किया जा रहा है ।

10. अध्ययन क्षेत्र में कृषि तकनीकी में आधुनिकीकरण का स्तर सूचकांक 173 से लेकर 334 प्रतिशत तक प्राप्त होता है जिसका वर्गीकरण करने पर अतिरिक्त स्तर पर कुण्डा, बाबागंज तथा कालाकांकर विकास खण्ड स्थित है । निम्न तकनीकी स्तर का प्रदर्शन विहार, मगरौरा, तथा रामपुरखास विकास खण्ड कर रही है । मध्यम तकनीकी स्तर में सांगीपुर, प्रतापगढ़ सदर तथा गौरा विकास खण्ड देखे गये जब कि अति उच्च तकनीकी गुणाँक 334 प्रतिशत आसपुर देवसरा विकास खण्ड का प्राप्त हुआ ।

11. अध्ययन क्षेत्र में सस्य विभेदीकरण सूचकांक 11.78 से लेकर 44.61 तक प्राप्त हुआ है जिसमें अति उच्च स्तर पर कोई विकास खण्ड नहीं पाया गया । उच्च स्तर पर पांच विकास खण्ड क्रमशः सांगीपुर,संडवा चंन्द्रिका, प्रतापगढ़ सदर शिवगढ़ व मान्धाता स्थित है ।मध्यम स्थिति में छः विकास खण्ड क्रमशः कुण्डा, रामपुर खस लक्ष्मणपुर ,मगरौरा ,पट्टी तथा आसपुर देवसरा प्राप्त हुए ।निम्न सस्य विभेदीकरण सूचकांक एक मात्र गौरा विकास खण्ड का प्राप्त हुआ है जब कि अति निम्न सूचकांक कालाकांकर, बाबागंज व विहार विकास खण्डों का प्राप्त हुआ है ।

12. अध्ययन क्षेत्र में सस्य संयोजन की दृष्टि से देखे तो दोई की विधि के अनुसार पांच फसल संयोजन तक प्राप्त होता है जब कि थामस विधि के अनुसार छः फसल संयोजन विद्यमान है और रफी उल्लाह अध्ययन क्षेत्र को केवल चार फसल संयोजन तक रखते हैं सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र के फसल संयोजन की गणना करने पर दोई विधि में दो से पांच फसल संयोजन प्राप्त होता है, थामस विधि में दो से छः तक फसल संयोजन देखने को मिलता है जब कि रफी उल्लाह विधि में न्यूनतम 2 से 4 फसल तक संयोजन प्राप्त हुआ है। फसलों के वास्तविक

क्रम तथा रफी उल्लाह द्वारा निर्धारित फसलों के क्रम में समानता मिलती है । अध्ययन क्षेत्र में प्रथम स्तर के प्रदेशों के अन्तर्गत गेंहू तथा धान फसलों की प्रधानता पाई जाती है जिनमें से 13 विकास खण्डों में गेंहू प्रथम स्थान पर जब कि बाबागंज तथा विहार विकास खण्डों में धान प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है ।इन दो फसलों के अतिरिक्त संडवा, चंन्द्रिका तथा मान्धाता विकास खण्डों में बाजरा तीसरी फसल के रूप में महत्वपूर्ण है जब कि प्रतापगढ़, सदर, मगरौरा और शिवगढ़ विकास खण्डों में अरहर तीसरी फसल के रूप में महत्वपूर्ण मान्यता प्राप्त कर रही है ।

13. सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन के लिए सर्वेक्षण में सीमान्त कृषक 122, लघुकृषक 107, लघुमध्यम कृषक 52, मध्यम कृषक 16 तथा बड़े कृषक 3 प्राप्त करते हुए कुल 300 कृषकों से विश्लेषण सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त की गई हैं । जिनमें से 24 उच्च जाति के, 36 पिछड़ी जाति के, 53 अनुसूचित जाति के तथा 09 मुस्लिम वर्ग के कृषक प्राप्त हुए हैं जिनके परिवारों का औसत आकार 6.73 प्राप्त हुआ है । 122 सीमान्त कृषकों के पास कुल 70.93 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र, लघु कृषकों (107) के पास 133.30 हेक्टेयर, लघु मध्यम कृषकों (52) के पास 102.88 हेक्टेयर, मध्यम कृषकों के 16 परिवारों के पास 61.35 हेक्टेयर तथा बड़े कृषकों (3) के पास 44.69 हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध पाई गई इस प्रकार 300 कृषक परिवारों के पास 413.15 हेक्टेयर भूमि प्राप्त हुई ।

14. सर्वेक्षण में विभिन्न वर्गों द्वारा औसर खाद्यान्न उत्पादकता की दृष्टि से प्रति व्यक्ति प्रति दिन 668.02 ग्राम खाद्यान्न, 24.36 ग्राम दलहन, तिहलन 9.11 ग्राम आलू 150.66 ग्मम उत्पन्न किया जाता हैं खाद्यान्नों में गेहू तथा चावल की प्रधानता हे जबकि दलहनों में अरहर तथा चना प्रमुख हैं और तिलहन में लाही/सरसो का विशिष्ट स्थान है ।

15. अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न वर्गों के मध्य सेवन किए जाने वाले खाद्य पदार्थो को तीन वर्गों में रखा गया है जिनमें परम्परागत खाद्य पदार्थ शिष्ट खाद्य पदार्थ तथा आधुनिक खाद्य पदार्थों को शामिल किया गया है । खाद्य पदार्थों के उपभोग की तीब्रता के क्रम में 760 प्रतिशत से अधिक आवृत्ति वाले खाद्य पदार्थों में रोटी, दाल,भात, तरकारी आदि आते हैं । 40-70 प्रतिशत के मध्य सत्तू, पराठा, खिचड़ी, लस्सी, गादा, महेरी आदि आते हैं । 10-40 प्रतिशत के मध्य पूड़ी, खीर, कढ़ी चटनी, महेरी, घुथरी, बहुरी, चटनी, माठा, सलाद सेवई, मिठाई, सूतफेनी,

बच्चों को दूध आदि खाद्य पदार्थ सेवन किए जाते हैं जबकि 10 प्रतिशत से कम आवृत्ति वाले खाद्य पदार्थों में मालपुआ, शकरपारे, रसखीर, पकौड़ी, विस्किट, नमकीन, पुआ सिघाड़ा आलू चिप्स, चावलवरी, कुम्हडौरी, समोसा, मकोसा, डबलरोटी, सोयावीन वरी, मिठाई, मांस, मछली, अण्डे, दूध आलूदम, आलूचिप्स, दही, अचार, मौसमी फल, रसखीर, गुलगुला, चिल्ला, मिठाई घी, मिथैारी, निमोना, मलीदा पूड़ी, कचौड़ी, कवाव, तस्मई, गुलगुला आदि प्रमुख रूप से सेवन किए जाते हैं ।

16. प्रतिव्यक्ति खाद्य पदार्थे में लगभग सभी वर्गों में शीत ऋतु में मात्रात्मक अधिकतम रहती है, खाद्य पदार्थों की न्यूनतम मात्रा वर्ष ऋतु मे उपभोग की जाती है । वर्ष भर में प्रति व्यक्ति खाद्य पदार्थो की उपभोग की मात्रा सीमान्त कृषकों में 103.79 ग्राम सीमान्त कृषको का, 1023.86 ग्राम लघु कृषक परिवारों का, 1026.32 ग्राम लघु मध्यम कृषक परिवारों का, 1055.06 ग्राम मध्यम कृषक परिवारों का तथा 1046 ग्राम बड़े परिवारों का प्राप्त हुआ है । लगभग सभी वर्गों के खाद्य पदार्थो में 50 प्रतिशत से अधिक भागेदारी खाद्यानों की देखी गई है ।

17 विभिन्न खाद्य पदार्थों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों की गणना करने पर पाया गया कि सभी वर्गों में अधिकांश पोषक तत्व खाद्यान्नों से ग्रहण किए जा रहे हैं और श्रेष्ठ पोषक तत्वों से युक्त खाद्य पदार्थ दूध, घी, मांस, मछली तथा अण्डों आदि का सेवन अत्यल्प मात्रा में पाया गया । पोषक तत्वों की गुणात्मक श्रेष्ठता का अभाव लगभग सभी वर्गों में दिखाई पड़ता है, जबकि विभिन्न वर्गों में मात्राात्मक भिन्नता कम दिखाई पड़ती है ।

18 प्रतिदिन के भोजन में पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा का संयोजन असंतुलित पाया गया । सीमान्त कृषक परिवारों में जहाँ ऊष्मा का 147.90 कैलोरी अधिक उपयोग किया जा रहा है वहीं मध्यम कृषक परिवारों में 110.67 कैलोरी की कमी देखी गई है । प्रोटीन सीमान्त कृषक परिवारों तथा बड़े कृषक परिवारों में मानक से कुछ अधिकता देखी गई, शेष अन्य वर्गो में इस तत्व की 0.02 ग्राम से लेकर 1059 ग्राम तक की कमी दिखाई पड़ी । वसा पोषक तत्व का विभिन्न वर्गो में 47.53 ग्राम से लेकर 56.66 ग्राम तक का अभाव देखा गया। कार्बोहाइड्रेटस का उपभोग मानक स्तर से 66.97 ग्राम से लेकर 119.38 ग्राम तक की अधिकता प्रत्येक वर्ग में पाई गई है। सभी वर्गों में अधिकता वाला पोषक

तत्व फास्फोरस प्राप्त हुआ है जिसमें .01 ग्राम से लेकर .10 ग्राम तक की अधिकता पाई गई। नियासिन तथा थियासिन की भी सभी वर्गो में अधिकता दिखाई पड़ रही है। राइबोफ्लेबिन की सभी वर्गो में न्यूनता देखी गई ।

सीमान्त कृषक परिवारों में ऊर्जा 147.19 कैलोरी अधिक, प्रोटीन 0.47 ग्राम अधिक, फाइवर 4.64 ग्राम अधिक, कार्बोहाड्रेटस 119.38 ग्राम अधिक, फास्फोरस 0.10 ग्राम अधिक, थियासिन 1त्र27 मि.ग्राम अधिक तथा नियासिन 11.08 मि. ग्राम अधिक प्राप्त किये जा रहे हैं। जबकि मानक स्तर से न्यून पोषक तत्वों में वसा 56.66 ग्राम, खनिज 1.13 ग्राम, कैल्सियम 1.02 ग्राम, लोहा 5.54 ग्राम, कैरोटीन 436 म्यग्राम तथा राइवोफ्लेबिन 0.08 मि. ग्राम कम पाया गया ।

लघु कृषक परिवारों में पोषक तत्वों की अधिकता वाले तत्व फाइवर 4.48 ग्राम, कार्बोहाइड्रेटस 117.75 ग्राम, फास्फोरस 0.07 ग्राम, थियासिन 0.87 मि.ग्राम तथा नियासिन 10.08 मि. ग्राम है जबकि मानक स्तर से कम ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्व ऊर्जा 81.82 कैलोरी, प्रोटीन 1.59 ग्राम, वसा 57.67 ग्राम, खनिज 0.85 ग्राम, कैल्सियम 1.01 ग्राम लोहा 4.98 ग्राम, कैरोटीन 28.73 म्यू ग्राम और राइबोफ्लेबिन 0.11 मि.ग्राम है ।

मध्यम कृषक परिवारों में मानक स्तर से अधिक मात्रा में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्वों में फाइबर 5.01 ग्राम, कार्बोहाइड्रेटस 92.88 ग्राम, फास्फोरस 0.03 ग्राम, कैरोटीन 279.85 म्यू ग्राम, थियामिन .88 मि.ग्राम तथा नियासिन 8. 89 मि.ग्राम पाये गये । जबकि न्यून मात्रा में ग्रहण किये जाने वाले पोषक तत्वों में ऊर्जा 110.61 कैलोरी, प्रोटीन 0.02 ग्राम, वसा 47.53 ग्राम ,खनिज 0.02 ग्राम, कैल्सियम 0.92 ग्राम, लोहा 3.30 ग्राम तथा राइबोफ्लेबिन 0.11 मि.ग्राम है ।

बड़े कृषक परिवारों में पोषक तत्वों की अधिक मात्रा, प्रोटीन 0.35 ग्राम, फाइबर 4.77 ग्राम, कार्बोहाइड्रेटस 92.88 ग्राम, फास्फोरस 0.03 ग्राम, कैरोटीन 279.85 म्यू ग्राम थियासिन .88 मि ग्राम तथा नियासिन 8.98 मि ग्राम पाये गये जबकि स्वल्पता वाले पोषक तत्व ऊर्जा .92 कैलोरी, वसा 49.68 ग्राम खनिज .34 ग्राम कैल्सियम .96 ग्राम लोहा 4.09 ग्राम तथा राइबोफलेबिन .11 मि ग्राम प्रमुख हैं ।

19. अध्ययन क्षेत्र में ग्रहण किये जाने वाले भोजन से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों के असन्तुलन के परिणाम स्वरूप विभिन्न वर्गो में अल्प पोषण तथा कुपोषण

से उत्पन्न होने वाले एक या एक से अधिक विभिन्न रोगों से ग्रसित रोगियों में 15.46 प्रतिशत हाथों तथा पैरों की ऐंठन से 16.85 पेट के रोगों से 13.53 प्रतिशत थकान व शरीर में सूजन से 11.69 प्रतिशत सर्दी जुकाम मसूड़ों की सूजन से 8.13 प्रतिशत जीभ तथा ओंठ के रोगों से, 7.43 प्रतिशत प्लेग्रा रोग 4.86 प्रतिशत बेरी-बेरी रोग से 3.22 प्रतिशत रिकेट्स तथा आस्टोमैलेशिया से 4.16 प्रतिशत रतौंधी रोग से 9.66 प्रतिशत जोड़ों तथा गांठों में दर्द से 2.18 प्रतिशत मधुमेह के रोगों से ग्रसित पाये गये ।

सुझाव :-

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वप्रमुख व्यवसाय है । यह देश के कई उद्योगों के लिये कच्चे पदार्थ की आपूर्ति और कई उद्योगों के मांग का आधार है । यह देश की दो तिहाई जनता की आजीविका का साधन ओर विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति के बाद भी सर्वाधिक राशि का राष्ट्रीय आय में योगदान करनें वाला क्षेत्र है । नियोजन के पूर्व भरतीय कृषि अवरोध ग्रस्त थी कृषि से संबंद्ध दशाएं भी कृषि विकास में बाधक थी । भू धारण प्रणाली वास्तविक कास्तकार के लिये हानिकारक थी, कृषि तकनीक अत्यन्त पिछड़ी अवस्था में थी जो आज की परिस्थितियों में आप्रसंगिक हो गई हैं और इन कठिनाइयों को दूर करना भारतीय कृषि के लिये एक चुनौती थी जिनका सफल क्रियान्वयन योजना कालीन कृषि विकासों के प्रयासों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है । नियोजित विकास प्रयासों के परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन आवश्यकता की दृष्टि से कमी और अति कमी की दशाओं को पार करता हुआ अब पर्याप्तता की स्थिति में पहुँच चुका है विभिन्न संस्थागत सुधारों ओर प्राविधिक परिवर्तनों द्वारा इस लांक्षन से अव मुक्ति पाली गई है । जिसमें कृषि वैज्ञानिकों और प्रविधि विशेषज्ञों की अनवरत साधना निर्णायक रही है । आज हम देश की 100 करोड़ से भी अधिक जनसंख्या को खाद्यान्न आपूर्ति करनें में समर्थ हो गये हैं ।

इन उपलब्धियों के कुछ नकारात्मक आमाम भी हैं । नियोजन काल में क्षेत्रीय और अर्न्तवर्गीय विषमताएं बढ़ी है । कृषि अर्थव्यवस्था के कतिपय क्षेत्र को भी भारी विनियोग और विकास प्रयासों का लाभ मिला है ।कई क्षेत्र की कृषि का स्वरूप अब भी परम्परागत बना हुआ है । खेतिहर समाज के लघु,अतिलघु और

भूमिहीन श्रमिकों को कृषि क्षेत्र में किए जाने वाले विनियोग और प्रौद्योगिकी का लाभ अत्यन्त कम मिला है । लाभ मिला है अधिक जमीन वाले को यह भी शंका की जाने लगी है कि हम अधिक उत्पादन लेने की होड में भूमि की समस्त उर्बरक शक्ति का विदोहन करे ले रहे हैं जब कि आगामी पीढ़ी की सम्यक उर्बरकशक्ति युक्त भूमि हस्तांतरित करना हमारा दायित्व है। रासायनिक उर्बरकों और बढ़ते कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी के गुणधर्म में तेजी से क्षरण हो रहा है, मिट्टी की ऊपर की परत कड़ी तथा उमें जलधारण क्षमता घट रही है, अधिक बार सिंचाई होने से भूमि पर न केवल क्षारीयता बढ़ रही है बल्कि अधिक सिंचाई से भूमिगत जल का तल नीचे को जा रहा है, भूमि और जल दोनों प्रदूषित भी हो रहे है । ग्रामीण परिवेष औरा ग्रामीण पर्यावरण भी प्रदूषित हो रहा है। मनुष्य और पशुओं पर रासायनिक उर्बरकों एवं कीटनाशक दवाइयों के हानिकारक प्रभाव अब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे हैं । फसल नाशक प्रतिरोधी कीटों का प्रकोप बढ़ने लगा है । सम्यक भूमि और जल प्रबन्ध की कमी के कारण भूमि की उर्बरक ऊपरी सतह क्षतिग्रस्त हो रही है कई विकसित कृषि क्षेत्रों में प्रति निवेश इकाई की उत्पादकता घटने लगी है ।

विकास और उससे उत्पन्न समस्याओं का आशय यह नही है किधरा का कोष रिक्त हो गया है और भी भरत में अप्रयुक्त और अल्प प्रयुक्त संसाधनों का विपुल भण्डार विद्यमान है आवश्यकता है विवेकपूर्ण विदोहन की, उर्बरक शक्ति का उपयोग करने के साथ-साथ लौटाने की विकास की प्रत्येक संकल्पना और परिकल्पना को पर्यावरण की कसौटी पर अहर्य सिद्ध हाने पर ही विकास के लिए व्यवहार में लाना होगा । राष्ट्रीय प्रदर्शन फार्मों के उपज के आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि भारत में कृषि उपज बढ़ाने की पर्याप्त संभावनाएँ विद्यमान हैं, सामान्य दशाओं में भी कृषि उपज के वर्तमान सतर को दो गुना किया जा सकता है । कृषि प्रणाली की कोई भी विद्यमान दशा भविष्य के लिये नवीन दृष्टिकोंण और कार्यनीति आपनानें की आवश्यकता उत्पन्न कर देती है इसीलिये कृषि क्षेत्र में सतत जीवन संकल्पनाओं और कार्यक्रमों का समावेश होते रहना चाहिए । क्योंकि किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की पूवपिक्षा कृषि क्षेत्र का विकास है । कृषि क्षेत्र का विकास कृषि एवं संबद्ध क्रियाओं में लगे लोगों की आर्थिक स्थिति में तो सुधार करता ही हे साथ साथ यह गैर कृषि क्षेत्र के लिये भी खाद्यान्न, कच्चा माल, बाजार और श्रमशक्ति की आपूर्ति करता है ।

अध्ययन क्षेत्र एक ग्रामीण क्षेत्र है अतेव इसके समुचित विकास हेतु उच्चतम भूमि क्षमता तथा अधिकतम कृष्योत्पादन आवश्यक है, वास्तव में समुन्नत कृषि विकास की आधारशिला है जिससे न केवल ग्रामीण जनसंख्या की विभिन्न आवश्यकताओं की आपूर्ति होती हे बल्कि बहुमुखी विकास को प्रोत्साहन मिलता है । भूमि की प्रत्येक इकाई के अनुकूलतम उपयोग द्वारा भूमि की भरण पोषण क्षमता में कई गुना वृद्धि की जा सकती है एवं ग्रामीण विकास की गति को तीव्र बनाया जा सकता है इससे पर्यावरण में सुधार के साथ साथ जीवन यापन की सुविधाओं में भी पर्याप्त सुधार किया जा सकता है । साथ ही कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करनें के लिये कृषि पर आधरित उद्योगों एवं कृष्येत्तर व्यवसायों को प्रोत्साहन देकर रोजगार का सृजन किया जाना भी अपेक्षित है । तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की भरण-पोषण संबंधी आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु कृषि उत्पादन बढ़ाना अपरिहार्य है जिसमें वृद्धि के लिये निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं ।

1 प्राकृतिक समस्याओं के निवारण हेतु सुझाव :

प्राकृतिक विपदाओं मे जलप्लावन, जलभराव, सूखा आदि है जिनसे प्रति वर्ष लाखों करोड़ों लोगों की फसल नष्ट हो जाती है । अध्ययन क्षेत्र में अनेंक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पानी के निकास की समुचित व्यवस्था न होनें के कारण जलभराव की समस्या से पीड़ित हैं, इसके अतिरिक्त अनेक क्षेत्रों में जलस्तर ऊँचा हो जानें के कारण ऊसर भूमि के क्षेत्रफल में विस्तार हो रहा है इन समस्याओं के निवारण हेतु निम्न उपाय किए जा सकते हैं -

(अ) जल निकास की समुचित व्यवस्था -

अनियंत्रित सिंचाई और जल के कुप्रबंध के कारण जल निकास जलाक्रान्ति अनुचित जल प्रबंध और छीजन की समस्याएँ उत्पन्न हो गई । नहरों के कारण कुछ क्षेत्रों में हर वर्ष बाड़ की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं अतः सिंचाई नीति का निर्माण करते समय यह आवश्यक है कि सिंचाई की नई क्षमता का विकास और वर्तमान विद्यमान क्षमता का अनुकूलतम उपयोग को ध्यान में रखा जाना चाहिए । जल संसाधन का कुशलतम उपयोग को आधार पर ही सिंचाई नीति का निर्माण किया जाना चाहिए ।

(ब) भूमिगत जल का सदुपयोग-

सिंचाई के लिए जिन कुंओं का निर्माण किया जा चुका है उसका बेहतर उपयोग किया जाना चाहिए । वर्तमान में इस साधन का पूर्ण सदुपयोग नही हो पा रहा है । उसके प्रमुख कारण हैं- शक्ति के साधनों का अभाव, किसानों में परस्पर सहयोग का अभाव, फसलों की गहनता में कमी आदि । अतः इस दिशा में आवश्यक कदम उठाया जाना चाहिए ।

(स) भूक्षरण की रोकथाम -

भूक्षरण के गंभीर परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं इसको रोकने के लिये कारगर उपाय करनें होगें । इन उपायों में वनों का विस्तार, भूमि के असमान एवं समतल भागों में वृक्षारोपण करना, चारागाहों में पशुओं को चरानें पर भली भांति देखभाल तथा नियंत्रण आदि प्रमुख हैं ।

2. ऊसर भूमि सुधार-

अध्ययन क्षेत्र के अनेंक क्षेत्रों में नहरों की अनयंत्रित सिंचाई के कारण जल स्तर ऊपर उठता जा रहा है जिससे भूमि का एक बड़ा भाग ऊसर में परिवर्तित होता जा रहा हैं इस समस्या के निराकरण हेतु इन क्षेत्रों में नलकूपों तथा जिप्सम तथा पम्पिंग सेटों के द्वारा भूमिगत जल को निकालकर जलस्तर को ऊपर उठनें से रोंका जाना चाहिए । ऊसर सुधार हेतु जिप्सम तथा पायराइट आदि के प्रयोग के लिये विस्तृत कार्यक्रम तैयार किए जानें चाहिए । इन क्षेत्रों में हरी खाद के साथ साथ गोबर की खाद अत्यावश्यक है ।

3. फसल प्रतिरूप तथा भूमि उपयोग में सुधार -

निसंदेह विस्तृत खेती की संभावनाएँ अब बहुत सीमित रह गई हैं किन्तु फिर भी बंजर भूमि पर सुधार कार्यक्रम अमल में लाकर इन्हें कृषि योग्य बनानें के लिये निरंतर प्रयास किए जानें चाहिए । अध्ययन क्षेत्र में इस मद में 11308 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि बेकार पड़ी हुई हैं । तथा अन्य परती भूमि के अन्तर्गत 17460 हेक्टेयर भूमि पर कृषि फसल नहीं ऊगाई जा रही है । इस भूमि को यदि किसी प्रकार कृषि उपयोग में लाया जा सके तो लगभग 28768 हेक्टेयर भूमि पर विभिन्न फसलें ऊगाई जा सकती हैं । इसी प्रकार जलभराव के कारण लवणीय और क्षारीय भूमि पर बहुमुखी उपयोग हेतु कृषि योग्य बनाना संभव हो सकता है । इन उपायों में सिंचाई, गहरी जुताई, अपतृण का हराया जाना, रसायनों का

उपयोग संप्रावहन, भूतल का कतरना, जल ग्रस्तता के लिये उपयुक्त के लिये उपयुक्त नालियों द्वारा जल निकास की व्यवस्था करना प्रमुख है ।

4. गहन कृषि का विस्तार -

यह सच है कि विस्तृत खेती की क्षमता सीमित है किन्तु गहरी खेती की अपार संभावनाएँ हैं जिसका उपयोग किया जाना चाहिए । कृषि की विकसित तकनीक का मूल बिन्दु है फसलों की गहनता में विस्तार । अब तक एक से अधिक बार जोती गई भूमि के अन्तर्गत क्षेत्र में तेज गति से वृद्धि हो रही है परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इसमें स्थायित्व सा आ गया है इस प्रवृत्ति के दो कारण रहे हैं प्रथम उन्नत कृषि आदानों के पैकेज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नही हुए हैं । दूसरा जब कभी में पैकेज उपलब्ध भी हुए है तो इनकी कीमतें बहुत ऊँची रही हैं । इसलिए कृषकों को उन्नत आदानों को सस्ती दरों पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवाना चाहिए भूमि की उत्पादकता तथा उर्वरता बढ़ानें के लिये अनेंक कदम उठानें होगें जैसे भू परीक्षण, भूमि को ठीक तरह से जोतना व बीज रोपना भूमि के नष्ट हो रहे तत्वों को बदलना, पर्याप्त मात्रा में उर्वरक प्रयोग करना आदि । फसलों के प्रतिरूप में भी वांछित परिवर्तनों द्वारा भी उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है । अतः आवश्यक है कि उत्पादकता बढ़ानें के लिये सरकारी नीतियों में वांछनीय परिर्वन किए जाय । जिससे उन्नत विधियों के साथ साथ मिश्रित फसलों को भी प्रोत्साहन प्राप्त हो ।

5. मुद्रादायिनी फसलों में विस्तार -

अध्ययन क्षेत्र में मुद्रादायिनी फसलों में गन्ना तथा आलू की फसलों का ही महत्वपूर्ण स्थान है । गन्ना केवल 3021 हेक्टेयर तथा आलू 7635 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर ही उगाया जाता है । गन्नें के क्षेत्रफल में कमी का कारण क्षेत्र में चीनी मिल का न होंना है । आलू का भी उत्पादन क्षेत्रीय खाद्य आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिये ही किया जाता हैं क्योंकि प्रशीतन सुविधाओं का क्षेत्र में नितान्त अभाव है । अतः मुद्रादायिनी फसलों के क्षेत्रफल में विस्तार को प्रोत्साहन के लिये किसानों को नकदीकरण की सुविधाएँ दी जानी चाहिए । चिकनाई की आपूर्ति लाही, सरसो द्वारा ही होती है परंतु इसका क्षेत्रफल अभी तक 2178 हेक्टेयर में ही होता है । तिलहनी फसलों के सूरजमुखी, सोयाबीन आदि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । परंतु इन फसलों का बाजार न होनें के कारण विक्रय समस्या से

हतोत्साहित होती है । इसी प्रकार सब्जियों के उत्पादन को बढ़ानें का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, मसाले वाली फसलों को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

6. कृषि से संबंधित क्रियाओं को प्रोत्साहन -

ग्रामीण विकास के लिये कृषि विकास का सर्वोपरि महत्व हो सकता है किन्तु मात्र कृषि विकास से ही सामान्य ग्रामीण जीवन में सुधार और उसके पूरी तरह से उत्थान की सामर्थ्य नही होती है । ग्रामीण विकास के लिये हमें कृषि से संबंद्ध अनेंक क्षेत्रों में सुधार करनें की आवश्यकता पर बल देना चाहिए । संबंद्ध क्षेत्रों में प्रमुख है - पशुपालन, मत्स्य उद्योग, रेशम उत्पादन, बागवानी तथा वानिकी आदि ।

(अ) पशुपालन को प्रोत्साहन -

किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए पशुपालन बहुत महत्वपूर्ण होता है,खेती वाढ़ी के लिए हल चलाने ,कुओं से पानी निकालने, फसलों को ढोकर मण्डी तक ले जाने के आदि कार्यों के लिए पशुओं का बड़ा प्रयोग किया जाता है, इसके अतिरक्त पशु ण्क बड़र मात्रा में खाद के स्रत, मांस के स्रोत, पशुचर्म तथा खालें, ऊन, पशुचर्वी के अतिरिक्त अन्य उत्पोत्पाद की काफी मात्रा में उपलब्ध होता है। पशुपालन रोजगार और आय का एक बहुत बडा साधन है, इनमें प्रमुख हैं - डेरीफार्म, मुर्गीपालन, भेड़ व सुअर पालन एवं मछली पालन ।

1. डेरी फार्मिंग -

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में डेरी उद्योग महत्वपूर्ण स्थान रखता है । डेरी उद्योग के माध्यम से निर्बल वर्ग की आर्थिक सामाजिक दशा में उल्लेखनीय सुधार लाये जा सकते हैं । डेरी उद्योग के विकास के लिए सबसे बडी आवश्यकता तो यह है कि दूध देने वाले पशुओं की उत्पादकता को बढ़ाया जाय जिसके लिए नश्ल सुधार ही पर्याप्त नहीं होगा बल्कि पशुपालन की रीतियों में भी सुधार करना होगा डेरी उद्योग विकास के लिए पौष्टिक चारे की व्यवस्था करना, उनके स्वास्थ्य की देखभाल का प्रबन्ध तथा उत्पादन का समुचित विक्रय व्यवस्था का विकास करना होगा, पशुपालकों तक पशु वैज्ञानिकों को भेजकर पशुपालन सम्बंन्धी ज्ञान के लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए ।

2. मुर्गी पालन -

मुर्गीपालन अपनी विशेंषताओं के कारण ग्रामीण समुदाय के निर्बल वर्ग द्वारा बडी सरलता से अपनाया जा सकता है, इस काम के लिए थोड़ी पूँजी की

आवश्यकता होती है, इसे विभिन्न जलवायु तथा परिस्थितियों में संचालित किया जा सकता है, इससे वर्ष भर आय प्राप्त हो सकती है । मुर्गीपालन के आधुनिक तकनीकी का विकास किया गया है किन्तु यह टेक्नोलोजी अभी तक शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित है अतः इस आधुनिक तकनीकी का सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तार किया जाना चाहिए, जिससे केवल अण्डों के उत्पादन को बढ़ाया जा सके बल्कि मुर्गीपालन व्यवसाय को भी आधुनिक बनाया जा सके ।

3. सुअर पालन -

भेड़, बकरी एवं सुअर पालन का कार्य पूरी तरह से ग्रामीण समुदाय के निर्धन परिवारों द्वारा किया जाता है । भेड़ बकरी तथा सुअर पालन के ऐसे अनेंक पहलू हैं जिन पर विशेषज्ञों को ध्यान देने की आवश्यकता है । इन पहलुओं में आहार संसाधनों के विकास की विशेषकर कृषि और औद्योगिक सहउत्पादों के विकास और विपणन की व्यवस्था करना आवश्यक है । साथ ही भेड़ और बकरियों के उत्पादों को उचित मूल्य पर विक्रय की व्यवस्था करना जिससे भेड़ और बकरी पालकों को अपनें परिश्रम का उचित मूल्य प्राप्त हो सके ।

4. मछलीपालन -

मछलीपालन की मुख्यतः ग्रामीण वर्ग का ही व्यवसाय है । मछली के रूप में प्राप्त खाद्य सामग्री पौष्टिकता से परिपूर्ण होती है अतः इस व्यवसाय को प्रोत्साहित करने हेतु तालाब, झीलों तथा क्षेत्रीय नदियों में मछलीपालन को प्रेरित किया जाना चाहिए । यह व्यवसाय भी कम पूँजी पर अधिक लाभ देनें वाला व्यवसाय है जो न केवल आय का ही साधन है अपितु पौष्टिक खाद्य सामग्री की भी आपूर्ति होती है । खाद्यान्न समस्या हल करनें में यह व्यवसाय महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर सकता है ।

(ब) रेशम उत्पादन को प्रोत्साहन -

रेशम उत्पादन भी किसानों के लिये आय का एक पूरक साधन है यह व्यवसाय साथ श्रम प्रधान होता है अतः इस व्यवसाय में अतिरिक्त रोजगार निर्माण की भारी क्षमता है । रेशम की मांग बढ़ती जा रही है न केवल रेशमी कपड़े के रूप में बल्कि अनेक औद्योगिक क्रियाओं में भी रेशम उत्पादन को प्रोत्साहन देकर क्षेत्रीय लोगों की अतिरिक्त आय का साधन बनाया जा सकता है ।

(स) खाद्य संवर्द्धन उद्योग को प्रोत्साहन-

खाद्य संवर्द्धन उद्योग अन क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो खाद्य पदार्थों का रूप परिवर्तन कर उन्हें लंबे समय तक उपभोग योग्य बनाते हैं । फसल काटनें के बाद फलों और सब्जियों को प्राकृतिक रूप से अधिक समय तक सुरक्षित नही रखा जा सकता हे । जिससे फसलोत्पादन के समय आपूर्ति बढ़ जानें के कारण कृषकों को इन पदार्थों का उचित मूल्य प्राप्त नही हो पाता है जिससे अच्छी फसल के बाद भी कृषकों की आय आपेक्षित रूप से नही बढ़ पाती है । उत्पादन को इस तरह की हानि से बचानें के लिये आवश्यक है कि एक ओर फसल कटाई तकनीकों में सुधार किया जाय और प्रशीतन सुविधाएँ सरल और आसान शर्तो पर उपलब्ध करवाई जाय और उपलब्ध उत्पाद के वैकल्पिक उपयोगों की पहचान की जाय । वर्तमान परिस्थितियों में खाद्य उद्योग के विस्तार के वास्ते यह आवश्यक है कि समुचित विकास नीति का निर्माण किया जाय जो इस दिशा में आवश्यक मार्गदर्शन करे ।

7. कृषि आधारित ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन -

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की प्रकृति शहरी क्षेत्र में पाई जानें वाली बेरोजगारी से भिन्न होती हे । हम आपनें सामान्य जीवन में देखते हैं कि जिस समय बीजों को रोपित करनें के लिये खेत को तैयार करना होता है या पकी हुई फसल को काटना और साफ करना होता है उस समय श्रमिकों की माँग बढ़ जाती है तब कृषकों या कृषि श्रमिकों को रोजगार मिल जाता है । लेकिन बाकी समय में उन्हें कम या बिल्कुल कार्य नहीं मिल पाता है । इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में प्रच्छन्न बेरोजगारी विद्यमान रहती है, इस मौसमी तथा प्रच्छन्न बेरोजगारी की तीव्रता कम करने के लिये ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देना होगा । इन उद्योगों में प्रायः स्थानीय रूप से उपलब्ध कच्चे माल का ही प्रयोग किया जाता है इसीलिए इन उद्योगों की स्थापना और विकास की संभावनाओं को तलाशना होगा । इन उद्योगों में निम्नलिखित क्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

(अ) कृषि पदार्थों का विधायन -

बड़ी संख्या में लोगों को पूर्णकालिक रोजगार के अवसर प्रदान करनें के लिये विधायन संबंधी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में की जानी चाहिए । इस प्रकार के उद्योगों में दूध का विधायन सूरजमुखी/सोयाबीन/सरसो/लाही

से तेल निकालना खांडसारी और गुड़ निकालनें वाली इकाइयाँ, फलों तथा सब्जियों का विधायन सनई का सामान बनाना उल्लेखनीय है ।

(ब) कृषि उत्पादन का उपयोग करनें वाले उद्योग -

कृषि के गौण उत्पादन का निर्माण उद्योगों में कच्चे माल के रूप में प्रयोग करनें के संबंध में तकनीकि विकास पर्याप्त संभावनाएँ उपलब्ध है इस प्रकार के उत्पादन में शीरे से अल्कोहल, धान की भूसी से गत्ता बनाना, टूटे हुये चावल से शराब बनाना, आलू से चिप्स बनाना, गन्ने की खोई से कागज तथा गत्ता बनाना आदि विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(स) ग्रामीण दस्तकारी एवं उद्योगों का विकास -

ग्रामीण दस्तकारिता की वस्तुओं के निर्माण को और अधिक प्रोत्साहन देनें की आवश्यकता है । ग्रामीण दस्तकारी का प्रयोग न केवल उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण में अपितु कृषि मशीनरी एवं उपस्करों के निर्माण में भी किया जा सकता है । इनमें से कृषि यंत्रों/औजारों का निर्माण चटाई, दरी बनाना, डलिया टोकरी बनाना, रस्सी बनाना, सिलाई, कढ़ाई, पत्तल दोना का निर्माण, अचार मुरब्बा का निर्माण, बागवानी, पशुपालन, रेशम के कीड़े पालना आदि प्रमुख हैं ।

8. संतुलित भोजन का ज्ञान -

जो आहार हमारे शरीर की भोजन संबंधी समस्त आवश्यकताओं की उचित प्रकार से पूर्ति करता है उसे संतुलित आहार कहते हैं । स्वास्थ्य रक्षा और दीर्घायु प्राप्त करनें के लिये हमारे लिये संतुलित आहार लेना परम आवश्यक है । खेद है कि भारतीय जनता का आहार उसकी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार नही है बहुत से लोगों को भरपेट भोजन प्राप्त नही होता । भारत जैसे देश में जहाँ गुणात्मक श्रेष्ठता वाले भोज पदार्थों का नितांत अभाव है, जहाँ उनकी कीमतें ऊँची हैं और लोग क्रय शक्ति के अभाव के कारण श्रेष्ठ कोटि के खाद्य पदार्थ क्रय कर पानें में असमर्थ हैं, वहाँ हर व्यक्ति संतुलित आहार पा सके, यह वर्तमान परिस्थितियों में लगभग असंभव प्रतीत होता है । किन्तु अभावों के माध्यम भी यदि हमारा भोजन विषयक ज्ञान काम चलाऊ हो और हम यह जान सकें की हमारे लिये कौन सा खाद्य पदार्थ कितना महत्वपूर्ण है? तो लोग बिना अतिरिक्त खर्चा बढ़ाये अपनें भोजन को वर्तमान रूप में ही कुछ अच्छा अवश्य बना सकते हैं ।

इसके लिये प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर लोगों को संतुलित भोजन के बारे में ज्ञान कराया जाना चाहिये ।

(अ) शिशु का भोजन - शिशु की क्रियाशीलता द्वारा व्यय हुई शक्ति की पूर्ति के लिये उसकी उचित शारीरिक वृद्धि व मानसिक विकास तथा उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखनें के लिये माता का दूध ही सर्वोत्तम आहार है । आवश्यकता पड़ने पर शिशु को गाय का दूध देंना चाहिये, गाय के दूध के अभाव में बकरी का दूध देंना चाहिये । गाय एवं बकरी के दूध में भी शिशु के लिये आवश्यक पोषक तत्व विद्यमान रहते हैं ।

(ब) वृद्धावस्था का भोजन -

शिशुओं के समान वृद्ध व्यक्तियों के भोजन का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये । इस अवस्था में सुगमता से पचनें वाला विटामिनों और प्रोटीन युक्त भोजन देंना चाहिये । इसके लिये ताजा हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दूध और फलों का रस देंना चाहिये । इस अवस्था में मिर्चा मसालेदार और गरिष्ठ भोजन नही करना चाहिये । भोजन ऐसा होंना चाहिये ' जिसे खानें में श्रम कम किन्तु पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में शरीर में पहुँच जाय ।

(स) गर्भवती महिला का भोजन -

समान दशा की तुलना में गर्भकाल में महिला को अधिक मात्रा में विटामिन डी, प्रोटीन, फास्फोरस, तथा कैल्सियम युक्त भोजन मिलना चाहिये । क्योंकि इन्ही के माध्यम से उदरस्थ भ्रूण का पोषण होता है । अतः इस काल में महिलाओं को कम से कम 750 ग्राम दूध, 200 ग्राम फल, 01 अंडा तथा 50 ग्राम माँस प्रतिदिन आवश्यक मात्रा में मिलना चाहिये । शाकाहारी महिलाओं को माँस के स्थान पर 50 ग्राम दाल की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये ।

(द) स्तनपान करानें वाली महिला का भोजन -

इस दशा में महिलाओं को पचनें वाला तथा पर्याप्त पौष्टिक तत्वों से भरपूर भोजन होंना चाहिये क्योंकि शिशु के पोषण के कारण इस स्थिति में महिला को भूख अधिक लगती है अतः प्रोटीन, कैलोरी तथा कैल्सियम युक्त भोजन की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये ।

(य) युवकों को भोजन -

इस अवस्था में युवक शारीरिक एवं बौद्धिक विकास करता हुआ समाज में रहकर आत्मनिर्भर बननें का प्रयास करता है ।अथवा विद्यालय में पढ़ता हुआ ब्रम्हचर्य जीवन व्यतीत करता है । भोजन का सीधा प्रभाव मन, बुद्धि और इंन्द्रियों पर पड़ता है इसलिये इस अवस्था में भोजन संबंधी विशेष सावधानी की आवश्यकता पड़ती है । युवकों को भोजन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये ।

1. भोजन सादा पौष्टिक तथा ताजा होनें के साथ साथ अधिक गर्म न हो ।
2. चना, उड़द गेंहूँ आदि का अंकुरित अन्न का प्रयोग स्वास्थ्य के लिये अच्छा है ।
3. भोजन में नीबू का प्रयोग पाचन शक्ति बढ़ाता है ।
4. भोजन में सी तथा डी विटामिन पर्याप्त मात्रा में होनें चाहिये
5 खट्टे, चटपटे, मशालेदार, अचार, मुरब्बा का प्रयोग कम से कम करना चाहिये ।
6. गाय अथवा बकरी का दूध प्रयोग करना चाहिये ।
7. भोजन के साथ देशी खांड या गुड़ लिया जा सकता है ।
8. दोपहर भोजन के बाद मौसम के अनुसार ताजे फलों का सेवन स्वास्थ्य के लिये लाभकारी है ।

(र) भोजन संबंधी अन्य आवश्यक सुझाव -

1. जाड़े के दिनों में अधिक भोजन करना चाहिये ।
2. भोजन को धीरे धीरे खूब चबाकर करना चाहिये ।
3. भोजन एक निश्चित समय पर ही करना चाहिये ।
4. सायंकालीन भोजन कम मात्रा में किया जाना चाहिये ।

(ल) भोजन पकानें संबंधी सुझाव -

गृहणी जिसका अधिकांश समय रसोई घर में ही व्यतीत होता है को यह जानना आवश्यक है कि पोषक तत्वों का संतुलन पकानें के बाद भी बना रहे । अतः इस संबंध में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिये ।

1. मोटा तथा चोकर युक्त आटा खाना पकानें के कुछ समय पूर्व भली प्रकार पानी में गूथकर रखना चाहिये जिससे वह पर्याप्त मात्रा में फूल सके ।

2. रोटी चूल्हे की आग में दूर से सेंकी गई स्वास्थ्य वर्धक होती है ।

3. यदि रोटी को पकाते समय घी लगा दिया जाय तो स्वास्थ्य वर्धक और गुणकारी हो जाती है । परन्तु यदि खाते समय रोटी पर घी लगा दिया जाता है तो भोजन गरिष्ठ हो जाता है ।

4. शारीरिक श्रम करनें वालों को बिना चुपड़ी रोटी ही खानी चाहिये ।

5. कच्ची सब्जी खाना स्वास्थ्य के लिये अच्छा रहता है । परंतु प्रत्येक सब्जी कच्ची नही खाई जा सकती । टमाटर, मूली, गाजर, चुकंदर, प्याज, शलजल आदि कच्ची ही खानी चाहिये ।

6. सब्जी तलकर खानें में गरिष्ठ होती है अतः उबालकर खानें में स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी रहती है ।

7. सब्जी को छौंकनें में हींग, अदरक, प्याज,हरा धनिया, काली मिर्च का प्रयोग करना चाहिये ।

8. सब्जियों का यदि मोटा भाग छीलकर फेंक दिया जाता है तो उसके अधिकांश पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते हैं ।

9. चावल का यदि मांड निकाल दिया जाय तो उसके पौष्टिक तत्व समाप्त हो जाते हैं ।

10. चावल को रगड़ रगड़ कर धोनें से भी पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं ।

11. आवश्यकता से अधिक पकानें पर भी पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं ।

12. सब्जियाँ भगौनें को ढककर पकाना चाहिये अन्यथा भाप के साथ पोषक तत्व निकल जाते हैं ।

13. खानें के समय ही भोजन पकाना चाहिये, रखे भोजन के स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं ।

14. शीघ्र गलानें के लिये सोडे का प्रयोग नही करना चाहिये ।

15. मालपुआ, पूड़ी, कचौड़ी तथा हलुआ भूख से कुछ कम मात्रा में सेवन करना चाहिये ।

16. बाजार की विभिन्न मिठाईयों के सेवन से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

17. माँस का सेवन अपनें स्वास्थ्य जलवायु को ध्यान में रखकर अल्प मात्रा में करना चाहिये ।

18. कच्चे अंण्डे की जर्दी दूध में फेंटकर अथवा वैसे ही लेंना अधिक लाभकारी है ।

19. जिन व्यक्तियों को नेत्र ज्योति कम होती है उन्हें अण्डे का सेवन लाभप्रद होता है ।

20. मदिरा का सेवन स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है ।

21. पत्तेदार सब्जियों की आपूर्ति क्षेत्रीय उत्पादन द्वारा तथा यथा संभव कच्चा सेवन करना चाहिये ।

शोध अध्ययन का सार संक्षेप -

भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिये कृषि का विशेष महत्व है । वास्तव में कृषि अनेंक देशों के आर्थिक विकास का प्रमुख आधार है परंतु जिस देश में कृषि भूमि अधिक है वहां तो इसका महत्व और भी अधिक है । भारत एक ऐसा देश है, परंतु आश्चर्य तो यह है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश के भी कभी कभी खाद्यान्न संकट का सामना करना पड़ता है । तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या, जीवन स्तर का क्रमिक उत्थान आवश्यकताओं का दिलाता हुआ स्वरूप, पौधों और जैविक पदार्थों के औद्योगिक उपयोग में अप्रत्याशित वृद्धि, खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उपजों के बीच भूमि उपयोग में होनें वाली प्रतिस्पर्धा, नागरिक एवं औद्योगिक विकास में प्रगति तथा यातायात मार्गों का विस्तार आदि कृषि भूमि का अभाव उत्पन्न करते जा रहे हैं, किन्तु तकनीकि परिवर्तन से कृषि उत्पादन में भी वृद्धि की जा रही है जिससे जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के बाद भी खाद्यान्न के अभाव को कुछ हद तक रोंका जा सका है । किन्तु वास्तविकता यह है कि भोजन, कपड़ा, गृह, और ईंधन जैसी समस्याएँ सर्वथा विद्यमान रहेंगी क्योंकि जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को देखते हुए कृषि साधनों के विकास से इन समस्याओं को आंशिक समाधान ही संभव है । किन्तु इसके लिये हमें प्रयत्नशील रहना अत्यन्त आवश्यक है ।

स्वतंत्रता के बाद खाद्यानों के उत्पादन में सराहनीय प्रगति के बाद भी भारत में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 475 ग्राम ही है । जबकि 600 ग्राम पौष्टिकता, का माप चलाउ स्तर पर माना जाता है, यदि पिछले 20 वर्षो का औसत देंखें तो प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता लगभग 450 ग्राम ही है । यदि हम हर भारतीय को औसतन 500 ग्राम खाद्यान्न भी उपलब्ध न करा सके तो कृषि क्षेत्र में हमारी

उपलब्धि का कोई अर्थ नही है । हमारी खाद्यानों की उत्पादकता में निरंतर उतार चढ़ाव भी होते रहें हैं । कभी खाद्यान्न उत्पादकता कम और कभी अधिक रही है । 21 वीं सदी आते आते हमारी खाद्यान्न उत्पादकता स्थिर हो गई है । ऐसी स्थिति में किसी प्राकृतिक आपदा के समय हमे वासियों की न्यूनतम खाद्यान्न आवश्यकता की आपूर्ति कठिन हो जायेगी । तब न फसल बीमा योजना काम आयेगी और न कृषि को औद्योगिक दर्जा देनें की नीति । हमें उन क्षेत्रों का विकास करना चाहिये जिनकी क्षमता का अभी तक पूर्णतया दोहन नही हो सकता है । अनुमान है कि भारत में कृषि क्षमता का 40 प्रतिशत से अधिक उपयोग नही हो पाया है लगभग 10 करोड़ हेक्टेयर भूमि बगैर बंजर भूमि है, इसका उपयोग अत्यन्त आवश्यक है । कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिये शोधकर्ता के दृष्टिकोंण से निम्न कार्यक्रमों को प्रोत्साहित ही नही करना है बल्कि इन्हें वास्तविकता का जामा भी पहनाना होगा ।

1. मृदा सर्वेक्षण तथा मृदा संरक्षण ।
2. अधिकाधिक कृषकों को कृषि की नई तकनीकि का ज्ञान कराना ।
3. भूमिगत जल तथा भू पृष्ठीय जल के वैज्ञानिक उपयोग को बढ़ावा देना ।
4. जल संसाधन को वैज्ञानिक प्रबंध द्वारा दुरूपयोग को रोंकना ।
5. कृषकों को समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना ।
6. मोटे अनाजों के क्षेत्रफल में विस्तार करना ।
7. दलहनी तथा तिलहनी फसलों के उत्पादन को बढ़ाना ।
8. मुद्रादायिनी फसलों का परंपरागत फसलों के साथ समायोजन ।
9. नहरों की सुरक्षा तथा उनके उचित प्रबंध की व्यवस्था करना ।
10. जैविक उर्वरकों के प्रयोग को प्रोत्साहन ।
11. पशुओं की नश्लों में सुधार तथा पशुपालन को प्रोत्साहन ।
12. पशुओं के चारे की फसलों को प्रोत्साहन ।
13. कृषि की सहायक क्रियाओं को ।
14. कृषि आधारित कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन ।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पर जनसंख्या के एक बड़े भाग की आवश्यकताओं को पूरा करनें का दायित्व भूमि संसाधन पर निर्भर है । जनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति भूक्षेत्र में निरंतर ह्रास हो रहा है, दूसरी ओर निर्धनता व निम्न जीवन स्तर के फलस्वरूप जनसंख्या के एक बड़े

भाग का पोषण स्तर निम्न है । एक अनुमान के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या भूख और कुपोषण जैसी बिमारियों की शिकार है तथा 30 प्रतिशत जनसंख्या के पास पर्याप्त भोजन नही है किसी देश की जनसंख्या तभी प्रगतिशील हो सकती है जब सकती है उसका भरपूर पोषण होता है अतः पोषण स्तर में सुधर हेतु कृषि उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है । जो दो विधियों द्वारा ही संभव है, प्रथम कृषिगत क्षेत्र में वृद्धि करके, द्वितीय वर्तमान कृषिगत क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि करके । किसी भी विधि को अपनानें के लिये भूमि संसाधन पर जनसंख्या भार का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है । तभी विकास की कोई ठोस योजना तैयार किया जाना संभव है ।

भूमि समस्त गतिविधियों का आधार है अतः उपलब्ध भूमि से वहाँ की जनसंख्या का समुचित भरण पोषण किस प्रकार संभव बनाया जा सकता है । वर्तमान कृषि उत्पादकता तथा कृषि उत्पादकता में वृद्धि की भावी संभावनाएँ क्या हैं ?

किसी क्षेत्र की भूमि की प्राकृतिक प्रकृति कृषि भूमि की ओर बढ़नें की है । अथवा चारागाह तथा वनों की ओर बढ़नें की ओर है, किसी भूखण्ड को कैसे उपजाऊ बनाया जा सकता है? आदि तथ्यों के ध्यान में रखते हुए शोध अध्ययन प्रस्तुत करनें का प्रयास किया गया है । प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रमुख उद्देश्य जनपद प्रतापगढ़ की कृषि भूमि क्षमता का मूल्यांकन करना है । इस शोध अध्ययन के निम्नांकित उपलक्ष्य निर्धारित किये गये हैं ।

1. सामान्य भूमि उपयोग तथा कृषि भूमि उपयोग का अध्ययन करना ।
2. कृषि भूमि का प्रचलित सस्य तथा प्रचलित तकनीक का अध्ययन करना ।
3. कृषि भूमि पर जनसंख्या के भर का मापन करना ।
4. जनसंख्या के पोषक स्तर का मापन तथा स्वास्थ्य स्तर का ज्ञान प्राप्त करना ।
5. कुपोषण तथा अल्पोषण से संबन्धित बीमारिं का विश्लेषण करना।
6. पोषण संबंधी समस्याओं के समाधान में सरकार के प्रयासों का ज्ञान प्राप्त करना ।
7. कृषि उत्पादन में बृद्धि तथा पोषण संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव देना ।

उपयुक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शोध कर्ता द्वारा निम्न परिकल्पनाओं को आधार बनाया गया है -

1. कृषि क्षेत्र में खाद्यान फसलों की प्रधानता और व्यवसायिक फसलों का अभाव है ।
2. कृषि उत्पादकता निम्न होने का कारण कृषि तकनीकि का सीमित प्रयोग ।
3. आधुनिक कृषि तकनीकि द्वारा प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादकता में बृद्धि सम्भव ।
4. अध्ययन क्षेत्र के प्रचलित आहार प्रतिरूप में खाद्यानों की प्रधानता पाई जाती है ।
5. परम्परागत क्षेत्रीय खाद्य पदार्थो से ही गुणात्मक पोषण स्तर प्राप्त करना संभव है ।
6. प्रचलित आहार में संतुलन स्थापित करके कुपोषण से बचा जा सकता है ।
7. कुपोषण तथा अल्पापोषण के लिये निर्धनता तथा अज्ञानता प्रमुख रूप से उत्तरदायी है ।

प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ़, उ0प्र0 के इलाहाबाद मण्डल के अंतर्गत 25 अंश 52 अक्षांश से 26 अंश 22 अक्षांश तथा 81 अंश 22 अक्षांश से 82 अंश 49 अक्षांश पूर्वी देशान्तर के मध्य मण्डल के जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3717 वर्ग किलोमीटर है । इसके उत्तर में सुल्तानपुर के मध्य स्थित है । जनपद दक्षिण में जनपद इलाहाबाद तथा पश्चिम में जनपद रायबरेली स्थित है । प्रशासनिक दृष्टि से जनपद चार तहसीलों- प्रतापगढ़, कुण्डा, लालगंज तथा पट्टी में विभक्त है । तथा 15 विकास खण्डों द्वारा ग्रामीण विकास संचालित होते हैं । विकास खण्डों में -

1. कालाकांकर
2. बाबागंज
3. कुण्डा
4. बिहार

इस दृष्टि से जनपद में 174 प्रारंभिक कृषि सहकारी साख समितियाँ कार्यरत हैं जिनकी सदस्य संख्या 351020 है और इन समितियों नें 31 मार्च 1995 तक कुल 72930 हजार रूपये अल्कालीन तथा 8002 हजार रूपये मध्यकालीन ऋण के रूप में वितरित किए । जनपद में सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की

संख्या 23 है जिसमें 17 बैंक ग्रामीण तथा 06 बैंक नगरीय क्षेत्रों में स्थित है जिनके द्वारा कुल 32030 हजार रूपये के ऋण दीर्घकालीन उद्देश्यों के लिये दिए गये । व्यावसायिक बैंकों की दृष्टि से जनपद में कुल 128 बैंक शाखाएँ कार्यरत हैं जिनमें से 57 राष्ट्रीयकृत बैंक शाखाएँ तथा 71 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शाखाएँ कार्यरत हैं । बैंकों में प्रति व्यक्ति जमा धनराशि 1320 रूपये तथा प्रति व्यक्ति ऋण वितरण 415 रूपये हैं ।

विपणन वह मानवीय क्रिया है जो विनिमय प्रक्रिया सम्पन्न करते हुए मनुष्य की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करती है इस दृष्टि से जनपद में 209 बीज गोदाम रासायनिक उर्वरक भण्डार हैं जिनकी भण्डारण क्षमता 20300 मी.टन है । 64 कीटनाशक डिपों हैं जिनकी क्षमता 6400 मी.टन है । 03 शीत भण्डार कार्यरत हैं जिनकी क्षमता 1200 मी.टन है । खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से 02 भारतीय खाद्य निगम भण्डारण क्षमता 10000 मी.टन, राज्य भण्डार निगम भण्डारण क्षमता 10073 मी.टन है । 1200 मी.टन है । परिवहन सुविधाओं की दृष्टि से जनपद में रेल परिवहन तथा सड़क परिवहन प्रमुख साधन है । सड़क परिवहन के लिये जनपद में 148 किलोमीटर प्रादेशिक राजमार्ग, 164 किलोमीटर मुख्य जिला सड़क,1076 किलोमीटर अन्य जिला तथा ग्रामीण सड़कें विद्यमान हैं इसके अतिरिक्त जिला परिषद द्वारा पोषित 284 किलोमीटर तथा नगर पंचायत/क्षेत्र पंचायत द्वारा पोषित सड़कों की लंबाई 56 किलोमीटर है । चिकित्सा सुविधाओं की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में 12 चिकित्सालय/औषधालय तथा 65 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित हैं जिनमें कुल 946 सैयाएँ उपलब्ध हैं । 26 आयुर्वेदिक चिकित्सालय/औषधालय 05 यूनानी तथा 22 होम्योपैथिक चिकित्सालय उपलब्ध हैं ।जिनमें 134 सैयाएँ उपलब्ध हैं ।परिवार एवं मातृशिशु कल्याण केन्द्रों की संख्या 32 तथा परिवार एवं मातृशिशु कल्याण उपकेन्द्र 360 स्थापित हैं । जनपद में कुल 1580 ग्राम विद्युतीकृत किए जा चुके हैं ।

भूमि संसाधन मनुष्य के लिये प्रकृति का सर्वोत्तम उपहार है यह प्रत्येक अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं का आधार है ।इस पर ही मनुष्य की समस्त गतिविधियों का सृजन एवं विकास होता है । इस दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र का कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 362423 हेक्टेयर हैं जिसमें से 448 हेक्टेयर (0.12प्रतिशत) वन 8436 हेक्टेयर (2.33प्रतिशत) कृषि योग्य बंजर भूमि, वर्तमान धरती के अन्तर्गत 46218 हेक्टेयर (12.75 प्रतिशत) अन्य परती भूमि के अन्तर्गत 16482 हेक्टेयर

(4.55 प्रतिशत) ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि 9760 हेक्टेयर (2.69 प्रतिशत) कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में लाई गई भूमि 40284 हेक्टेयर (11.12 प्रतिशत), चारागाह के अर्न्तगत 810 हेक्टेयर (0.22 प्रतिशत) उद्यान एवं वृक्षों वाली भूमि के अर्न्तगत 17862 हेक्टेयर (4.93 प्रतिशत) संलग्न है। उक्त आठ शीर्षकों के अर्न्तगत कुल 140317 हेक्टेयर अर्थात (38.71 प्रतिशत) भूमि कृषि के उपयोग में नहीं लाई जा पा रही है । इस प्रकार कुल शुद्ध बोया गया क्षेत्र 222106 हेक्टेयर (61.29 प्रतिशत) है जिस पर विभिन्न फसलें उगाई जा रही हैं। पर्यावरणीय सन्तुलन की दृष्टि से देखें तो अध्ययन क्षेत्र में वनों के अर्न्तगत केवल 0.12 प्रतिशत क्षेत्र ही आता है। जबकि उत्तरांचल राज्य बनने के पूर्व प्रादेशिक स्तर 17 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय स्तर 22.7 प्रतिशत है। वर्तमान परती, अन्य परती तथा कृषि योग्य बंजर भूमि का कुल क्षेत्र 71136 हेक्टेयर भूमि को विभिन्न फसलों के अर्न्तगत प्रयोग में लाया जाये तो अध्ययन क्षेत्र में 19.63 प्रतिशत क्षेत्र पर विभिन्न फसलें उगाई जा सकती हैं। शुद्ध बोये गये क्षेत्र 222106 हेक्टेयर में 77648 हेक्टेयर (34.96 प्रतिशत) भूमि पर दो या दो से अधिक फसलें उगाई जा रही हैं, जिससे फसल गहनता सूचकांक 134.96 है तथा सकल बोया गया क्षेत्र 348810 हेक्टेयर हो जाता है जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र से कम है ।

प्रकृति ने अपनी उदारता से मनुष्य की विविध आवश्यकताएं पूरी करने के लिये विभिन्न साधनों का निशुल्क उपहार दिया है जिन्हें प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है। इन प्राकृतिक साधनों को जितनी कुशलता से प्रयोग योग्य वस्तुओं और सेवाओं में परिवर्तित कर लिया जाये उतने ही श्रेयस्कर रूप से व्यक्ति की भोजन, आवास, वस्त्र, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, यातायात एवं सम्बवाद वाहन की आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं इसलिये विकास की अनिवार्यता के रूप में संसाधनों के विदोहन का पक्ष भी सक्षम, उपयोगी और समाज के अनुकूल होना चाहिये। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों को वस्तुओं और सेवाओं में अधिक कुशलतापूर्वक परिवर्तित किया जा सकता है इसलिये तीव्र आर्थिक विकास के लिये विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने केवल सहायक वरन एक अपरिहार्य अवयव है। पिछले दशकों में हरित क्रान्ति मुख्यतः विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र की सफलता की कहानी है। नवीन विज्ञान और प्रौद्योगिकी के रूप में कृषि के रूप में कृषि निवेशों के समावेश से सिंचाई की सुविधाओं, नवीन कृषि यंत्रों का प्रयोग रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, फसलों को बीमारियां तथा कीड़े मकोड़ों से फसल की सुरक्षा तथा

अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रचलन से कृषि में अनिश्चितता कम हुई है तथा फसल संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था और वर्षा की प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में सिंचाई का जनपदीय अर्थव्यवस्था में विशेष महत्व है जनपद में वर्षा का वार्षिक स्तर औसत रूप से 977 मिलीमीटर है जो सफल कृषि के लिये अपेक्षित वर्षा स्तर से कम है। सामान्य रूप से जहां वर्षा 1270 मि.मी से कम होती है वहां कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। वर्षा की मात्रात्मक अल्पता के अतिरिक्त विवरणात्मक पक्ष भी असमान है लगभग 80 प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर माह तक होती है जबकि कृषि कार्य सतत जारी रहने की प्रवृत्ति रखता है इसलिये एक से अधिक फसल उगाने के लिये तथा कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिये सिंचाई के लिये कृत्रिम साधनों का विकास अनिवार्य हो जाता है । नियोजन काल में नहरें कृषि सिंचाई के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत रही है। यद्यपि आज भी जनपद में नहरों का महत्वपूर्ण स्थान है जो शुद्ध सिंचित क्षेत्र के लगभग आधे क्षेत्र को जल उपलब्ध कराती है। परन्तु अब निजी नलकूप/पम्पिंग सेट का सिंचाई के लिये उपयोग बढ़ता जा रहा है। जनपद में जहां शुद्ध सिंचित क्षेत्र 166392 हेक्टेयर है जिसमें 80396 हेक्टेयर (48.32 प्रतिशत) नहरों द्वारा, 82756 हेक्टेयर (49.74 प्रतिशत) निजी नलकूपों द्वारा तथा शेष 3240 हेक्टेयर (1.95 प्रतिशत) अन्य साधनों द्वारा सिंचाई की जाती है सिंचना क्षमता की दृष्टि से देखें तो जनपद में नहरों की कुल लम्बाई 1764 किलोमीटर है परन्तु इस साधन द्वारा 80396 हेक्टेयर सिंचन सुविधा उपलब्ध कराई गई । अर्थात प्रति किलोमीटर 45.58 हेक्टेयर, जबकि नहरों के जल का कुशलता पूर्वक यदि उपयोग किया जाये तो 200 हेक्टेयर प्रति किलोमीटर सिंचन सुविधा उपलब्ध कराई जा सकती है जबकि वर्तमान में यह साधन अपनी क्षमता का 25 प्रतिशत से भी कम उपयोग कर पा रहा है । इसी प्रकार राजकीय नलकूप 94 तथा निजी नलकूप/ पंपिंग सेट क्रमशः 6782 तथा 48464 है जो क्रमशः 19.96 हेक्टेयर तथा 1.59 हेक्टेयर प्रति नलकूप/ पंम्पिंग सेट सिंचन क्षमता का उपयोग किया जा रहा है। जिसे अत्यन्त न्यून कहा जा सकता है । सिंचन क्षमता की दृष्टि से सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र को सिंचाई सुविधायें उपलब्ध करवाई जा चुकी हैं परन्तु कुशलतम उपयोग के अभाव में केवल 74.91 प्रतिशत कृषि क्षेत्र को ही सिंचन सुविधायें प्राप्त हो रही हैं ।

यंत्रीकरण कृषि उत्पादिता बढ़ाने हेतु यांत्रिक शक्ति का प्रयोग है, यंत्रीकृरण से प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी की जा सकती है साथ ही ऐसी भूमि पर भी कृषि कार्य सम्भव हो जाता है जो बंजर व कम उपजाऊ होता है । किसी क्षेत्र की भूमि उपयोग में सफलता उस क्षेत्र में प्रयोग होने वाले यांत्रिक उपकरणों पर आधारित है । अध्ययन क्षेत्र में कृषि कार्यों में यंत्रों का उपयोग बढ़ता जा रहा है और पशुओं तथा मानव श्रम का प्रतिस्थापन संचालन शक्ति द्वारा किया जा रहा है जिससे प्रति हेक्टेयर उत्पादन में भी वृद्धि हुई है और कृषि क्षेत्र में भी कृषि यंत्रों के सन्दर्भ में जनपद में 168630 लकड़ी के हल 33578 लोहे के हल 2342 हैरो तथा कल्टीवेटर, 7726 उन्नत थ्रेसिंग मशीन, 907 स्प्रेयर, 5337 उन्नत बोआई यंत्र तथा 2301 ट्रेक्टर प्रयुक्त हो रहे हैं । भूमि पर बढ़ता हुआ जनसंख्या का दबाव और भूमि का गैर कृषि कार्यो में बढ़ता हुआ प्रयोग यह तथ्य स्पष्ट करता है कि फसलों के अर्न्तगत शुद्ध क्षेत्र बढ़ाकर उत्पादन में वृद्धि की सम्भावना अत्यन्त कम रह गई है अतः कृषि उत्पादकता बढ़ाने में गहरी खेती ही सहायक हो सकती है जिसके लिये रासायनिक उर्वरकों का महत्वपूर्ण स्थान बनता जा रहा है क्योंकि भूमि की उर्वरकता बनाये रखने के तथा उर्वरता बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि भूमि के ह्रास होने वाले तत्वों की आपूर्ति होनी चाहिये जिसकी आपूर्ति रासायनिक उर्वरकों द्वारा हो सकती है अध्ययन क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का महत्व हरित क्रान्ति के बाद ही बढ़ा है। जहां 1980-81 में प्रति हेक्टेयर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग केवल 34.66 किलो ग्राम था वहीं 90-91 में यह बढ़कर 70.81किलोग्राम और 85-96 में यह 110.00 किलोग्राम तक पहुंच गया है । रासायनिक उर्वरकों की भंति आधुनिक कृषि प्रणाली में पौध संरक्षण का भी प्रमुख स्थान है क्यों कि पौध संरक्षण का समुचित ध्यान यदि नही दिया जाता है तो पौध नाशकों तथा बीमारियों की सक्रियता बढ़ती है । जिससे फसलों को गंभीर क्षति पहुंचती है । जनपद में फसलों को कीटनाशकों से तथा विभिन्न बीमारियों से बचाने के लिये आवश्यक कीट नाशक रसायन/ पावडर उपलब्ध हो सके इसके लिये विभिन्न विकासखण्डों में 84 कीटनाशक डिपो कार्यरत हैं । जिनकी भण्डारणक्षमता 8400 मीट्रिक टन है जिससे अब डी डी टी बी. एच सी , एल्ड्रिन, सल्फर, ब्रोमाइड लिम्डेन तथा जिन्क आदि फसल प्रणाली से घनिष्ठ रूप से जुड़ गये हैं । परन्तु जनपद में फसलों की रक्षा हेतु कीटनाशक डिपो स्थापित हैं, परन्तु कृषकों को यह सुविधा न तो समय पर और न आवश्यक मात्रा में

उपलब्ध हो पाती है जिससे इनका प्रचलन व्यापक स्तर पर सम्भव नहीं हो सका है ।

बीज कृषि उत्पादन का आधार होते हैं । कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये उन्नत किस्म के बीजों का उत्पादन एवं वितरण आवश्यक है क्योंकि बीज की गुणवत्ता पर एवं सामर्थ्य पर ही उत्पादन और उत्पादिता आधारित है । इस दृष्टि से जनपद में 321308 हेक्टेयर क्षेत्रफल फसलें, 2776 हेक्टेयर पर तिलहनी फसलें तथा 10044 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर गन्ना तथा आलू की फसलें उगाई जाती हैं । खाद्यान्नों में 280672 हेक्टेयर है जिनमें उर्द मूंग चना मटर तथा अरहर फसलें प्रमुख हैं । जनपद में खाद्यान्न फसलों में लगभग सभी फसलों के लिये उन्नतशील बीजों का प्रचलन है परन्तु धान तथा गेहूं में इनका प्रयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है । दलहनी फसलों उर्द मूंग चना मटर तथा अरहर में उन्नत बीजों का प्रचलन है कुछ कृषक अरहर में भी इन बीजों का प्रयोग करते हैं ।जायद की फसलों में हरी सब्जियों, खीरा, खरबूजा तथा तरबूज आदि में उन्नत बीजों का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है । उन्नत किस्म के बीजों का सीमित क्षेत्र में प्रयोग किये जाने के दो प्रमुख कारण है, प्रथम तो इन बीजों की कीमत अधिक होने के कारण सामान्य कृषकों की क्रयशक्ति के बाहर हैं। द्वितीय इन बीजों का वितरण अत्यन्त दोषपूर्ण है सरकार के तमाम प्रयासों के बाद भी ये बीज कृषकों तक समय पर नहीं पहुंच पाते साथ ही प्रामाणिक बीजों की कभी कभी उत्पादकता इतनी कम हो जाती है कि कृषकों का इन बीजों से विश्वास ही उठ जाता है । सामान्यतया कृषकों को पर्याप्त सुविधाओं के अभाव में ही इन बीजों का प्रयोग करना पड़ता है जिससे इन बीजों की घोषित उत्पादकता तथा वास्तविक उत्पादकता में भारी अन्तर हो जाता है ।

जनपद में आधुनिक स्तर की गणना करने पर सम्पूर्ण जनपद में कृषि आधुनिकी करण का स्तर 252.83 प्रतिशत प्राप्त हुआ है, परन्तु विकासखण्ड स्तर पर 173 प्रतिशत से लेकर 334 प्रतिशत तक भिन्नता पाई गई है । इस अन्तर को पांच श्रेणियों में रखा गया तो अतिनिम्न कृषि आधुनिकीकरण के स्तर वाले विकासखण्डों में कुण्डा, बाबागंज, तथा कालाकांकर प्राप्त हुए । निम्न आधुनिकीकरण वाले बिहार, मगरौरा तथा रामपुर खास विकास खण्ड प्राप्त हुए हैं । मध्यम आधुनिकीकरण के स्तर वाले सागीपुर, लक्ष्मणपुर, संडवा चन्द्रिका, शिवगढ़ तथा मान्धाता विकासखण्ड रहे । जबकि उच्च आधुनिकीकरण की श्रेणी में पट्टी,

प्रतापगढ़ सदर तथा गौरा विकासखण्ड और अति उच्च स्तर पर केवल आसपुर देवसरा विकास खण्ड स्थित पाया गया ।

किसी भी अर्थव्यवस्था में कृषि का सस्य प्रतिरूप वहां के प्राकृतिक पर्यावरण पर निर्भर करता है इस दृष्टि से देखा जाए तो जनपद में वर्ष भर में तीन फसलें उगाई जाती हैं यह फसलें ऋतु परिवर्तन से प्रभावित होती हैं । सम्पूर्ण फसलोत्पादन को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है खाद्य तथा अखाद्य फसलें । रबी की फसलें 47.90 प्रतिशत क्षेत्र पर , खरीफ की फसलें 48.11 प्रतिशत क्षेत्र पर तथा जायद की फसलें 3.99 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाती हैं परन्तु इन तीनों फसलों में खाद्यान्न फसलों की प्रमुखता है जो लगभग 94 प्रतिशत क्षेत्र पर अधिकृत हैं जबकि व्यावसायिक फसलों का क्षेत्रफल केवल 6 प्रतिशत है । खरीफ की फसलों में धान की 32.78 प्रतिशत, ज्वार 1.76 प्रतिशत, बाजरा 4.10 प्रतिशत मक्का 0.61 प्रतिशत भागेदारी रहती है 12.25 प्रतिशत क्षेत्रफल पर दलहनी फसलें जिसमें उर्द/ मूंग 3.83 प्रतिशत चना 2.61 प्रतिशत, मटर 1.50 प्रतिशत तथा अरहर 4.30 प्रतिशत क्षेत्र पर उगाई जाती है ।रबी की फसलों में गेहूं 41.34 प्रतिशत, जौ 1.05 प्रतिशत बोया जाता है । जायद फसलों का क्षेत्र 13932 हेक्टेयर है जिसमें खीरा, ककड़ी, तरबूज तथा सब्जियों का प्रमुख स्थान रहता है ।

किसी क्षेत्र की कृषि स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक होता है कि उस क्षेत्र के सस्य विभेदीकरण का ज्ञान किया जाये कृषि के इस स्वभाव का अध्ययन करने के लिये समय-समय पर कृषि अर्थशास्त्रियों ने प्रयास किये हैं । यदि किसी क्षेत्र विशेष में अधिक फसलें उगाई जाती हैं और उनका क्षेत्रफलीय वितरण भी एक समान है तो उस क्षेत्र विशेष में फसलों का विभेदीकरण भी कम होगा । अतः सस्य विभेदीकरण सूचकांक तथा सस्य विभेदीकरण श्रेणी में विपरीत सम्बन्ध होता है अर्थात सस्य विभेदीकरण सूचकांक अधिक होगा तो सस्य विभेदीकरण की श्रेणी निम्न होगी इसके विपरीत सूचकांक निम्न होगा तो सस्य विभेदीकरण उच्च होगा । इस दृष्टि से जनपद में सस्य विभेदीकरण सूचकांक 11. 78 से 43.99 के मध्य प्राप्त हुआ जहां फसलों की सघनता 2 से लेकर 7 तक प्राप्त हुई है । विकासखण्ड स्तर पर अति उच्च सस्य विभेदीकरणा की श्रेणी में कोई भी विकासखण्ड स्थित नहीं है । उच्च सस्य विभेदीकरण के मध्य सांगीपुर, संडवाचन्द्रिका, प्रतापगढ़ सदर शिवगढ़ तथा मान्धाता आते हैं । जो सस्य

विभेदीकरण सूचकांक 10 से 20 के मध्य स्थित हैं । मध्यम सस्य विभेदीकरण के अन्तर्गत कुण्डा, रामपुर खास, लक्ष्मणपुर, मगरौरा, पट्टी, तथा आसपुर देवसरा स्थित है जो सस्य विभेदीकरण सूचकांक के 20 से 30 के मध्य स्थित है । जबकि निम्न सस्य विभेदीकरण के अन्तर्गत अकेला विकासखण्ड गौरा आता है और अतिनिम्न सस्य विभेदीकरण में कालाकांकर, बाबागंज तथा विहार स्थित पाये गये । सस्य संयाजन के अर्न्तगत किसी क्षेत्र में उगाई जाने वाली समस्त फसलों का अध्ययन किया जाता है इससे कृषि की क्षेत्रीय विशेषताओं को सरलता से जाना जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र में सस्य संयोजन के निर्धारण में दोई, थामस तथा रफीउल्लाह की विधियों का अनुसरण करते हुये उन फसलों को ही सम्मिलित किया गया है ।जिनका क्षेत्रफल सकल कृषि क्षेत्र में 2 प्रतिशत या इससे अधिक की भागेदारी करता है । जिसमें दोई विधि के अनुसार अध्ययन क्षेत्र पांच फसल संयोजन तक देखने को मिलता है । दो फसल संयोजन के अर्न्तगत 12 विकासखण्ड स्थित है और तीन तथा पांच फसल संयोजनों में क्रमशः सागीपुर, शिवगढ़ तथा प्रतापगढ़ सदर प्राप्त होते हैं । थामस विधि के अर्न्तगत अध्ययन क्षेत्र छः फसल संयोजन तक पहुंचताहै जिसमें दो फसल संयोजन में 11 विकासखण्ड तथा तीन, चार, पांच तथा छः फसल संयाजन के अर्न्तगत एक-एक विकासखण्ड क्रमशः सांगीपुर, शिवगढ़, प्रतापगढ़ सदर तथा संडवा चन्द्रिका स्थित है । प्रो. रफीकउल्लाह की गणना विधि से दो फसल श्रेणी में 10 विकासखण्ड, तीन फसल श्रेणी में 4 विकासखण्ड तथा चार फसल श्रेणी में एक विकास खण्ड स्थित है । इस प्रकार रफीउल्लाह विधि से अध्ययन क्षेत्र चार श्रेणी तक, दोई विधि से पांच फसल श्रेणी तक तथा थामस विधि से छः फसल श्रेणी तक विस्तृत है ।

किसी क्षेत्र की कृषि सक्रियता , कृषि गहनता एवं कृषि कुशलता को प्रदर्शित करने में कृषि उत्पादकता का विशेष स्थान है । यदि उत्पादकता क्षीण होती है तो स्वतः कृषि कुशलता घट जाती है । कृषि उत्पादकता से कृषि उत्पादन का गहरा सम्बन्ध है । कुछ विद्वानों ने कृषि उत्पादकता वृद्धि की गणना के लिये फसलगहनता तथा फसल उपज समकक्षता संकेताकों का प्रयोग किया है । फसल गहनता की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र तीन श्रेणियों में बांटा गया है । क्योंकि विकासखण्ड स्तर पर 137.89 प्रतिशत से लेकर 167.30 तक फसलगहनता में विचलन प्राप्त होता है जिसमें निम्न फसल गहनता वाले दो विकासखण्ड हैं प्रतापगढ़ सदर 137.24 प्रतिशत, लक्ष्मणपुर 145.66 प्रतिशत, सांगीपुर 151.60

प्रतिशत, रामपुर खास 155.69 प्रतिशत, पट्टी 156.87 मगरौरा 159.53 प्रतिशत है । जबकि उच्च फसल गहनता वाले विकासखण्डों में मान्धाता 132.52 प्रतिशत, आसपुर 166.50 प्रतिशत, बिहार 166.50 प्रतिशत तथा गौरा 167.30 प्रतिशत है विकासखण्ड स्तर पर उत्पादकता के स्तर पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र 106.28 प्रतिशत से लेकर 180.42 प्रतिशत तक विस्तृत है । कृषि उत्पादकता की दृष्टि से भी समस्त अध्ययन क्षेत्र चार श्रेणियों में रखा गया है । पांचवीं श्रेणी अतिनिम्न स्तर किसी भी विकासखण्ड का नहीं है । निम्न स्तर पर प्रतापगढ़ सदर 106.28 प्रतिशत तथा संडवा चन्द्रिका 118.75 प्रतिशत पाये गये । मध्यम उत्पादकता वाले विकासखण्डों में रामपुर खास 144.24 प्रतिशत, लक्ष्मणपुर 142.76, मान्धाता 148.96 प्रतिशत, मगरौरा 14325 प्रतिशत, आसपुर देवसरा 149.47 प्रतिशत तााि शिवगढ़ 140.28 प्रतिशत है । उच्च उत्पादकता स्तर वाले विकासखण्डों में पट्टी 152.84 प्रतिशत, सांगीपुर 158.94 प्रतिशत तथा कुण्डा 174.84 प्रतिशत , बाबांगज 179.28 प्रतिशत है जबकि अति उच्च उत्पादकता श्रेणी में काला कांकर 178.16 प्रतिशत , बाबागंज 197.28 प्रतिशत विहार 178.37 प्रतिशत तथा गौरा 180.42 प्रतिशत विकासखण्ड स्थित हैं ।

जनसंख्या वितरण से किसी क्षेत्र में जनसंख्या सन्तुलन का बोध होता है । विभिन्न प्रकार के घनत्वों से जनसंख्या वितरण को अच्छी प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है। सामान्य घनत्व की दृष्टि से यदि देखा जाये तो सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का औसत 671 व्यक्ति हैं विकास खण्ड स्तर पर यदि देखें तो सांगीपुर विकासखण्ड का न्यूनतम 552 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है और मान्धाता का सर्वोच्च 769 व्यक्ति प्रति वर्गकिलोमीटर है । उच्च सामान्य घनत्व वाले अन्य विकासखण्ड प्रतापगढ़ सदर 766 व्यक्ति तथा आसपुर देवसरा 690 व्यक्ति शिवगढ़ 681 व्यक्ति हैं जबकि मध्यम घनत्व वाले विकासखण्डों में लक्ष्मणपुर 669 व्यक्ति, कुण्डा 670 व्यक्ति, कालाकांकर 648 व्यक्ति विहार 631 व्यक्ति, गौरा 630 व्यक्ति तथा पट्टी 601 व्यक्ति है और निम्न घनत्व वाले मगरौरा 596 व्यक्ति, संडवा चन्द्रिका 592 व्यक्ति, रामपुर खास 577 व्यक्ति, बाबागंज 561 व्यक्ति तथा सांगीपुर 552 व्यक्ति हैं । कायिक घनत्व की दृष्टि से प्रति वर्ग किलोमीटर 918 व्यक्ति से 575 व्यक्तियों तक विचलन प्राप्त हुआ जबकि कृषि घनत्व में 196 से लेकर 144 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर प्राप्त हुआ । सामान्य घनत्व, कायिक घनत्व तथा कृषि घनत्व के तुलनात्मक अध्ययन से उच्च घनत्व की श्रेणी में प्रतापगढ़

सदर, शिवगढ़, मान्धाता तथा विहार सण्डवाचन्द्रिका तथा रामपुर खास प्राप्त हुए जबकि निम्न घनत्व की श्रेणी में गौरा, मगरौरा, सांगीपुर , पट्टी तथा बाबागंज प्राप्त हुए हैं ।

मानवीय संसाधन आर्थिक क्रियाओं के साधन एवं लक्ष्य दोनों होते हैं। साधन के रूप में मानव श्रमशक्ति और उद्यमियों को सेवायें प्रदान करते हैं । लक्ष्य के रूप में मानव उपभोग इकाई के रूप में देश के कुल उत्पादन का उपभोग करते हैं, इस प्रकार मानवीय संसाधनों की दोहरी भूमिका होती है । पर्याप्त खाद्य पदार्थ मानव जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है । खाद्य समस्या से आशय क्षेत्रीय आवश्यकता के सन्दर्भ में खाद्यान्न की कमी से है । यह कमी खाद्यान्न की मात्रात्मक न्यूनता के रूप में हो सकती है । या सामान्य पोषण स्तर तक खाद्य पदार्थों के उपलब्ध न हो सकने के रूप में हो सकती है । खाद्य समस्या के गुणात्मक पक्ष का सम्बन्ध भोजन में पोषक तत्वों की कमी से है । प्रोटीन, विटामिन, खनिज वसा आदि सन्तुलित भोजन के आवश्यक घटक हैं परन्तु अधिकांश लोगों के भोजन में किसी न किसी तत्व की कमी बनी रहती है । कुपोषण और अल्प पोषण के कारण उनकी कार्यक्षमता घटती है और वे कुसमय बीमारियों के शिकार होने लगते हैं। औसत आधार पर समस्त जनसंख्या के लिये प्रतिदिन 2250 से 3000 कैलोरी ऊर्जा तथा 62 ग्राम प्रोटीन की आवश्कता है । खाद्य एवं कृषि संगठन ने पुरूष और स्त्री के लिये क्रमशः 2600 तथा 1990 कैलोरी ऊर्जा प्रदान करने वाले आहार को आवश्यक माना है ।

किसी क्षेत्र का पोषण स्तर उस क्षेत्र के खाद्यान्नों के उत्पादन एवं उनके समुचित वितरण पर निर्भर करता है । अध्ययन क्षेत्र को यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष खाद्यान्न की उपलब्ध मात्रा धान 95.08 किलो ग्राम गेहूं 122.94 किलोग्राम , जौ 1.88 किलोग्राम, ज्वार 2.56 किलोग्राम बाजरा 6.31 किलोग्राम तथा मक्का 1.36 किलोग्राम है । इन खाद्यान्नों में गेहूं का योगदान सर्वाधिक है । दलहनी फसलों में प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति उपलब्धि उर्द 2.20 किलोग्राम, मूंग 1.12 किलोग्राम , चना 4.45 किलोग्राम , मटर 2.75 किलोग्राम तथा अरहर 6.43 किलोग्राम है, इनमें अरहर की भागेदारी सर्वाधिक है । विकासखण्ड स्तर पर यदि देखें तो प्रतिव्यक्ति अन्न की उपलब्ध मात्रा कालाकांकर 623 ग्राम, बाबांगज 879 ग्राम , कुण्डा 642 ग्राम, विहार 833 ग्राम, सांगीपुर 673 ग्राम, रामपुर खास 799 ग्राम लक्ष्मणपुर 573 ग्राम सण्डवा चन्द्रिका 484 ग्राम प्रतापगढ़

सदर 324 ग्राम मान्धाता 619 ग्राम, मगरौरा 719 ग्राम, पट्टी 844 ग्राम, आसपुर देवसरा 711 ग्राम, शिवगढ़ 501 ग्राम तथा गौरा 708 ग्राम हैं इसी प्रकार दालों की प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धि कालाकांकर 31 ग्राम, बाबागंज 25 ग्राम, कुण्डा 42 ग्राम, बिहार 27 ग्राम सांगीपुर 84 ग्राम, रामपुर खास 40 ग्राम, लक्ष्मणपुर 42 ग्राम, सण्डवा चन्द्रिका 93 ग्राम, प्रतापगढ़ सदर 74 ग्राम, मान्धाता 36 ग्राम, मगरौरा 47 ग्राम, पट्टी 50 ग्राम, आसपुर देवसरा 34 ग्राम, शिवगढ़ 80 ग्राम तथा गौरा 38 ग्राम हैं ।

पोषण स्तर के अध्ययन के लिये प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन तथा उपभोग के लिये प्रतिव्यक्ति शुद्ध खाद्यान्न उपलब्धता दोनों भिन्न पहलू हैं। जहां प्रतिव्यक्ति उत्पादन कृषि क्षेत्र के लिये उत्पादन स्तर का सूचक है वहीं प्रतिव्यक्ति शुद्ध खाद्यान्न उपलब्धता पोषण स्तर का प्रतीक है । अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्ड स्तर पर प्रति व्यक्ति प्रति दिन शुद्ध खाद्यान्न उपलब्धता की गणना करने पर कालाकांकर 476 ग्राम, बाबागंज 618 ग्राम, कुण्डा 447, बिहार 567 ग्राम, सांगीपुर 486 ग्राम, रामपुर खास 472 ग्राम लक्ष्मणपुर 407 ग्राम संण्डवा चन्द्रिका 365 ग्राम, प्रतापगढ़ सदर 234 ग्राम, मान्धाता 428 ग्राम, मगरौरा 497 ग्राम, पट्टी 574 ग्राम, आसपुर देवसरा 504 ग्राम, शिवगढ़ 364 ग्राम, गौरा 503 ग्राम है जबकि दालों की शुद्ध उपलब्ध मात्रा, कालाकांकर 19 ग्राम, बाबांगज 15 ग्राम, कुण्डा 25 ग्राम, बिहार 18 ग्राम, सांगीपुर 51 ग्राम, रामपुर खास 24 ग्राम, लक्ष्मणपुर 25 ग्राम, संडवा चन्द्रिका 55 ग्राम प्रतापगढ़ सदर 44 ग्राम, मान्धाता 22 ग्राम, मगरौरा 29 ग्राम, पट्टी 30 ग्राम, आसपुर देवसरा 21 ग्राम, शिवगढ़ 47 ग्राम तथा गौरा 27 ग्राम है ।

सामान्य रूप से कृषि भूमि पर जैसे-जैसे मनुष्यों का भार बढ़ता जाता है प्रति व्यक्ति उत्पादन कम होता जाता है । प्रति व्यक्ति उत्पादन न गिरने पाये इसके लिये प्रति इकाई कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश बढ़ाया जाये इस प्रकार किसी भी क्षेत्र के विकास तथा नियोजन में जनसंख्या तथा पोषण क्षमता के पास्परिक सम्बन्ध का एक विशेष महत्व है ।किसी भी क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या के पोषण स्तर को सामान्य स्तर पर बनाये रखने के लिये उस क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यक मात्रा की आवश्यकता तो होती है साथ ही यह भी देखना होता है कि उस क्षेत्र की कृषि भूमि की वास्तविक भार वहन क्षमता कितनी है अर्थात जो भी कृषि उपज प्राप्त हो रही है वह कितने व्यक्तियों का पोषण करने में

सक्षम है । सके लिये यह देखना होता है कि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली कृषि उपज से कितनी कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है, यह कैलोरिक उपलब्धता ही उस क्षेत्र के कृषि क्षेत्र की पोषण क्षमता होती है । अध्ययन क्षेत्र की पोषण क्षमता ज्ञात करने के लिये धान, गेहूं, जौ, बाजरा, तथा मक्का खाद्यान्न उर्द, मूंग, चना, मटर, अरहर, दलहन लाही, आलू तथा गन्ना कुल तेरह फसलों के उत्पादन को गणना में शामिल किया गया है जिसमें खाद्य योग्य हिस्से की गणना करके कैलोरिक ऊर्जा प्राप्त की गई है जिसमें अध्ययन क्षेत्र प्रतिवर्ष 495082243 कैलोरी ऊर्जा का आकलन किया गया है जबकि 100 व्यक्तियों को प्रतिदिन 243037 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है इस प्रकार प्रति वर्ष औसत रूप में प्रति व्यक्ति 887693 कैलारी ऊर्जा की आवश्यकता होगी गणना करने पर यह पाया गया कि अध्ययन क्षेत्र में प्रति हेक्टेयर 558 व्यक्तियों के लिये पोषण क्षमता विद्यमान है विकासखण्ड स्तर पर गणना करने पर पाया गया तो कालाकांकर 527 व्यक्ति, बाबांगज 550 व्यक्ति, कुण्डा 547 व्यक्ति, बिहार 575 व्यक्ति, सांगीपुर 501 व्यक्ति, रामपुर खास 537 व्यक्ति, लक्ष्मणपुर 534 व्यक्ति, संडवा चन्द्रिका 515 व्यक्ति, प्रतापगढ़ सदर 419 व्यक्ति, मान्धाता 562 व्यक्ति, मगरौरा 528 व्यक्ति, पट्टी 612व्यक्ति, आसपुर देवसरा 592 व्यक्ति, शिवगढ़ 527 व्यक्ति तथा गौरा 573 व्यक्तियों की पोषण क्षमता रखते हैं । इस प्रकार निम्नतम 450 व्यक्ति तक प्रतापगढ़ सदर, निम्न पोषणक्षमता 451 से 500 तक में कोई भी विकासखण्ड स्थित नहीं है । सामान्य पोषण क्षमता 501 से 550 तक स्तर पर 09 विकासखण्ड कालाकांकर, बाबागंज, कुण्डा, सांगीपुर, रामपुर खास, लक्ष्मणपुर, संडवा चन्द्रिका, मगरौरा तथा शिवगढ़ स्थित हैं । उच्च पोषण क्षमता स्तर पर 551 से 600 तक पर 04 विकासखण्ड बिहार , मान्धाता, आसपुर देवसरा, तथा गौरा विकासखण्ड पाये गये जबकि पट्टी विकासखण्ड अति उच्च 601 से अधिक पोषण स्तर के अर्न्तगत स्थित है। परन्तु कायिक घनत्व के आधार पर देखा गया कि पट्टी विकासखण्ड को छोड़कर अन्य सभी विकास खण्ड वर्तमान में अतिरिक्त व्यक्तियों के पोषण का भार वहन कर रहे हैं । जिसमें कालाकांकर 138 व्यक्ति , बाबागंज 220 व्यक्ति, कुण्डा 167 व्यक्ति, बिहार 59 व्यक्ति, सांगीपुर 76 व्यक्ति, रामपुर खास 70 व्यक्ति, लक्ष्मणपुर 213 व्यक्ति, संडवा चन्द्रिका 178 व्यक्ति,प्रतापगढ़ सदर सर्वाधिक 499 व्यक्ति, मान्धाता 184 व्यक्ति, मगरौरा 72 व्यक्ति, आसपुर देवसरा 39 व्यक्ति, शिवगढ़ 238 व्यक्ति तथा गौरा 38 व्यक्तियों

के अतिरिक्त भार को वहन कर रहे हैं। केवल पट्टी विकासखण्ड अभी भी 22 अतिरिक्त व्यक्तियें के पोषण को वहन कर सकता है ।

भोजन मनुष्य की प्राथमिक और सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । भोजन की आदत तथा पर्यावरण जिसमें मनुष्य जीवन यापन करता है में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । जिसके लिये सर्वप्रथम मनुष्य पर्यावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है तत्पश्चात उस पर्यावरण के अनुसार अपनी खाद्य आदतें तथा खाद्य स्वभाव समायोजित करता है । पारिस्थितिकीय अन्तर , आय का आकार परिवार का आकार खाद्य पदार्थों की उपलब्धता तथा लोगों की जीवन शैली लोगों की भोजन आदतों के लिये उत्तरदायी होते हैं। इसके लिये सर्वेक्षण के आधार पर 300 कृषक परिवारों को दैवनिदर्शन पद्धति से चुना गया है जिसमें 122 सीमान्त कृषक 0.5 हेक्टेयर तक कृषि भूमि 107 लघु कृषक, 52 लघु मध्यम , 16 मध्यम कृषक, तथा 3 बड़े कृषक प्राप्त हुये हैं। 300 कृषक परिवारों में 65 उच्च जाति के, 95 पिछड़ी जाति के, 113 अनुसूचित जाति के, 27 मुस्लिम धर्म के लोग सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त इन 300 परिवारों के आकार की गणना की गई तो 68 कृषक परिवार 4 सदस्यों से कम, 88 कृषक परिवार 5 से 6 सदस्य तक, 58 कृषक परिवार 7 से 8 सदस्य तक, 62 कृषक परिवार 9 से 10 सदस्य तक तथा 24 कृषक परिवार 10 से अधिक सदस्य वाले प्राप्त हुए हैं ।

सर्वेक्षण में लोगों में प्रचलित खाद्य पदार्थो को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है, प्रथम वर्ग में मुख्य खाद्य पदार्थ- सामान्यतया सभी वर्गों में प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं । दूसरे वर्ग में सहायक खाद्य पदार्थ आते हैं इनका सेवन सामान्यतया स्वाद बदलने के लिये प्रमुख खाद्य पदार्थों के साथ ग्रहण किये जाते हैं । सामान्यतया इनका प्रयोग अनजाने ही शरीर की अम्लीय आवश्यकताओं को पूरा करने में किया जाता है । सर्वेक्षण में पाया गया कि अचार, चटनी तथा मटठे का प्रयोग इनकी उपलब्धता के आधार पर लगभग सभी वर्गो में किया जाता है । जबकि दही, मुरब्बा, घी तथा मक्खन कुछ बड़े लोगो तक सीमित है ।
मादक पेय में शराब का प्रचलन यदा कदा लगभग सभी वर्गो में न्यूनाधिक मात्रा में पाया गया परन्तु युवकों में इसके प्रचलन की आवृत्ति अधिक पाई गई । तृतीय वर्ग में गौण खाद्य पदार्थों को सम्मिलित किया गया है जिनमें से कुछ स्वादिष्ट तथा यदा कदा अथवा विशेष अवसरों पर ग्रहण किये जाते हैं। परन्तु गुणवत्ता श्रेष्ठता वाले खाद्य पदार्थ लोगों द्वारा स्वल्प और सीमित मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं ।

परम्परागत तथा गैर परम्परागत खाद्य पदार्थो की पहिचान के लिये खाद्य पदार्थो को पुनः तीन वर्गो में बांटा गया है इनमें से प्रथम वर्ग में परम्परागत सामान्य खाद्य पदार्थ दूसरे वर्ग में परम्परागत विशिष्ट खाद्य पदार्थ तथा तीसरे वर्ग में आधुनिक खाद्य पदार्थ रखे गये हैं । परम्परागत खाद्य पदार्थ कृषकों द्वारा अपने खेतों पर अथवा क्षेत्र में उत्पन्न किये जाते हैं । जबकि आधुनिक खाद्य पदार्थ बाजार से , मेलों से अथवा स्थानीय दुकानों से क्रय करके उपभोग किये जाते हैं । खाद्य पदार्थों का एक अन्य वर्गीकरण उनके उपभोग की आवृत्ति के अनुसार किया जा सकता है । अति उच्च आवृत्ति वाले खाद्य पदार्थ वर्ष में लोगों के भोजन में 70 प्रतिशत से अधिक योगदान करते हैं । उच्च आवृत्ति वाले खाद्य पदार्थ वर्ष में 40 से 70 प्रतिशत तक योगदान करते हैं निम्न आवृत्ति वाले खाद्य पदार्थों का योगदान 10 से 40 प्रतिशत रहता है जबकि 10 प्रतिशत से कम योगदान करने वाले खाद्य पदार्थों को अतिनिम्न आवृत्ति वाले वर्ग में रखा गया है । यह वर्गीकरण यह तथ्य स्पष्ट करता है कि परम्परागत खाद्य आदतों के कारण विभिन्न वर्गो लोग उन खाद्य पदार्थों के उपभोग में विशेष रूचि रखते हैं । जिन्हें वे एक लम्बे समय से उपभोग करते आ रहे हैं । जैसे विभिन्न वर्गो में रोटी और दाल का उपभोग अति उच्च आवृत्ति प्रदर्शित करता है । कुछ खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि कुछ लोगों द्वारा इनका सेवन सामाजिक संस्कृति का एक अनिवार्य अंग है परन्तु कुछ लोगों में इनका प्रयोग पूर्णतया वर्जित है जैसे मांस मछली का प्रयोग मुस्लिम संस्कृति में एक अनिवार्य जीवन शैली है, परन्तु हिन्दू परिवारों में इनका सेवन पूर्णतया वर्जित है । अन्य मध्य मार्गी परिवारों में मांसाहार यद्यपि पूर्णतया स्वतंत्र नही हैं ।इस कारण इसका यदा कदा सेवन किया जाता है । अनुसूचित जाति के ऐसे अनेक परिवार प्राप्त हुये हैं जिनके सभी सदस्य मांसाहारी हैं । परन्तु ये खाद्य पदार्थ महंगे होने के कारण चाहकर भी इनक उपभोग से वंचित रह जाते हैं । अनुसूचित जाति तथा मुस्लिम परिवारों के अतिरिक्त अन्य किसी भी वर्ग में कोई ऐसा परिवार प्राप्त नहीं हुआ जिसके सभी सदस्य मांसाहारी हों । इसी प्रकार यह भी देखा गया कि खाद्य पदार्थों को पकाने में कुछ परिवारों में अत्यन्त सरल विधि है जबकि कुछ परिवारों में इन्हें पकाने की विधि अत्यन्त जटिल है । उच्च जति की अधिकांश महिलाओं में यह प्रवृत्ति पाई गई है कि उनके लिये स्वादिष्ट उत्तम तथा जटिल पद्धति से खाना पकाना एक सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न होता है और एक ही खाद्य पदार्थ को विभिन्न विधियों से तैयार

करना उनकी पाक विद्या की श्रेष्ठता तथा पाक कुशलता का प्रतीक माना जाता है जबकि अनुसूचित जाति तथा पिछड़ी जाति के परिवारों की महिलाओं में पुरूषों के समान शारीरिक श्रम तथा कार्यकुशलता को ही महत्व प्रदान किया जाता है । भोजन पकाने के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उच्च जाति की महिलाओं में विभिन्न खाद्य पदार्थों को पकाने में विभिन्न विधियां श्रेष्ठता , प्रतिष्ठा, अथवा सामाजिक गुण तथा विभिन्न महिलाओं के मध्य सम्बन्ध स्थापन में एक सेतु का कार्य करती है इस सबके बावजूद भी पुरूषों तथा महिलाओं दोनों में समान रूप से सन्तुलित भोजन, पौष्टिक आहार तथा कुपोषण के ज्ञान का सर्वथा अभाव पाया गया ।

ग्रामीण लोगों द्वारा प्रतिदिन तथा विशिष्ट अवसरों पर उपभोग किये जाने वाले खाद्य पदार्थों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के बाद निष्कर्ष रूप में यह उल्लेख किया जा सकता है कि क्षेत्र में प्रातः सेवन किये जाने वाले खाद्य पदार्थों में जिसे क्षेत्रीय भाषा में नाश्ता, चबेना तथा कलेबा आदि के नाम से जाना जाता है सामान्य रूप से पराठा, अचार, सत्तू तथा महेरी का प्रचलन है कुछ परिवार इन पदार्थों के साथ चाय माठा आदि का भी सेवन करते हैं । कुछ परिवार यदा कदा दूध से निर्मित खाद्य पदार्थ जैसे खीर, सेवई, दही आदि का भी सेवन कर लेते हैं । कुछ परिवार मौसमी उपलब्धता के आधार पर कोहरी, गादा, भूजा, चिल्ला, चौसेला, पूड़ी, कचौड़ी, पुआ, पकौड़ी, आलू बंडे आदि का भी सेवन करते पाये गये । मध्यान्ह के भोजन में रोटी, दाल, भात , तरकारी सालन प्रमुख रूप से उपभोग किये जाते हैं । सांध्यकालीन भोजन में मध्यान्ह काल के ही खाद्य पदार्थों का प्रचलन है मांसाहार का प्रचलन सामान्यतया सांध्यकालीन भोजन में ही प्रचलन है ।

विशिष्ट खाद्य पदार्थो की श्रेणी में गर्भवती महिलाओं, शिशु जन्म के बाद जच्चा माताओं, बच्चों, जन्मोत्सव वैवाहिक समारोहों, मृत्युसंस्कारों के विशेष अवसरों पर तथा विशिष्ट अतिथियों के आगमन पर तैयार किये जाने वाले खाद्य पदार्थ आते हैं । कुछ परिवार बच्चों के खान पान पर विशेष ध्यान देते देखे गये हैं । जन्मोत्सव, वैवाहिक संस्कार तथा मृत्युसंस्कार पर सामान्यतया शाकाहारी भोजन की प्रधानता पाई गई परन्तु मुस्लिम परिवारों में इन अवसरों पर शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थों का प्रचलन है । इन अवसरों पर आयोजित भोजों के कच्ची या पक्की कहा जाता है। पक्के भोजों में पूड़ी, कचौड़ी सब्जी,

दही, रायता, पुलाव, तथा मिष्ठान्न आदि प्रस्तुत किये जाते हैं परन्तु कच्ची भोजन व्यवस्था मतें रोटी, दाल, कढ़ी सब्जी, चावल, चटनी, अचार आदि खाद्य पदार्थों का प्रचलन है । मांसाहारी भोजन में मांस/मछली, रोटी, चावल, आदि का ही प्रचलन है मांसाहारी भोजन में कुछ लोगों द्वारा मादक प्रये के सेवन का भी प्रचलन है, मुसलमानों में चावल के स्थान पर पुलाव तथा बिरयानी का प्रचलन है ।

किसी क्षेत्र की खाद्य आदतें तथा खाद्य पद्धति बहुत कुछ मौसमी परिवर्तनों द्वारा नियंत्रित और संचालित होती है क्योंकि क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों के उत्पादन में विभिन्न मौसमों में भिन्नता पाई जाती है सर्वेक्षण में यह पाय गया कि मौसमी परिवर्तनों के साथ-साथ खाद्य पदार्थों की आवृत्ति बदलती रहती है । यह देखा गया है कि गर्मी के मौसम में खाद्यान्नों का उपभोग बढ़ जाता है तथा दालों की भी खपत इस मौसम में बढ़ जाती है सब्जियों का उपभोग शीत ऋतु में बढ़ जाता है क्येंकि इस मौसम में आलू, टमाटर सस्ता हो जाता है पत्तेदार सब्जियों में चने की पत्तियां, पालक, बथुआ मूली के पत्ते आदि का अधिक प्रचलन है । मांसाहार शीत ऋतु में बढ़ जाता है फलों का उपभोग गर्मी के मौसम में अधिक होता है ।क्योंकि इस मौसम में आम, जामुन, खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, खीरा आदि फसलें क्षेत्रीय स्तर पर उगाई जाती हैं । सीमान्त कृषक परिवारों में वर्षा ऋतु में 940. 70 ग्राम, शीत ऋतु में 1171.96 ग्राम तथा ग्रीष्म ऋतु में 997.71 ग्राम खाद्य पदार्थो का सेवन किया जाता है जिसमें 70 प्रतिशत भागेदारी खाद्यान्नों दालों की रहती है । सब्जियों का योगदान 21 प्रतिशत रहता है । अन्य खाद्य पदार्थो का योगदान केवल 9 प्रतिशत ही रहता है । लघु कृषक परिवारों में शीत ऋतु में सर्वाधिक 1148.56 ग्राम खाद्य पदार्थों का उपभोग किया जाता है वर्षा ऋतु में 942.73 ग्राम तथा ग्रीष्म ऋतु में 980.29 ग्राम पाया गया जिसमें खाद्यान्नों की भागेदारी62 प्रतिशत, दालों का 7 प्रतिशत तथा सब्जियों का योगदान 23 प्रतिशत रहता है, मांसाहार 2.01 प्रतिशत तथा फलाहार 2.12 प्रतिशत पाई गई, दूध तथा दूध से बने पदार्थ मान 1.41 प्रतिशत पाये गये । लघु मध्यम कृषक परिवारों द्वारा वर्षा में 965.82, शीत ऋतु में 1089.98 ग्राम तथा ग्रीष्म ऋतु में 1023.16 ग्राम खाद्य पदार्थ सेवन किये जाते हैं, जिसमें खाद्यान्नों की सहभागिता 59.84 प्रतिशत तथा दालों का 7.20 प्रतिशत सब्जियों की सहभागिता 23 प्रतिशत पाई गई । मांसाहार 2.36 प्रतिशत तथा फलाहार क योगदान 2.72 प्रतिशत रहता है । दूध और दूध से बने पदार्थो का योगदान 1.41 पाया गया । लघु मध्यम कृषक

परिवारों द्वारा वर्षा में 965.82 ग्राम, शीत ऋतु में 1089.98 ग्राम तथा ग्रीष्म ऋतु में 1023.16 ग्राम खाद्य पदार्थ सेवन किये जाते हैं। जिसमें खाद्यान्नों की सहभागिता 59.84 प्रतिशत तथा दालों का 7.20 प्रतिशत, सब्जियों की सहभागिता 23 प्रतिशत पाई गई । मांसाहार 2.36 प्रतिशत तथा फलाहार का योगदान 2.72 प्रतिशत रहता है । दूध तथा दूध से बने पदार्थों का योगदान इस वर्ग में भी केवल 1.82 प्रतिशत ही पाया गया । मध्यम कृषक परिवारों में वर्षा ऋतु में 996.87 ग्राम, शीत ऋतु में 1132.51 ग्राम तथा ग्रीष्म ऋतु में 1035.80 ग्राम खाद्य पदार्थो का प्रचलन है जिसमें 51.84 प्रतिशत खाद्यान्न 8.88 प्रतिशत दालें, जड़दार सब्जियां 14.44प्रतिशत, 10.41 प्रतिशत पत्तेदार सब्जियां, चिकनाई 1.80 प्रतिशत, दूध तथा दूध से बने पदार्थ 4.13 प्रतिशत, मांसाहार 2.01 प्रतिशत तथा फलाहार 3.87 प्रतिशत पाया गया। बड़े कृषक परिवार वर्षा ऋतु में 991.44 ग्राम, शीत ऋतु में 1114.29 ग्राम तथा ग्रीष्म ऋतु में 1032.45 ग्राम खाद्य पदार्थो का सेवन करते हैं जिसमं 55.55 प्रतिशत खाद्यान्न, 7.81 प्रतिशत दालें, 32 प्रतिशत से अधिक सब्जियां, दूध तथा दूध से बने पदार्थों का योगदान 3.01 प्रतिशत, मांसाहार 2.83 प्रतिशत तथा फलाहार का योगदान 3.41 प्रतिशत पाया गया । विभिन्न वर्गो द्वारा ग्रहण किये जाने वाले खाद्य पदार्थो का विशेषण करने पर पाया गया कि केवल खाद्यान्न की मात्रा लगभग सभी वर्गों में मानक स्तर से अधिक ग्रहण की जा रही है अन्य खाद्य पदार्थों मानक स्तर के अनुरूप किसी भी वर्ग द्वारा अपने भोजन में समायोजन नहीं किया जा रहा है ।

भोजन का मात्रात्मक तथा गुणात्मक स्तर ही शरीर के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की निर्धारण करता है । मनुष्य का समस्त ढांचा उसके पाचन संस्थान के आधार पर बना है, इसका अभिप्राय है कि मनुष्य जिस प्रकार का खाना खाता है और उसके पाचक अंश जिस प्रकार भोजन को शरीर का अंश बनते हैं तदानुसार ही उसका स्वास्थ्य बनता है, यह मानव शरीर संबंधी विचित्र तथ्य है । प्रत्येक प्राणी को उसके कार्य के अनुसार विभिन्न पोषक तत्वों से युक्त भोजन की आवश्यकता पड़ती है । समान्यतः भारी कार्य करनें वाले को अधिक पोषक तत्वों से युक्त भोजन की आवश्यकता पड़ती है जबकि हल्का कार्य करनें वाले को कम पोषक तत्व से युक्त भोजन चाहिये । महिलाओं को भी उनके कार्य के अनुसार भोजन में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है । गर्भवती तथा स्तनपान करानें वाली महिलाओं को अधिक पोषक तत्वों से युक्त भोजन चाहिये । इसी प्रकार

विभिन्न आयु के बच्चों के लिये अलग अलग पोषक तत्वों से युक्त भोजन की आवश्यकता होती है, परंतु जब शरीर में आवश्यक पोषक तत्वों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तब शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाता है । शरीर को निरोग बनाये रखनें के लिये न केवल मात्रात्मक रूप से भोजन की आवश्यकता होती है । बल्कि भोजन गुणात्मक रूप से श्रेष्ठ भी होना चाहिये । अज्ञानता एवं निर्धनता के कारण ग्रामीण जन भोजन का उद्देश्य केवल उदर पूर्ति तक सीमित समझते हैं । इसी कारण ग्रामीण क्षेत्रों में कुपोषण और अल्प पोषण की विकराल समस्या विद्यमान है । जिसके कारण लोग विभिन्न प्रकार के कुपोषण जनित रोगों के सरलता से शिकार हो जाते हैं ।

भोजन में पोषक तत्वों की दृष्टि से देखें तो सीमांत कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा गृहण किया जानें वाला खाद्य पदार्थो से प्राप्त होनें वाले पोषक तत्वों में प्रोटीन 8.47 ग्राम, फाइवर 4.64 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 119.38 ग्राम, फास्फोरस 0.10 ग्राम, थियामिन 1.21 मि.ग्राम मानक स्तर से अधिक पाये गये, ऊर्जा भी मानक स्तर से 147.19 कैलोरी अधिक पायी गई जबकि वसा 56.66 ग्राम, खनिज 1.13 ग्राम, कैल्सियम 1.02 ग्राम, लौह 5.54 मि.ग्राम, कैरोटीन 436 म्यू.ग्राम, राइबोफ्लेबिन 0.08 मि.ग्राम मानक स्तर से कम पाये गये । लघु कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा गृहण किये जानें वाले खाद्य पदार्थों में फाइबर 4.48 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 117.75 ग्राम, फास्फोरस 0.07 ग्राम, थियामिन 0.93 मि.ग्राम, तथा नियासिन 10.41 ग्राम मानक स्तर से अधिक तथा ऊर्जा 10.21 कैलोरी, प्रोटीन 1.52 ग्राम, वसा 56.04 ग्राम, खनिज 0.87 ग्राम, कैल्सियम 1.01 ग्राम, लौह 4. 46 मि.ग्राम, कैरोटीन 154.44 म्यू.ग्राम तथा राइवोफ्लेविन 0.10 मि.ग्राम मानक स्तर से निम्न पाये गये । लघु माध्यम कृषक परिवारों द्वारा गृहण किये जानें वाले खाद्य पदार्थों में फाइबर 4.37ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 100.51 ग्राम फास्फोरस 0.03 ग्राम, थियामिन 0.87 मि.ग्राम, तथा नियासिन 10.08 मि.ग्राम मानक स्तर से अधिक तथा ऊर्जा 81.82 कैलोरी, वसा 57.67 ग्राम, खनिज 0.85 ग्राम, कैल्सियम 1.01 ग्राम, लौह 4.98 मि.ग्राम, 28.73 म्यू.ग्राम, तथा राइबोफ्लेबिन 0.11 ग्राम,मि.ग्राम, मानक स्तर से कम पाये गये ।मध्यम परिवारों में फाइबर 5. 01 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 66.97 , फास्फोरस 0.01 ग्राम, कैरोटीन 524.72 म्यू. ग्राम, थियामिन 0.89 मि.ग्राम, तथा नियासिन 8.11मि.ग्राम, मानक स्तर अधिक तथा ऊर्जा 107.67 कैलोरी, प्रोटीन 0.02 ग्राम, वसा 47.53 ग्राम, खनिज 0.02

ग्राम, कैल्सियम 0.92 ग्राम, लौह 3.30 मि.ग्राम तथा राइबोफ्लेबिन .11 मि.ग्राम, मानक स्तर से कम पाये गये । बड़े कृषक परिवार के सदस्यों द्वारा गृहण किये जानें वाले खाद्य पदार्थों में प्रोटीन .35 ग्राम, फाइबर 4.77 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 92.88 ग्राम, फास्फोरस 0.03 ग्राम, कैरोटीन 279.85 म्यू.ग्राम, थियामिन 0.88 मि.ग्राम, तथा नियासिन 8.89 मि.ग्राम, मानक स्तर से अधिक तथा ऊर्जा 92.92 कैलोरी, वसा 49.68 ग्राम, खनिज .34 ग्राम, कैल्सियम .96 ग्राम, लौह 4.09 मि. ग्राम, तथा राइबोफ्लेबिन .11 मि.ग्राम, मानक स्तर से कम पाये गये । तुलनात्मक रूप में देखें तो ऊष्मा केवल सीमान्त कृषक परिवारों द्वारा मानक स्तर से अधिक गृहण की जा रही है । शेष अन्य वर्गों में मानक स्तर से कम गृहण की जा रही है । वसा सभी वर्गों में मानक स्तर से कम गृहण किया जा रहा है । कार्बोहाइड्रेट्स सभी वर्गों में मानक से अधिक प्राप्त हो रहे हैं । कैल्सियम की कमी सभी वर्गों में देखी गई इसी प्रकार लौह तत्व सभी वर्गों में मानक स्तर से कम गृहण किया जा रहा है । नियासिन सभी वर्गों में अधिक तथा राइबोफ्लेबिन की कमी पाई गई । स्पष्ट है कि लगभग सभी वर्गों में कुछ पोषक तत्वों की अत्याधिक कमी तथा कुछ पोषक तत्वों की अधिकता देखी गई है ।

अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न वर्गों द्वारा गृहण किए जानें वाले विभिन्न खाद्य पदार्थ न तो मात्रात्मक दृष्टि से पर्याप्त कहे जा सकते हैं परंतु गुणात्मक दृष्टि से खाद्य पदार्थों से प्राप्त पोषक तत्व मात्रात्मक दृष्टि से तो कुछ ठीक प्रतीत होते हैं परंतु गुणात्मक दृष्टि से निम्न स्तरीय हैं क्योंकि अधिकांश पोषक तत्व लगभग सभी वर्गों द्वारा खाद्यान्नों से ग्रहण किए जा रहे हैं । जिसके कारण कुपोषण जनित रोग ग्रामीण क्षेत्र में एक आम रोग की भांति व्यापक है । सर्वेक्षण में यह पाया गया कि कुल जनसंख्या का 44.84 प्रतिशत भाग विभिन्न कुपोषण से उत्पन्न रोगों का शिकार हैं जिसमें सर्वाधिक 47.82 प्रतिशत, सीमान्त कृषक परिवार के सदस्य, 45. 38 प्रतिशत, मध्यम कृषक 45.25 प्रतिशत, लघु कृषक 38.30 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक तथा 37.93 प्रतिशत, बड़े कृषक परिवार के सदस्य रोगी पाये गये । कुपोषण जनित रोगों में से हाथ पैरों की ऐंठन से सीमान्त कृषक 13.36 प्रतिशत, कृषक 17.32 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक 14.89 प्रतिशत, मध्यम कृषक 11.76 प्रतिशत, तथा बड़े कृषक 13.79 प्रतिशत पाये गये । पेट के रोगी सर्वाधिक मध्यम कृषक परिवारों में 31.93 प्रतिशत, बड़े कृषक परिवारों में 20.70 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक परिवारों में 20.21 प्रतिशत तथा सीमान्त और लघु कृषक परिवारों में

क्रमशः 15.16 प्रतिशत, और 14.24 प्रतिशत रोगी देखे गये । थकान तथा शरीर में सूजन के शिकार सर्वाधिक बड़े कृषक परिवारों में 17.24 प्रतिशत लघु कृषक परिवारों में 15.64 प्रतिशत, मध्यम कृषक परिवारो में 13.44 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक परिवारो में 12.77 प्रतिशत, सीमान्त परिवारों में 11.83 प्रतिशत दिखाई पड़े । सर्दी, जुकाम तथा मसूड़ों में सूजन से पीड़ित रोगी सर्वाधिक मध्यम कृषक 17.65 प्रतिशत, लघु कृषक 14.11 प्रतिशत, बड़े कृषक 13.79 प्रतिशत, सीमान्त परिवारों में 10.41 प्रतिशत, तथा, लघु मध्यम कृषक 7.71 प्रतिशत प्राप्त हुये । जीभ तथा ओठों के रोग से पीड़ित बड़े कृषक परिवारों में सर्वाधिक 17.24 प्रतिशत, सीमान्त कृषक 9.13 प्रतिशत तथा लघु मध्यम और मध्यम कृषक परिवारों में क्रमशः 8.10 प्रतिशत, 5.58 प्रतिशत, तथा 7.56 प्रतिशत देखे गये । पेलेग्रा रोग के सर्वाधिक रोगी 20.70 प्रतिशत बड़े कृषक परिवारों में प्राप्त हुये । लघु कृषक, सीमान्त कृषक, लघु मध्यम तथा मध्यम कृषक परिवारों में इस रोग के क्रमशः 8.10 प्रतिशत, 7.97 प्रतिशत, 4.52 प्रतिशत तथा 5.88 प्रतिशत रोगी प्राप्त किये गये । बेरी-बेरी रोग से पीड़ित सर्वाधिक रोगी बड़े कृषक परिवारों में 6.90 प्रतिशत, 6.56 प्रतिशत सीमान्त कृषक परिवारों में, लघु कृषक परिवारों में 4.33 प्रतिशत, 4.20 प्रतिशत मध्यम कृषकों में तथा 2.39 प्रतिशत लघु मध्यम कृषक परिवारों में देखे गये । रिकेट्स तथा आस्टोमलेशिया रोग के लक्षण सर्वाधिक 4.35 प्रतिशत सीमान्त कृषक परिवारों में, 3.45 प्रतिशत बड़े कृषक, 3.07 लघु कृषक 2.52 प्रतिशत, मध्यम कृषक तथा न्यूनतम 1.33 प्रतिशत लघु मध्यम कृषक परिवारों में देखे गये । रतौंधी रोग से सर्वाधिक पीड़ित रोगी 5.40 प्रतिशत, सीमान्त कृषक 3.91 प्रतिशत, लघु कृषक 3.45 प्रतिशत, बड़े कृषक 3.19 प्रतिशत, लघु मध्यम कृषक तथा न्यूनतम 1.68 प्रतिशत मध्यम कृषक परिवारों में देखे गये । स्कर्वी रोग से सर्वाधिक रोगी 5.01 प्रतिशत सीमान्त कृषक परिवारों में, 4.47 प्रतिशत लघु कृषक, 3.48 प्रतिशत लघु मध्यम, 3.45 प्रतिशत बड़े कृषक तथा 3.36 प्रतिशत मध्यम कृषक प्रभावित मिले । जोड़ों तथा गाठों में दर्द की शिकायत सर्वाधिक 17.24 प्रतिशत बड़े कृषक परिवार के सदस्यों में, दूसरे स्थान पर 13.44 प्रतिशत मध्यम कृषक, सीमान्त कृषक 10.80 प्रतिशत, लघु कृषक 8. 66 प्रतिशत तथा लघु मध्यम कृषक परिवारों में न्यूनतम 7.45 प्रतिशत सदस्यों ने की । मधुमेह के सर्वाधिक रोगी बड़े कृषक परिवारों में 6.90 प्रतिशत, मध्यम कृषक परिवारों में 3.36 प्रतिशत, सीमान्त कृषक परिवारों में 2.31 प्रतिशत, लघु

कृषक तथा लघु मध्यम कृषकों में क्रमशः 1.82 प्रतिशत तथा 1.86 प्रतिशत प्राप्त हुये ।

भोजन, आहार और खाना पर्यायवाची शब्द है । अन्न शब्द का अर्थ है जो खाया जाये । इस मौलिक अर्थ में अनाज, फल, सब्जी, मांस, मछली सभी अन्न हैं किन्तु आज के संकुचित अर्थ में खेतों में उपजनें वाले दानें को ही अन्न कहते हैं । संसार के समस्त प्राणियों का आधारभूत कारण भोजन नही है इसी कारण प्राणियों की देह एवं प्राणों की स्थिति है । जन्म लेते ही सबसे पहले प्राणी आहार की ओर प्रवृत्त होता है क्योंकि यह उसकी नैसर्गिक एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है । स्वस्थ्य रूप से जीवन बितानें के लिये हम जो भी अनाज, सब्जी, फल, दूध, और मेवा आदि खद्य पदार्थ ग्रहण करें उन्हें उनके प्राकृतिक रूप में तथा उचित ढंग से ग्रहण करें । ताकि वे हमारे स्वास्थ्य में स्थाई लाभ पहुँचा सकें । वास्तव में हम जितना व्यर्थ के भोजन पर व्यय करते हैं उसका यदि आधा भी हम उत्तम भोजन पर खर्च करें तो कोई ऐसा कारण नही है कि हम विभिन्न रोंगों से मुक्त होकर देश की सेवा में सशक्त और सक्रिय भूमिका का निर्वाह कर सकें ।

अंत में यह कहा जा सकता है कि संतुलित भोजन प्राप्त करनें के लिये परिवार को अपनी आर्थिक स्थिति के आधार पर विभिन्न समयों में भिन्न-भिन्न पोषक तत्वों से मुक्त खाद्य पदार्थों का चयन करना चाहिए जिससे वे अपनी खाद्य आदतों तथा संतुलित भोजन में समंजस्य बैठा सकें । अनेक खाद्य पदार्थ जो शरीर के लिये कम कीमत पर आवश्यक पोषक तत्वों को उपलब्ध करा सकते हैं, क्षेत्रीय उत्पादन द्वारा ही समायोजित किए जा सकते हैं परंतु अज्ञानतावश अथवा उच्च जीवन स्तर के खोखले प्रदर्शन के कारण हम उनका सेवन करनें से वंचित रह जाते हैं । प्रयास यह किया शारीरिक रोगों से मुक्त रह सकें ।

शोध ग्रन्थ सूची

1. अहमद ए एण्ड [illegible]द्दीकी एम0ई0 1967 क्राप एशोसिएशन पैटर्न इन दी बनीबेसिन, दी ज्यो[illegible]फर

2 **अली मोहम्मद (19[illegible])** 'फूड एण्ड न्यूट्रीशन इन इण्डिया' के के0पी0 पब्लिशन, नई दिल्ली।

3. अनुक्लीम बी0ए[illegible] (1973) थियरी आफ ज्योग्रेफी इन कोरिया आर0जे0(एडि0) [illegible]रेक्शन इन ज्योग्रेफी, मेथुईन लन्दन पार्ट-1 चैप्टर-3

4. आई0सी0ए0आर0 [illegible]ण्ड बुक आफ एग्रीकल्चर

5. इग्नेटीफ बी एण[illegible] पेज एच.आई. 1958 दी इफीसिएन्ट यूज आफ फर्टिलाइजर्स एफ0[illegible]ओ0 रोम

6. [illegible] सी0 [illegible] डेसवेल एम0 1967 दी इकोनामिक्स आफ सबसटेन्स [illegible]

7. केन्डाल एम0जी0 [illegible]939 ज्योग्रेफीकल डिस्ट्रीब्यूसन आफ क्राप प्रोडकटिविटी इन इग्लैण्ड, जे0रा[illegible] स्टेट सोसियो 102-21-62

8. कैरियल बी0जी0 [illegible]ड कैरियल पी0ई0 इक्सप्लोरेशन्स इन सोशल ज्योग्रेफी. एडीशन बेसले पलि[illegible]सिंग कम्पनी (1972)

9. कौर सतवंत 196[illegible] चेंजेज इन नेट सोन एरिया इन अमृतसर तहसील नेशनल ज्योग्रेफी आ[illegible] इण्डिया वाल्यूम 15 वां

10. गांगुली बी0एन0 1938 टेण्ड्स आफ एग्रीकल्चर एण्ड पापुलेशन इन दी गंगाज बेली, लन्दन

11. चौहान डी0एस0 [illegible]टडीज इन यूटीलाईजेशन आफ एग्रीकल्चरल लैण्ड. अग्रवाल एण्ड कम्प[illegible]ी आगरा (1966)

12. **चौहान आर0बी0 [illegible]िंह (1992)** हमीरपुर तहसील के भूमि उपयोग, पोषण स्तर एवं मानव स्वास्थ्य।

[illegible]

[illegible]

13. जोगेलकर एम.एम. 1983 स्टडी आफ क्राप पैटर्न आन एन अरबन फ्रिंज इण्डियन जनरल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम 18 नं-1

14. झा.डी. 1963 इकोनामिक्स आफ क्राप पैटर्न आफ इरीगेटेड फार्मसईन नार्थ विहार-इडियन जनरल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यू 18 वां

15. तिवारी बी0डी0 1968 पैटर्न आफ एग्रीकल्चर प्रोडक्सन एवोलिबिलिटी एण्ड न्यूटीसन इन एम0पी वी0बी0बी0पी0 बाल्यूम 23 नं0-2

16. थामस डी 1963 काप काम्बिनेशन इन बेल्स ज्योग्रेफिकल रिव्यूब 44

17. 1967 द चेन्जिंग फेस आफ एग्रीकल्चर इन इस्टर्न यूरोप, ज्योग्रेफिकल रिब्यू-57-358-372

18. दयाल ई. काप कम्बीनेशन रीजन ए स्टडी आफ पंजाब प्लेन्स नीदरलैण्ड जर्नल आफ इकोनामिक एण्ड सोशल ज्योग्राफी

19. दत्त आर एवं सुन्दरम के0पी0एम0 (1994) भारतीय अर्थ व्यवस्था

20. दि हिन्दू सर्वे आफ इण्डियन एग्रीकल्चर 1988

21. नेशनल कमीशन रिपोर्ट आन एग्रीकल्चर 1976 बाल्यूम एक,

22. बनर्जी बी 1964 चेंजिंग क्रप लैण्ड आफ बेस्ट बंगाल ज्योग्रेफिकल रिब्यूब आफ इण्डिया 24 (1)

23. बैलजेटी सी. लैण्ड यूज एण्ड नेचुरल बेजीटेशन इन इण्टरनेशनल ज्योग्रेफी

24. बोहरा बी0बी0 ए पालिसी फार लैण्ड एण्ड वाटर सरदार पटेल मेमोरियल लेक्चरर्स 1980 मेनस्ट्रीम, जनवरी 3, 1981

25. बनर्जी बी 1964 चेंजिंग क्रप लैण्ड आफ बेस्ट बंगाल ज्योग्रेफिकल रिब्यूब आफ इण्डिया 24 (1)

26. भदौरिया के0एस0 (1979) भूमि उपयोग पोषण स्तर एवं मानव स्वास्थ्य जनपद इटावा के विशेष सन्दर्भ में अप्रकाशित शोध ग्रन्थ बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

27. भाटिया एस0एस0 1967 ए न्यू मेजर्स आफ एग्रीकल्चरल इफिसिएन्सी इन यू0पी0 इन इण्डि इकोनामिक ज्योग्रेफी 43(3).248

28. मजीद अब्दुल 1963 क्राप पैटर्न एण्ड साइज आफ कल्टीवेटेड होल्डिंग्स पेज इडियन जनरल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम 18

29. मंडल जी.सी. घोष के 1963 सम एस्पेक्टस आफ द इकोनामिक्स आफ पेज क्रापिंग पैटर्न-इण्डियन जरनल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम-18 नं01

30. माथुर पी0एन0 1963 क्रापिंग पैटर्न एन्ड इम्प्लायमेंट इन विदर्भ इण्डियन पेज जरनल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम-18 नं01

31. माल्य एमत्र 1963 अर्बनाइजेशन एण्ड क्रापिंग पैटर्न इण्डियन जरनल आफ पेज एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम-18 नं01

32. मैंग ग्रेगर डी0आर0 (1957) सम आब्जेर्वेशन आफ दी ज्योग्रेफीकल पेज सिगनीफिकेन्स आफ स्लोप्स ज्योग्रेफी, वाल्यूम-42

33. यू0एन0ओ0- नेचुरल रिसेंसिज आफ डेबलपिंग कन्द्रीज पेज

34. **रन्धावा एम0एस0 (1974)** "ग्रीन रिवोलूशन' विकास पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

35. रामलिंगन 1963 क्राप पैटर्न एण्ड साइज आफ कल्टीवेटेड होल्डिंग्स, इण्डियन जनरल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम 18

36. राव टी. रामकृष्ण 1965 ए नोट आफ मेजरमेंट आफ सिफ्टस इन कार्पिंग पैटर्न विथ रिफरैसट डिस्टिक्ट आफ मद्रास स्टेट एग्रीकल्चर सेचुएशन इन इण्डिया बाल्यूम 20 वां

37. राजकृष्ण 1963 आप्लिमेलिटी आफ लैण्ड एलोकेशन ए केश स्टडी आफ पंजाब इण्डिया जरनल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स बाल्यूम-18 नं01

38. राय बी0के0 19[illegible]7 काप एसोसिएशन एण्ड चेन्जिग पैटर्न आफ काप इन दी गंगा घाघरा, दोआब इस्ट नेश[illegible] ज्योग्राफर बाल्यूम 13 (ए)

39. बक जे0एल0 19[illegible]7 लैण्ड यूटीलाइजेशन इन चाइना बाल्यूम-1 यूनिवर्सिटी आफ नानकिंग

40. वानजटी सी0लैण्ड यूज नेचुरल बेजिटेशन इन इण्टरनेशनल ज्योग्रेफी, एडीटेड बाई डब्लू पेटर एडम्स एण्ड फेड[illegible]क, एम. हेलेनर, टोरन्टो यूनिवर्सिटी

41. वारलो आर0 जा[illegible]सन बी0डब्लू लैण्ड प्राब्लम एण्ड पालिसीज, एम सी. ग्राहिल बुक कम्पनी इन न्यूर्याक 1954

42. वुड एच.डी. ए क्लासीफिकेशन आफ एग्रीकल्चर लैण्ड यूज फार डेबलपमेंट प्लानिंग इण्टरनेशनल ज्योग्रे[illegible] बाइसवा आई0जी0यू0कनाडा. यूनीवर्सिटी

43. बीवर जे.सी. 19[illegible] काप काम्बिनेशनरीजन्स इन द मिडिल वेस्ट ज्योग्रेफिकल रिब्यूब बाल्यूम 44

44. सिंह बी.बी. 197[illegible] कापिंग पैटर्न आफ बशैव ब्लाक ज्योग्रेफीकल आब्जरबर बाल्यूम-9

45. सिंह हरपाल 196[illegible] काप कम्बीनेशन रिजन्स इन मालवा टैक्ट आफ पंजाब दकन ज्योग्राफर बाल्यूम 8

46. सिंह एस.पी. 19[illegible]7 पावर्टी फूड एण्ड न्यूटीसन इन इण्डिया पब्लिस्ड इन 1991 चुग पब्लिकेशन इलाहाबा[illegible]-68

47 सिंह जसबीर 197[illegible] एन एग्रीकल्चरल ज्योग्रेफी आफ हरियाणा, कुरूक्षेत्र-1976

48. सिंह बृजभूषण कृषि भूगोल, तारा पब्लिकेशन वाराणसी 1979

49. सिंह बृजभूषण कृषि भूगोल,

50. सिंह बी0बी0 कृषि भूगोल

51 सैनी जी.आर. 19[illegible]3 एम एस्पेक्ट आफ चेन्जेज इन कापिंग पैटर्न इन बेस्टर्न यू0पी0 एग्रिकल्चरर सेचुएशन इन इण्डिया बाल्यूम-18

2 सफी एम0 1960 मेजरमेंट आफ एग्रीकल्चरल इफीसिएन्सी इन उत्तर प्रदेश इकोनोमिक ज्योग्रेप 36 (4)

3 सेपर एस.जी. एण्ड देशपाण्डेय 1964 इण्टरडिसिट्रिक्ट बैरिएसन्स इन एग्रीकल्चरल इर्फीशिएन्सी इन महाराष्ट्र स्टेट, इण्डियन जर्नल आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स वाल्यू 19 नम्बर-2

4 सिन्हा बी0एन0 एग्रीकल्चरल इफिसिएन्सी इन इण्डिया बाल्यूम-4 चैप्टर-10 इन परसपेक्टिव इन एग्रीकल्चरल ज्योग्रेफी 1980, कन्सेप्ट पब्लिकेशन न्यू देलही।

5 सिंह जसबीर 1982 ए न्यू टेक्नीक फार मेजरिंग एग्रीकल्चरल प्रोडक्टीविटी इन हरियाणा, इण्डिया दी ज्योग्रेफर-19

6. सिंह एस0पी0 1987 पावर्टी फूड एण्ड न्यूटीशन इन इण्डिया पब्लिस्ड इन 1991 चुग पब्लिकेशन इलाहाबाद।

7 सफी एम 1972 मेजरमेंन्ट आफ एग्रीकल्चरल प्रोडक्टविटी आफ दि ग्रेट इण्डियन्स प्लेन्स, दी ज्योग्रेफर बाल्यूम 19 नं01

8 हुसेन मजीद 1960 पैटर्न आफ काप कंस्टेशन इन उत्तर प्रदेश ज्योग्रेफिकल रिविव्यू आफ इण्डिया बाल्यूम 32 वां नं-3

9. हनुमंत राव सी0एच0 साइस एण्ड टैक्नोलाजी पालिसी एन ओवर आल ब्यू एण्ड बोर्डर इम्प्लिकेशन इन एग्रीकल्चर डबलपमेंट इन इण्डिया-इण्डियन सोसाइटी आफ एग्रीकल्चर इकोनामिक

10. हुसेन मजीद 1978 ए न्यू एप्रोच टू द एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी रिजन्स आफ दी सतलज गंगा प्लेन्स आफ इण्डिया ज्योग्रेफिकल रिव्यूव आफ इण्डिया बाल्यूम-38 नं0-30